नई धारा
राजा राधिकारमण-स्मृति-अंक

नई धारा
राजा राधिकारमण-स्मृति-अंक
प्रधान सम्पादक
उदय राज सिंह
सं॰ सम्पादक
सुरेश कुमार
रेखांकक
उपेन्द्र महारथी
अशोक प्रेस : पटना-६

मुद्रक

श्री सुरेश कुमार

अशोक प्रेस, पटना—६

मूल्य—पाँच रुपये

वर्ष २२ अंक ३-७

जून-अक्टूबर १९७१

अक्षरादि-अनुक्रम

परिशिष्ट

(विलम्ब से प्राप्त)

हमारे बाबूजी

काव्याञ्जलि

राजा साहब

एक नाम—राधिकारमण

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

अक्षर धुले हुए मानवता के आँसू से परम पवित्र
शब्द कि मानों रूप बना हो मुखर रश्मियों का वादित्र
वचन कि मानों प्राणदायिनी शक्ति बाँटता हो वातास
वाक्य कि मानों गगन चूमता हो गौरवशाली इतिहास
प्रश्न उठे यदि कभी कि यह किसकी प्रतिभा का उदाहरण
एक नाम तब गूँजेगा, बस एक नाम—राधिकारमण
इतने चिह्न; उषा-आँगन के कुछ प्रसून, कुछ संध्या-पत्र
रेखा-दीप नदी-तट के कुछ, कुछ नभ के जगमग नक्षत्र
कुछ चंदन-कण, कुछ ज्वाला-कण, कुछ सौरभ-कण, कुछ हिम-हास
कुछ अपने में बंद और कुछ मुक्त कि ज्यों नीला आकाश
कौन मार्ग में छोड़ गया है, किसके पावन-पुण्य चरण
एक नाम उत्तर में लिख दो, एक नाम—राधिकारमण

इलावर्त्त, राजेन्द्र नगर, पटना

उन्हीं की लेखनी से

स्मृति-रेखाएँ

अजित नारायण सिंह 'तोमर'

सचिव, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना—४

मन्दिर में मुझे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ करते थे। यों राधा-कृष्ण की मूर्त्ति को वे मन में रमाये हुए थे, किन्तु सीता-राम, भवानी-शंकर और हनुमान जी के आगे भी उतनी ही तन्मयता से झुकते थे।

लगता जैसे विभिन्न भगवत्-विग्रहों में वे तात्विक दृष्टि से भेद नहीं पाते।

राजा साहब : एक संस्मरण

शैली-सम्राट् राजा साहब का नाम बहुत पहले से सुन रखा था। उनकी कृतियों के पठन-पाठन का भी सौभाग्य १९३७-३८ से ही सुलभ था, किन्तु दर्शन तभी हुए जब १९४९ ई० में जगदम्बा ने रोटी-रोजी पटना में जुटा दी। जब कहीं साहित्यिक आयोजन होता, बड़ी सभाएँ होतीं, राजा साहब के सरस व्याख्यान सुनने को मिल जाते। उर्दू के मौजूँ शेरों से समन्वित उनकी पंक्ति-पंक्ति पर तालियों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती। राजा साहब जब बोलने लगते, समा बँध जाता। जैसी ही उनकी रचनाएँ मुहावरे-कहावतों की खान, वैसी ही वाणी से निःसृत उनके व्याख्यान की

पंक्तियाँ। लगता, राजा साहब की जुबान पर हर अवसर के शेर, हर अवसर की मौजूँ कविताएँ मौजूद रहती थीं। आपकी स्मरण-शक्ति की बलिहारी थी। आप मानों जीता-जागता विश्वकोश थे।

राजा साहब के निकट सम्पर्क में आने का अवसर अक्टूबर, १९५६ में मिला, जब स्व० आचार्य शिवपूजन सहाय जी की कृपा से मैं बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के सचिव के पद पर प्रतिष्ठित हो गया। राजा साहब आरम्भ से ही परिषद् के संचालक-मण्डल एवं उसकी सामान्य समिति के मान्य सदस्यों में एक थे। तत्कालीन शिक्षा मंत्री आचार्य बदरीनाथ वर्मा परिषद् की सामान्य समिति एवं उसके संचालक-मण्डल के अध्यक्ष थे। आचार्य जी की अनुपस्थिति में राजा साहब कभी-कभी बैठकों की अध्यक्षता करते थे। आचार्य शिवपूजन सहाय जी के प्रति उनके हृदय में बड़ा स्नेह एवं सन्मान था। जब कभी राजा साहब को मन नहीं लगता तो दूरभाष से आचार्य शिवपूजन सहाय जी को अपने यहाँ बुला लेते। आचार्य जी जब चलने लगते तो नैसर्गिक स्नेहवश मुझे भी अपने साथ कर लेते।

हमलोग राजा साहब के यहाँ पहुँचते। घंटों गप किया करते। हर प्रकार की चर्चा होती। लगता ही नहीं कि आखिर किस काम से फोन करके आचार्य जी को बुलाया था। आचार्य जी भी कभी नहीं पूछते कि किस काम से बुलाया गया था। आचार्य जी के साथ पारिवारिक चर्चा भी करते। आचार्य जी की कृपा के कारण ही शायद राजा साहब का कृपापात्र मैं भी हो गया था।

'जा पर कृपा राम की होई, ता पर कृपा करइ सब कोई।'

राजा साहब अपने आश्रितों के प्रति बड़े दयालु और उदार थे। आदमी की परख उनमें खूब थी। एक बार जिसे देख लेते, उसकी नस-नस पहचानते थे। फिर भी अपने एक नौकर को सरकारी आफिस में चपरासी का काम दिलाने के लिए उन्होंने उसकी काफी प्रशंसा की। उसके दुर्गुणों को भूल उसकी प्रशंसा का पुल बाँध दिया।

जब कभी किसी मजमे में या सभा में घोषित किया जाता कि अब राजा साहब अपना विचार व्यक्त करेंगे कि वे छूटते ही 'राजा' शब्द का प्रतिवाद करते—'अब कहाँ रहा सूर्यपुरा का वह राजा, वह तो अंगरेजों का दिया हुआ कलंक था, जो उनके कूच करते ही चल बसा, आपके सामने खड़ा है 'राम-रहीम' का लेखक राधिकारमण।

अब तो 'नजर बदल गई नजारें बदल गए' आदि-आदि। 'राजा' शब्द को न मालूम क्यों वे अपने पास नहीं फटकने देना चाहते थे। जो आदमी पहले कभी उन्हें नहीं देखा होगा उनके 'लिफाफ' से अन्दाज नहीं लगा सकता था कि वह सूर्यपुरा के राजा के समक्ष खड़ा है।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के मान्य सदस्य के रूप में राजा साहब के कतिपय प्रस्ताव चिरस्मरणीय रहेंगे। यह उनकी सत्प्रेरणा का ही परिणाम है कि परिषद् विगत दस वर्षों से एक सहस्र रुपए का अहिन्दी-भाषा-भाषी-लेखक-हिन्दी-ग्रन्थ-पुरस्कार प्रदान कर रही है, जिसके कारण परिषद् के कार्यक्षेत्र का विस्तार राजकीय स्तर से बढ़कर सार्वदेशिक स्तर पर हो गया है। इतना ही नहीं, तमिल भाषा से कम्ब रामायण तथा तेलुगु भाषा से रंगनाथ रामायण के अनुवाद की योजना के प्रेरणा-स्रोत राजा साहब ही थे। इन उल्लेखनीय प्रकाशनों द्वारा परिषद् की कितनी गौरव-वृद्धि हुई है, यह बात किसी से छिपी नहीं है। परिषद् की अनुसंधान-योजना उपसमिति के प्रमुख सदस्य के रूप में जो आपने सेवाएँ कीं वह शोध-विभागों के प्रकाशनों के रूप में विद्यमान हैं। अनुवाद योजना समिति के प्रमुख सदस्य के रूप में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अनुवाद के प्रकाशन की आपने योजना दी जिनमें से कतिपय ग्रन्थों का ही अनुवाद प्रकाशित कर परिषद् गौरवान्वित है।

परिषद् के चतुर्दश वार्षिकोत्सव के अवसर पर २० जुलाई १९६५ ई० को वार्षिकोसत्व के सभापति श्री सत्यनारायण सिंह, केन्द्रीय सरकार के सूचना एवं प्रसार मंत्री के कर-कमलों द्वारा राजा साहब को डेढ़ सहस्र मुद्रा का वयोवृद्ध साहित्यिक-सम्मान-पुरस्कार समर्पित किया गया। उन्होंने उक्त पुरस्कार की राशि ग्रहण कर उसे पुनः परिषद् को अपनी ओर से अर्पित कर दिया। उक्त राशि के व्याज से उन्होंने प्रतिवर्ष कहानी पुरस्कार के आयोजन की इच्छा व्यक्त की। तदनुसार बिहार के नवोदित सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कहानी लेखक को इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त करने वाली उसकी कहानी पर एक सौ रुपये का पुरस्कार १९६८ ई० से दिया जाता है।

१९६४ ई० में जब में पटना—१ के गर्दनीबाग स्थित सरकारी आवास में रहता था, तो नित्य सुबह टहलने जाया करता था। नया सचिवालय के पीछे सर्पेन्टाइन रोड

स्थित पंचमन्दिर में प्रायः राजा साहब का दर्शन सुलभ हो जाता था। राजा साहब तड़के उठते और नित्यक्रिया से निबट कर टहलने निकल पड़ते थे। सात बजे सुबह के पूर्व लौट कर अपने बोरिंग रोड स्थित निवास पर पहुँचते। पहनावे पर विशेष ध्यान राजा साहब का नहीं दीखता था। हमासुमा की तरह साधारण वेशभूषा में ही टहलने निकलते। पंचमन्दिर में भगवान् के सामने नातिदीर्घ काल तक माथा टेकते। कुछ देर ध्यान भी करते। सुबह की भगवान् की झाँकी, आरती आदि में भी भाग लेते। भगवान् की आरती में उनका मन रम जाता था। शीलवश मन्दिर से निकल कुछ दूर तक मैं उनके साथ-साथ टहलता। उस दौरान में कभी रोजमर्रे की चर्चा भी छिड़ जाती। मन्दिर में मुझे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ करते थे। यों राधा-कृष्ण की मूर्ति को वे मन में रमाये हुए थे, किन्तु सीता-राम, भवानी-शंकर और हनुमान जी के आगे भी उतनी ही तन्मयता से झुकते थे। लगता जैसे विभिन्न भगवद्-विग्रहों में वे तात्विक दृष्टि से भेद नहीं पाते।

परिषद् एवं बिहार सरकार के अभिस्ताव को मान कर साहित्य अकादमी, दिल्ली ने राजा साहब को अपना सदस्य मनोनीत किया था। परिषद् के चूँकि आप मान्य सदस्य थे, इसलिए संचालक-मण्डल एवं सामान्य समिति ने एक स्वर से अपना अभिस्ताव राजा साहब के पक्ष में किया था। परिषद् के दुबारा प्रस्ताव पर आप लगभग दस वर्षों तक साहित्य अकादमी के सदस्य बने रहे।

औपचारिकता नाम की चीज राजा साहब में नहीं थीं। समय पर भोजन, जलपान, चाय आदि ग्रहण करते। ऐसा नहीं कि बीच में कोई आ गया तो उसके लिहाज में पड़कर अपना भोजन बन्द कर दिया, चाय नहीं पी अथवा आगत सज्जन के लिए भी घर में कामों में बाधा पहुँचा दी। यदि उनके चाय-पान का समय आ जाता या चाय केवल उनके लिए सामने आ जाती और बाद में कोई सज्जन आ जाते तो इतमीनान से वे चाय पी लेते, पान खा लेते बेतक्ल्लुफी के साथ। खान-पान और व्यायाम के कारण ही आप इतनी लम्बी आयु तक स्वस्थ रह सके। संयत आहार-बिहार तथा छल-रहित व्यवहार के कारण ही वे माँ भारती की इतनी सेवा कर सके।

परिषद् की बैठकों में भी भाग लेने आते तो औपचारिकता का पल्ला छोड़, मुझसे

पूछ लेते—काजू और सन्तरा मेरे लिए मँगवा लिया है न ? काजू उन्हें बहुत प्रिय था। अजनबी आदमी भले उसका जो अर्थ लगा ले, इसकी बिना परवाह किए राजा साहब यदि तत्काल सन्तरा नहीं खाना चाहते तो पार्टी के अवसर पर भी हाथ में उठा लेते और बाद में मन में आता तो उसमें से थोड़ा खाते। काजू दो-चार पास में रख लेते और बाद में खाते। उन्हीं के कारण जब तक वे परिषद् के सदस्य रहे हमलोग बैठकों में काजू का प्रबन्ध अवश्य करते।

बैठकों में एक स्थान पर अधिक देर तक जमे रहना उनके लिए गवारा होना कठिन था। इसीलिए बैठकों में सम्मिलित होने के बाद उठ खड़े होते और थोड़ा चहल-कदमी कर पुनः बैठते थे। यह दूसरी बात है कि राम-रहीम, पुरुष और नारी जैसे वृहद्काय उपन्यासों की पाण्डुलिपियों के तैयार कराने में उन्होंने अतुलित धैर्य और परिश्रम का परिचय दिया था।

कुछ लोगों का कहना है कि सत्य की कसौटी पर कसने पर उनके वादे हमेशा सही नहीं उतरते, किन्तु ऐसे लोगों को इस बात को भी नजरअन्दाज नहीं करना चाहिए कि राजा साहब के निकट आश्रय, सहायता और उनकी कृपा चाहने वालों का हुजूम था, जिनमें से शायद ही कभी किसी को अपने वचनों द्वारा उन्होंने निराश किया। उनकी सहायता का भरसक प्रयास करते, किन्तु मनुष्य की सीमाएँ होती हैं, जो कभी-कभी मनुष्य को लाचार कर देती हैं।

सचमुच राजा साहब राजाओं में सन्त, मानवीय गुणों के महन्त, शैली के सम्राट्, भाषा-शिल्प के सफल साधक और माँ भारती के एकनिष्ठ आराधक थे।

इतना अब मुझे कहने में संकोच नहीं है कि मेरे वे समर्थकों में थे और उनके उठ जाने से मेरे जैसे अनेक उड़ने को उत्सुक पक्षियों के डैने ही टूट गए। अन्त में आह मुँह से निकलती है :—

बड़े शौक से सुन रहा था जमाना,
तुम्हीं सो गए दास्ताँ कहते-कहते।

अनूप लाल मण्डल

स्थान-पो०—समैली (पूर्णिया)

✣

परिषद् में, राजकीय नियमों के अनुसार, सदस्यों को यात्रा-भत्ता देने का विधान था। नियमतः उन्हें भी मिला करता। पर मैं जानता था कि इस प्रकार के उपलब्ध द्रव्य को वे निजी कार्य में न लगाकर कुछ धनहीन किंतु मेधावी छात्रों को सहायतार्थ वितरित कर दिया करते थे। पर जब कभी उस देयक के भुगतान करने में देर हो जाती, तब वे परिषद् में आकर या फोन से, परिषद्-मंत्री से न मिलकर मुझसे ही कहा करते और मैं भुगतान कराने की व्यवस्था में लग जाता, जिससे उन छात्रों को कष्ट से थोड़ी राहत मिल जाती। ऐसे थे वे उदार-हृदय—जिसमें धनहीनों के प्रति इतना गहरा ममत्व था।

✣

कौन जानता था कि अपने अग्रज-तुल्य पद्मभूषण राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के शुभ दर्शन मेरे लिए अंतिम दर्शन ही सिद्ध होंगे! यह १९७० ई० की १७ अप्रैल की बात है। उस दिन संध्या काल में पटना-स्थित सम्मेलन-भवन के सुसज्जित प्रांगण में,

अपने अग्रज को शतशः प्रणाम

बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्वर्ण-जयन्ती के उपलक्ष्य में बिहार के कुछ विशिष्ट साहित्यिकों को अभिनन्दित करने का आयोजन किया गया था। राजा साहब उनमें मूर्धन्य थे। सौभाग्य से मैं भी उस दल में बैठाया गया था। अभिनन्दन के तुरंत बाद मैं उनसे मिला, प्रणाम किया। उन्होंने सस्नेह कुशल-जिज्ञासा की। वही मेरा अंतिम मिलन था उनके साथ।

मैं तो वर्षों से रुग्ण हूँ—आधि-व्याधि से जर्जर। करने-धरने को कुछ है नहीं, यद्यपि मन की साध मन में ही समाधिस्थ हो गई। देहात में रहता हूँ, साहित्यिक दुनिया से बिलकुल अलग-अलग। समय काटे नहीं कटता। किसी तरह समय को धकेलता-टालता जा रहा हूँ। अचानक मन की ऐसी अवस्था में एक दिन आकाशवाणी से यह समाचार प्रसारित हुआ कि राजा साहब अब इस लोक में न रहे। सुनकर अत्यंत व्यथित हुआ! पर मरणधर्मा मानव के लिए यह कोई असंभव-अनहोनी बात न थी। महाकवि कालिदास ने कहा है: मरणं प्रकृतिः शरीरिणां, विकृतिर्जीवित-मुच्यते बुधैः। मृत्यु तो जीवधारियों के लिए प्रकृत है—अवश्यंभावी है; बल्कि कहना तो यह चाहिए कि जीवनी-शक्ति जब तक रहे—रहे। इसलिए विद्वानों ने इसे अप्राकृ-तिक-अस्वाभाविक बतलाया है।

स्वर्गीय राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह से प्रथम साक्षात् कब, कहाँ हुआ था, आज जब इन पंक्तियों को लिख रहा हूँ, अतीत जीवन की अनेक स्मृतियाँ एकबारगी मस्तिष्क में उदित हो उठी हैं। उनमें मैं किस-किस का यहाँ उल्लेख करूँ—करने की वैसी सामर्थ्य ही कहाँ रह गई है अपने-आप में, जब अपनी गर्दन के दर्द से बेचैन हूँ, बैठा नहीं जाता, लेटे-लेटे ये कुछ पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। अतएव अपने मन की पूरी बातें भी इस कागद पर उतारने से असमर्थता का बोध कर रहा हूँ। ऐसी अवस्था में जो कुछ लिखा जाय, उतना ही अलम् समझा जाना चाहिए।

जब मैं साहित्य-क्षेत्र में उतरा भी नहीं था, राजा साहब की साहित्यिक प्रतिभा की सुरभि दिग्-दिगंत में प्रसारित हो चुकी थी। जाने किस तरह उनके अभिभाषण की एक मुद्रित प्रति मुझे उपलब्ध हुई थी। वह अभिभाषण था बिहार प्रादेशिक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के मंच से, उसके सभापति के रूप में दिया हुआ। यही उनकी रचना थी, जो मैंने प्रथम-प्रथम पढ़ी थी। मैं उस अभिभाषण की ओज-

स्विनी शैली को देख कर मंत्र-मुग्ध हो उठा था। तभी से मेरे मन में इच्छा जगी कि उनके दर्शन करूँ; पर राज-दर्शन दरिद्राणां मनोरथाः ही समझ कर मन मार बैठा रह गया।

पर वह अवसर मुझे अनायास सुलभ हुआ, मगर बहुत दिनों के बाद। पूर्णियाँ जिला हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन समारोह कुरसेला नामक स्थान में, जो मेरे घर से चार मील पर है, होने वाला था। राजा साहब उसके उद्घाटनकर्त्ता के रूप में पधारे थे। वैसा अधिवेशन फिर कभी पूर्णियाँ जिला-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का न हो सका। क्योंकि संयोग से उस अधिवेशन में तीन राजाओं ने सक्रिय भाग लिया था। चंपानगर (पूर्णियाँ) के कुमार श्री गंगानन्द सिंह, सूर्यपुरा के राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह—ये दोनों, क्रमशः सभापति और उद्घाटनकर्त्ता थे और कुरसेला-इस्टेट के रईस रायबहादुर रघुवंश प्रसाद सिंह के ज्येष्ठ चिरंजीव श्री अवधेश कुमार सिंह, जिन्हें लोग कुमार साहब कहा करते, स्वागताध्यक्ष थे। इस अधिवेशन के उद्योक्ता थे साहित्य-वाचस्पति डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु, जिनके उद्योग का फल था कि वह अधिवेशन इतना शानदार हो सका था। मैं तो उस स्वागत-समिति का एक साधारण-सा सदस्य था—साहित्यिकों की सेवा करने का भार मुझ पर न्यस्त था। तभी मैंने राजा साहब के चाक्षुष दर्शन किये थे और कानों से उनके श्रीमुख से निःसृत वाणी के अमृत-बूंदों को छक कर पान किया था। राजा साहब विनम्रता की मूर्ति थे, राजघराने के पुरुषों में जो एक अहं रहा करता है, वैसा मैंने न तब देखा और न उनके आगे के जीवन में। इतना सरल, इतना निरहंकार! उस प्रथम दर्शन की छाप मुझ पर इतनी गहरी पड़ी कि लगता है, जैसे मैं उसी अधिवेशन में अब भी बैठा हूँ, और बड़े तन्मय होकर उनके मुख से उच्चरित शब्दों को सुन नहीं रहा हूँ, बल्कि पी रहा हूँ अपने कानों के द्वारा! शायद १९३५-३६ की बात होगी—ठीक सन्-संवत् याद नहीं।

और फिर दूसरी बार सन् १९५० ई० की बात है। मैं पटना गया हुआ था। स्व० बेनीपुरी के आमंत्रण पर 'नई धारा' के प्रथम अंक के प्रकाशन पर आयोजित साहित्यिक गोष्ठी में मैं भी शरीक हुआ था। स्वयं राजा साहब ने बड़े आदर से मुझे बैठाया था। बेनीपुरी जी मेरा परिचय कराना ही चाहते थे, तभी वे बोल उठे—अरे

भाई; परिचय तो बहुत पुराना है इनसे, कुरसेला में हमलोग मिल चुके हैं। मैं तो उनकी अद्भुत स्मृति-शक्ति पर दंग रह गया। वे कितने महान् थे कि मुझ-जैसे एक अदना आदमी को भी उन्होंने अपने अंतर में एक निश्चित-सी जगह दे रखी थी !

और फिर उसी साल के अक्तूबर में मेरी नियुक्ति बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के प्रकाशनाधिकारी के पद पर हो चुकी, जहाँ मुझे लगभग तेरह साल तक रहने का सुअवसर मिला, बराबर राजा साहब के दर्शन होते रहे। वे परिषद् की 'सामान्य समिति' और 'संचालक-मण्डल' के एक वरिष्ठ सदस्य थे। प्रायः प्रत्येक बैठक में वे उपस्थित होते, जहाँ परिषद्-मंत्री आचार्य शिवपूजन सहाय के साथ उनके सहायक के रूप में, मैं भी रहा करता। उन दिनों राजा साहब अधिकतर सूर्यपुरा में रहा करते; वहीं से बैठक में उपस्थित होते। प्रायः परिषद् में, राजकीय नियमों के अनुसार, सदस्यों को यात्रा-भत्ता देने का विधान था। नियमतः उन्हें भी मिला करता। पर मैं जानता था कि इस प्रकार के उपलब्ध द्रव्य को वे निजी कार्य में न लगाकर कुछ धनहीन किंतु मेधावी छात्रों को सहायतार्थ वितरित कर दिया करते। पर जब कभी उस देयक के भुगतान करने में देर हो जाती, तब वे परिषद् में आकर या फोन से, परिषद्-मंत्री से न मिलकर मुझसे ही कहा करते और मैं भुगतान कराने की व्यवस्था में लग जाता, जिससे उन छात्रों को कष्ट से थोड़ी राहत मिल जाती। ऐसे थे वे उदार-हृदय—जिसमें धनहीनों के प्रति इतना गहरा ममत्व था।

परिषद् के कार्य-काल में मुझे अनेक बार राजा साहब से मिलने के लिए उनके बोरिंग रोड-स्थित निवास-भवन में जाने का सुअवसर मिला था। वे बड़े उल्लास से मुझे बैठाते, कुशल-समाचार पूछते, खातिरदारी करते। वे इतनी आत्मीयता से बातें करते कि मुझे लगता, जैसे वे कितने अपने हों, कितनी सहृदयता, कितना अपनापन ! राजघराने में पैदा हुए, स्वयं 'राजा' की उपाधि से मण्डित ! पर न राजसी ठाठ-बाट, न राजसी दिखावट; पर हृदय के इतने कोमल, इतने विशाल, इतने स्नेह-प्रवण कि कुछ न पूछिए। राजा साहब मजलिसी आदमी थे, उनके पास बैठे रहिए, वे आप-बीती सुनाते चलेंगे। कहने की तर्ज-बयानी इतनी लाजवाब कि घंटों सुनते चलिए, क्या मजाल कि आप उकताहट महसूस करें। और मैं जानता हूँ कि बिना मुँह मीठा कराये वे कभी वहाँ से आपको उठने न देंगे। उनकी आतिथ्य-परायणता शारीरिक ही नहीं,

मानसिक भी होती। लौटने पर मुझे ऐसा अहसास होता, मानो सब तरह से अघाकर ही उनके यहाँ से विदा ले रहा होऊँ।

राजा साहब ने स्वतंत्र रूप से अपनी आत्मकथा नहीं लिखी; पर उन्होंने 'जानी-सुनी-देखी-माला' की पुस्तकों में अपनी 'आत्मकथा' इस रूप में गूँथी, जो उनकी अनुभूतियों का खजाना ही कही जा सकती है। यदि वे जीवित होते तो वह कथामाला कदाचित् पूरी होती। काश, वह पूरी हुई होती! राजा साहब ने अजस्र साहित्य का सृजन किया है। हिन्दी-भारती को उनका दान कुछ कम नहीं। तभी तो भारत-सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' की सर्वमान्य उपाधि से अलंकृत कर अपनी मान्यता की मुहर लगाई थी। वे अखिल भारतीय ख्याति के साहित्यकार थे।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है:

> यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्ज्जितमेव वा।
>
> तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥ १०-४१

अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, सौंदर्यमय अथवा किसी गुणोत्कर्ष से संपन्न जो-जो वस्तुएँ संसार में देखी जाती हैं, वे सब मेरी शक्ति के अंश से उद्भूत समझो। निस्संदेह राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह उन्हीं विभूतियों में एक थे। वे मरकर भी अमर हैं और अमर रहेंगे। क्योंकि शास्त्रकार ने ऐसे पुरुषों के लिए कहा है—कीतिर्यस्य स जीवति।

मैं अपने अग्रज को श्रद्धा-पुरस्सरशतशः प्रणाम निवेदित करता हूँ।

सर झुकने से नीचा नहीं होता, ऊँचा ही उठता है।

—रा० र० प्र० सिं०

अवधबिहारी लाल
प्रधानाध्यापक, मॉडल इंस्टीच्युट, आरा

उन्होंने मेरे सामने आसन-व्यायाम करना शुरू किया। ढंग के साथ-साथ लाभ भी बताने लगे। कुछ आसनों को मुझसे करवाया भी। अन्त में शीर्षासन न करने तथा चीनी छोड़ने की सलाह उन्होंने दी। मैंने उनके बताए अनुसार आसनों के क्रम में हेर-फेर किया, चीनी का प्रयोग कम किया। सचमुच ही मुझे लाभ भी हुआ।

जीवन-निर्माणकारी पिता

स्वर्गीय राजा साहब की जो देन मेरे ऊपर है उसकी चर्चा मैं भले ही कर लूँ पर उससे उऋण नहीं हो सकता। उन्होंने मुझे आर्थिक सहायता ही नहीं दी वरन् आज जो मैं हूँ बहुत-कुछ उन्हीं की बदौलत हूँ।

(१)

सन् १९३६ में मैंने स्वर्गीय राजा साहब के पिताजी की स्मृति में स्थापित

सूर्यपुरा उच्च विद्यालय में आठवें वर्ग में अपना नाम लिखाया। मैं एक अत्यन्त गरीब छात्र था। पढ़ने में अच्छा होने के कारण मेरी फीस तो माफ थी पर पुस्तकों-आदि का प्रबन्ध नहीं कर पाता था। एक दिन विद्यालय के किरानी बाबू ने मुझे सलाह दी कि मैं उनसे मिलूँ और पुस्तकों की सहायता के लिए याचना करूँ। पर, एक राजा से, वह भी ब्रिटिश सल्तनत के युग में मिलने की कल्पना-मात्र से ही मैं सिहर उठा। उनके बहुत समझाने-बुझाने पर भी मैं बंगले (राज-निवास) में जाकर उनसे मिलने का साहस नहीं कर सका।

अचानक एक दिन संध्यासमय विद्यालय-चपरासी ने मुझे खबर दी कि स्कूल-क्रीड़ा-मैदान में प्रधानाध्यापक (श्री शिवमंगल सिंह) मुझे बुला रहे हैं। मैं तत्काल वहाँ जा पहुँचा। देखा कुर्त्ता-टोपी पहने, कंधे पर चादर डाले, हाथ में छड़ी लिए, चश्मा पहने छरहरे बदन का एक आदमी तेजी के साथ चल रहा है और हमारे प्रधानाध्यापक महोदय उनके साथ कदम मिलाने का प्रयास करते हुए कठिनाई से आगे बढ़ रहे हैं। मैंने भी पीछे-पीछे दौड़ना शुरू किया। लगभग १० गज दौड़ा होगा कि उस आदमी ने मुझसे पूछा, "आपही इस विद्यालय-छात्र-संघ के सेक्रेटरी हैं?" मेरे हाँ कहने पर उन्होंने पूछा, "इसका उद्देश्य क्या है?" दौड़ते-दौड़ते मुझे बोलने में कठिनाई हो रही थी। मैं मुश्किल से वाक्य पूरा कर ही सका था कि उन्होंने कहा, "कल ६ बजे बंगले पर आकर हमसे भेंट कीजिए। इस समय जाइए।' मैं चला आया। जब प्रधानाध्यापक महोदय से मुझे मालूम हुआ कि ये और कोई नहीं, राजा साहब थे तो मैं फक हो गया। क्या बहुचर्चित सूरजपुरा राज्य के राजा यही साधरण आदमी हैं? —यह मेरी धारणा में अँट ही नहीं पा रही थी।

दूसरे दिन बंगला पर गया। फिर क्या था, मुझे प्रतीत हुआ कि मैं अपने पिता से बातें कर रहा हूँ। परिचय बढ़ा। अब तो मेरी सारी समस्याएँ उनकी समस्याएँ हो गयीं।

(२)

सन् १९४१ के दिसम्बर की बात है। इलाहाबाद कायस्थ पाठशाला में मैं आइ. एस. सी. का छात्र था। एक रोज संध्या-समय शिवाजी से मिलने के लिए उनके निवास पर गया। शिवाजी उस समय इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी. एस-सी. के छात्र थे। शिवाजी बाहर गये थे, मैं उनके इन्तजार में वहीं ठहर गया। लगभग साढ़े

सात बजे राजा साहब टहलकर वहाँ आ पहुँचे। बात ऐसी थी कि राजा साहब वहाँ दो दिन से ठहरे हुए थे। मैं दौड़कर उनसे मिला। उनकी नजर मेरे कपड़ों की ओर गयी। मैं सिर्फ कमीज पहने था। झट वे पूछ बैठे—"इतनी कड़ाके की ठंढ में आप सिर्फ कमीज ही पहने हैं। जल्दी जाकर कोट पहनिए। ठंढ लग जायगी।" मुझे मौन देख वे ताड़ गए। झट हाँक दिया, "केबा"। नौकर हाजिर हुआ। पर वे स्वयं अपने कमरे में प्रवेश कर गए और बिना विलम्ब एक ऊनी कोट लिए बाहर निकले। मेरे निकट आकर मुझे कोट पहनाने लगे। मैं अवाक् खड़ा था। वे कोट पहना रहे थे। शायद कोट पहनने में मुझे उतना आनन्द नहीं हो रहा था जितना आनन्द उन्हें कोट पहनाने में हो रहा था।

(३)

फिर, इलाहाबाद में एक रोज मुझे उनसे अचानक भेंट हो गयी। वे मुन्शी अम्बिका प्रसाद से मिलकर आ रहे थे। मुझे अपने साथ ले चले। पैदल चलते-चलते हमलोग सिनेमा-गृह के निकट आ पहुँचे। उनकी नजर सिनेमा-पोस्टर पर पड़ी। उन्होंने कहा, "ओ, आज गुलिवर्स ट्रेवेल (Gulliver's Travel) है। चलिए इसे देखा जाए।" ज्योंही हमलोग सिनेमा-गृह की ओर चले कि अचानक एक सज्जन आ मिले। राजा साहब ने उन्हें भी सिनेमा देखने के लिए अपने साथ ले लिया। हम तीनों ने सिनेमा देखा। सिनेमा समाप्त होने पर बाहर निकलते ही उन्होंने हमसे कहा, "जाइए पूरी कहानी को अंग्रेजी में लिखकर कल हमें दिखाइए।"

(४)

सन् १९४६ की बात है। मैं उन्हीं के विद्यालय में शिक्षक था। एम० ए० की परीक्षा की तैयारी कर रहा था। एक दिन मैंने उनसे इसका जिक्र किया और पुस्तकों के अभाव की चर्चा की। झट, उन्होंने मुझसे पुस्तकों की सूची माँग ली। ठीक दसवें दिन राज का एक मुलाजिम सभी पुस्तकों को लेकर मेरे डेरे पर आ पहुँचा। इन पुस्तकों को राजा साहब ने सिन्हा लाइब्रेरी से अपने नाम निर्गत करा कर मेरे पास भेज दिया था।

(५)

सन् १९५५ की बात है। राजा साहब पटना में महाबीर बाबू (बैरिस्टर) के यहाँ

ठहरे हुए थे। मैं उस समय सैंसड़ हाई स्कूल में प्रधानाध्यापक था। मैं उनसे मिलने के लिए गया। मेरा स्वास्थ्य उस समय काफी गिर गया था। मुझे देखकर राजा साहब ने चिन्ता व्यक्त की। प्रति-दिन कम-से-कम चार मील टहलने और कुछ आसनों के अभ्यास करने की सलाह उन्होंने दी। मैंने जब यह कहा कि मैं तो नियमित रूप से आसन-व्यायाम करता हूँ तो उन्होंने बड़ी ही दिलचस्पी से पूछना शुरू किया कि मैं कौन-कौन आसन और किस ढंग से करता हूँ। मेरे बताने पर उन्हें संतोष नहीं हुआ। उन्होंने सन्ध्या समय मुझे बुलाया। मैं ठीक समय हाजिर हुआ। उन्होंने मेरे सामने आसन-व्यायाम करना शुरू किया। ढंग के साथ-साथ लाभ भी बताने लगे। कुछ आसनों को मुझसे करवाया भी। अन्त में शीर्षासन न करने तथा चीनी छोड़ने की सलाह उन्होंने दी। चीनी की संज्ञा उन्होंने 'सफेद जहर' दी। मैंने उनके बताए अनुसार आसनों के क्रम में हेर-फेर किया, चीनी का प्रयोग कम किया। सचमुच ही मुझे लाभ भी हुआ।

और भी कई संस्मरण हैं। सभी संस्मरण यही सिद्ध करेंगे कि मेरे प्रति स्व० राजा साहब का स्नेह एक जीवन-निर्माणकारी पिता-तुल्य था।

आप प्राचीनता को मिटायें भी नहीं, नवीनता का स्वागत भी करें। प्राचीनता की आस्था आधुनिकता की बुद्धि को स्वस्थ रखेगी और आधुनिकता की बुद्धि प्राचीनता की आस्था को निर्दोष।

—रा० र० प्र० सिं०

आनन्द नारायण शर्मा
आचार्य, सर गणेशदत्त सिंह कॉलेज, बेगूसराय (मुंगेर)

❉

मेरे हस्ताक्षर-पुस्तिका बढ़ाने पर उन्होंने उसपर टाँक दिया—'हम इस जीवन में दुनिया के हाथों उतना ही पाते हैं, जितना कि उसे खुद देते हैं।' सचमुच, यह वाक्य राजा साहब के जीवन का अनुभूत सूत्र था। उन्होंने दिलखोल कर लुटाया, इसी लिए भरपूर पाया भी। वे राजा थे धरती के, साहित्य के और सबसे अधिक हृदय के। उन्होंने जो देखा वह लिखा, जो लिखा उसे जिया।

❉

सादगी, सरलता और सौजन्य की प्रतिमूर्त्ति राजा साहब

दिसम्बर १९४४। पटना विश्वविद्यालय का रजत जयंती समारोह। साहित्य और संगीत के एक साथ उतने भव्य आयोजन शायद ही फिर कभी राजधानी में हुए हों। क्यों न हो ? विश्वविद्यालय की रजत जयंती के अतिरिक्त वह उसके स्वनामधन्य उपकुलपति डॉ० सच्चिदानन्द सिनहा के नौ वर्षों के स्वर्णिम कार्यकाल का अंतिम वर्ष भी था। उस अवसर पर जो अंतर-विश्वविद्यालय वाद-विवाद प्रतियोगिता

हुई थी, उसकी अध्यक्षता राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी ने की थी। यह मेरे लिए प्रथम अवसर था 'राम-रहीम', 'सावनी समाँ' और 'गाँधी टोपी' के लेखक के दर्शन का। पटना कालेज के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक विश्वनाथ प्रसाद जी ने, जो स्वयं उन दिनों अपनी ललित भाषण-शैली के लिए सुख्यात थे, राजा साहब का परिचय देते हुए कहा था—

'किसी की आँख में जादू है, तेरी जबान में है।'

और सचमुच, जब राजा साहब अध्यक्षीय भाषण के लिए उठे तो विश्वनाथ बाबू का शब्द-शब्द चरितार्थ हो गया, सारी सभा झूम उठी। यहाँ तक कि डॉ० सच्चिदानन्द सिनहा, जो केवल कुछ देर के लिए आयोजन में पधारे थे, अंत तक बैठे रह गए। उतना ही नहीं, उन्होंने राजा साहब के भाषण को सुनकर यह टिप्पणी भी की—'हिन्दी में भी ई मिठास छिपल बा!'

फिर तो पटना कालेज का बी० ए० लेक्चर-थियेटर हो या हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-भवन, अंजुमन इस्लामिया हॉल हो या बिहार हितैषी पुस्तकालय—राजा साहब का जहाँ कार्यक्रम होता, मैं पता लगाकर पहुँचने का प्रयास करता और हर बार दो-चार नए मुहावरे, एक-दो फड़कते शेर, कुछ नई बंदिशें सीखकर वापस लौटता। आज कविता के रूप में गद्य लिखनेवाले बहुतेरे हैं, लेकिन गद्य के रूप में कविता लिखने की कला राजा साहब को ही मालूम थी। और तारीफ यह कि राजा साहब के गद्यकाव्य में केवल हृदय को गुदगुदाने की ही शक्ति नहीं होती, मस्तिष्क के लिए भी वहाँ काफी मसाला रहता।

राजा साहब हिन्दी और उर्दू को दो भिन्न भाषाएँ नहीं मानते थे। ये उनकी नज़र में एक ही बुनियादी जबान के दो पहलू थे। वे स्वयं कलम के जादूगर, इस मिश्रित शैली के सम्राट् थे। उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी कि वे जिस शैली में लिखते थे, उसी में बोलते थे, बल्कि मैं तो कहना चाहूँगा कि उसी भावना को लेकर जीते भी थे। इसीलिए अलंकृति के बावजूद राजा साहब की शैली में आंतरिक सजीवता और उत्फुल्लता है। वे अक्सर कहा करते—"जिसे तुम संस्कृत जबान में राम कहते हो, उसे अगर फारसी जबान में रहमान कहोगे तो इससे क्या वह राम हराम हो गया?...राम को हिंदू करार देकर हमने उसकी महत्ता की मिट्टीपलीद की या अल्लाह को इस्लाम का सरपरस्त समझकर हमने उसकी आलमगीरी की जड़ खोद डाली।...

इसी नासमझी की वजह से तो हम राम और रहीम को दो अलग-अलग [illegible] बैठे हैं। आज जबान एक होती तो मजहब की धाँधली से हमारी आत्मा इस कदर तबाह नहीं हो पाती।"

राजा साहब को निकट से देखने का अवसर मुझे सन् '५५'५६ के आसपास मिला। तब तक मैं गणेशदत्त कालेज के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक बनकर आ चुका था और मेरी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः आती रहती थीं। इस समय तक 'नई धारा' में भी मेरी कुछ चीजें छप चुकी थीं। मैं पटना सिटी के बिहार हितैषी पुस्तकालय की ओर से राजा साहब को आमंत्रित करने गया था। राजा साहब ने यह जानकर कि मैं हिंदी का प्राध्यापक हूँ और लिखने-पढ़ने से भी थोड़ी अभिरुचि है, मुझसे जानना चाहा कि मैंने उनकी कौन-कौन-सी पुस्तकें देखी हैं। उत्तर में मैंने 'राम-रहीम' से लेकर 'नारी क्या एक पहेली ?' तक की कृतियों का लेखा-जोखा दस-पन्द्रह मिनटों में प्रस्तुत कर दिया। मेरे उत्तर से राजा साहब बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने कहा—"आजकल तो लोग डिग्री के लिए पढ़ते हैं। पर आपमें सचमुच साहित्य के प्रति लगन है। मैं आपके जलसे में जरूर शरीक होऊँगा।"

इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी कहा—"जानी-सुनी-देखी सीरीज में 'नारी क्या एक पहेली ? के बाद भी कई किताबें निकल चुकी हैं। मैं एक पत्र लिख देता हूँ। आप अशोक प्रेस से, मेरी जो पुस्तकें आपके पास न हों, ले लीजिए।"

मैं कृतज्ञता के बोझ से दब—सा गया। कहाँ तो यह संकोच लेकर गया था कि राजा साहब इतनी दूर आने के लिए समय निकाल सकेंगे अथवा नहीं, और कहाँ पुस्तकों का एक पूरा बंडल लाद कर लौटा।

पुस्तकालय के समारोह में राजा साहब का परिचय देने का दायित्व मुझे ही सौंपा गया। भला उस व्यक्ति का परिचय क्या, जिसका कृतित्व राष्ट्रभाषा की सामर्थ्य का ही परिचय हो। फिर भी मैंने दस-पाँच चुने वाक्यों में राजा साहब का काव्यगंधी परिचय दे डाला। तब भला राजा साहब क्योंकर चूकते ? उन्होंने अपनी सहज विनोदपूर्ण और विदग्ध शैली में कहना शुरू किया—"अरे भाई, अभी आपने सुना न जो कुछ मेरे बारे में कहा गया। लेकिन वह जो किसी ने कहा है न—

'निगाहे मुहब्बत दिखाती है सब कुछ
न तुम देखते हो, न हम देखते हैं।'

बस वही बात है।" उन्होंने मेरी तथा कुछ अन्य नई पीढ़ी के लेखकों की ओर संकेत कर कहा—"कहाँ यह शाम का सितारा और कहाँ मैं भोर का सितारा—

'वही रात मेरी, वही रात इनकी,
इधर घट गई है, उधर बढ़ गई है।"

फिर तो तालियों की गड़गड़ाहट से सारा हॉल गूँज उठा। राजा साहब थोड़ा रुक-रुककर एक-एक वाक्य तराशते और श्रोता-मंडली झूम-झूम उठती। उन्होंने 'राजा' की पदवी को लक्ष्य कर कहा—"अब कहाँ है राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ! उसकी रजाई तो १९४७ ई० में ही उतर गई। कुदरत की झोली में न कोई राजा है न रंक। अब तो सब बराबर हैं जैसे।"

राजा साहब ने ज्ञान और विज्ञान पर, कला और साहित्य पर, राजनीति और भाषा पर अपने विचार व्यक्त किए। उनका प्रत्येक वाक्य जैसे सुडौल और आबदार नगीने की भाँति उनकी भाषण-मुद्रिका में जड़ा था। उनके भाषण का ही यह जादू था कि अनेक वर्षों तक उन्हें नियमित रूप से पटना सिटी के कौमुदी महोत्सव में साग्रह आमंत्रित किया जाता रहा और राजा साहब भी प्रति वर्ष पधार कर अपनी सहृदयता और सहज उदारता का परिचय देते रहे।

इसी क्रम में मैंने एक दिन राजा साहब से साहित्यिक इंटरव्यू के लिए कुछ समय चाहा। राजा साहब उन दिनों नेत्रपीड़ा से ग्रस्त थे। फिर भी उन्होंने मुझे कृपापूर्वक दूसरे ही दिन समय दे दिया। जब मैं राजा साहब के बोरिंग रोड-स्थित निवास पर पहुँचा तो वे धोती और बनियाइन पर एक हल्की चादर ओढ़े धूप सेवन कर रहे थे। पर मुझे धूप में बैठना शायद रुचिकर न हो, इस कारण वे उठकर बरामदे में चले आए और वहीं मुझे भी सस्नेह बैठाया। कुछ देर इधर-उधर की औपचारिक बातें होती रहीं। फिर मैंने पूछना शुरू किया—"आपकी पहली कहानी 'कानों में कँगना' और प्रथम उपन्यास 'राम-रहीम' की शैलियों में जमीन-आसमान का अंतर है। यह अंतर केवल समय-सापेक्ष्य है या इसके पीछे और भी कारण हैं ?"

"यह अंतर समय-सापेक्ष्य भी है और साभिप्राय भी।"—राजा साहब बोले—"आप शायद जानते हों, मेरा कैशोर काल कलकत्ता में बीता। मेरा मकान उसी मुहल्ले में था, जिसमें रवि ठाकुर का। रवीन्द्रनाथ मेरे पिता के मित्रों में थे और एक प्रकार से

मेरे अभिभावक भी। रवीन्द्रनाथ की प्रेरणा से ही मैंने बँगला सीखी। आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि हिंदी और उर्दू दोनों से मेरा अधिक अधिकार बँगला पर है। मैंने उन दिनों बँगला में थोड़ा-बहुत लिखा भी था। मैं बिहार का अकेला आदमी हूँ शायद, जिसे हिंदी, उर्दू और बँगला तीनों भाषाओं का परीक्षक रहने का अवसर मिला है। तो वही बंगीय प्रभाव उन दिनों की मेरी रचनाओं—'तरंग' और 'गल्प-कुसुमांजलि' की कहानियों पर है सरासर।

"लेकिन जब मैं पढ़ाई पूरी कर अपने घर आया तो रियासत और यहाँ की राजनीति में एक अरसे तक ऐसा उलझा कि कलम मुझसे छूट गई बिल्कुल। और वह पता नहीं कब तक छूटी रहती, अगर एक घटना न घट जाती उन्हीं दिनों।"

"वह कौन-सी घटना है ?" मैंने पूछा।

"बता रहा हूँ। जब जिला बोर्ड की चेयरमैनी से मैं छूटा तो गांधी जी ने मुझे 'हरिजन सेवक संघ' का सभापति बना दिया। उन दिनों हमारे वर्तमान केंद्रीय मंत्री बाबू जगजीवन राम संघ के मंत्री थे। हमलोग मिल-जुलकर हरिजन-सेवा का काम जोश-खरोश से कर रहे थे। तभी पटना में एक अँगरेजी फिल्म आई थी—'वैनिटी फेयर'। डॉ० सच्चिदानंद सिनहा, बाबू दीपनारायण सिंह और मैंने साथ-साथ वह फिल्म देखी। फिल्म के बाद सिनहा साहब के यहाँ दावत थी। हम सभी फिल्म पर बेतरह रीझे हुए थे। इसी सिलसिले में किसी ने कह दिया कि 'हिंदी में 'वैनिटी फेयर' के जोड़ की एक भी चीज नहीं।' मुझे यह बात लग गई। मैंने कहा—'है क्यों नहीं ? मुझे समय मिले तो मैं ही लिख सकता हूँ।' बस, एक उपन्यास का लिखा जाना तय पा गया।

"मैंने गांधी जी से हरिजन सेवक संघ के काम से छह महीने की छुट्टी माँगी। छुट्टी देने पर तो वे तैयार हो गए, लेकिन शर्त्त यह लगा दी कि जो कुछ लिखा जाय उसकी भाषा मिली-जुली यानी हिंदुस्तानी हो। मैंने यह शर्त्त मंजूर कर ली, क्योंकि संस्कृत के साथ फारसी तो मुझे घुट्टी में ही मिली थी। फिर जो कुछ लिखा गया, वह कैसा बन पड़ा, उससे गांधी जी के आदेश का पालन हो सका या नहीं, यह तो आप लोग कह सकते हैं। हाँ, इतना मैं जरूर कहूँगा कि 'राम-रहीम' कोरी कहानी नहीं,

उसकी बुनियाद जिंदगी की सच्चाई पर है। 'राम-रहीम' जब छपा तो उसे बेला और बिजली ने भी पढ़ा था। बेला का तो उससे जीवन ही बदल गया सचमुच।"

" 'राम-रहीम' ही क्यों, आपका तो लगभग पूरा साहित्य ही यथार्थ की ठोस नींव पर प्रतिष्ठित है। अब तो खैर आपने 'जानी-सुनी-देखी' सीरीज ही चला दी है, लेकिन उसके पहले की रचनाओं के बारे में भी मुझे यही लगता रहा है कि आपने भोगे हुए जीवन को ही लिखा है।"—मैंने कहना चाहा।

"आप ठीक कहते हैं, सरासर। कल्पना की ऊँची छलाँग तो यह कलम ले नहीं पाती, बस 'जानी-सुनी-देखी' की क्यारी में ही अपनी नित नई रंगीनियों की बेल चढ़ाती रहती है निरंतर और 'बादल से चले आते हैं हूँ मजमूँ मेरे आगे।' लेकिन साथ ही मैं यह भी कहना चाहूँगा कि बीती बात के आगे गढ़ी बात की क्या वकत? कहाँ जीवन की ज्वलंत झाँकियाँ और कहाँ मनगढ़ंत लंतरानियाँ।"—राजा साहब बोले।

इसी सिलसिले में उन्होंने हिंदी के आधुनिक कथा-साहित्य की एक बड़ी कमी की ओर इशारा करते हुए कहा कि हम टेकनीक के मैदान में रोज-ब-रोज आगे बढ़ते जा रहे हैं, पर हम जीवन के यथार्थ के प्रति उस सीमा तक समर्पित नहीं हैं। इसीलिए बहुतेरा साहित्य हमारी आँखों के आगे चकाचौंध तो फैलाता है, लेकिन गहराई से हमें छूता नहीं।"

"आप अपनी किस कृति को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं?"—मैंने प्रश्न किया।

"देखिए, यह कहना मेरे लिए बड़ा मुश्किल है। मेरे पाठकों की पसंद जुदा-जुदा है। कोई 'राम-रहीम' को सबसे ऊँचा दर्जा देते हैं तो कोई 'टूटा तारा' को। कइयों ने 'संस्कार' को भी सराहा है। ऐसी हालत में किसी बाप के लिए यह बताना आसान नहीं कि कौन उसका सबसे लायक बेटा है। यों, सबसे छोटी संतान पर ममता ज्यादा होती है। इसीलिए मैं फिलहाल 'चुंबन और चाँटा' का नाम लेना चाहूँगा।"

जब मैंने राजा साहब को बेगूसराय पधारने का निमंत्रण दिया तो वे बोले—"अब यह शरीर लंबे सफर की परेशानी झेलने लायक नहीं। फिर भी अगर आपकी मुहब्बत में कशिश होगी तो कच्चे धागे में बँधा चला आऊँगा। आप लोग लिखें-पढ़ें, फूलें-फलें, अपनी तो यही तमन्ना है, यही शुभ कामना।"

मेरे हस्ताक्षर-पुस्तिका बढ़ाने पर उन्होंने उस पर टाँक दिया—'हम इस जीवन में दुनिया के हाथों उतना ही पाते हैं जितना कि उसे खुद देते हैं।' सचमुच यह वाक्य राजा साहब के जीवन का अनुभूत सूत्र था। उन्होंने दिल खोलकर लुटाया, इसीलिए भरपूर पाया भी। वे राजा थे धरती के, साहित्य के और सबसे अधिक हृदय के। उन्होंने जो देखा वह लिखा, जो लिखा उसे दिया। उन्होंने महज दिलबस्तगी के लिए कलम नहीं पकड़ी थी, एक निश्चित लक्ष्य और व्रत लेकर वे चले थे। बदले हुए जमाने ने चाहे उनका भौतिक राज्य छीन लिया हो, लेकिन उन्होंने अपनी लेखनी और सदाशयता द्वारा जिन हृदयों पर अधिकार पाया था, वहाँ से उन्हें बेदखल महाकाल भी नहीं कर सका। सादगी, सरलता, सौजन्य, हार्दिक विशदता और जिंदादिली नई पीढ़ी के नाम राजा साहब की वसीयत है।

साहित्य और जीवन तो एक दूसरे से अभिन्न ठहरे। जीवन की छाप साहित्य पर है, साहित्य की जीवन पर।···हृदय का साहित्य तो देश और काल की सीमाओं से घिरा नहीं। वह तो सबका है, युग-युग का है। और वह युग से जो लेता है, उसे युग-युग में पिरो भी देता है।

रा० र० प्र० सिंह

आरसी प्रसाद सिंह
डा० एरौत, जि० दरभंगा

✣

एक साधारण गृहस्थ के स्वभाव की विनम्रता तो किसी सीमा तक सबकी समझ में आ सकती है, पर अंग्रेजी शासन के सामन्ती युग में किसी राजा या महाराजा के स्वभाव की कोमलता, सहृदयता एवं सरसता तत्कालीन भारतीय लोगों के लिये एक अजीब अबूझ पहेली-सी लगेगी। किन्तु, सच पूछिये तो राजा साहब के चरित्र की यह एक ऐसी सुगन्ध है, जिस पर जीवन का सर्वोत्तम प्रकाश जगमग करता है। राजा साहब पहले मानव थे, इसके पश्चात् साहित्यिक या और कुछ। वह स्वयं गुणवान् थे और गुणियों को पहचान कर गुणों का आदर करते थे। उनकी वाणी में जितनी मिठास थी, उतनी ही उनके हृदय में परदुःखकातरता। सुख और वैभव की गोद में पला हुआ साहित्यकार किस प्रकार सहानुभूति एवं तन्मयता-पूर्वक समाज के उपेक्षित एवं सर्वहारा वर्ग का सर्वांगीण चित्रण करता है, इसके जीते-जागते उदाहरण हमारे राजा साहब हैं।

✣

मार्च २४, १९७१ बुधवार। आकाशवाणी-पटना के सहायक केन्द्र-निदेशक श्री राधाकृष्ण प्रसाद का कमरा। अकस्मात् श्री प्रसाद ने टेलीफोन उठाया और रुँधे हुए कण्ठ से कहा—'राजा साहब नहीं रहे।' मैंने चौंक कर कहा—'क्या?' राधाकृष्ण प्रसाद ने

राजा साहब की समन्वय-शैली : साहित्य की त्रिवेणी

टेलीफोन रख दिया और उसी बात को फिर से दुहराया— राजा साहब का देहान्त हो गया।' राजा साहब की मृत्यु कोई अप्रत्याशित घटना नहीं थी। उनकी आयु ८० वर्षों को पार कर चुकी थी। पिछले कई सालों से उनका स्वास्थ्य भी साथ नहीं दे रहा था। फिर भी एकाएक उनके शरीर-त्याग का समाचार कुछ असंभावित-सा लगा। विश्वास नहीं हो रहा था। मुझे अवाक्-सा विचारों में खोया-खोया देखकर राधाकृष्ण प्रसाद ने कहा—"टेलीफोन पर स्वयं शिवाजी मिले थे।" शिवाजी नाम पारिवारिक है राजा साहब के सुपुत्र श्री उदयराज सिंह का। अतएव अब संदेह का कोई कारण नहीं रहा। "तो, राजा साहब नहीं रहे।" मैंने भाव-विभोर होकर कहा— "चलो, हिन्दी-गगन का एक और नक्षत्र टूटा।" "हाँ।" राधाकृष्ण प्रसाद ने कहा— "साहित्य-संसार का एक विशिष्ट शैलीकार उठ गया।" कहना नहीं होगा कि राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह आधुनिक हिन्दी के एक माने हुए शैलीकार थे। एक ऐसी प्रतिभा के धनी, जिसका लोहा बड़े-बड़े पुराने दिग्गज महारथी मानते तो क्या, नये-से-नये तथाकथित प्रगतिवादी आलोचक समुदाय भी जिसे अस्वीकार करने का दुःसाहस नहीं कर सके। सदाबहार तरुणाई-भरी वह लेखनी, जिसके द्वारा पूरी छह दशाब्दियों तक नवनवोन्मेषिणी भावनाओं की वाग्धारा प्रवाहित होती रही। संभव नहीं कि उस रिक्त स्थान की पूर्त्ति निकट भविष्य में हो सके।

राजा साहब के प्रथम दर्शन का सौभाग्य मुझे उनकी अपनी ही आरा नगरी में प्राप्त हुआ था। उस वर्ष वहाँ बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन नियोजित था। दर्शकों, प्रतिनिधियों एवं साहित्य-प्रेमियों से सजे-धजे पंडाल में ज्यों ही मैं उपस्थित हुआ, त्यों ही हिन्दी-भूषण आचार्य शिवपूजन सहाय के साथ वार्तालाप करते हुए एक सौम्य-मूर्त्ति सज्जन ने अनायास मेरा ध्यान आकृष्ट कर लिया। व्यक्तित्व के चुम्बकीय आकर्षण से प्रभावित होकर मैं स्वभावतः उनकी ओर खिंच कर चला आया। उत्तम जाति के पुष्प दूर से ही अपनी सुगन्ध का परिचय देना प्रारम्भ कर देते हैं। सहृदय सत्पुरुषों की दृष्टि भी उसी प्रकार दूर से ही मन को मुग्ध कर देती है। निकट आने की अपेक्षा चाहे उन्हें न भी हो, पर निकटता का लोभ संवरण करना श्रद्धालुओं के लिये शायद संभव नहीं।

साक्षात् दर्शन के पूर्व ही राजा साहब की साहित्यिक कृतियाँ मेरे मर्म के तारों

को अपने मादक स्पर्श से आन्दोलित कर चुकी थीं। उनकी जादू-भरी कहानियों ने मेरे किशोर-कवि की उगती-उमड़ती कल्पनाओं को सुनहले पंख-वाले घोड़े पर चढ़ाकर अनन्त आकाश में सैर करने के लिये खुला छोड़ दिया था। उनकी गद्यकाव्य-लहरी पर मेरा मन-मयूर नाच-नाच उठता था। लेकिन, राजा साहब का जो भी मर्मस्पर्शी साहित्यिक रूप मेरे सामने रहा हो, मैंने उनके व्यक्तित्व के संबंध में कोई भी धारणा या किसी प्रतिमूर्त्ति की कल्पना नहीं की थी। पुस्तक में प्रकाशित उनका कोई फोटो-चित्र भी कहीं देखा होगा, पर जिस तरह चंचल जलधारा की सतह पर कोई रेखा नहीं उगती, उसी तरह मेरे कोमल-वय के आसमानी आवरणों पर कोई भी पूर्वाग्रह वर्तमान नहीं था। इसीलिये जब मैंने राजा साहब को पहली बार साहित्य-सम्मेलन के विशाल प्रागंण में अवलोकन किया, तब मेरी भावनाओं के दर्पण में उनका सुकुमार व्यक्तित्व सहज रूप से प्रतिबिम्बित हो गया। विस्मय-विस्फोट नहीं, आश्चर्य-विस्फुरित उद्घाटन नहीं, मानो कोई युग-युगान्तर का संबंध स्वयं अपना परिचय दे रहा हो।

पुस्तक-भंडार के माध्यम से आचार्य शिवपूजन सहाय मेरे पूर्व-परिचित थे। और अब राजा साहब तथा मेरे बीच मध्यस्थ होकर विराजमान थे। आचार्य जी के अधरों पर मन्द-मन्द मुस्कान की मधुर-मधुर रेखा गुलाब-कली की तरह खिल रही थी, जो उनके मुँह में घुलती-मिलती बनारसी पान की लालिमा-शोभा को दुहरी कर रही थी। शिवपूजन सहाय के शरीर पर खादी की साधारण बंडी, कुर्त्ता धोती और टोपी। पैरों में चप्पल। उधर राजा साहब बढ़िया चूड़ीदार पायजामे में। ऊपर से रेशमी शेरवानी और सिर पर गाँधी टोपी। दाढ़ी-मूँछ के बाल कर्जन फैशन में क्लीन-शेव्ड, अजीब गंगा-जमुनी ठाट-बाट का आलम था। निकट पहुँच कर मैंने आचार्य जी को सादर प्रणाम किया ही, राजा साहब को भी अपना प्रणाम निवेदन कर दिया। औपचारिक परिचय अभी होने को शेष ही था कि मेरी अन्तरात्मा ने प्रणम्य व्यक्ति को राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के रूप में पहले ही स्वीकार कर लिया।

विषयान्तर होने पर भी शिवपूजन सहाय के स्वभाव की एक विशेषता यहाँ उल्लेखनीय प्रतीत हो रही है। वह संभवत: अपने किसी परिचित साहित्यिक व्यक्ति को अभिवादन का प्रथम अवसर प्रदान करने के पक्षपाती नहीं थे। प्राय: ऐसा दृष्टि-गोचर होता कि आगन्तुक के नतमस्तक होने के पहले ही उनकी वाणी 'प्रणाम' कह

उठती एवं उनके दोनों हाथ उसके साथ ही सादर जुड़ जाते। शिवपूजन सहाय की इस अति-आग्रही विनयशीलता के कारण हमारे जैसे ज्ञानलवदुर्विदग्धों का पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्व भले खण्डित होता हो, चाहे मिथ्या अहम्मन्यता को प्रश्रय मिलता हो, आचार्य जी ने अपनी इस परम्परा को अखण्ड भाव से जीवन-पर्यन्त निबाह दिया। और आज राजा साहब के देहावसान के उपरान्त, लगा है कि परम्परागत विनयशीलता एवं सद्भावना की एक और अपराजेय प्रतिभा भी काल के निष्ठुर हाथों से बलात् छीन ली गयी एवं हम सदा-सर्वदा के लिये अनाथ हो गये।

एक साधारण गृहस्थ के स्वभाव की विनम्रता तो किसी सीमा तक सब की समझ में आ सकती है, पर अँग्रेजी शासन के सामन्ती युग में किसी राजा या महाराजा के स्वभाव की कोमलता, सहृदयता एवं सरसता तत्कालीन भारतीय लोगों के लिये एक अजीब अबूझ पहेली-सी लगेगी। किन्तु, सच पूछिये तो राजा साहब के चरित्र की यह एक ऐसी सुगन्ध है, जिस पर जीवन का सर्वोत्तम प्रकाश जगमग करता है। राजा साहब पहले मानव थे, इसके पश्चात् साहित्यिक या और कुछ। वह स्वयं गुणवान् थे और गुणियों की पहचान कर गुणों का आदर करते थे। उनकी वाणी में जितनी मिठास थी, उतनी ही उनके हृदय में परदुःखकातरता। सुख और वैभव की गोद में पला हुआ साहित्यकार किस प्रकार सहानुभूति एवं तन्मयता-पूर्वक समाज के उपेक्षित एवं सर्वहारा वर्ग का सर्वांगीण चित्रण करता है, इसके जीते-जागते उदाहरण हमारे राजा साहब हैं।

न जाने, किन शब्दों में, जो अब मुझे स्मरण नहीं, एक महान् साहित्यकार बाबू शिवपूजन सहाय ने अपने समकालीन एक दूसरे महारथी राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह से मेरा परिचय कराया कि राजा साहब फड़क उठे—"आप तो आसमान के तारे तोड़ लाते हैं।" शिवपूजन सहाय मुँह भर कर मुस्करा उठे मानो अपने परिचय-पत्र की सफलता देखकर। कविता की भाषा में आसमान के तारे तोड़ लाना कोई वैसी विशेषता नहीं, एक कवि के लिये यह कोई कठिन कर्म भी नहीं; फिर भी सहज संकोच-वश मैं भावाभिभूत हो गया। यह एक ही वाक्य मेरे मानस-पट पर राजा साहब के सौन्दर्य का बाँकपन अंकित कर गया, ऐसी छाप छोड़ गया, जो कभी मिटने की नहीं। मुझे विश्वास हो गया कि आसमान के तारे मैं भले ही तोड़ सकूँ, पर राजा साहब की लेखनी निःसन्देह आसमान के तारे तोड़ लाने में समर्थ है।

साहित्य के साधारण विद्यार्थियों को भी आज इसका प्रमाण देने की विधिवत् अवश्यकता नहीं है। कोई जागरूक पाठक उनकी किसी भी रचना से यह तथ्य स्वयं ढूँढ़ सकता है। एक अनूठा बाँकपन, एक विचित्र भंगिमा—राजा साहब की शैली का ही दूसरा नाम है।

राजा साहब को समझने के लिए संभवतः हमें हिन्दी के एक अन्य साहित्यकार के निकट भी पहुँचना होगा, जो आज हमारी दृष्टि से ओझल हो चुका है, पर किसी जमाने में वह अपने क्षेत्र का अद्वितीय उपन्यासकार रहा था। मेरा आशय स्वनाम-धन्य बाबू ब्रजनन्दन सहाय से है। उनकी एक ही कृति 'सौन्दर्योपासक' ने हिन्दी-संसार पर अपनी अमिट छाप छोड़ दी। यह संभव नहीं है कि राजा साहब बाबू ब्रजनन्दन सहाय की कृतियों एवं व्यक्तित्व से अपरिचित-अप्रभावित रहे हों। इसके विपरीत एक जनपद के निवासी एवं समकालीन होने के कारण यह सहज अनुमान किया जा सकता है कि वे दोनों एक दूसरे के घनिष्ठ परिचय-सूत्र में भी आये-गये हों पर, अनुमान अनुमान ही है, और जब तक इसकी पुष्टि प्रबल-प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा नहीं होती, तब तक यह शोध का विषय बना रहेगा। किन्तु, यहाँ इस चर्चा को छेड़ना कोई अप्रासंगिक नहीं है। राजा साहब की प्रारंभिक कृतियों का जिसने सम्यक् अवलोकन किया है, उसे सहसा 'सौन्दर्योपासक' का स्मरण हो आना अकारण नहीं समझना होगा। भले ही राजा साहब की प्रारंभिक कृतियाँ अपना स्वतंत्र परिवेश एवं निजी परिधान रखती हों; किन्तु, शैली की दृष्टि से वह वही नहीं है, जिसे हम राजा साहब की विशेष शैली के नाम से अभिहित करते और पहचानते हैं। राजा साहब अपनी जिस गंगा-जमुनी शैली के लिये साहित्य-संसार में विख्यात हैं वह उनके द्वारा बाद में धीरे-धीरे अर्जित एवं परिमार्जित की गयी प्रतीत होती है। एकाएक प्रारम्भ से ही बनी-बनाई नहीं प्रतीत होती है। इसीलिये हम यह पाते हैं कि उनकी प्रारंभिक रचनाएँ 'सौन्दर्योपासकीय' शैली के उतने ही निकट है, जितनी दूर हैं वे उनकी अपनी ही प्रौढ़कालीन रचनाओं से। अनुकरणीयता-आरोपण की भावना से नहीं, वरन् एक तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से किसी स्वाधीन-चेता अध्येता के लिये यह आवश्यक है कि वह राजा साहब की प्रारंभिक रचनाओं को उपर्युक्त पृष्ठभूमि में रख कर अवलोकन करे। उस समय प्रख्यात बंगाली लेखक चन्द्रशेखर मुखोपाध्याय की सुप्रसिद्ध बंगला कृति 'उद्भ्रान्त प्रेम' भी प्रकाशित हो चुकी थी। राजा साहब

अपने छात्र-जीवन में ही बंगला भाषा के सुधी पाठक रह चुके थे और उसके प्रभाव उन्मुक्त भाव से स्वीकार कर चुके थे। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी उनके प्रभाव-क्षेत्र में एक प्रमुख आकर्षण-केन्द्र रहे थे। अतएव, यह बिल्कुल अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता कि उन पर बंगला-संप्रेषित संस्कृत-निष्ठ शैली का ही प्रारंभ में अगोचर एवं व्यापक प्रभाव पड़ा, जिसे त्याग कर बाद में उन्होंने एक स्वतंत्र शैली का निर्माण कर लिया हो। इस बात की संभावना इसलिये भी और अधिक स्पष्ट दृष्टि-गोचर होती है कि उनकी प्रारंभिक रचनाओं और बाद की रचनाओं के मध्य में एक सुदीर्घ काल का अन्तराल परिलक्षित होता है। कारण चाहे जो भी रहा हो, समय की एक लम्बी अवधि के उपरान्त जब उनकी लेखनी ने मौन भंग किया तो, अपनी परंपरा को पर्याप्त पीछे छोड़ दिया और एक नयी उमंग के साथ बिल्कुल नये वातावरण में साहित्य की गतिविधि को मोड़ दिया। 'राम-रहीम' इस युग की सर्वश्रेष्ठ कृति थी। इसी रचना में राजा साहब की उस विशिष्ट शैली के सर्व-प्रथम दर्शन होते हैं जिसने अपने समय में हिन्दी-जगत् के सभी विद्वानों को चमत्कृत कर दिया और आने वाले युग में राजा साहब की शैली की धाक जमा दी।

'राम-रहीम' के द्वारा राजा साहब ने जिस अपूर्व शैली का प्रथम सूत्रपात किया, उसके ऐतिहासिक मनोभाव को हृदयंगम करने के लिये हमें तत्कालीन साहित्यिक ही नहीं, राजनीतिक संदर्भ को भी आयत्त करना होगा। उस समय भारतीय स्वतंत्रता का महा-आन्दोलन सम्पूर्ण राष्ट्र-व्यापी रूप धारण करता चला जा रहा था। मुक्ति-संग्राम के सेनानियों को एक ऐसी सर्वमान्य भाषा की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण राष्ट्र की वाणी को अभिव्यक्त किया जा सके। ऐसी सर्वलोकप्रिय एवं सर्वसम्मत भाषा एकमात्र हिन्दी ही हो सकती है, इस निश्चयात्मक विचार से राष्ट्र के सभी स्वाधीनता-प्रिय कर्णधार सहमत थे। किन्तु, उस हिन्दी का रूप क्या हो, जिसे कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और ब्रह्मपुत्र से लेकर सिन्धु की घाटियों तक सभी भारतीय समान भाव से अपने को अभिव्यक्त कर सकें, इस विषय में तत्कालीन नेताओं ने काफी मतभेद का प्रदर्शन किया। पुरुषोत्तम दास टंडन के नेतृत्व में साहित्य के महारथियों का एक दल था, जो विशुद्ध संस्कृत-निष्ठ शैली को ही राष्ट्रभाषा-पद के उपयुक्त समझता था। दूसरी ओर महात्मा गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रभाषा-प्रेमियों का एक ऐसा भी दल था, जो हिन्दी को राष्ट्रभाषा तो मानता था,

पर उस हिन्दी के सर्वथा प्रतिकूल था, जिसे हिन्दी के प्रमुख साहित्यिक वर्ग मान्यता प्रदान करते आ रहे थे। हिन्दी के अधिकांश साहित्यकार-समर्थक इस विचार-धारा का पोषण कर रहे थे कि हिन्दी और उर्दू सर्वथा दो विभिन्न भाषाएँ नहीं हैं, बल्कि एक ही प्रतिनिधि-भाषा की दो विभिन्न शैलियाँ हैं और दो भिन्न-भिन्न लिपियों में लिखी जाने के कारण पृथक् प्रतीत होती हैं। यदि दो लिपियों का भेद मिटा कर एक ही देवनागरी लिपि दोनों के लिये अनिवार्य रूप से अपना ली जाय, तो फिर हिन्दी और उर्दू का विवादग्रस्त भेद स्वमेव मिट जायगा। किन्तु, जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक हिन्दी और उर्दू दो विभिन्न शैलियों के रूप में पृथक्-पृथक् रह सकती हैं। दोनों की एकरूपता राष्ट्रीय एकता के लिये अनिवार्य नहीं है। दूसरी ओर महात्मा गांधी और उनकी विचार-धारा के समर्थक राष्ट्रीय नेता हिन्दी और उर्दू को मिला-जुला कर एक ऐसी मिश्रित भाषा के निर्माण में संलग्न थे, जिसे साधारण जनता के सामने अखिल भारतीय मंच से प्रस्तुत किया जा सके। स्पष्ट है कि उनके उस दृष्टिकोण में साहित्य का प्रश्न गौण था और एक ऐसी भाषा की समस्या प्रमुख थी, जिसे कालान्तर में अंग्रेजी के स्थान पर आसीन किया जा सके और जो स्वतंत्र भारत के शासन-तंत्र की भाषा बन सके। महात्मा गांधी और उनके सहयोगी ऐसी भाषा के सर्वप्रथम प्रचारक थे। उन्हें हिन्दी नाम से भी कुछ वैसा व्यामोह नहीं था। काम के सामने वह नाम का परित्याग करने के लिये भी तैयार थे। उनकी यह भी घोषणा थी कि ऐसी भाषा के लिये यदि हिन्दी नाम भ्रामक सिद्ध होता है, तो उसे छोड़ कर 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' या केवल'हिन्दुस्तानी' नाम से भी हमें अपना काम चला लेना चाहिये। उस समय कुछ सीमा तक यह 'हिन्दी-हिन्दुस्तानी' या 'हिन्दुस्तानी' नाम का सिक्का चल भी गया और कुछ दिनों के लिये जब देश में कांग्रेसी शासन का बोलबाला रहा, तब बिहार में हिन्दुस्तानी नाम की इस कृत्रिम भाषा में ढेर-सारा साहित्य भी धड़ल्ले से प्रकाशित हुआ। इतना ही नहीं, गुरु गुड़ और चेलाराम चीनी हो गये। गांधी जी तो यही चाहते रहे होंगे कि हिन्दी से संस्कृत शब्दों और उर्दू से फारसी-अरबी शब्दों को हटा कर उनके बदले आम-फहम बोलचाल के शब्दों का व्यवहार किया जाय। पर, कहते हैं कि हिन्दुस्तानी भाषा के तथाकथित समर्थकों ने सीता रानी को बेगम सीता और राजा राम को बादशाह राम बना कर ही दम लिया।

भाषा कोई खिलौना नहीं है, जिसे किसी कुम्हार की चाक पर माटी के लोंदे से

गढ़-गढ़ा लिया जाय। किसी राजा का यह सिक्का भी नहीं, जिसे टकसाल में ढाल दिया जाय। यह तो सदियों के ज्वार-भाटे में जनता की जुबान पर चढ़ती है और साहित्यकारों की निर्माणशाला में तपस्या के द्वारा उद्भूत होती है। किसी राजनीतिक दल या व्यक्तित्व, चाहे वह कितना ही प्रभावशाली एवं महान् क्यों न हो, के वश की बात नहीं कि वह अपनी मर्जी से किसी भाषा-विशेष की रचना कर डाले। समाज में किसी साहित्यकार की भूमिका यहीं प्रकट हुआ करती है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की भाषा-शैली को हम इसी संदर्भ में समझने-बूझने का प्रयत्न करेंगे। 'राम-रहीम' की भाषा, जो राजा साहब की शैली का प्रथम नाटकीय उद्घोष है, सामयिकता की इसी माँग की पूर्ति में अवतरित होती है।

राजा साहब की शैली उस चुनौती के उत्तर के रूप में आयी थी, जिसे तत्कालीन राजनायकों ने राष्ट्रीय रंगमंच पर दे डाला था। भाषा की जो कृत्रिम समस्या उस समय उत्पन्न हो गयी थी या यों कहिये कि जान-बूझ कर पैदा की गयी थी, उसका समाधान किसी राजनेता के पास तो था नहीं, कोई साहित्यिक भी इसका यथोचित हल ढूँढ़ पाने में असमर्थता का अनुभव कर रहा था। ऐसी विकट स्थिति में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ही एकमात्र साहित्यिक थे, जिन्होंने युग की महान् चुनौती को अंगीकृत किया। उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि भाषा गढ़ी नहीं जाती है, साहित्यकार की लेखनी से स्वयं छलकती हुई चली आती है।

बीसवीं सदी के आरंभ में ही मुजफ्फरपुर के बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ी बोली का वर्ग-विभाजन करते हुए उसे पंडित-शैली, मौलवी-शैली आदि चुभते हुए शीर्षकों से सुशोभित किया था। राजा साहब की भाषा न तो पंडित-शैली के अन्तर्गत है, न मौलवी-शैली कही जा सकती है। फिर भी न यह उर्दू-फारसी को छोड़ती है, न हिन्दी-संस्कृत को। बोलचाल में जो भी शब्द प्रचलित हो रहे हैं, उन सब को साथ लेकर राजा साहब की भाषा चलती है। भाषा की यह टेक न तो मुंशी प्रेमचंद से मिलती-जुलती है, न ईंशा अल्ला खाँ से। यह अपने ढंग की सर्वथा निराली टकसाल है, अभिव्यक्ति की एकदम अलग पद्धति है। इसमें उर्दू की सभी खूबियाँ हैं, हिन्दी की समस्त गरिमा है, फिर भी यह ऐसी हिन्दी है, जिसे अगर फारसी लिपि में लिख डालें, तो उर्दू के सिर पर चढ़ जायगी।

मुहावरे और सूक्तियाँ किसी जानदार भाषा की शान हैं। पंडित अयोध्या सिंह

उपाध्याय "हरिऔध" ने भी मुहावरों के प्रयोग पर विशेष ध्यान रखा है। किन्तु, राजा साहब ने मुहावरों के प्रयोग में जो चमत्कार पैदा किया है, हिन्दी-जगत् में उसका जवाब नहीं। पहाड़ी झरने की तरह उछलती-कूदती, मचलती-बिछलती और लहालोट लोटती-पोटती राजा साहब की शैली इस प्रकार चलती है कि पाठकों को भी बरबस रस से शराबोर ही नहीं, लोट-पोट भी कर देती है। बीच-बीच में मशहूर गजलों के फबते हुए टुकड़े मजमून में चार चाँद लगा देते हैं। गद्य की गमक में नमक और अनुप्रासों की झमक पद्य की चमक दिखला जाती है। हजार रंगों के बीच में भी यह अनूठा रंग है। सैकड़ों शैलियों के ढेर में भी यह एक निराली शैली है, जो दूर से ही पुकार-पुकार कर कहती है—"अरे हटो जी, राह छोड़ दो। राजा साहब आते हैं।'

जी हाँ। मेरी कविता की यह एक पंक्ति है, जिसे बच्चे बड़े चाव से गुनगुनाया करते हैं। लखनऊ के अपने निवास में आकाशवाणी से लौटकर जाता था, अंजू-मंजू आदि पास-पड़ोस के बाल-गोपाल मेरे घर के दरवाजे पर मेरी ही कविता की पंक्तियों से मेरा विनोद-पूर्ण स्वागत करते थे—"अरे हटो जी, राह छोड़ दो, राजा साहब आते हैं।" मेरे-जैसे नकली राजा साहब के लिये इतने ठाट-बाट का स्वागत-सत्कार भले ही असंगत-अस्वाभाविक प्रतीत हो—मैं सहमत हूँ। किन्तु, हमारे राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह तो वास्तव में राजा थे। ठोस भौतिक अर्थ में। किन्तु, कहाँ वह शान-शौकत? कहाँ वह राजसी ठाट-बाट? कहाँ वह तीर-तलवार? कहाँ वहाँ तोप-बन्दूक? नहीं वह कलँगीदार साफा-मुरेठा और नहीं वह गले में मोतियों की माला। राजा के रूप में हम प्रायः जिस भारी-भरकम डील-डौल एवं असाधारण वेश-भूषा की परिकल्पना कर लेते हैं, उनसे से कुछ भी तो नहीं अपने राजा साहब में पाया। राजा साहब आते हैं, तो राह छोड़ देने की बात कहाँ? यहाँ तो सदैव खुला दरबार है। जब जिसका जी चाहे, आ जाये। कोई रोक-टोक नहीं। कोई झिझक नहीं। पर्दा-लिहाज नहीं। सर्वत्र समता—समरसता का व्यवहार है।

आरा-सम्मेलन के बाद भी समय-समय पर राजा साहब के शुभ दर्शन होते रहे। कभी बिहार साहित्य-सम्मेलन भवन में, कभी राष्ट्र-भाषा परिषद् के विशेष अधिवेशन में, कभी किसी सांस्कृतिक समारोह में, तो कभी किसी काव्य-गोष्ठी में। कभी दूर से,

[illegible] भी बिलकुल निकट थे । मैंने राजा साहब को सदैव एक ही सदा-बहार मुख-मुद्रा एवं [illegible] देखा । यद्यपि कठोर काल की परिछाइयाँ चेहरे पर अपनी अमिट छाप छोड़ती चली जा रही थीं, लेकिन उनकी सहृदयता पर इसका कोई भी असर पड़ता नज़र नहीं आ रहा था । दुबला-पतला शरीर, हाथ में छड़ी, आँखों पर चश्मा—बावजूद नियराते बुढ़ापे की इन बेहद निशानियों के, उनकी कमर सीधी थी, हौसलों में बुलन्दी और चाल-ढाल में भंगिमा । आखिरी दम तक उनकी उमंगों में जवानी का जोश था और तरुणाई की ताजगी । उनके अन्तस्तल का कलाकार कभी बूढ़ा नहीं हुआ । राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के पार्थिव शरीर का अन्त होना था, हो गया । किन्तु, उनकी कला की मृत्यु न उनके जीवित रहते हुए हुई, न उनके मरणोपरान्त ही हो सकती है । राजा साहब नहीं रहे, लेकिन उनका कलाकार अमर है । आने वाली पीढ़ियों को युगों तक उनका साहित्य स्वयं अपनी जिन्दगी जीने और दूसरों को भी जीने देने की प्रेरणा देता रहेगा । राजा साहब का जो कुछ भी भौतिक ठाट-बाट था, वह उनकी रचना में बाँकपन बन समा गया है । उनके लिये तो बच गयी थी केवल एक सादगी और अधरों पर एक मुस्कान, जो किसी भी अवस्था में पराजय स्वीकार करने के लिये प्रस्तुत नहीं थी । आज भी जब उनकी विलक्षण स्वर-माधुरी स्मरण आती है, तब कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है कि मानो जेठ की प्रचण्ड धूप से जले-तपे पौधों पर शीतल जल की फुहारें बरस रही हों ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के हस्ताक्षर का महत्व न केवल इसलिये माना जायगा कि वह एक ऊच्च कोटि के कथा-शिल्पी हैं, वरन् इसलिये भी कि वह एक अप्रतिम शैलीकार भी हैं । राजा साहब कोई अनागत युग-स्वप्न-द्रष्टा नहीं, न ऐतिहासिक अतीत के गौरव-गायक ही । उनकी लेखनी सहज रूप से उस चिरन्तन सत्य को प्रस्तुत करती है, आज जिस अनुभव को हम अनुभूति न कहकर एक प्रकार की ऐसी संज्ञा से अभिहित करना अधिक पसन्द करते हैं, जो हमारा भोगा हुआ, देखा-सुना, जाना-पहचाना और अंगीकृत-आयत्त किया हुआ जीवन होता है । हम स्वयं उस जीवन से अलग-अलग या कटे-छटे नहीं होते और न हमारा जीवन ही हमसे छिन्न-भिन्न होता है । राजा साहब का कथाकार घटनाओं के अनुसन्धान में या अनुभूतियों के विश्लेषण में किसी अज्ञात-अपरिचित कल्पना-लोक

का सहारा नहीं लेता। अपनी खुली आँखों से जो देखा और अपने बाहोश कानों से जो सुना और अपने निगूढ़ अन्तर्तम में जिसका अनुभव किया, वही पर्याप्त है उसकी भावनाओं को गति एवं प्रेरणा देने के लिये।

प्रेमचंद ने समाज के एक विशेष वर्ग का ढहता हुआ गौरव चित्रित किया है, तो राजा साहब ने भी उसी युग के एक अन्य वर्ग का सामंती वैभव-विलास, अमोद-प्रमोद तथा रुदन-हास को अपनी नवनवोन्मेषिणी प्रतिभा के द्वारा सजीव-साकार कर दिया है। सूरदास-जैसे निम्न-सामाजिक स्तर के प्राणी के प्रति हमारी सहानुभूति भी सामंती करुणा के वशीभूत होकर ही जाग्रत होती है। किन्तु, यह भी सच है कि कथाकार की अपेक्षा वह एक ऐसी विशिष्ट शैली के लिये साहित्य में चिर-स्मरणीय स्थान के अधिकारी रहेंगे, जो किसी भी मानी में अपना सानी नहीं रखता। संस्कृत-निष्ठ शैली के एकदम विपरीत और प्रेमचन्द की शैली के समकक्ष, किन्तु, कई अंशों में उससे भी विलक्षण जो एक अन्य मिश्री-सी मधुर मिश्र-शैली चल पड़ी, वही कुछ और विकसित, परिमार्जित और नवरस की चाशनी में डूब कर राजा साहब की अपनी शैली हो गयी। राजा साहब की हिन्दी पर उर्दू-अदब का प्रभाव पड़ा, तो संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला का भी। यही कारण है कि राजा साहब की शैली में हम एक ऐसी विचित्र भाव-भंगिमा पाते हैं, जिसने साहित्य-जगत् में अपना एक सुनिश्चित स्थान बना लिया है।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार बेनीपुरी की भाषा-शैली पर मुग्ध हो हिन्दी के महाकवि मैथिली शरण गुप्त ने कभी कहा था—"यह लेखनी है या कोई जादू की छड़ी?" हमारे राजा साहब पर भी यह उक्ति रुपये में सौवें पैसे तक चरितार्थ होती है। जादूभरी लेखनी का अद्भुत चमत्कार यदि कोई देखना चाहे, तो राजा साहब की रचना पढ़े।

व्यक्तित्व और शैली दो नहीं होते। संसार में जिसका नाम व्यक्तित्व है, साहित्य में उसी को लोग शैली कहकर अभिव्यंजित करते हैं। राजा साहब ने इसे बहुत ही बारीकी और खूबी के साथ निखारा है। और इस दृष्टिकोण से वह पूरे तौर पर सही और खरे उतरते हैं। अजंता-एलोरा की गुफाओं के अज्ञातनामा कलाकारों के समान एक-एक उमड़ती रेखा और रंग को यथोचित छेनी और कूची के ठीक-ठीक संतुलन से

सजाया-सँवारा है। हृदय से कवि, संस्कार से अभिजात, भावनाओं से भारतीय और भाषा से गंगा-जमुनी होने के कारण ही राजा साहब का स्वभाव और शैली ऐसे घुल-मिल गये हैं कि एक को दूसरे से पृथक् करना सर्वथा असंभव नहीं, तो दुरूह अवश्य है। राजा साहब की भाषा वास्तव में नागरी है, बनी-ठनी है। चोट करती है, लोट-पोट कर देती है। सज-धज, साज-बाज, नाज-नखरे और अभिनय-अलंकरण के बिना बोलना भी पसन्द नहीं करती। मुहावरा, शोखी, यमक, अनुप्रास, कायदा-कानून, तौर-तरीके, तहजीब-तस्लीम, इन्हीं या इन्हीं-जैसी कुछ और चीजों का मिला-जुला नाम राजा साहब की शैली है। राष्ट्रभाषा के ऐसे शैलीकार और कलम तथा हृदय के धनी राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का अभाव भले ही हमें खलता रहे, उनके व्यक्तित्व की अपूरणीय क्षति पर भले ही हम आठ-आठ आँसू बहाते रहें, किन्तु, उनके कृतित्व की सुगन्ध अक्षय है और उनका यशः शरीर अमर है।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की समन्वय-शैली हमारी भावनात्मक एकता की द्योतक है, साहित्य का संगम है और है संस्कृति की त्रिवेणी।

हमें तो वह समाँ पसन्द है कि कोयल की कूक भी है, बुलबुल की चहक भी; मालती की क्यारी भी है, गुलेलाला की किनारी भी; मलय-मर्मर की माधुरी भी है, नसीमेबहार की शोखी भी। आप क्या समझते हैं कि यह मेलजोल घुल नहीं सकता? अरे भाई, यह तो अपनी-अपनी कलम का जादू है।

—राधिकारमण

ईश्वरदत्त
भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग पटना•कॉलेज, पटना—६

चूँकि राजा साहब आधुनिक युग की उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद ही सच्चे अर्थों में साहित्य-सर्जन के क्षेत्र में उतरे थे अतएव उनकी सभी कृतियों पर नख से शिख तक आधुनिकता की छाप है।

आज राजा साहब शरीर द्वारा हमारे बीच उपस्थित नहीं हैं तोभी अपनी कृतियों द्वारा वे हमारी स्मृति में सदा के लिए अङ्कित हो चुके हैं। यशस्वी लोग यश की काया द्वारा सदा ही जीवित रहते हैं। हमारा सम्पर्क राजा साहब के साथ पटना कॉलेज की हिन्दी साहित्य परिषद् के अध्यक्ष होने के नाते शुरू हुआ जो बिहार सरकार के शिक्षा-विभाग की सेवा से अवकाश ग्रहण कर लेने के बाद भी जारी रहा।

राजा साहब के सम्बन्ध में विशेष जानकारी रखने वालों का कथन है कि उनके ११ कहानी-संग्रह, ११ उपन्यास, ४ नाटक तथा अनेक संस्मरण प्रकाशित हो चुके हैं।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह

स्वर्गीय डॉक्टर सच्चिदानन्द सिंह की इस चुनौती के जवाब में कि "थैकरे के 'वैनिटी फेयर' के मुकाबले की हिन्दी में कोई चीज नहीं है" राजा साहब द्वारा लिखा गया उपन्यास 'राम-रहीम' अकेला ही उनके नाम को अमर बनाने के लिए काफी है। यहाँ हम उनकी कथावस्तु एवं चरित्र-चित्रण आदि की बारीकियों में न जाकर, उन्होंने उक्त उपन्यास में जिन दो विभिन्न शैलियों पर अपने पूर्ण प्रभुत्व का प्रमाण प्रस्तुत किया है उन्हीं तक अपने आपको सीमित रखना चाहते हैं। इन दो शैलियों में से एक का नाम है हिन्दी-प्रधान शैली और दूसरी का उर्दू-प्रधान शैली। दोनों शैलियों में पृथक्-पृथक् लिखने वालों की आए दिन कमी नहीं है किन्तु दोनों शैलियों में इच्छानुसार शृङ्खलाबद्ध एकसाथ लिखने वाला एक ही व्यक्ति हिन्दी जगत् में हमें स्वर्गीय राजा साहब के सिवा और कोई उपलब्ध नहीं होता। बहुमुखी प्रतिभा उनकी एक विशेषता थी।

लक्ष्मी धन की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती है और सरस्वती वाणी तथा विद्या की। इन दोनों में विरोध है। तदनुसार लक्ष्मीपति प्रायः वाग्-विलास एवं विद्या-विलास से दूर रहते हैं तथा सरस्वती के उपासक सीमित साधनों वाले व्यक्ति हुआ करते हैं। राजा साहब ने लक्ष्मीपति होते हुए भी अपना समस्त जीवन साहित्य-सेवा और सरस्वती की आराधना में ही लगा दिया। यह उनकी दूसरी विशेषता थी जो उन्हें असाधारण व्यक्तित्व प्रदान करती है।

उन्हें संस्कृत, हिन्दी, अँगरेजी, अरबी-फारसी और बङ्गाली—इतनी भाषाओं का ज्ञान था। इसी कारण उनकी रचनाओं की भाषा में हमें एक अपूर्व बहुरूपता के दर्शन होते हैं।

चूँकि राजा साहब आधुनिक युग की उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद ही सच्चे अर्थों में साहित्य-सर्जन के क्षेत्र में उतरे थे अतएव उनकी सभी कृतियों पर नख से शिख तक आधुनिकता की छाप है। उनके पढ़ने से यह भी पता चलता है कि उन्होंने इस देश के सामाजिक जीवन का कितना व्यापक एवं विवेचनात्मक अध्ययन किया था। उनकी कृतियों के 'राम-रहीम', 'पुरुष और नारी', 'पूरब और पच्छिम' तथा 'चुम्बन और चाँटा' जैसे शीर्षक ही इस बात की सूचना देते हैं।

उमाशंकर वर्मा

व्याख्याता, प्रा० शि० शिक्षा महाविद्यालय, महेन्द्रू, पटना—६

✤

राजा साहब ने अपनी अनोखी शैली में बेनीपुरी जी का जो परिचय प्रस्तुत किया था उसकी गूँज आज भी मेरे मस्तिष्क में विद्यमान है।

✤

उस दिन अचानक राजा साहब के स्वर्गारोहण का समाचार रेडियो से सुनकर जो मर्मान्तक वेदना मुझे हुई, उसे शब्दों में व्यक्त करना असंभव है। यह सच है कि पिछले कुछ दिनों से वे बराबर अस्वस्थ चल रहे थे और काफी दुर्बल व अशक्त हो गए थे, फिर भी यह कौन सोच सकता था कि इतनी जल्दी वे हमसे बिछुड़ जाएँगे! पर क्रूर काल का यही तो वह क्रीड़ास्थल है जहाँ हम विवश और निरुपाय होकर रह जाते हैं!

हमारे राजा साहब

विश्व के रंगमंच पर प्रत्येक मनुष्य अपनी भूमिका निभाकर अन्तर्धान हो जाता है। प्रकृति के इस नियम का कोई अपवाद नहीं होता। पंचतत्त्व के पुतले की यही एकमात्र गति और नियति है। किन्तु जैसे नाटक में भाग लेनेवाला कोई अभिनेता अपनी विशिष्टताओं के कारण लम्बे समय तक दर्शकों के मन-प्राणों पर छाया रहता है, उसी प्रकार संसार की अभिनयशाला में विशिष्टता प्रदर्शित करनेवाला व्यक्ति अमरत्व का अधिकारी हो जाता है। हमारे राजा साहब इसी कोटि के महापुरुष थे और देहावसान के बावजूद युग-युग तक लोग उन्हें श्रद्धापूर्वक स्मरण करते रहेंगे।

राजा साहब महान साहित्यकार होने के साथ-साथ एक महान मानव भी थे। ऐश्वर्य और प्राचुर्य के बीच निवास करते हुए भी जिस सादगी और संयम को उन्होंने आजीवन अपनाए रखा, उसके दर्शन अन्यत्र मुश्किल से हो पाते हैं। उनका खान-पान, वेशभूषा, रहन-सहन सब कुछ अत्यन्त साधारण था। कहीं कोई आडम्बर नहीं, कहीं कोई दिखावा नहीं।

राजा होते हुए भी वे 'दरिद्रनारायण' के अनन्य उपासक थे। दीन-हीन, शोषित-पीड़ित जन-समाज को जो स्नेह-सहानुभूति एवं आत्मीयता उनसे मिली, उससे उनका समस्त साहित्य आप्लावित है। असहाय-उपेक्षित स्त्री-पुरुषों की व्यथा-वेदना के जो असंख्य चित्र उन्होंने अपनी कृतियों में प्रस्तुत किए, वे अत्यन्त मार्मिक और हृदयग्राही हैं और उनमें कहीं कोई कृत्रिमता नहीं है।

वे एक यथार्थवादी साहित्यकार थे और उनकी नजर निरन्तर धरती की कठोर सचाइयों पर गड़ी रहती थी। वे अपने चतुर्दिक जो कुछ देखते-सुनते थे उसीको अपनी कृतियों में कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करते थे। उनकी अधिकांश कहानियाँ और उपन्यास सत्य घटनाओं पर आधारित हैं और इसी कारण उनमें एक अपूर्व सजीवता एवं स्वाभाविकता आ गई है।

वैसे तो प्रत्येक श्रेष्ठ लेखक की अपनी एक स्वतन्त्र शैली होती ही है जो उसे दूसरों से अनायास भिन्न कर देती है। परन्तु राजा साहब की शैली एक अद्भुत वैशिष्ट्य से विभूषित है। उसमें एक अनोखा आकर्षण, लोच और प्रवाह है। शब्दों की वह नक्काशी सचमुच बेजोड़ है। सहज-सरल ढंग से लिखते हुए भी वे जिस इन्द्र-धनुषी छटा की सृष्टि करते चलते थे वह उन्हीं के वश की बात थी। कोई लाख सिर पटके उसका अनुकरण आसान नहीं होगा।

वे एक प्रथम कोटि के उपन्यासकार और कहानी-लेखक तो थे ही, भाषाविद् भी साधारण नहीं थे। हिन्दी के अतिरिक्त अनेक भारतीय भाषाओं के वे मर्मज्ञ विद्वान थे। संस्कृत, उर्दू और फारसी पर उनका समान अधिकार था। अंग्रेजी के भी वे अच्छे ज्ञाता थे और बंगला के माध्यम से तो उन्होंने अपने लेखक-जीवन का आरम्भ ही किया था। इन विभिन्न भाषाओं के साहित्य का उनका अध्ययन अत्यन्त गहन और व्यापक था।

राजा साहब के पिता सुकवि 'प्यारे' रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अन्तरंग मित्र थे।

िता के द्वारा बाल्यावस्था में ही विश्वकवि का सम्पर्क उनके लिए सुलभ हो गया था। उन्हीं से प्रेरित-प्रभावित होकर उन्होंने बंगला में अनेक कविताएँ लिखी थीं। परन्तु आगे चलकर उनकी लेखनी हिन्दी की ओर ऐसी मुड़ी कि वे हिन्दी के ही हो रहे। पहले वे मुख्यतः कहानियाँ ही लिखा करते थे जो प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं, पर आचार्य शिवपूजन सहाय की अनवरत प्रेरणा के फलस्वरूप वे उपन्यास-लेखन और प्रकाशन की ओर भी प्रवृत्त हुए। शुरू-शुरू में जब 'राम-रहीम' का प्रकाशन हुआ तो हिन्दी-संसार में उसकी धूम मच गई और तबसे प्रायः प्रति वर्ष उनकी कोई न कोई कृति पुस्तक के रूप में आती ही रही।

मुझे इस बात का दुख रह ही गया कि मैं इस महान साहित्यकार के निकट सम्पर्क में नहीं आ सका। मैं बराबर पटने से दूर-दूर ही रहा और अन्त में यहाँ तब आया जब उनका स्वास्थ्य काफी बिगड़ चुका था। दर्शनों की लालसा निरन्तर बनी रहती थी और मैं मन ही मन प्रोग्राम बनाता ही रहता था। उनके देहावसान के कुछ ही महीने पूर्व भाई सुरेश कुमार जी से मैंने इस सम्बन्ध में आग्रह किया था और उन्होंने आश्वासन दिया था कि वे मुझे अपने साथ ले जाकर उनसे मिलाएँगे। पर इधर मैं स्वयं अस्वस्थ रहने लगा और मेरी यह इच्छा पूरी नहीं ही हो सकी।

वैसे कुछ साहित्यिक समारोहों में उनके दर्शनों का सौभाग्य मुझे मिला था और उनकी जिन्दादिली की अमिट छाप मुझ पर पड़ी थी। पर १९५० ई० में बिहार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के आरा अधिवेशन में अपेक्षाकृत अधिक निकटता से मैं उन्हें देख सका था। अधिवेशन के अध्यक्ष स्व० बेनीपुरी जी थे और श्रीमती महादेवी वर्मा तथा बच्चन जी भी उसमें सम्मिलित हुए थे। राजा साहब ने अपनी अनोखी शैली में बेनीपुरी जी का जो परिचय प्रस्तुत किया था उसकी गूँज आज भी मेरे मस्तिष्क में विद्यमान है।

उनका पार्थिव शरीर हमसे जरूर छिन गया है, किन्तु उनकी यशः काया पर कौन आघात कर सकता है! मानव-मन एवं जीवन की अनन्त गहराइयों में गोते लगा-लगाकर जो असंख्य अनमोल रत्न उन्होंने संचित कर दिए हैं, वे सदा हमें प्रमुदित एवं आह्लादित करते रहेंगे। उनकी आभा कदापि मलिन नहीं हो सकती। उनकी पुनीत स्मृति में मैं सदा प्रणत रहूँगा।

उमेशचन्द्र मधुकर
मालीगाँव, आसाम

✠

राजा साहब निरभिमानता के प्रतीक थे। तभी तो वे राजा से रंक तक और महल से झोपड़ी तक सभी को समझ-बूझ सके। वंशगत मर्यादा और सम्पन्नता के लबादे उन्होंने कभी नहीं ओढ़े। इसी कारण वे परस्पर विरोधी चरित्रों का भी सफल चित्रण एवं प्रस्तुतीकरण कर सके।

हिन्दी साहित्य के राजर्षि

कभी सृष्टि की उपेक्षा कर स्रष्टा को समझने की चेष्टा की गयी थी। आज स्रष्टा की उपेक्षा कर सृष्टि को समझने की चेष्टा की जा रही है। पहली चेष्टा को "दर्शन" कहा गया। दूसरी चेष्टा को हम "विज्ञान" कहते हैं। दर्शन असफल हो चुका है। विज्ञान असफल हो रहा है। इन दोनों असफलताओं के मूल में है दृष्टिकोण की भूल। मेरी पक्की धारणा है कि सृष्टि अथवा स्रष्टा किसी एक को भी पूर्णतः समझ पाने के लिये दोनों को पूर्णतः समझना होगा। क्योंकि ये दोनों ही "पुरुष" तथा "प्रकृति" की तरह अथवा "गिरा" एवं "अर्थ" की तरह अथवा "जल" और "बीचि" की तरह

"लक्षियत भिन्न, न भिन्न" हैं। इसके साथ-साथ मेरी यह भी पक्की धारणा है कि दर्शन और विज्ञान के इस अधूरे काम को पूरा करने की शक्ति जिस तीसरी चेष्टा में है उसीका नाम है "साहित्य"।

स्वर्गीय राजा राधिकारमण की कृतियाँ तो मैंने पढ़ी ही हैं उनके व्यक्तित्व को भी मैंने अत्यन्त निकटस्थ होकर अत्यन्त मनोयोगपूर्वक देखा-समझा है। आज से करीब चालीस साल पहले सन् १९३२ में राजा साहब के सूर्यपुरा स्कूल का मैं विद्यार्थी था। तब मैं किशोर मात्र था किन्तु तब भी मैं उनका स्नेहभाजन था। परमात्मा की कृपा से उन दिनों की हमलोगों की साहित्यिक जागरूकता के दो साक्षी श्री उदयराज सिंह तथा श्री सुरेश कुमार आज भी सच्ची लगन के साथ साहित्य-सेवा कर रहे हैं। यों गत चालीस वर्षों से राजा साहब के कृतित्व एवं व्यक्तित्व से अर्थात् सृष्टि तथा स्रष्टा दोनों से ही अपने सतत सम्पर्क के कारण प्राप्त अनुभवों के आधार पर आज मैं उन्हें अपनी श्रद्धांजलि समर्पित कर रहा हूँ।

राजा साहब सादगी के अवतार थे। नवागंतुक तो उन्हें देख कर विश्वास नहीं कर पाता था कि वे ही थे सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह। हाँ, प्रथम वाक्य भी उनके मुँह से सुनते ही उसके जादू से प्रभावित होकर वह समझ जाता था कि वे राजा साहब ही थे। उनके पहनने-ओढ़ने में अतिशय सादगी थी किन्तु उनकी भाषा में सजावट बेजोड़ थी। भीतरी सजावट वाले को बाहरी सजावट नहीं चाहिये।

"जिन नैनन मो हरिरूप बस्यौ तिन मो अब और को ठौर कहाँ"!

राजा साहब निरभिमानता के प्रतीक थे। तभी तो वे राजा से रंक तक और महल से झोपड़ी तक सभी को समझ-बूझ सके। वंशगत मर्यादा और सम्पन्नता के लबादे उन्होंने कभी नहीं ओढ़े। इसी कारण वे परस्पर विरोधी चरित्रों का भी सफल चित्रण एवं प्रस्तुतीकरण कर सके।

राजा साहब धरती के पुजारी थे। एक बार उन्होंने मुझसे कहा था—भाई, मैं उड़ूँ तो कैसे उड़ूँ—जमीन की मिट्टी मुझे उड़ने नहीं देती। इसलिये मेरे कथानकों की पृष्ठाधार भूमि पार्थिव रहती है। मैं अपने बहुत से पात्रों के नाम-ठिकाने बता सकता हूँ। वास्तव में "देवीबाबा" तो थे ही और राजा साहब अपने जीवन में उनसे काफी प्रभावित भी हुए थे। "टूटा तारा" के बूढ़े मौलवी साहब को तो मैं स्वयं भी देख चुका हूँ।

राजा साहब का पंखा खींचनेवाला अंधा "सूरदास" भी तो था ही, उसकी प्रियतमा भी थी ही और उसकी मृत्यु का कारण भी तो उसका विरह ही था।

"राम-रहीम" को ही लें। बेला और बिजली दोनों वास्तव में गाने वाली वेश्याएँ थीं। बिजली मुसलमान बन गयी, इस्लाम को पकड़ कर निकल गयी। बेला हिन्दू ही रही और हिन्दूसमाज में जैसा दुर्भाग्य उसके लिये नियत था वही उसे भुगतना भी पड़ा।

"पुरुष और नारी" के अजित भी तो किसी और नाम से आज भी हैं ही। बहुत पूर्व लिखी बातें आज भी उनके जीवन में घटित होती जाती हैं। राजा साहब की पैनी दृष्टि मानो भविष्य के अन्तराल को भी भेद कर झाँक सकती थी।

राजा साहब पूर्णतः समन्वयवादी थे—समाज में, धर्म में और साहित्य में भी। समाज में वे हरिजनोद्धार के समर्थक थे, धर्म में वे राम और रहीम को एक मानते थे और साहित्य में वे भाषाओं के परस्पर आदान-प्रदान के पक्षपाती थे। वास्तविकता यह थी कि राजा साहब भाव-सौन्दर्य और भाषा-सौन्दर्य दोनों के पारखी थे। आज से चालीस वर्ष पूर्व सूर्यपुरा के महल में राजा साहब को अपने पिता राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह के सुन्दर भावों से भरे इस दोहे को मस्त होकर बार-बार गुनगुनाते मैंने सुना था—

कानन मुरली मधुर धुनि, नैंनन में ब्रजबाल
मन-मन्दिर में राधिका, रोम-रोम गोपाल

फिर आज से बीस वर्ष पूर्व पटने में राजा साहब को जबान की चुस्ती पर फिदा होते हुए और इस एक शेर को बार-बार कहते हुए मैंने सुना था—

हर कदम पर कामयाबी की उमीद
मुस्कुराई, मुस्कुरा कर रह गयी

राजा साहब हिन्दी साहित्य के राजर्षि थे—ठीक राजर्षि जनक जैसे—जिन्होंने भोग और योग का आदर्श समन्वय किया था। राजा साहब को खोकर हिन्दी साहित्य आज कंगाल हो गया है!

अंजनी कुमार सिन्हा
उप-प्राचार्य, सूर्यपुरा हायर सेकेन्डरी स्कूल, शाहाबाद

✣

भोजन पर उनका अद्भुत अधिकार था। वे कहा करते थे—'कम खाना और गम खाना' स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण था कि अस्सी साल की उम्र तक वे पूर्ण स्वस्थ रहे।

✣

जब मैं नवें वर्ग का विद्यार्थी था उसी समय 'राम-रहीम' और 'पुरुष नारी' पढ़ गया था। चर्चा तो मैं बराबर सुना करता था कि सूर्यपुरा में एक राजा साहब हैं जिनकी प्रतिभा सारे बिहार प्रान्त में ही नहीं बल्कि उसके बाहर भी फैल चुकी है। गाँधी जी का वह जमाना सारे विचारशील पुरुषों के मन पर छाप डाले था। राजा साहब के साहित्य में भी 'गाँधी-युग' की निर्भीक चर्चा थी। उसी समय से मन में भावना थी कि इस 'दिव्य-पुरुष' के दर्शन करूँ। १९४० ई० में जब मैट्रिक की

उनकी तस्वीर

परीक्षा पास कर बी० एन० कॉलेज, पटना में विज्ञान का विद्यार्थी था, सितम्बर के महीने में कॉलेज का एक साहित्यिक जलसा था जिसका सभापतित्व राजा साहब ने किया। खबर लगी और सारा बी० एन० कॉलेज टूट पड़ा। उसी दिन इस पवित्र साहित्यकार के दर्शन हुए। भाषा के उस चमत्कार एवं तर्ज की उस अपूर्व शक्ति ने सब पर जादू डाल दिया। मंत्र-मुग्ध हम घण्टे भर इस विभूति की बातें सुनते रहे।

नियति का चक्र जिसके वश में सभी घूमते हैं मुझे सूर्यपुरा खींच लाया। सौभाग्यवश मैं राजा साहब के विद्यालय का एक अदना शिक्षक बना। उस समय सूर्यपुरा साहित्यकारों का एक पवित्र स्थान था। महीने में बीसों रोज कोई-न-कोई साहित्यकार किसी नाते सूर्यपुरा अवश्य पहुँचता और उनके सान्निध्य का अवसर मुझे उत्तरोत्तर मिलता गया। सबके केन्द्र में राजा साहब ही थे, परन्तु सभी आयोजनों के प्रबन्ध का सारा श्रेय श्री उदयराज सिन्हा, राजा साहब के पुत्र को था। साहित्य की वह चाशनी जो पीने को मिली तो मस्ती में लीन मैं यहाँ सूर्यपुरा में ऐसा फँसा कि आज तक यहीं पड़ा हूँ। दो-एक-बार निकलने का प्रयत्न भी किया तो विफल रहा। राजा साहब ने जाने नहीं दिया। आज मुझे दुःख है कि न राजा साहब हैं और न उनके पुत्र शिवाजी ही यहाँ की रोज खबर लेते हैं। जमींदारी चली गयी, साथ-साथ सूर्यपुरा राजपरिवार पटने में चला गया। दुनिया बदल गयी, सूर्यपुरा का साहित्यिक वातावरण लुट गया। फिर भी मैं यहाँ हूँ।

सभी परिस्थितियों के बदलते जाने के बावजूद भी मेरे राजा साहब सूर्यपुरा को भूले नहीं। उन्हें इस स्थान के कण-कण से स्नेह था। एक अजीब प्रतिभा थी, एक विचित्र विद्युत-शक्ति। साल में छै महीने राजा साहब के सूर्यपुरा में ही कटते। मेरी अपनी स्मृति जहाँ तक जाती है सन् १९५२ से १९७० की जनवरी तक कोई भी ऐसा दिन न होगा जब कि राजा साहब सूर्यपुरा में हों और मेरे निवास-स्थान पर न पधारे हों। संध्या समय सूर्यास्त से घण्टे भर पहले वे टहलते हुए अवश्य पहुँच जाते थे। एक बहुत बड़ी जमायत साथ में होती। दो-चार दर्जन उच्चवर्गों के विद्यार्थी होते, गाँव के कुछ लोग होते। बहुत बार मेरे विद्यालय के प्राचार्य एवम् शिक्षक-गण होते। लगभग घण्टे भर ठहरने की कृपा राजा साहब अवश्य करते। यह समय उनका आसन और प्राणायाम का होता। वे स्वयं आसन करते और बच्चों को सिखाते थे। कुछ साहित्यिक चर्चा भी रहती। बच्चों से प्रश्न करते और उत्तर न मिलने पर उनका समाधान करते। एक अजीब बहुमुखी प्रतिभा थी।

राजा साहब ने मुझे अपना पुत्र माना। वे सर्वदा कहा करते थे, मैं अपने पुत्रों 'श्री बालाजी' जो आजकल एम० पी० हैं, 'श्री शिवाजी' एवम् 'श्री राणाजी' के बाद तुमको मानता हूँ। सादगी के वे अवतार थे। क्रोध के ऊपर उन्होंने विजय पा रक्खी थी। अदना व्यक्ति भी क्रोध में अगर कुछ कह देता तो वे हँसकर रह जाते। उसकी

नासमझी पर तरस खाते। उन्होंने मुझे बराबर शिक्षा दी कि जीवन में कभी किसी का अपकार नहीं करना मानव का सर्वप्रथम गुण है। मैंने उनकी उस शिक्षा को जीवन में उतारा है। उनकी नजर में धनी, गरीब, छोटे, बड़े सभी बराबर थे। एक छोटे बच्चे या किसी महान्-से-महान् व्यक्ति से वे एक ही तरह बातें करते। भोजन पर उनका अद्भुत अधिकार था। वे कहा करते थे—'कम खाना और गम खाना' स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण था कि अस्सी साल की उम्र तक वे पूर्ण स्वस्थ रहे। लक्ष्मी के वरद पात्र होने पर भी उन्होंने धन का दुरुपयोग नहीं किया। उनका चरित्र-बल उनके चेहरे पर चमकता था। जीवन में न कभी शराब पी और न भाँग। किसी ने उन्हें कभी सिगरेट पीते भी नहीं देखा। केवल पान खाते थे। पूजा का उनका अपना दृष्टिकोण था। सभी मजहबों को वे एक मानते थे और एक ईश्वर के उपासक थे। कवीन्द्र रवीन्द्र के चरणों में रहकर उन्होंने विश्व-बन्धुत्व का पाठ सीखा था और जीवन में उतारा था। श्री रवीन्द्र की कवितामय भावनाएँ उनकी गद्य की शैली में सर्वत्र मिलती हैं। शैलीकार के रूप में राजा साहब का हिन्दी-साहित्य में कहीं भी जोड़ नहीं मिलेगा। अध्ययन का समय उनका रात्रि में रहता। लिखने का काम भी वे प्रायः रात्रि में या दोपहर के बाद करते। बहुत लिखा और जो लिखा वह बेजोड़ है। समाज की समस्याओं को सुधारने की सफल चेष्टा उनकी कृतियों में है। उनकी ओजस्विनी भाषा एवम् अपूर्व भाषण-कला की समता हिन्दी संसार में अब नहीं रही। अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, संस्कृत, फारसी और मराठी भाषाओं का पूर्ण ज्ञान उन्हें था। मेरे विचार से यही कारण था जिसने राजा साहब के व्यक्तित्व को सभी क्षेत्रों में कमाल प्रदान किया। साहित्यकार की पवित्रता और दार्शनिक की तीव्रता इस महान् विभूति में थी। आज राजा साहब नहीं हैं पर नित्य वे मुझे एक बार अवश्य याद आ जाते हैं क्योंकि मैं उनका पुत्र हूँ।

अपने प्रति न्याय करो, दूसरों के प्रति क्षमा—यही मनुष्य की पहिचान है।

—राधिकारमण

कपिल
प्राचार्य, आर० डी० ऐन्ड डी० जे० कॉलेज, मुंगेर

Style is the man—राजा साहब की शैली उन्हीं की थी, एकदम अपनी थी—वह शैली उनके साथ ही चली गई—भाषा-शैली का एक स्वरूप हिन्दी से अचानक अन्तर्धान हो गया।

राजा साहब भी अब नहीं रहे। आने-जाने की इस धूम-धाम में किसकी-किसकी याद की जाय यों पता नहीं चलता पर राजा साहब ऐसा कुछ कर के गए हैं, ऐसा कुछ रह कर गए हैं कि उन्हें भुलाया नहीं जा सकता—उनकी याद होती ही रहेगी, हम उन्हें स्मरण करते ही रहेंगे। ईश्वर और अल्ला में ऐक्य देखने वाले, चोटी और दाढ़ी में इन्सान देखने वाले राजा साहब ने अपने

निधन एक शैली का

'राम-रहीम' में इसी सत्य को उजागर किया था और इस सत्य पर वे जीवन भर अमल भी करते रहे। इसीलिए उनकी भाषा-शैली में भी हिन्दी और उर्दू के अलफाज अपने आप आते रहे और जहाँ जरूरत की जरूरत थी वहाँ आवश्यकता की ओर वे कभी नहीं झाँक सके। उनकी हर कृति में हम हमेशा ही हिन्दी का हित और उर्दू की हिमायत पाते हैं। Style is the man—राजा साहब की शैली उन्हीं की थी, एकदम अपनी थी—वह शैली उनके साथ ही चली गई—भाषा-शैली का एक स्वरूप हिन्दी से अचानक अन्तर्धान हो गया।

किस्सा १९४३-४४ का है जब उन्होंने पटना कॉलेज के जिमनाजियम में 'जिनकी जवानी उनका जमाना' पढ़ा था। वह पढ़ते जा रहे थे और लोग झूमते और ठहाके लगाते जा रहे थे। वह जो किसी ने कहा है न, कहकर जब उन्होंने अकबर को उद्धृत करते हुए अपने संबंध में यह कहा कि—

'तेरे बाद अकबर कहाँ ऐसी नज्में
ये दिल ही न होगा जो वो आह निकले'

तो तालियों की गड़गड़ाहट से सारे का सारा हॉल गूँज उठा। और तो और, डा० सच्चिदानन्द सिन्हा, मुख्य न्यायमूर्ति फजले अली और प्रिंसिपल हसानन्द राधाकृष्ण बथेजा ने भी तालियाँ बजाईं। 'ये किस्सा है तब का जब आतिश जवाँ था।'

१९६० में राजा साहब हमारे कॉलेज में भी पधारे थे। जयन्ती समारोह था। डा० राजेन्द्र प्रसाद ने उद्घाटन किया था। राजा साहब एक घंटे से भी ज्यदा देर तक बोलते रहे और लोग हर क्षण हँसते-मुसकाते रहे। सूखे अधरों पर भी हास की रेखा खिंच जाय यह कौशल राजा साहब का अपना था। राजा साहब मिजाज से राजा थे, दिल के राजा थे और भाषा-शैली के भी राजा थे। हम उन राजा साहब की याद अकबर के ही शब्दों में कर रहे हैं और कह रहे हैं :—

'कहे जो चाहे कोई मैं तो ये कहता हूँ अकबर
खुदा बख्से बहुत सी खूबियाँ थी मरने वाले में।'

कपिलदेव नारायण सिंह सुहृद्

सुहृद्नगर, मुंगेर

✠

वे आश्रितों की रक्षा करना अपना परम धर्म मानते थे। वे बड़े ही हँसमुख और मधुरभाषी थे। आत्म-गौरव उनके रोम-रोम में भरा हुआ था, परन्तु वे अभिमानी नहीं थे। जो लोग उनसे मिलने जाते थे, उनसे राजा साहब दिल खोलकर बातें करते थे। उन्हें अपनी विद्या, बुद्धि और धन का जरा भी घमण्ड नहीं था। वे साधारण-से-साधारण व्यक्ति के साथ बातचीत करने में अपना अपमान नहीं मानते थे।

✠

लम्बा कद, छरहरा गोरा बदन, आँखों में मिलनसारिता और मृदुता के भाव—ये थे हमारे औपन्यासिक-सम्राट् राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह। वे अतीव मिष्टभाषी थे—एक बार की भेंट में मन मुग्ध हो जाता था। वे महामानव थे। उनके हृदय में प्रेम की पावन निर्झरिणी निरन्तर बहती थी। उनके सम्पर्क में जो आया, वह उनके स्नेह-पाश में बँधे बिना न रहा। ऐसी थी उनमें वह शक्ति जो दूसरों को उनकी ओर आकृष्ट करती थी। अजातशत्रु थे वे, सभी उनके हितचिन्तक थे और थे मित्र, कोई उनका दुश्मन न था।

राजा साहब

वे थे लक्ष्मी के लाड़ले और सरस्वती के पुजारी। उनकी अपनी शैली थी। वे लक्ष्मी के राजा थे और सरस्वती के महाराजा। बंगला और अंग्रेजी के बहुत बड़े विद्वान् थे। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ रहने की वजह से वे बंगला में ही लिखा करते थे। बाद में वे हिन्दी में लिखने लगे।

उनकी लेखनी में जादू था, भाषण में आकर्षण, जिसे सुनकर लोग मंत्रमुग्ध हो जाते थे। डॉ० अनुग्रहनारायण सिंह की जन्म-तिथि पर मैं राजा साहब को कभी मुख्य अतिथि के रूप में और कभी अध्यक्ष के रूप में बुलाकर जरूर लाता था। वे जब

बोलने को खड़े होते थे तब दर्शक प्रसन्नमुद्रा में मंत्रमुग्ध हो जाते थे। वे जब तक बोलते थे, जनता उनका भाषण शान्तिपूर्वक सुनती थी।

उन्होंने संघर्षों से कभी हार नहीं मानी। वे दुःख में भी मुस्कुराते रहते थे। वेदना-ज्वाला में भी उनके लिए स्वर्ग-सुख-सार बरसता रहा। वे कर्म की लौह-कसौटी पर स्वर्ण-से चमकते रहे। वे विकलता से कभी नहीं डरे। उन्होंने अपनी सफलता पर कभी अभिमान नहीं किया। वे जयाजय में एक समान रहते थे। वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सर्वदा बढ़ते रहे। निर्बलों के लिए उनके हृदय में दर्द था।

राजा होते हुए भी वे जनक की तरह निष्काम कर्मयोगी थे। लोग उन्हें भले ही छलें, लेकिन वे किसी को नहीं छलते थे। उनमें जिन्दादिली थी। उनकी बोली में आकर्षण था और थी मस्ती। उनमें चरित्रगत ऐसी विशेषताएँ थीं जो प्रत्येक को आकृष्ट करती थीं। उनका प्रेम बड़ा मोहक और आकर्षक था।

वे उस जिले के निवासी थे जिसने शेरशाह-जैसे कुशल प्रशासक, विश्वामित्र-जैसे नीतिज्ञ, कुँवर सिंह-जैसे योद्धा और डॉ० सच्चिदानन्द सिंह-जैसे विद्वान् साहित्य-सर्जक उत्पन्न किये और यदि सच कहा जाय तो इन नर-रत्नों के गुण राजा साहब ने पैतृक सम्पत्ति के रूप में ग्रहण किये थे।

एक दिन की बात है। श्री विष्णुदेव नारायण जी, श्री राजेन्द्र शर्मा जी और मैं श्री उदयराज सिंह जी से मिलने गये। राजा साहब कुर्सी पर बैठे कुछ पढ़ रहे थे। हमलोग उनके बगल में बैठकर बातें करने लगे। मैं उनके घर में लगे संगमर्मर की सुन्दरता और सफाई पर मुग्ध हो गया। मैंने उनसे इसकी चर्चा की। उन्होंने कहा—इस पत्थर को सूर्यपुरा के मकान में लगाने के लिए इटली से मँगाया था। लेकिन यहीं लगवा दिया। इतना साफ उजला और चिकना पत्थर हमारे देश में शायद ही मिलता हो। उनसे बातें करने के बाद हमलोग श्री उदयराज जी के कमरे में चले गये और राजा साहब अध्ययन में लीन हो गये।

वे आश्रितों की रक्षा करना अपना परम धर्म मानते थे। वे बड़े ही हँसमुख और मधुरभाषी थे। आत्म-गौरव उनके रोम-रोम में भरा हुआ था; परन्तु वे अभिमानी नहीं थे। जो लोग उनसे मिलने जाते थे, उनसे राजा साहब दिल खोलकर बातें करते थे। उन्हें अपनी विद्या, बुद्धि और धन का जरा भी घमण्ड नहीं था। वे साधारण-से-साधारण व्यक्ति के साथ बातचीत करने में अपना अपमान नहीं मानते थे।

एक बार डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु के डेरे में हमलोग बैठे हुए थे। राजा ाहब भी आ गये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने दिल्ली दरबार की कहानी कही जो बड़ी मनोरंजक और दिलचस्प थी। दुखिया के रूप में जो उनकी शरण में जाता ा वे उसका यथासाध्य उपकार करते थे। दूसरे का दु:ख देखकर उनका हृदय द्रवित ो उठता था। वे जिसमें प्रतिभा या कार्य-सम्पादन की सच्ची योग्यता देखते थे उसे ग्रविलम्ब अपना लेते थे। वे कर्त्तव्य-क्षेत्र में अपने दायित्व-ज्ञान को कभी कुंठित नहीं ोने देते थे।

सब तरह के सुखों से घिरे रहने पर भी मदान्धता के प्रदर्शन का रोग उन्हें नहीं था। वे आलस्य के अभिशाप को अपने पास नहीं आने देते थे। धीर किन्तु निश्चित गति से वे अपने कर्ममय जीवनपथ पर अविराम और अविरोध चलते रहते थे। विश्राम की सुविधाएँ उन्हें बुलाती रह जाती थीं; किन्तु, वे परिश्रम की प्रेरणाओं को कभी नहीं छोड़ते थे। बड़प्पन उन्हें बराबर ऊपर उछालता था। विनयशीलता उन्हें कभी नीचे गिरने नहीं देती थी।

उनमें प्रतिभा और परिश्रम की समन्वित शक्ति का अधिवास था। कल्पना-वैभव के साथ-साथ उसको बराबर परिचालित करते रहने की क्षमता उनमें इतनी अधिक थी कि क्लान्ति और विश्राम उनके लिए तब तक कोई महत्त्व नहीं रखता था, जब तक वे स्वयं अपने आपको कर्म-विरत न करना चाहते थे। इसका सुपरिणाम है उनकी लिखी कथाओं, उपन्यासों आदि पुस्तकों का पहाड़।

२७ अप्रील, १९७० ई० को बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्वर्णजयन्ती के समारोह में जब राजा साहब-जैसे महान् व्यक्ति को सम्मानित किया गया तब मुझ-जैसे छोटे व्यक्ति को भी। यह मेरा सौभाग्य है कि राजा साहब-जैसे विद्वान् की पंक्ति में मुझे भी बैठने का अवसर मिला। फूल के साथ काँटे भी शिव-मस्तक पर चढ़ाये जाते हैं। सम्मान-पत्र भारत के रक्षा मंत्री श्री जगजीवन राम के पवित्र हाथों से प्रदान किया गया था। इस प्रकार यदि पराधीन भारत में सरकार ने उन्हें राजा की उपाधि से विभूषित किया था तो स्वतंत्र भारत के विश्वविद्यालयों ने उन्हें डी० लिट्० और भारत सरकार ने पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत कर अपने को गौरवान्वित किया था। इन उपाधियों से भी वे अधिक महान् थे। उनकी दिवंगत आत्मा को शान्ति मिले, यही प्रार्थना है।

कुमार विमल

निदेशक, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना

इतनी नफीस बोली राजा जी के साथ ही उठ गई। मानो हिन्दी साहित्य की वीणा का तार टूट गया। इतनी पुरकारी, ऐसी कादिरूलकलामी, इतनी तब्बाई और ऐसी आइनादारी हिन्दी गद्य को शायद ही दुबारे मिलेगी।

२४-३-७१ का तीसरा पहर

२४-३-७१ को तीसरे पहर उदयराज जी से दूरभाष पर सूचना मिली कि राजा जी अब नहीं रहे। सूचना पाते ही हृदय शोक-संतप्त हो उठा और पूरे विशाल हिन्दी-परिवार के अतुल शोक का अनुमान मेरे मन को और भी उद्विग्न करने लगा। राजा जी साहित्य के साथ ही कई साहित्यिक संस्थाओं के प्राण थे। आरा नागरी प्रचारिणी सभा, बिहार प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्-जैसी संस्थाओं के साथ राजा जी का अटूट सम्बन्ध था और वे इन संस्थाओं के स्थापक सदस्यों में मूर्द्धन्य थे। राजा जी के रूप में बिहार की इन जैसी अनेक साहित्यिक संस्थाओं का सबसे पुराना साक्षी और अनुभवी परामर्शदाता उठ गया।

राजा जी का साहित्यिक व्यक्तित्व बड़ा ही अनूठा था। लक्ष्मी की गोद में पैदा हुआ यह सरस्वती का आराधक अपनी पूरी आयु को साहित्य के चरणों पर समर्पित कर गया। राजा जी की पूरी आयु में और उनके साहित्य-सृजन के पूरे काल में बहुत कम का अन्तर है। बस, बीच में एक छोटा-सा अन्तराल आया था राज-काज की विवशताओं के कारण, जिसमें राजा जी मनोवांछित साहित्य-सर्जन नहीं कर सके थे। राजा जी उन अनन्य साहित्यकारों में हैं, जो अपनी लम्बी आयु के आग्रह के विरुद्ध जीवन के अन्तिम समय तक सृजनशील रहे और जिनके सृजन-कर्म को वय की बाधा पराजित नहीं कर सकी। हमें विश्वास है, राजा जी का यशःशरीर अमर रहेगा और उनकी कीर्त्ति से आधुनिक हिन्दी गद्य का इतिहास सदैव समुज्ज्वल रहेगा।

सचमुच, राजा जी एक खास किस्म की हिन्दी गद्य-शैली के राजा थे। मुहावरे उनके हुक्म पर नाचते थे और उनके इशारे के अनुसार शब्द और अर्थ नाजनीं की तरह अपना अन्दाज बदलने लगते थे। राजा जी जब सभाओं और महफिलों में बोलते थे, तब पूरे माहौल में एक मस्ती छा जाती थी। शब्दों के झब्बे आराधना के फूलों की तरह बरसने लगते थे और गद्य में न्यस्त उनका कवित्व अपना रंग उड़ेलने लगता था। इतनी नफीस बोली राजा जी के साथ ही उठ गई। मानो हिन्दी साहित्य की वीणा का एक तार टूट गया। इतनी पुरकारी, ऐसी कादिरूलकलामी, इतनी तब्बाई और ऐसी आइनादारी हिन्दी गद्य को शायद ही दुबारे मिलेगी। यह दूसरी बात है कि कथ्य की दृष्टि से राजा जी ने 'जमायत' की अपेक्षा 'फर्द' पर ज्यादा लिखा है। मगर यह भी कैसे कहा जाय? आखिर 'दरिद्रनारायण'—जैसी कहानी राजा जी ने ही लिखी है, जिसमें यह बताया गया है कि सबसे बड़ी ताकत जनता के पास है, राजा के पास नहीं। इस कहानी में राजा जी ने यह भी कहा है कि शोषण के द्वारा इकट्ठी की हुई सम्पत्ति और उसके स्वार्थपूर्ण भोग से केवल आत्मिक क्लेश मिलता है।

राजा जी 'कानों में कंगना' शीर्षक कहानी के साथ हिन्दी साहित्य के मंच पर १९१३ ई० के आस-पास आये। यह कहानी, जहाँ तक मुझे याद है, काशी की 'इन्दु' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इसके बाद तो इनका लेखन-कार्य अनिरुद्ध गति से चलने लगा था और ये दूसरी सिन्फों को छोड़कर क्रमशः उपन्यास-लेखन की ओर और अधिक सक्रिय होते गये थे। राम-रहीम, पुरुष और नारी, चुम्बन और चाँटा,

सूरदास इत्यादि इनकी शिखर-कृतियाँ हैं, जो कथ्य और कथन-शैली—दोनों ही दृष्टियों से हिन्दी गद्य साहित्य में कालातीत महत्त्व रखती हैं। जिस समय राजा जी ने 'चुम्बन और चाँटा' की रचना की थी, उस समय मैं एच०डी० जैन कॉलेज, आरा में प्राध्यापक था और वहीं पाण्डुलिपि का कुछ अंश राजा जी ने मुझे स्वयं सुनाया था तथा उसके कथा-कलन का कुछ राज भी बताया था। उनका कहना था कि 'चुम्बन और चाँटा' की सारी कथावस्तु वास्तविक है और सभी मुख्य पात्र उनके जाने-पहचाने हैं तथा अभी भी जीवित हैं। यह कहकर वे इस बात पर बल देना चाह रहे थे कि सच झूठ से ज्यादा हैरतअंगेज होता है। वे कहते थे, "मेरा कथा-साहित्य यथार्थ से निर्मित हुआ है। ऐसे आलोचक भ्रम में हैं, जो मेरे द्वारा चुनी गई कथावस्तु को काल्पनिक कहते हैं।" राजा जी से ऐसी बात सुनकर मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि राजा जी के कथन में सचाई है तो हमें यह मानना होगा कि उन्होंने 'नाटकीय' यथार्थ को सपाट सचाइयों की तुलना में अधिक पसन्द किया और उस नाटकीय यथार्थ को अपनी रंगीन भाषा-शैली से इतना रूमानी और जायकेदार बना दिया कि रूक्षता को यथार्थ का सर्वोत्तम व्यावर्त्तक लक्षण स्वीकारने के अभ्यस्त पाठक-आलोचक उसे काल्पनिक मान बैठे। पाठकों और आलोचकों के सामने दूसरा विकल्प ही क्या था? इस प्रसंग में कहनेवाले तो यह भी कह सकते हैं कि राजा का 'यथार्थ' प्रजा (सामान्य जन) के 'यथार्थ' से भिन्न होता है। मुझे याद है, 'चुम्बन और चाँटा' की चर्चा के इस बिन्दु पर मैंने राजा जी से सुना अधिक था, अपनी ओर से मैंने कुछ कहा नहीं था। आरा की सड़क पर टहलते समय राजा जी के साथ साहित्यिक चर्चा के कई ऐसे अवसर आये और प्रायः ऐसे अवसरों पर उन्होंने मुझसे एक ही शिकायत की कि 'अपनी बातें कहने के बाद जब मैं आपकी सुनना चाहता हूँ, तो आप अक्सर चुप रह जाते हैं।'

अब आरा जाने पर जब उन सड़कों से गुजरूँगा, तो राजाजी की याद जरूर आयेगी। मेरा आरा जाना-आना तो लगा ही रहेगा, क्योंकि शरीर से पटना में रहने पर भी मन आरा में ही रमा रहता है। आरा-ऐसी नेह और श्रद्धा की नगरी मुझे और कहीं नहीं मिली। इसलिए जब कभी अवसर मिलता है, मैं अपने मस्तक पर आरा शहर की—भोजपुर के महिमामय नगर की सोने-सी मिट्टी का तिलक लगाने अवश्य ही जाता हूँ।

फिर जैन कॉलेज आरा से पटना कॉलेज आते ही मुझे राजा जी के साहित्यिक व्यक्तित्व और कृतित्व पर सोचने-विचारने का अच्छा अवसर मिला। आरा की तुलना में यहाँ राजा जी से अधिक भेंट होने लगी और संयोग ऐसा कि उस समय बी० ए० (हिन्दी रचना) में 'पुरुष और नारी' की पढ़ाई होती थी, जिसे पढ़ाने का भार मुझे ही मिला। यह 'पुरुष और नारी' जैसी किताब की ही सिफत थी कि अन्तिम घंटी की उस थकान में ऊधमपसन्द छात्र भी एकाग्र और मुग्ध होकर भाषण सुनते थे।

मन में कई तरह की यादों का एक बन्दनवार टँगा है। मगर अभी लिख नहीं सकूँगा। अभी भाई मधुकर गंगाधर जी ने कहा है कि आकाशवाणी से प्रसारित करने के लिए मुझे तुरत शोक-सन्देश के दो शब्द कहने हैं। इतना ही नहीं, वहाँ से लौटकर आते ही राज्यपाल जी को उदयराज जी के यहाँ ले चलने की व्यवस्था करनी है, क्योंकि साहित्यिक राज्यपाल जी राजा जी के निधन की सूचना पाकर बहुत शोकाकुल हो गये हैं और अभी राजा जी के प्रति अपना अन्तिम सम्मान प्रकट करने के लिए जाना चाहते हैं।

कई ऐसे प्रसंग हैं, जो इस अवसर पर मेरे हृदय को भाव-विह्वल कर रहे हैं और शब्दों की शक्ति मेरे भावों को अभिव्यक्त करने में असमर्थ-सी प्रतीत हो रही है। और, सबसे अधिक तो यह सवाल मन को कुरेद रहा है कि अब राजा जी के ऐसा सधा हुआ शैलीकार, शब्दों का जादूगर शिल्पी, रस्मियत और फर्सूदगी से दूर रहनेवाला चितेरा फिर कब हिन्दी गद्य को मिलेगा।

कितना कुछ है जो अनचाहे भी हो जाता है और कितना कुछ है जो चाहकर भी नहीं होता।

—राधिकारमण

केसरी

प्राचार्य, समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर

जीवन का सारा रस उन्होंने साहित्य देवता के चरणों को निवेदित कर दिया था और अपने लिए छोड़ रखी थी एक दुबली-पतली काया। हिन्दी माता ऐसे सपूत को अपनी गोद में दीर्घ काल तक रख कर धन्य हो गयी थी और आज उनके उठ जाने से जो स्थान रिक्त हो गया है, क्या उसकी पूर्त्ति कभी संभव है ?

राजा साहब

राजा साहब से पहले राजा साहब की कलम से मेरा परिचय हुआ; यानी व्यक्तित्व के पहले कर्तृत्व का प्रभाव मुझ पर पड़ा। 'कानों में कंगना' पढ़ा और राजा साहब की कलम का जादू मेरे सर पर चढ़ कर बोलने लगा। उसके बाद उनकी प्रायः सभी कृतियाँ मैंने पढ़ीं। 'राम-रहीम' को तो उसी मनोयोग से पढ़ा, जिस मनोयोग से रामचरित मानस पढ़ता हूँ।

याद नहीं, राजा साहब के प्रथम दर्शन मुझे कब हुए। १९३८ में उनसे मिलने का एक संयोग आया था; किन्तु—

"किस्मत तो देखिए कि टूटी कहाँ कमन्द।
दो चार कदम जबकि लबे बाम रह गया।।

बात यों थी। १९३८ में पूसा हाई स्कूल में एक शिक्षक के रूप में काम करता था। तब तक मेरी कुछ कविताएँ प्रकाशित हो चुकी थीं, और 'केसरी' नाम राजा साहब के कानों में भी पड़ा, और शायद शिवाजी ने इस नाम की उनके समक्ष कुछ तारीफ भी की। नतीजा हुआ कि राजा साहब की ओर से उनके किसी आदमी ने मुझे लिखा कि मैं राजा साहब से सूर्यपुरा में जाकर मिलूँ। उस पत्र में यह संकेत था

कि राजा साहब चाहते हैं कि मैं सूर्यपुरा हाई स्कूल में सेवा करूँ और वे मेरा वेतन स्पेशल रूप से निर्धारित कर देंगे।

पत्र पढ़कर राजासाहब की कद्रदानी पर निछावर हो गया। उनके दर्शनों की लालसा जाने कब से पालते आया था। वह लालसा अब तीव्र हो गयी, और मैं पूसा से सूर्यपूरा के लिए चल दिया। पटने में अपने मित्र कविवर मदन गोपाल 'अरविन्द' के आवास पर ठहरा और उसी रात मलेरिया ज्वर का भीषण आक्रमण हो गया। तीन दिनों के बाद ज्वर से मुक्त हुआ तो फिर हिम्मत आगे बढ़ने की नहीं हुई और पूसा वापिस आ गया। इसतरह उस सुयोग को खोकर बहुत बाद राजा साहब से मिलने का मौका हाथ लगा।

और राजा साहब से जब मेरी पहली मुलाकात हुई तो एकाएक आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। मेरे मानसपट पर उनका जो चित्र मेरी कल्पना ने उरेह रखा था, वह एकबारगी धुल-पुँछ गया। सोचा था, सूर्यपुराधीश हैं, आमोद-प्रमोद और विलासिता के बीच जन्मेपले, शाही ठाट-बाट में रहते होंगे और रोबीले मुख की मुद्रा कहती होगी—'मुझसे अदब से बातें करो।' राजा साहब की लेखन-शैली से भी इसी चित्र की पुष्टि होती थी। उनकी शैली की अनूठी भाव-भंगिमा, उसका चुलबुलाहट-भरा अलबेलापन और हिन्दी की सहज सरलता पर उर्दू के बाँकपन की चाशनी—ये सारी खूबियाँ सांस्कृतिक आभिजात्य की ओर संकेत करती थीं। मेरी कल्पना ने इन्हीं रंगों में उनके व्यक्तित्व की तस्बीर बना रखी थी। किन्तु, उनसे मिला तो लगा कि किसी फकीर से बातें कर रहा हूँ। मोटी धोती और शीर्ण शरीर पर एक चादर, पैरों में चप्पल—इस वेश-भूषा में कहीं कोई राजा रहता है? आखिर आँखें भला विश्वास कैसे करें?

राजा साहब की अनुपम सादगी नें मुझे पहले आश्चर्यित किया फिर श्रद्धा-विमुग्ध।

राजा साहब हमारी पीढ़ी के साहित्यिकारों के सरदार थे। और वे हम जैसे छुट-भइयों पर सदा ही कृपालु रहते थे। युवक साहित्यकारों के प्रति उनके हृदय में कितना स्नेह एवं अपनापन था इसकी एक मिसाल मुझे कभी नहीं भूलती।

बिहार विश्वविद्यालय की स्थापना हो गयी थी और तब तक उसका दफ्तर पटने में ही था। स्वर्गीय श्री श्यामनन्दन सहाय वायस चान्सलर थे और सिनेट की मीटिंग चल रही थी। उन दिनों सिनेट की बैठकें बड़ी शानदार होती थीं। एक भद्रता होती

थी, सर्वत्र एक सांस्कृतिक वातावरण विराजमान होता था। आज की तरह हो-हल्ला तू-तू मैं-मैं का माहौल नहीं होता।

बैठक चल रही है और राजा साहब घूम-घूम कर मित्रों से कनफुसियाँ कर रहे हैं। कभी इस कोने में, कभी उस कोने में आकर-जाकर दो क्षण लोगों से बातें कर लेते हैं, खास कर वैसे लोगों से जो साहित्य के क्षेत्र में कुछ कर रहे हैं। उधर द्विज जीं बैठे हैं और सुधांशु जी—राजा साहब वहाँ विराजमान हैं और कानों में कुछ फुसफुसा रहे हैं। और फिर मेरी ओर आ गये और कहा—'केसरी जी, अच्छे हो न भाई, कभी मुलाकात नहीं होती।'

और, सिनेट की बैठक दोपहर को जब कुछ काल के लिए स्थगित हो गई है, तो राजा साहब मेरी ओर दौड़े आते हैं। 'चलो जी, तुम्हें श्यामनन्दन सहाय जी से मिला दूँ।' मुझे और द्विज जी को साथ लिए वे श्यामनन्दन सहाय जी के पास ले गए और कहा—'ये देखिये, दो बिहार के रत्न आपके सामने पेश करता हूँ। दोनों हिन्दी के रससिद्ध कवि हैं और—

एक एक का जवाब है।
दोनों हैं लाजवाब।'

श्यामनन्दन सहाय ने उठकर हम दोनों का अभिवादन स्वीकार किया और कहा—"मैं जानता हूँ आप दोनों को, किन्तु राजा साहब हैं कि रत्नों को धो-पोंछकर और चमका देते हैं।"

भीतर-बाहर स्वच्छ सरल—सादगी का नाम था राजा साहब। कैसी अनहोनी बात थी यह! और सचमुच ऐसा अनोखा व्यक्तित्व अब इस बिहार प्रदेश में तो नहीं है।

जीवन का सारा रस उन्होंने साहित्य देवता के चरणों को निवेदित कर दिया था और अपने लिए छोड़ रखी थी एक दुबली-पतली काया। हिन्दी माता ऐसे सपूत को अपनी गोद में दीर्घ काल तक रख कर धन्य हो गयी थी और आज उनके उठ जाने से जो स्थान रिक्त हो गया है, क्या उसकी पूर्ति कभी संभव है?

गजेन्द्र कुसुमेषु

२/७७, राजेन्द्र मेडिकल कॉलेज, राँची—६

✣

मुझे लगा राजा साहब का साहित्य जितना महिमा-मंडित है उतनी ही इनके व्यवहार और चिन्तन में ऊँचाई है, महानता है। इनके विचारों में राष्ट्र की उन्नति का स्वप्न संग्रहीत है। मैं राजा साहब के स्नेह और विचारों की ऊँचाई से भींग गया।

"आप बंगला जानते हैं ?"...

"नहीं, बहुत कम..."...मैंने संकोच के साथ कहा।

"बंगला बहुत ही मधुर और उन्नत भाषा है। मैंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्पर्क से शुरू में बंगला में लिखना प्रारम्भ किया था। कलकत्ता में मैं जब पढ़ता था तो वे मेरे अभिभावक थे। उनका व्यक्तित्व जितना बड़ा था, उनकी रचनाओं में भी उतनी

भाषागत संकीर्णता से परे महान् समदर्शी राजा साहब

ही असर करने की क्षमता थी। मैं तो कहूँगा प्रत्येक हिन्दी लेखक को अन्य प्रान्तों की भाषाएँ भी सीख लेनी चाहिए। भाषा को दीवार बनाकर आज जो खेल खेला जा रहा है मुझे पसंद नहीं। भाषा में क्या रखा है, मुख्य है भाव। भाव किसी भी भाषा में व्यक्त किया जाए कोई फर्क नहीं पड़ता। आप समझ रहे हैं न ?" हिन्दी-कथा-

साहित्य के सम्राट् एवं शैली के जादूगर राजा साहब ने मेरी ओर गौर से देखते हुए कहा। पटना के बोरिंग रोड स्थित मकान के आहाते में एक पेड़ की छाया में एक कुर्सी पर राजा साहब साधारण कपड़ा पहने बैठे थे। उनके पास दूसरी कुर्सी पर कुछ पुस्तकें और कुछ चिट्ठियाँ पड़ी थीं। गर्मी का मौसम था। धूप में तीखापन आ गया था। एक कुर्सी पर हिन्दी के यशस्वी लेखक डॉ० सियाराम शरण प्रसाद बैठे थे। वे मौन, ध्यान से राजा साहब की बातें सुन रहे थे।

मैंने विनम्रता से टोका—"आखिर भाषा को लेकर इतना संघर्ष क्यों हो रहा है ?"

"मनुष्य की नादानी और राजनीतिज्ञों के स्वार्थ के कारण।......आपने मेरी पूरब और पच्छिम पुस्तक पढ़ी है ? उसे जरूर पढ़िए। मैं तो मानता हूँ वह भाव भी क्या जो वाणी की परिधि—किसी भाषा की हदबन्दी में आ गया। बस, हमारा सोचा और चाहा तो जबान पर आते-आते क्या-से-क्या रह जाता है सिमटकर। और, मैं तो यह भी मानता हूँ कि दर-असल हिन्दी और उर्दू दो जबान नहीं—बस एक ही जबान के दो ढंग ठहरीं।

"आप तो उभते हुए सूरज हैं मैं तो शाम का अस्त होता हुआ सूरज। आपसे हिन्दी जगत् को बहुत आशाएँ हैं। आप-जैसे उभरते नये लेखकों को इस मसले पर ठंढे दिल से विचार करना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि भाषा को लेकर देश के खंड-खंड बँटने की नौबत आ जाए।

"सच कहूँ, आज जो देश में भाषा-विवाद का बवाल उठता देखता हूँ तो मेरा दिल बैठने लगता है। हम किस तमन्ना को लेकर अंगरेजों से लड़े थे, आज क्या हो रहा है ? गांधी का रामराज्य हम देखना चाहते थे और देख रहे हैं स्वार्थवाद। आज खादी की तह में लीडरी की मोहनी नहीं रहती तो सरफरोशी के कूचे में कदम की रफ्तार कुछ और होती ! जब तक इस देश के लोग भावना की महत्ता नहीं मानेंगे, भाषा जैसे सवाल पर सर पीटते रहेंगे, हमारा विकास तो रहा दूर—हम वह कभी नहीं हो पायेंगे जो होना चाहते थे।" इतना कहकर राजा साहब चुप हो गए। कुछ क्षण इसी प्रकार सन्नाटगी तैरती रही।

फिर राज साहब ने कुर्सी से उठते हुए कहा—"कितना समय हुआ है ?"

मैं भी उठ गया। घड़ी देखते हुए मैंने कहा—"४ बजा है।"

"अच्छा सियारामशरण जी। आप फिर कब आइयेगा? आपकी याद सदा हरी बनी रहती है। आप कुसुमेषु जी को प्रोत्साहन देते रहिए। मैंने इनकी कहानी 'परिधि से घिरी रोशनी' पढ़ी थी नई धारा में। वह कहानी मन को छू गई। इनमें प्रतिभा है। ये फूलें-फलें, यही मेरी तमन्ना है।"—इतना कहकर राजा साहब अत्यन्त सहृदयता से मुस्कुराने लगे। मैंने अनुभव किया जैसे वे मुझ पर स्नेह की मुस्कान आशीर्वाद स्वरूप फैला रहे हैं।

मुझे लगा राजा साहब का साहित्य जितना महिमा-मंडित है उतनी ही इनके व्यवहार और चिन्तन में ऊँचाई है, महानता है। इनके विचारों में राष्ट्र की उन्नति का स्वप्न संग्रहीत है। मैं राजा साहब के स्नेह और विचारों की ऊँचाई से भींग गया।

फिर तो मैं राजा जी का भक्त बन गया। उनके साहित्य का अध्येता बन गया। उसके बाद अनेक बार भैया सियाराम शरण जी के साथ उनके समीप जाने का, उनसे आशीर्वाद पाने का सौभाग्य मुझ तुच्छ एक सर्वथा नया लेखक को मिला। उनके देहावसान से लगा जैसे भारत की एकता का प्रबल आकांक्षी, साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय ही समाप्त हो गया।

हम ईश्वर के नाम को भी अरबी जबान में नहीं सुन सकते। हमें जबान पहले है, भगवान पीछे। हमारा पड़ोसी अल्लाह के नाम को भी संस्कृत जबान में नहीं सुन सकता। उसे कलाम पहले है, इस्लाम पीछे।...अरे भाई, वह तुम्हें सुनता है या तुम्हारी जबान को?

—राधिकारमण

गोपालजी स्वर्णकिरण
किसान कॉलेज, सोहसराय (पटना)

मेरी दृष्टि में वे भोजपुरी भाषा के प्रेमी थे। काश, राजा साहब की भोजपुरी रचनाओं विशेषतः उनके पत्रों का संपादित संग्रह साहित्यजगत् के सामने आता!

हिंदी साहित्यजगत् में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह समन्वयवादी भाषा प्रयोक्ता के रूप में सादर स्मरणीय हैं। प्रेमचंद और वृंदावनलाल वर्मा के साथ राजा साहब कथाकार - वृहत्रयी हैं पर प्रेमचंद और वृंदावनलाल वर्मा की तुलना में राजा साहब अनेकभाषाविद् ठहरते हैं। राजा साहब ने भाषा को भाव का अनुचर माना। उनका विचार है कि खुदा लगन को परखते हैं, मजमून और जबान को नहीं। जबान कोई भी हो सकती है, भाषा

भोजपुरी-प्रेमी राजा जी

किसी भी प्रकार की हो सकती है। भाषा साधन है, साध्य नहीं; वह माध्यम है, लक्ष्य नहीं। निश्चय ही राजा साहब हमारे सामने भाषा वैज्ञानिक के रूप में नहीं आये अपितु एक सुन्दर कलाकार के रूप में आये, एक श्रेष्ठ साहित्यकार के रूप में आये, एक स्मरणीय शैलीकार के रूप में सामने आये। वे गाँधीवाद के समर्थक के रूप में दृष्टिगत हुए और हिंदू तथा मुसलमान की एकता और प्रेम का गायन किया। जबान और भाषा की भेद-नीति को कभी स्वीकार नहीं किया यह कहते हुए कि भगवान का नाम या गुणगान चाहे जिस जबान में आये—जिस राग-रंग में—कोई बात नहीं। हमें भगवान का होकर रहना है, किसी जबान का होकर नहीं; राम का होकर रहना है, एक नाम का होकर नहीं।

राजा साहब का जन्म सन् १८९० में शाहाबाद जिला के सूर्यपुरा ग्राम में हुआ—जहाँ के लोग भोजपुरी बोलना अधिक पसंद करते हैं–पर राजा साहब का अधिक समय कलकत्ता और पटना में बीता। राजा साहब ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से इतिहास में एम० ए० किया पर कभी भी अंग्रेजी के गुलाम नहीं हुए। राजा साहाब ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ बहुत समय बिताया पर बँगला भाषा के प्रति कभी अपने को समर्पित नहीं किया यद्यपि धुँआधार बँगला राजा साहब बोल लेते थे। उर्दू, फारसी, अरबी, संस्कृत आदि विभिन्न भाषाओं का राजा साहब ने विधिवत् अध्ययन किया पर माता के अंचल में प्रचलित भाषा भोजपुरी के प्रति कदापि वितृष्णा प्रकट नहीं की; बल्कि जब भी समय मिला, जहाँ भी अवसर प्राप्त हुआ, राजा साहब ने भोजपुरी में अपने विचार व्यक्त किये, भोजपुरी भाषा का समर्थन किया, भोजपुरी के आंदोलन को बल-प्रदान किया। राजा साहब की दृष्टि में भोजपुरी भाषा हिंदी भाषा के विकास में बाधक भाषा नहीं होकर, साधक भाषा रही है।

राजा साहब के निकट संपर्क में मैं जब आया, मैंने महसूस किया कि राजा साहब भोजपुरी को तरजीह देना चाहते हैं। अनेक बार विशुद्ध भोजपुरी में बातचीत हुई और मैंने पाया कि हिंदी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, संस्कृत आदि विभिन्न भाषाओं की तुलना में राजा साहब को भोजपुरी भाषा से मोह है। भाषा की समस्या एक बार मैंने छेड़ी तो राजा साहब बोल उठे—अगर राम का नाम हिंदी में नहीं लेकर कोई अरबी में ले तो क्या राम हराम हो गए? या अल्लाह का नाम कोई संस्कृत में लेता है तो क्या वह गुनाह करता है? राम की वंदना अरबी जबान में करना क्या निंदा

है ? क्या कोई अपने बाप को 'अब्बा' या 'बाबा' कहता है तो बाप, बाप नहीं रहते ? मुझे राजा साहब की बात से साफ जान पड़ा कि राजा साहब भाषा के झगड़े से अपने को ऊपर रखना चाहते हैं।

मैंने बतलाया कि हिंदी के भावी रूप को लेकर चार विचारधाराएँ इस समय चल रही हैं— १. हिंदी का भावी रूप भारत की समस्त भाषाओं की खिचड़ी से बनना चाहिए जिससे हिंदी सीखने-समझने और बोलने में लोगों को, विशेषतः अहिंदी भाषा-भाषियों को कठिनाई नहीं हो, २. हिंदी को उर्दू के निकट लाने के लिए इसे हिंदुस्तानी बनाना चाहिए, ३. हिंदी को संस्कृत-गर्भित होनी चाहिए और ४. हिंदी भाषा और अंग्रेजी शब्दावली के मिश्रण से हिंदुस्तानी के वजन पर हिंदी का नया रूप 'इंगलिस्तानी' बनना चाहिए। 'इंगलिस्तानी' का नाम सुनते ही राजा साहब की मुद्रा कुछ विकृत हो गयी, अतः मैंने राजासाहब से पूछ दिया कि आप चार विचार-धाराओं में किस विचारधारा के साथ हैं ? राजा साहब बोले कि यह देश हिंदुस्तान है, यहाँ इंगलिस्तानी भाषा मुट्ठी भर लोगों की भाषा हो सकती है, सबकी नहीं। मैं अंतिम विचारधारा के साथ अपने को कतई जोड़ नहीं पाता। हिंदी को संस्कृतगर्भित बनाने के पक्ष में भी मैं नहीं, न हिंदी को केवल उर्दू-फारसी के शब्दों से बोझिल करना चाहता हूँ। मेरी दृष्टि में पहली विचारधारा अधिक ठीक है।

मैंने कहा—आपकी कृतियाँ हिंदी और उर्दू-फारसी के मिलन पर जोर देती हैं।

राजा साहब बोले—कृतियों का ठीक से आपने अध्ययन नहीं किया। मैं भाषा के मामले में कट्टरपंथी नहीं हूँ। जब जैसी जरूरत तब तैसा काम करना मैं अच्छा समझता हूँ।

मैंने कहा—मैं यह कैसे मान लूँ कि आप भाषा-प्रयोग के मामले में कट्टरपंथी नहीं ?

राजा साहब—मैंने अंग्रेजी, हिंदी, बंगला, उर्दू, फारसी भोजपुरी, आदि सभी भाषाएँ पढ़ी हैं और सबका समय-समय पर प्रयोग करता हूँ। हाँ, अधिकांशतः भोजपुरी में लिखता हूँ।

मैंने पूछा—यह क्यों ?

राजा साहब—यह अपनी सुविधा पर निर्भर है !

मैंने कहा—इसमें अपनी सुविधा-असुविधा का प्रश्न कहाँ उठता है ? भोजपुरी-विरोधी लोग भोजपुरी को हिंदी के विकास में रोड़ा समझते हैं।

राजा साहब—जो भोजपुरी को हिंदी के विकास में रोड़ा समझते हैं उन्हें समझने दीजिए। मैं भोजपुरी को हिंदी के स्रोत को समृद्ध करने का साधन मानता हूँ और आदर की दृष्टि से भोजपुरी को देखता हूँ। हिंदुस्तान में अनेक-अनेक भाषाएँ हैं, भोजपुरी का स्थान इनमें सबसे ऊँचा नहीं तो सबसे नीचा भी नहीं। मैंने माँ की गोद से भोजपुरी सीखी है और भोजपुरी बोलकर-लिखकर माँ से उऋण होना चाहता हूँ।

यह सन् १९६२ के आसपास की बात है। मैंने राजा साहब के भोजपुरी-प्रेम की मन-ही-मन प्रशंसा की और ऐसा अनुभव किया कि अनेक भाषाओं की जानकारी होने पर किसी एक भाषा के प्रति यद्यपि सामान्य झुकाव नहीं रहता पर विशेष झुकाव तो रहता ही है। एक भाषा का जानकार निश्चय ही एक भाषा का जानकार नहीं हो पाता।

× × ×

सन् १९६३ में 'गाँव-घर' (आरा) के संपादक भुवनेश्वर नाथ श्रीवास्तव 'भानु' को 'गाँव-घर' को समृद्ध करने के लिए कुछ भोजपुरी रचनाओं की जरूरत पड़ी। मुझसे भानुजी ने रचनाएँ माँगीं तो मैंने रचनाएँ भेज दीं। उन्होंने दूसरे मान्य लोगों से भी भोजपुरी रचनाओं के लिए निवेदन किया। मैंने राजा साहब को निकट जानकर एक कार्ड हिंदी में लिखा तो राजा साहब ने वापसी डाक से मेरे कार्ड का उत्तर दिया—

Boring Road
Patna
18-12-63

प्रियवर,

अभी-अभी अपने के कार्ड मिलल।…२३ के हमरा घरे चल जाना बा एक बहुत जरूरी काम से व जनवरी के पहिला सप्ताह में लौटब।

अपने का 'भानु' जी के लिख दीं—हमरा पास लिखस—हम कुछ भोजपुरी में लिख के भेज देब। जल्दी में लिखत बानीं। क्षमा करब।

सस्नेह,
राधिकारमण

मैं राजा साहब के भोजपुरी-प्रेम, भाषागत उदारता, और स्वाभिमान देखकर दंग रह गया।

× × ×

एक बार राजा साहब के निवास पर कुछ आवश्यक कार्य से गया। राजा साहब

बाहर ही बैठे हुए मिले। मैंने प्रणाम किया तो राजा साहब ने प्रणाम का उत्तर दिया और भोजपुरी में समाचार आदि पूछा। मैंने पहुँचने का प्रयोजन बतलाया तो कहा अभी मेरी तबीयत ठीक नहीं, किसी दूसरे दिन आइए। हाँ, यदि आप फुर्सत में हों तो मेरा एक काम कर दीजिए।

मैंने कहा—काम काम ही है—इसमें फुर्सत, बे-फुर्सत का सवाल कहाँ है? बोलिए, कौन-सा काम है?

राजा साहब—आपके पास कलम है?

मैंने कहा—हाँ, लीजिए।

राजा साहब ने देखते-देखते एक बड़ा-सा पत्र भोजपुरी में लिखा और कहा, इसे कृपया अशोक प्रेस (पटना) के सुरेश कुमार जी के पास पहुँचा दीजिए। जबानी भी कह दीजिएगा कि 'राजा साहब के एगो बहुत जरूरी काम बा, बोलवलन हँ।' मैंने राजा साहब के भोजपुरी-प्रेम के प्रति मन-ही-मन संतोष प्रकट किया।

× × ×

२४ जनवरी सन् १९६९ को नौबतपुर (पटना) के मालतीधारी कॉलेज में राजा साहब का अभिनंदन था। हिन्दी साहित्य परिषद् के प्रो० रामप्यारे तिवारी तथा प्राचार्य बंगाली सिंह के द्वारा मैं भी आमंत्रित था। गया कॉलेज के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० वासुदेवनंदन प्रसाद समारोह का उद्घाटन करनेवाले थे जिनकी अनुपस्थिति में कार्यभार मुझे सँभालना पड़ गया। राजा साहब यहाँ कदाचित् जबरदस्ती लाये गये क्योंकि सम्मान-अभिनंदन के प्रति उनके मन में किंचित् मात्र भी लालसा नहीं थी। प्रथम दर्शन में प्रणाम-पाँती के बाद राजा साहब ने मुझसे पूछा—'बढ़ियाँ बानीं?' मैंने भोजपुरी का जवाब भोजपुरी में ही दिया—'अपने के आशीर्वाद बा।' राजा साहब ने समारोह में उपस्थित होने के प्रति अरुचि दिखलायी और संकेत से कहा—लेखक आ कलाकार के प्रतिभा के मारल चाहीं त ओकर अभिनंदन करीं, गुणगान करीं···। मैं लज्जित होकर रह गया। राजा साहब सचमुच पहुँचे हुए कलाकार थे और मान्य बहुभाषाविद् थे, रससिद्ध लेखक थे, भारतीय संस्कृति के पोषक थे; पर सबसे बढ़कर मेरी दृष्टि में वे भोजपुरी भाषा के प्रेमी थे। काश, राजा साहब की भोजपुरी रचनाओं विशेषतः उनके पत्रों का संपादित संग्रह साहित्यजगत् के सामने आता!

गोपाल प्रसाद 'वंशी'

आरोग्य सदन, गंज नं १, बेतिया (चंपारन)

✣

फिर हल्ला शुरू हो जाता, नहीं नहीं, हम आपका भाषण सुनेंगे—

"एक सागर से मेरी प्यास नहीं बुझ सकती,
साकिया आज पिला ह्विस्की का मटका मुझको।"

ऐसा था लाजवाब उनका भाषण ! क्या कहा जाय, आज वे नहीं रहे !

"गुलिस्ताँ में जाकर हर एक गुल को देखा,
न तेरी-सी रंगत, न तेरी-सी बू है।"

'मीर' का यह शेर उन्हीं के लिए मौजूँ है—

"मत सहल इसे समझो, फिरता है फलक बरसों,
तब खाक के पर्दे से इन्सान निकलते हैं।"

ऐसे थे राजा साहब

सूर्यपुरा,
२८-२-४४

प्रियवर,

आपका पत्र मिला। मुझे खुद बड़ी तमन्ना है आपसे मिलने की और यही आस बाँधे बैठा हूँ कि ५ मार्च को मुजफ्फरपुर में आप मिलेंगे। आप जो कहें, भला, मैं 'वंशी' को नाचीज कैसे मान लूँ ?

सस्नेह,
राधिकारमण प्रसाद सिंह

सुहृद्-संघ, मुजफ्फरपुर का वार्षिकोत्सव था। राजा साहब कवि-सम्मेलन का उद्घाटन करने वाले थे। बस मैंने उन्हें एक पत्र लिख भेजा। बड़ी लालसा थी उन्हें देखने की। पत्र-व्यवहार तो अरसे से था मगर दर्शन नहीं हुए थे। उसी का इतना मधुर जवाब पाकर मैं निहाल हो उठा—अपने में नहीं समा रहा था।

इसी बीच भाई गोपाल सिंह नेपाली ने मुझसे कहा, 'वंशी' जी, सुहृद्-संघ का निमंत्रण आया है। मैं भी नीतीश्वर सिंह को पत्र दे रहा हूँ। आप बेतिया के साहित्य-समाज की ओर से चले जाइए। अब क्या था—

"चलने को चल रहा हूँ, पर इसकी खबर नहीं,
मैं हूँ सफर में या मेरी मंजिल सफर में है।"

५ मार्च को मुजफ्फरपुर जा पहुँचा। बड़ी मुश्किल से ४ बजे संध्या में पता लगा कि राजा साहब श्री किशुनदेव नारायण महथा के बंगले पर ठहरे हैं। शाम को टाउन हॉल में कवि-सम्मेलन होने जा रहा था। किसी प्रकार उक्त बंगले का रास्ता मालूम कर उसके बड़े हाते में प्रवेश कर गया। बंगले के नजदीक पहुँचा तो देखा बिल्कुल सुनसान है—कोई आदमी नहीं, हाँ, तबतक बरामदे में अचानक एक अर्दली बिल्ला लगाये निकला। मैंने पूछा कि राजा साहब यहीं ठहरे हैं ? उसने कहा कि कौन राजा साहब ? मैंने कहा कि सूर्यपुरा के राजा साहब, जिनका सम्मेलन में भाषण होनेवाला है। उसने कहा कि हाँ, एक आदमी तो हैं उस कमरे में। शायद कुछ लिख रहे हैं। मैंने देखा कि उस कमरे के दरवाजे पर खूबसूरत मोटा पर्दा लटक रहा है। संभवतः वह कार्ड ले जाने से इनकार करता। मैंने सोचा था कि इतने महान् आदमी से भेंट तो नहीं होगी। अतः मैं एक शेर लिख कर लिफाफे में बंद कर ले गया था—

"नसीब हो न सकी दौलते - कदम - बोसी,
अदब से चूमके हजरत का आस्ताना चले।"

मैंने कहा, उनके नाम एक बहुत जरूरी चिट्ठी है, कृपाकर आप उन्हें दे दें। और लिफाफे का मिलना था कि रेशमी कुर्ते, धोती में निकल आये बाहर दोनों हाथ जोड़े। बोले—आपके हुक्म की तामीली में कुछ देर हो गई, सबब यह है कि अभी शाम को कवि-सम्मेलन में जाना है, जिसका उद्घाटन करना है। वहीं के लिए भाषण लिख रहा था, आपकी तलबी पहुँचते ही मैंने उसे खतम कर दिया। चले चलिये यहाँ से

दूर, नहीं तो अभी लोग फोटो लेने आ रहे हैं। तब दम मारने की फुर्सत नहीं मिलेगी। और वे गर्द-गुबार में सड़क पर बंगले से काफी दूर निकल आये बातें करते। तभी देखा कई मोटर कारें बंगले की ओर जा रही हैं।

शाम को उनका भाषण शुरू हुआ। पचासों हजार लोग थे—ज्यादा ही होंगे। कुर्सी रखी गयी थी। एक आदमी पानी पिलाने के लिए तैनात था बराबर। भारत-प्रसिद्ध साहित्यकार और चुने-चुने कवि प्रतिष्ठित बड़े-बड़े लोगों का हुजूम स्टेज पर था। राजा साहब जैसे ही थोड़ा पढ़ते, लोग झूम-झूम उठते, तालियों की गड़ागड़ाहट शुरू हो जाती; फिर वे पानी माँगते और कहते कि अब आप कविता होने दें, आप उसके लिए उतावले होंगे। फिर हल्ला शुरू हो जाता, नहीं-नहीं, हम आपका भाषण सुनेंगे—

"एक सागर से मेरी प्यास नहीं बुझ सकती,
साकिया आज पिला ह्विस्की का मटका मुझको।"

ऐसा था लाजवाब उनका भाषण! क्या कहा जाय, आज वे नहीं रहे!

"गुलिस्ताँ में जाकर हर एक गुल को देखा,
न तेरी-सी रंगत, न तेरी-सी बू है।"

'मीर' का यह शेर उन्हीं के लिए मौजूँ है—

"मत सहल इसे समझो, फिरता है फलक बरसों,
तब खाक के पर्दे से इन्सान निकलते हैं।"

कवि की अनुभूति बोलती है; उसकी वाणी तो उस गूँज की प्रतिध्वनि है।

—राधिकारमण

गंगा प्रसाद विमल
२६/५३ रामजस रोड, करौलबाग, नई दिल्ली—५

मुझे जब राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के न रहने की खबर मिली तब अचानक मेरी स्मृति में गंगा घाट, दूर-दूर तक फैले रेतीले तट पर अनजान पाँवों के निशान छप गये।

✣

कोई-कोई शहर ऐसा होता है, जहाँ आप पहली दफा जा रहे हों, लेकिन शहर पहुँचकर लगता है जैसे वह जगह पुरानी परिचित हो। लोगों के चेहरे चाहे अजनबी हों, सड़कें गलत अन्दाजे की तरह ही क्यों न मुड़ रही हों, इमली के पेड़ की जगह छोटी-छोटी गलियों में नीम के पेड़ ही क्यों न हों, न जाने वह कौन सी गन्ध होती है कि शहर एकदम जाना-पहचाना ठीक पुरानी पहचान की तरह लगता है। अगर आप कारणों की तरफ जायें तो बहुत सी बातें हो सकती हैं—पर इन तमाम कारणों के पीछे कोई न कोई चेहरा या नाम जरूर होता है।

संस्मरण नहीं

मुझे याद नहीं कि मैं पटना कितनी दफे गया हूँ। यह जरूर याद है कि दो दफे नदी घाट की तरफ और दो दफे ऐसे आदमी के घर गया हूँ जिसका चेहरा उसकी कहानियों की वजह से खुद स्मृति में बना हुआ है। हालाँकि पहली दफा जब मुझे किसी ने कहा था कि ये राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह हैं तो मैं एकाएक विश्वास नहीं कर पाया था। भला बिहार की मिट्टी को आखरों से जिन्दगी देने वाला आदमी इतना दुर्बल और अशक्त हो सकता है? जिसके शब्दों की रवानगी में एक खास किस्म का धाकड़ व्यक्तित्व उभरता हो—वह ऐसा नहीं हो सकता। मुझे हल्का पछतावा भी

हुआ था कि मैं राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह को पहले क्यों नहीं मिला ? शायद तब, उस वक्त वह चेहरा, वह काया कुछ और ही होती।

पर ऐसा सोचना, क्षणभर के लिए सही, कितनी ग्लानि उपजाने वाला सोचना है। उस पहली बार मैं उस आदमी से सामना करने की बजाय चुपके से अन्दर खिसक गया था। बचाव के लिए। अन्दर रेणु, कमलेश्वर, विजयमोहन सिंह, राधेश्याम, उदयराज सिंह और न जाने कितने लोग गप्पों में लगे थे।

पहली दफा ही मुझे लगा था—ऐसा नहीं हो सकता, जो आदमी कमजोर, बीमार हो जरूरी नहीं वह अन्दर थक गया हो। न जाने कौन सी विवशता थी कि मैं फिर बाहर आया।

"आप क्या लिखते हैं" उन्होंने पूछा।

मैंने कुछ सोचकर सिर्फ अपना नाम बता दिया।

"हाँ—आपकी 'वह' कविता मैंने नई धारा के अंक में पढ़ी थी।"

मैं चुप था। मैंने सोचा ४/५ साल पहले की कविता की याद, अगर कोई मुझसे पूछता, तो अपनी कविता का नाम मुझे ही याद न रहता।

"आपकी कहानियाँ भी मैंने पढ़ी हैं…" मुझे अब बिल्कुल याद नहीं, वह बातचीत कितनी देर चली होगी।

दूसरी दफे की मुलाकात संक्षिप्त थी।

"अबकी बार मैं……", वे इसी मुलाकात में मुझे अपने लिखने-पढ़ने की कोई योजना बता रहे थे। पर बीमारी और चेहरे पर अजीब करुणा के उस भाव में मैं फिर उस सक्रिय आदमी को नहीं खोज पाया था जिसके रचना-काल की अवधि मेरे जन्म से भी पहले तक फैली हुई थी।

मुझे जब राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के न रहने की खबर मिली तब अचानक मेरी स्मृति में गंगा घाट, दूर-दूर तक फैले रेतीले तट पर अनजान पाँवों के निशान छप गये। मुझे विश्वास नहीं होता कि जिस आदमी से मुझे लोगों ने मिलाया था—वही आदमी राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह हैं। मुझे लगता है जो आदमी नहीं रहा वह कमजोर और अशक्त आदमी था। एक ऐसा आदमी जिसकी आँखों में संतों की तरह एक किस्म की आत्म-ग्लानि का भाव था। कोई नहीं रहा होगा—पर मैं कैसे मान लूँ कि न रहने वाले आदमी का नाम राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह है, एक ऐसा नाम जो किताबों, कहानियों के बीच बैठकर हमेशा-हमेशा के लिए न मरने वाला बन गया है।

चन्द्रेश्वर कर्ण

डालटेनगंज (बिहार)

✥

आज जब यह पंक्तियाँ लिख रहा हूँ वह कुहरीली सुबह, सूनी शाम याद आ रही है। किरण याद आ रही है। उसने अपने प्यार की अमानत 'कानों में कंगना' दे दिया है। बदले में उसे मिली है उपेक्षा, अकेलापन और मौत। अपनी पहली कहानी 'कानों में कंगना' के रूप में राजा साहब ने अपनी वसीयत लिख दी थी जैसे। हिन्दी कथा-साहित्य को क्या कुछ नहीं दिया उन्होंने? बदले में हिन्दी के दम्भी आलोचकों ने दी शिलीभूत उपेक्षा। अब भी सही मूल्यांकन की शुरुआत होनी चाहिए।

✥

यादों का टिमटिमाता चिराग

'गोपियों को कभी स्वप्न में भी न झलका था कि बाँस की बाँसुरी में घूँघट खोलकर नचा देने की शक्ति है।'

'कंकड़ी जल में जाकर कोई स्थायी विवर नहीं फोड़ सकती। क्षणभर जल का समतल भले ही उलट-पुलट हो, लेकिन इधर-उधर से जल-तरंग दौड़कर उस छिद्र का चिह्न-मात्र भी नहीं रहने देते। जगत् की भी यही चाल है।'

किशोरी का रूप

'अब वह लाल चोली, हरी साड़ी पहिन कर, सर पर सिन्दूर-लेखा सजाती और हाथों में कंगन, कानों में बाली, गले में कंठी तथा कमर में करधनी......"

और फिर किरण की मौत

उसके अंतिम शब्द 'वही कानों का कंगना'। 'वही कानों का कंगना' पाठक को दरव

जाता है। ऊपर के 'इन्वर्टेड कॉमा' में आये शब्द 'कानों में कंगना' कहानी के हैं। कहानीकार हैं राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह। कहानी है १९१३ ई० की। छह दशक पहले की। आज फिर किरण याद आ रही हैं बेसाख्ता। किरण ने नरेन्द्र को अपना सम्पूर्ण समर्पण किया। बदले में हाथ आया भी तो खंडित नरेन्द्र। उसके अस्तित्व को कितनी-ही विभाजक रेखाओं में बाँटने वाला। फिर भी अन्त में जब नरेन्द्र अपनी गलित वासना से त्रस्त भिखारी बना आता है किरण के पास तो वह अपने प्यार की जमानत कानों का कंगना दे देती है। यही तो बचा था। उसका वसीयत वाक्य था—'वही कानों का कंगना।' प्रेमचन्द के 'गोदान' के होरी का यह अंतिम वाक्य—'मेरा कहासुना माफ करना धनिया।' जितना दर्द जगाता है उससे थोड़ा भी कम नहीं राजा साहब के 'कानों में कंगना' कहानी की 'किरण' का यह वाक्य।

किरण का यह वाक्य आज राजा साहब का अपना होकर कोंच रहा है। "मुझे आज तक एक भी सच्चा आलोचक नहीं मिला। जिसने भी लिखा पैसे के लिए लिखा"। कितनी व्यथा है इन शब्दों में! राजा जी ने हिन्दी कथा-साहित्य को इतना कुछ दिया। मिली यही निराशा। यह निराशा उनकी अपने प्रति नहीं। हिन्दी साहित्य में फैली गुटवादिता के प्रति रही है। उनकी निराशा कितनी वास्तविक थी वह यही देखकर लगती है कि एक तो उनपर कोई खास लिखा नहीं गया जिसके वह सही अधिकारी थे और किसी ने कुछ लिखा भी तो कितना सतही। मात्र अध्यापकीय खानापुरी। हिन्दी-जगत् की कृतघ्नता तो जगजाहिर है।

'गोपियों को कभी स्वप्न में भी न झलका था कि बाँस की बाँसुरी में घूँघट खोलकर नचा देने की शक्ति है।'—मात्र ऐसा ही नहीं है। कलम की नोंक में भी थिरका देने की ताकत है, यह राजा जी को पढ़े बिना कोई जान भी कैसे सकता है? हाई स्कूल में आने के बाद से ही राजा जी को पढ़ने लगा था। पहले 'दरिद्रनारायण'। यह कहानी बार-बार पढ़ने के बाद भी फिर-फिर पढ़ने को बाध्य करती रही है। उसके शब्द आज भी वर्षों बाद याद हैं। 'दरिद्रनारायण' के बाद तो ताँता लग गया—सूरदास, संस्कार, टूटा तारा, नारी क्या—एक पहेली, पूरब और पच्छिम, चुम्बन और चाँटा और सभी किताबें। गाँव में चिराग की रोशनी में रात देर गये तक पढ़ता रहता। राजा-साहित्य का रस लेता रहता। सभी सो जाते। मैं सिकुड़ कर पढ़ता रहता। अपने गाँव के पुस्तकालय में जितनी किताबें मिलीं, पढ़ गया। शहर आया। कालेज लाइब्रेरी और फिर दोस्तों से लेकर। बिहार के तीनों ही शैलीकार—आचार्य शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी और राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह।

कितने जीवन्त। तीनों से मिलने का, बतियाने का मौका मिला। इसकी क्या कम खुशी है मुझे। तीनों ही हमारे बीच नहीं हैं आज। उनकी यादें अमानत है हमारी।

अपने इस चहेते लेखक से मिलने की साध वर्षों से पालता आ रहा था मन में। पटना अक्सर जाता; किन्तु कभी संयोग न हो सका राजा साहब के दर्शन का। पता नहीं कैसे जुगाड़ बैठ गया उनसे मिलने का। इस योजना में हमारे स्नेही मित्र श्री दामोदर सिंह भी थे। मैंने आदरणीय डा० पूर्णेन्दु नारायण सिंह, एम० एल० सी० से उनके निवास-स्थान के बारे में पूछा-ताछा। मेरी यह अजीब आदतों में है कि रास्ते याद नहीं रहते, ठिकाने भूल जाया करता हूँ। पता नहीं मनोवैज्ञानिक इसका क्या अर्थ लगाएँ।

फरवरी (२ फरवरी ६९) की सुबह है। कुहासे से भरी हुई दिशाएँ। हमारा रिक्शा बोरिंग रोड की ओर बढ़ रहा है। साथ में दामोदर जी भी हैं। हम एक दूसरे से कोई बात नहीं करते हैं। शायद कुहरे के बारे में सोच रहे हैं, शायद बढ़ी हुई ठंढक के बारे में या शायद राजा साहब के बारे में। मेरा मन कितनी ही आड़ी-तिरछी रेखाओं से भरा है। बचपन की साध पूरी होने जा रही है। हिन्दी कथा-साहित्य के इतिहास-पुरुष से मिलने जा रहा हूँ। हिन्दी कहानी पर शोधरत रहने के कारण उनसे कुछ नया जानने-बूझने जा रहा हूँ। रिक्शा बढ़ रहा है। रिक्शावाला काँप रहा है। हमलोग भी ठंड से सिकुड़ गये हैं। ठंडी हवा कानों को बेधती है। कोट का कालर उठा लेता हूँ।

बोरिंग रोड वाली पुलिया आ गयी है। दामोदर जी राजा साहब के निवास-स्थान का पता लगा रहे हैं। 'कौन राजा साहब', 'यहाँ कोई राजा साहब नहीं रहते' इसी तरह कितने ही नकारात्मक शब्द। यह कैसा देश है अपना, साहित्यकार, कलाकार को तो क्या जाने-समझेगा, आज के राजा को भी नहीं जानता। उसे क्या पता जिस 'राजा' को हम खोज रहे हैं, वह सम्पत्ति का ही राजा नहीं साहित्य का भी राजा है, शाहंशाह है। अन्त में दामोदर जी ने खोज ही निकाला।

अबतक धूप हो गयी है। फरवरी की धूप। कुहरे के पार से धूप का आना। किसी कुलवधू के घूँघट के सरकने का बोध दे रहा है। हमलोगों ने रिक्शा थोड़ी दूर पर ही छोड़ दिया है। बाहर एक बूढ़ा कुर्सी पर बैठा धूप सेंक रहा है। समझते देर नहीं लगी कि यह राजा साहब हैं। एक साथ राजा साहब की कहानियों, उपन्यासों के चरित्र सामने घूम गये। गाँववाले घर में चिराग की रोशनी में 'संस्कार' पढ़ रहे एक बालक का चित्र उभर आया। अरे, यह तो मैं ही हूँ। यह सामने जो बैठा है बूढ़ा इसी ने तो मुझे पागल बना रखा था उन दिनों।

हमलोगों ने प्रणाम किया। उस कथा-पुरुष को। छह दशकों के सक्रिय जीवन को। उन्होंने परिचय पूछा-जाना। हमलोगों ने अपने लिए आप ही कुर्सियाँ घसीट कर बरामदे से लाईं। उनके पास ही बैठ गया। उनसे बातें हो ही रही थीं कि श्री साँवलिया बिहारी लाल वर्मा जी आ गये। सम्भवतः कहीं पड़ोस में ही रहते हैं। उनसे वर्षों पहले भेंट हुई थी, जब मैं सीतामढ़ी कालेज का छात्र था। वर्माजी डुमरा (सीतामढ़ी कोर्ट) में एडवोकेट थे। उन्हीं दिनों दिल्ली से लौटे थे। वहाँ वह तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के निजी अतिथि थे। राष्ट्रपति भवन के अनुभव सुनाने के लिए हमारे कालेज में सभा का आयोजन था। मैं ही उन्हें लाने गया था। लेकिन आज थोड़ी देर के लिए मैंने नहीं पहचाना है उन्हें। कुछ देर बातचीत करने के बाद चले गये हैं वह।

राजा साहब कितने साधारण ढंग से रहते हैं। किन्तु उनके बोलने में कितना राजसी ठाठ है। शेरो-शायरी का समाँ बँध जाता है। शब्द बिछलते हुए चले जाते हैं। उनके लिखने में ही नहीं, बोलने में भी 'बादल से चले आते हैं मजमूँ मेरे आगे।' डॉ० मुरलीधर श्रीवास्तव ने उनके कथा-साहित्य पर विचार करते हुए कहा है—"रीतिकालीन काव्य का वातावरण उनकी कृतियों में भी पाया जाता है। विलास और शृंगार की विविध साज-सज्जा, राग-रंग, साकी-पैमाना, नाच-मुजरा, कला-विलास, होटल और क्लबों में बिहार का वातावरण दरबारी कला का आधुनिक रूप है।' इस 'दरबारी कला' का साक्षात् उनसे बातें करते बार-बार होता है। घंटों हम बातें करते रहे हैं। वह बोलते जाते हैं। हम मुग्ध श्रोता हैं। बतरस क्या होता है उस दिन पहली बार जाना। देर हो गयी है। सूरज ऊपर आ गया है। नौकर तेल लेकर आया है। राजा साहब मालिश करवायेंगे। हमने अपने मन की बात कही। हम उनसे कथा-साहित्य को लेकर इन्टरव्यू लेना चाहते हैं। उन्होंने शाम सात बजे बुलाया है।

शाम कुहासों से भर गई है। शाम का साढ़े सात हो रहा है। जाड़े के दिनों में रात जैसी हो जाती है अब तक। बाहर कोई नहीं है। बरामदे में मैं और दामोदर जी देर से खड़े हैं। एक नौकर दीखता है। दौड़कर उसे पकड़ता हूँ। क्या कुछ जवाब दिया है उसने, समझ में नहीं आया। वह फिर भीतर चला जाता है। वैसे मैंने उससे कहा है कि वह राजा साहब से कहे कि दो व्यक्ति बाहर मिलने के लिए खड़े हैं। वह लौटकर नहीं आता है। ऐसा मुझे उसे देखकर ही लगा था।

हमलोग खड़े शीघ्र ताप ही रहे हैं कि एक भव्य पुरुष निकलता है। हम उनसे कहते हैं कि हमलोग राजा साहब से मिलने आए हैं। वह वहीं से नौकर को आवाज देकर बुलाते हैं। उसे समझाते हैं और चले जाते हैं। वह भव्य पुरुष श्री उदयराज सिंह थे। यह बाद में पता चला।

हमलोग राजा साहब के निजी कमरे में आ गये हैं। आधे घंटे की देर हो गयी है। उनके चेहरे पर इस आधे घंटे की प्रतीक्षा के चिह्न स्पष्ट हैं। हम उनसे प्रश्न पूछते जाते हैं। वह याद करने की मुद्रा में जवाब दे रहे हैं। लगता है दूर 'कहीं' दूर चले गये हैं। जो उनका था, अपना था। फिर लौट आते हैं। नयी कहानी, नये कहानीकारों से सम्बन्धित प्रश्नों पर वह कतराना चाहते हैं। कतरा भी जाते हैं। मैं बार-बार कुरेदता हूँ। प्रश्न-प्रतिप्रश्न करता हूँ। तभी वह अपनी ही रौ में बहने लगते हैं। बहते चले जाते हैं। वह आज के दूषित वातावरण से सख्त क्षुब्ध हैं। वह मानते हैं कि साहित्य आज सौदा बन गया है। वह अपने साहित्य की कसौटी जनता को मानते हैं। यही मानकर उन्होंने कभी पुरस्कार के लिए अपनी कोई रचना कहीं भी नहीं भेजी। यह छोटी बात नहीं है।

मैंने उनकी कहानियों के एक नये संकलन पर लम्बी समीक्षा लिखने की इच्छा जाहिर की है (दुःख है आजतक नहीं लिख सका हूँ)। मैंने उनसे स्वीकृति ले ली है कि उन्हें एक प्रश्नावलि भेजूँगा और वह उसका लिखित उत्तर भेज देंगे। मेरे आलस्य-वश वह भी नहीं हो सका। और आज वह रहे भी नहीं। मेरे आलस्य ने मुझे सदा छला किया है। उन्हें अपनी मौत का एहसास होने लगा है। बार बार बातचीत के क्रम में इसका उल्लेख करते हैं।

आज जब यह पंक्तियाँ लिख रहा हूँ वह कुहरीली सुबह, सूनी शाम याद आ रही है। किरण याद आ रही है। उसने अपने प्यार की अमानत 'कानों में कंगना' दे दिया है। बदले में उसे मिली है उपेक्षा, अकेलापन और मौत। अपनी पहली कहानी 'कानों में कंगना' के रूप में राजा साहब ने अपनी वसीयत लिख दी थी जैसे। हिन्दी कथा-साहित्य को क्या कुछ नहीं दिया उन्होंने ? बदले में हिन्दी के दम्भी आलोचकों ने दी शिलीभूत उपेक्षा। अब भी सही मूल्यांकन की शुरुआत होनी चाहिए।

चन्द्रेश्वर नीरव
व्याख्याता, प्रा० शि० शि० म० वि०, पो० चाकुलिया, जिला—सिंहभूमि

'जो कुछ गंधी दे नहीं फिर भी बास सुबास' की तरह आपके पास बैठे रहने पर कुछ-न-कुछ सुनने को अवश्य ही मिल जाता था। आपको उर्दू के ढेर से शेर याद थे, संस्कृत के श्लोक और हिन्दी-बंगला की कविताएँ भी। अँगरेजी साहित्य का भी अध्ययन करते थे।

कहीं सुना था—

जिन्हें है इश्क सादिक वो कब फरियाद करते हैं
लबों पर मुहर खामोशी दिलों में याद करते हैं

सचमुच, जब किसी का आकर्षण सहज ही स्नेह की शक्ल में तबदील हो जाता है तब उसका मस्तिष्क कल्पना के बहुरंगे चित्र बनाने में संलग्न तथा मन मिलन की आशा में मग्न हो जाता है।

इस बाग की बहार तुम्हारी खिजाँ से थी

कुछ ऐसा ही मेरे साथ भी हुआ। बात सन् पैंतालीस की है। ग्रीष्मावकाश में 'राम-रहीम' मेरे हाथ लग गई और बेहाथ हो गया मैं। पुस्तक पढ़ता गया, पढ़ता गया, पढ़ता गया। 'बेला' और 'बिजली'। एक फूल, दूसरी तितली।

और, जब यह पता चला कि 'राम-रहीम' के स्वनामधन्य लेखक राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी अपने ही जिले (शाहाबाद) के और बिल्कुल करीब के हैं, तब मेरी कल्पना और भी जोर पकड़ने लगी। मैं सोचने लगा—"लेखक से मेरी भेंट हो गई है। वे मुझसे प्रभावित हैं। मैं उनके साथ रह साहित्यिक कार्यों में सहयोग देने लगा हूँ। आदि-आदि...।"

आप सच मानिये, मेरी यह तरुण कल्पना कुछ ही वर्ष बाद पूर्ण रूपेण साकार हो गई। चाह को राह मिली। मन की मुराद पूरी हुई।

सन् उनचास का जमाना था। शरद की शुरुआत। आप तिलौथू तशरीफ लाये थे। एक जलसे में मेरा स्वागत गान सुना। सुनकर सराहा। कला और गला दोनों का परिचय पा बहुत खुश हुए। यों तिलौथू में आपके अपने सम्बन्धी रहते हैं, लेकिन पुस्तक लिखने-पढ़ने के ख्याल से आप तिलौथू से सटे सोनतट पर स्थित सरैया डाकबंगले में ठहरे थे। आपके साथ सुबह-शाम के भ्रमण में मैं भी शरीक होने लगा। भ्रमण के क्रम में अक्सर मुझसे मेरी कविता सुनते और मुझे प्रोत्साहित करते। इस तरह मैं आपके करीब आता गया, आपका पुत्रवत् स्नेह मिलता गया।

तिलौथू छोड़ने से पहले आपने मुझे सूर्यपुरा-विद्यालय के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए मार्ग-व्यय भी दे दिया। और, कुछ दिन बाद सूर्यपुरा के उद्यान भवन में मुझे फिर आपका सान्निध्य प्राप्त हो गया। वहीं वार्षिकोत्सव पर मुझे पहले-पहल पण्डित छविनाथ पाण्डेय, आचार्य शिवपूजन सहाय और श्री रामवृक्ष बेनीपुरी के दर्शन हुए। बिहार के प्रायः सभी प्रमुख कवि-बन्धुओं से भी भेंट हुई। वहाँ कवि-सम्मेलन में भी भाग लिया। राजा साहब ने मेरी एक कविता पं० छविनाथ पाण्डेय जी को दी जो 'बालक' (मासिक) में प्रकाशित हुई। दूसरी कविता आचार्य शिवपूजन सहाय जी के पास डाक द्वारा पटना भेज दी। वह भी 'बालक' में छपी। इस प्रकार सर्वप्रथम मेरी दो कविताएँ एक साथ बालक में प्रकाशित हुईं, जिसका श्रेय राजा साहब को है। सूर्यपुरा के साहित्यिक-संगम में स्नान कर मेरी आत्मा पूर्णतया

साहित्यिक हो गई और राजा साहब की प्रेरणा से इस ओर मेरी अभिरुचि तीव्रतर होती गई। वार्षिकोत्सव के बाद मैं वहीं रुक कर आपकी पुस्तक 'पूरब और पच्छिम' की प्रेस कापी तैयार करने लगा। आप बोलते, मैं लिखता। कभी-कभी किसी वाक्य पर जब मैं अपनी राय देता तब आप उसे निःसंकोच मान लेते और तदनुसार संशोधन कर देते। एकाध बार तो केवल मेरी बात रखने के लिए भी वैसा संशोधन कर देते। मेरा नाश्ता प्रायः आपके साथ ही होता था। सूर्यपुरा में अधिक दिन रहने के कारण मुझे आपके भतीजे रामजी और रविजी से काफी मित्रता हो गई थी, जो उन दिनों अपने पुश्तैनी मकान 'गढ़' पर रहते थे। अतः कभी उनलोगों के पास से रात के दस-ग्यारह बजे लौटता तो आप मेरे भोजन की थाल अपने पास रखवा कर मेरी प्रतीक्षा करते। एकाध बार शौच से लौटने पर नौकर की अनुपस्थिति में मेरे हाथ-पैर धुलाने में आपने ही कष्ट उठाया।

आपके लिखने का कोई निश्चित समय नहीं था। मन की उमंग जब भी रंग पर आ गई कलम की नोक-झोंक चल पड़ी। दिन में प्रायः अपने भवन से सटे निर्मली पेड़ की छाँव में पक्के फर्श पर शीतलपाटी डलवा बैठ जाते। भावनाएँ उभरीं और कागज पर उतरीं। यहाँ तक कि शरीर पर तेल-मालिश (जो उनका नित्यप्रति का नियम था) कराते समय भी कुछ विचार आते तो अपने नौकर गुप्ता को थोड़ी देर के लिए ठहर जाने का आदेश देकर उन विचारों को अक्षरबद्ध कर लेते। चिट-पुर्जे, पुराने लिफाफ-पोस्टकार्ड पर भी मन की भावनाओं को टाँक लेते और बाद में उनका प्रयोग वाक्यों में करते।

'जो कुछ गंधी दे नहीं फिर भी बास सुबास' की तरह आपके पास बैठे रहने पर कुछ न कुछ सुनने को अवश्य ही मिल जाता था। आपको उर्दू के ढेर शेर याद थे, संस्कृत के श्लोक और हिन्दी-बंगला की कविताएँ भी। अँगरेजी साहित्य का भी अध्ययन करते थे। आपके शब्दों में—

"हमें तो बस रस की तलाश है। चाहे वह विलायत की ब्राँडी में मिले या ईरान की अंगूरी में, चाहे भारत की आसमानी या सौंफी में। मगर शर्त्त यह है कि वह कच्चे घड़े की न हो।"

तो ऐसा था आपका भाषा-प्रेम। यही कारण है कि आपकी पुस्तकों में उर्दू के

शेर, संस्कृत के श्लोक और बंगला की कविता एक साथ देखने को मिलती है। आपके उपन्यास और कहानियों में शब्दों की नग-जोड़ाई और शैली की सुनहली पच्चीकारी का कोई जवाब नहीं। आपकी समस्त पुस्तकों में हिन्दी-उर्दू की गंगोजमन एक साथ बहती हुई दृष्टिगोचर होती है। उर्दू की ओर मेरी भी अभिरुचि जगाने में आपका ही हाथ है।

यों आपके सम्बन्ध में लिखने-कहने को बहुत-सी बातें हैं। लेकिन स्मरणमात्र से ही आँखें भर आती हैं। और लिखने को जी ही नहीं करता। लेकिन इतना अवश्य कहूँगा कि 'राजकाज' को छोड़ मात्र साहित्य-सेवा द्वारा आपने सम्राट् (शैली के सम्राट्) की जो उपाधि प्राप्त की, वह 'राजा' से कहीं अधिक ऊँची और प्रतिष्ठाप्रद है। इसे कोई छीन नहीं सकता। यह कल भी था, आज भी है और कल भी रहेगा। आपकी अनोखी शैली कीं शोख लैली साहित्यिक मजनुओं को हमेशा अपनी ओर आकृष्ट करती रहेगी। आपने ताउम्र साहित्य की जो सेवा की है, उसे शब्दों में नहीं आँका जा सकता।

पीरीं में दाग जोशे-मजामी था रंग पर
इस बाग की बहार तुम्हारी खिजाँ से थी

किसी क्षणिक क्षोभ में पड़कर जो चादर को जोगिया रंग रँगता है उसके मन से रंगीन रंग की तलाश जल्द नहीं मिटती।

—राधिकारमण

छविनाथ पाण्डेय
आर्यकुमार रोड, पटना—४

हिन्दी, उर्दू-फारसी, बंगला और संभवतः अंग्रेजी के भी जानकार ही नहीं, अटूट और अखण्ड विद्वान् होने के कारण हिन्दी में उन्होंने एक अनोखी मिश्रित शैली का निर्माण किया था जो चुस्त होने के साथ ही मधुर रस से ओत-प्रोत होती थी। अपने भाषणों में बीच-बीच में राजा साहब ऐसे वजनदार, पुरजोर और फबते हुए शेरों की उक्तियाँ भरते जाते थे कि उनकी भाषा-शैली के अनोखेपन से श्रोता झूम उठते थे।

स्वर्गीय राजा साहब

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के निधन से हिन्दी गद्य का वह शैलीकार उठ गया जिसकी पूर्त्ति संभवतः हो नहीं सकेगी। यों हिन्दी प्रगतिशील भाषा है। राष्ट्रभाषा की गौरवमयी प्रतिष्ठा उसे प्राप्त है। हिन्दी में दिनोंदिन अनेकानेक एक-से-एक धुरन्धर और प्रतिभाशाली विद्वान् पैदा होंगे और अपनी विभूतियों से हिन्दी का शृंगार करते रहेंगे; लेकिन स्वर्गीय राजा साहब ने जिस तरह हिन्दी को अलंकृत किया था, जो जामा उन्होंने उसे पहनाया था, वह माँ के कलेवर पर शायद ही कोई चढ़ा सके।

हिन्दी, उर्दू-फारसी, बंगला और संभवतः अंग्रेजी के भी जानकार ही नहीं, अटूट और अखण्ड विद्वान् होने के कारण हिन्दी में उन्होंने एक अनोखी मिश्रित शैली व निर्माण किया था जो चुस्त होने के साथ ही मधुर रस से ओत-प्रोत होती थी। अपने भाषणों में बीच-बीच में राजा साहब ऐसे वजनदार पुरजोर और फबते हुए शेरों की उक्तियाँ भरते जाते थे कि उनकी भाषा-शैली के अनोखेपन से श्रोता झूम उठते थे।

राजा साहब अपने परिवार के अकेले व्यक्ति नहीं थे जो सहसा सूर्यपुरा के आकाशमंडल में चमक उठे थे। बल्कि यह साहित्य-प्रेम उन्हें वंशपरंपरा से मिली थी। स्वर्गीय राजा साहब के पितामह स्वर्गीय रामकुमार सिंह जी 'कुमार' के नाम से कविता लिखा करते थे। उनके स्वनामधन्य पुत्र अर्थात् राजा साहब के पूज्यपाद पिता स्वर्गीय राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह जी 'प्यारे' के नाम से कविता लिखते थे। जिस युग में इन महानुभावों ने जन्म लिया था उस युग में हिन्दी की गद्यशैली का विकास बहुत कम हुआ था और कविता-विशेषकर समस्यापूर्त्ति का बोल-बाला था। राजा राज-राजेश्वरी प्रसाद सिंह जी की कविताओं का एक संग्रह भी पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित है। और, यह परम्परा यहीं समाप्त नहीं होती है। हिन्दी भाषा के सौभाग्य से उनके कनिष्ठ पुत्र श्री उदयराज सिंह उर्फ शिवाजी भी अपने पूज्यपाद पिता के चरण-चिह्नों पर चलने का भरसक प्रयास कर रहे हैं। आज तक हिन्दी में इनके कई उच्चकोटि के उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं।

ऐसे विद्वानों के परिवार में जन्म ग्रहण कर स्वर्गीय राजा राधिकारमण सिंह का हिन्दी के प्रति यह अनुराग और साथ-ही-साथ इतनी प्रतिभा-सम्पन्न होना स्वाभाविक ही था। साथ ही परिस्थितियों ने भी राजा साहब की प्रतिभा को प्रखर बनाने तथा 'सादा जीवन और उच्च विचार' संपन्न बनाने में इनकी सहायता की। इनके पिता अत्यन्त विनम्र, सत्यवादी और दयालु थे। सादगी उनकी अपनी विशेषता थी। उनके दरबार में हिन्दी, उर्दू, बंगला और अंग्रेजी के विद्वान् जमा हुआ करते थे। राजा साहब ने अपनी पुस्तक "तब और अब" (प्रथम संस्करण, पृष्ठ १४०) में इस दरबार का बड़ा ही रोचक वर्णन लिखा है। अगले छोटे से वाक्य से ही राजा साहब की अनूठी शैली और दरबार के रंग का चित्र सामने आ जाता है :

"लीजिये, विषय एक है, हमारे पीर साहब फारसीदाँ शेर पढ़ते हैं, उसी भाव का संस्कृत का श्लोक हमारे पंडित जी सुना देते हैं, इन्दु कवि वही चीज हिन्दी में। मियाँ साहब उसे उर्दू में पिरोकर लाते हैं और हमारे पिताजी के इशारे पर घोष साहब बंगला और अंग्रेजी में उसी जोड़-तोड़ का ढूँढ़ निकालते हैं।

इस वातावरण में राजा साहब के बचपन के दिन बीते। परिणामस्वरूप उनके जीवन में आरम्भ से ही साहित्य का अंकुर पनपने लगा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

और, इस नन्हें कोमल पौधे को परिपुष्ट करने का साधन भी राजा साहब को सहज में ही उपलब्ध हो गया। इसका उल्लेख भी राजा साहब ने "तब और अब" में अपनी विशिष्ट शैली में किया है :

"बंगला की रस-सरिता में डुबकियाँ लेने की अपनी क्षमता तो श्री रवि ठाकुर की छत्र-छाया में ही दून पर आई। उन दिनों हम कलकत्ता आते-जाते रहे बराबर, हमारा और श्री रवि ठाकुर का मकान आस-पास ही रहे। हमारे पिता उन दिनों चित्रांगदा का अनुवाद उसी छन्द में हिन्दी में करते रहे और प्रतिदिन संध्या के समय वह और रवि ठाकुर साथ-साथ उठते-बैठते। अकसर ऐसे भी अवसर आये कि जब हमारे पिता राजकाज की निगरानी के लिए घर आते तो हमको वहीं श्री रवि ठाकुर की देखरेख में रख देते। वह साथ का असर आज भी हमारे साथ है। बंगला भाषा, बंगला साहित्य आज भी कैसा प्रिय है! हमने अपने जीवन में जो कुछ भी पते का पाया उन दिनों उन्हीं के चरणों की छाँह में ही पाया। वह स्मृति की धरोहर तो ज्यों-की-त्यों है आज भी।"

इस साहित्य-मनीषी के दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ सन् १९३७ ई० के दिसम्बर मास में। इससे प्रायः दो साल पहले राजा साहब का उपन्यास 'राम-रहीम' छपकर प्रकाश में आया था। उपन्यास क्या था समाज का जीवित-जाग्रत चित्र था। पात्र भले ही कल्पित थे पर कथावस्तु समाज की दैनिक घटनाएँ थीं जिन्हें राजा साहब की पैनी दृष्टि ने गहराई तक देखा था। राम-रहीम की कुछ उक्तियों से मैं इतना अधिक प्रभावित था कि राजा साहब के दर्शन की लालसा जाग उठी। अवसर भी सहज में हाथ लग गया।

१९३७ ई० की ही बात है। बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन

आरा में हुआ। मैं उस समय सम्मेलन का प्रधान मंत्री था। राजा साहब स्वागताध्यक्ष थे। स्वर्गीय पीर मुहम्मद मूनिस उस अधिवेशन के अध्यक्ष थे। अधिवेशन के एक दिन पहले शाम को स्वर्गीय रामधारी प्रसाद, और स्वर्गीय पीरमुहम्मद मूनिस के साथ मैं आरा पहुँचा। अध्यक्ष-निवास में सामान पटक कर राजा साहब के दर्शन के लिए दौड़ा। राजा साहब सूर्यपुरा से आ गए थे और एक कोठी में ठहरे थे। शाम का वक्त था। राजा साहब तूस का चादर ओढ़े आरामकुर्सी पर बरामदे में लेटे हुए थे। हमलोगों ने प्रणाम किया। रामधारी ने राजा साहब से मेरा परिचय कराया। शिष्टाचार के दो-चार शब्दों के बाद ही राम-रहीम की चर्चा छिड़ गई। मैंने कई प्रसंगों का विशद वर्णन किया। राजा साहब के चेहरे पर प्रसन्नता की झलक देखकर मुझे संतोष हुआ कि मैंने राजा साहब को इस उपन्यास में ठीक-ठीक समझा है। राजा साहब ने कहा—आपने उपन्यास की तरह राम-रहीम को नहीं पढ़ा है बल्कि इसका अध्ययन मानो किया है। मैंने कहा—'मैं इसे चार बार पढ़ गया पर तृप्ति नहीं हुई। बार-बार पढ़ने की इच्छा बनी ही रहती है। अगर छोटे मुँह बड़ी बात न समझी जाय तो कह सकता हूँ कि आपके कई पात्रों से मेरी पूरी सहानुभूति है। कम-से-कम बेला और होटल वाले नबाब साहब से और होटल के ठीक नीचे जमीन पर बैठकर मोटी रोटियाँ भकोसने वाले उस मजदूर से ईर्ष्या भी है।' बात यह थी कि छोटी उम्र से ही जात-पाँत की बिडम्बना से मुझे नफरत है। गाँव के स्कूल में झुलई और सुमान मेरे गहरे मित्र थे। मैंने माँस-मछली कभी नहीं खाये पर उनके साथ मछली मारने नदी में रोज जाता था। बाद को अँग्रेजी स्कूल में भी नबी अहमद मेरा दोस्त था और मुसलमान से दोस्ती रखने के कारण मेरे स्कूल के आर्यसमाजी हेडमास्टर ने मुझे छह मास के लिए स्कूल से निकाल भी दिया था। आज भी मेरे वही विचार हैं और किसी भी जात की कट्टरता से मुझे नफरत है।

इसके बाद तो मेरा संपर्क राजा साहब से बढ़ता गया और उनका स्नेह मुझे बराबर मिलता रहा। राजा साहब की सादगी, विनम्रता तथा मिलनसारिता प्रसिद्ध थी। उनका जीवन इतना सीधा-सादा था, और पहनावा इतनी साधारण कोटि का था कि प्रथम दर्शन में उन्हें देखकर यह कोई नहीं कह सकता था कि हिन्दी साहित्य के वे इतने धुरंधर विद्वान् हैं, भाषा के ऐसे प्रौढ़ शिल्पी हैं तथा ऐसे कुलीन श्रीसम्पन्न परिवार के कर्ण हैं।

जहाँ कहीं भी—राह चलते भी परिचितों से साक्षात्कार हो जाता था, राजा साहब रुक कर उनसे दो बातें अवश्य कर लेते थे, कुशल-समाचार पूछ लेते थे। मुझ पर तो उनकी इतनी कृपा रहती थी कि अनेक बार उन्होंने अपने हाथ से जर्दा बनाकर भेंट की थी। उनका जर्दा अपनी विशेषता रखता था।

देश, समाज और व्यक्ति का पूरा ज्ञान प्राप्त करने तथा विचारों की परिपक्वता के बाद ही प्रायः ४०-४५ वर्ष की उम्र में राजा साहब ने ढेर-के-ढेर साहित्य की रचना की। इससे उनकी कृतियों में अनुभव का पूरा दर्शन होता है और उनकी रचनाएँ दिल और दिमाग पर अपना अमिट छाप छोड़ जाती हैं। व्यर्थ और निरर्थक कल्पना की कहीं भी भरमार नहीं है जो हिन्दी के लेखकों में प्रायः देखने को मिलता है। देश के प्रत्येक समाज में उनके पात्र जीवित जौर जाग्रत मिलते हैं। उनकी रचनाएँ बनावटीपन से सदा दूर रहीं। यह राजा साहब की सबसे बड़ी विशेषता है। राजा साहब कृत्रिमता से सदा दूर रहे। न उनमें कृत्रिमता थी और न उनकी लेखनी में।

इन शब्दों के साथ मैं राजा साहब के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ और आशा करता हूँ कि जिस तरह राजा साहब ने वंशपरंपरागत साहित्य-साधना की ज्योति जगाते रहे उसी तरह उनके सुयोग्य पुत्र श्री उदयराज सिंह उनके पदचिह्नों पर चलकर उस ज्योति को प्रज्वलित करते रहेंगे और भावी पीढ़ी को विरासत में उसे देते रहेंगे ताकि वह कड़ी कहीं से टूटने न पावे।

कला कुछ काल के हाथ की कठपुतली नहीं; उसके कौशल की कुलीनता तो तब है जब इस काल के कवल से निकलकर हमारा कल सँवार दे—खोल दे हमारी तंगदिली का साँकल भी।

—राधिकारमण

जगदीशचन्द्र माथुर

अतिरिक्त सचिव, कृषि विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली

न उनमें अहम्मन्यता की गंध थी न प्रहार करने की भावना । कुछ ऐसी मुस्कान जो सूफी और वेदान्ती के चेहरे पर खेलती रहती है उसी की झलक मैंने अकसर राजा साहब के मुखड़े पर देखी और उसी की प्रतिध्वनि मैंने अकसर उनकी रचनाओं में पायी ।

✣

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह आधुनिक हिन्दी साहित्य की उन दुर्लभ हस्तियों में से थे जिनकी रचनाओं में सामंजस्य और विविधता का युग प्रतिबिंबित है । वस्तुतः तो वैसा युग २० वीं शताब्दी के प्रथमार्ध में हिन्दी क्षेत्र में विकसित हुआ ही नहीं । इसलिए राजा साहब को एक अपवाद ही माना जा सकता है ।

किसी प्रकार की कट्टरता को उन्होंने अपने निकट आने नहीं दिया । उनकी समस्त रचनाओं में सामाजिक दृष्टिकोण की परिपक्वता लक्षित होती है । निस्संदेह उनके

कुछ ऐसी मुस्कान !....
जो सूफी और वेदान्ती चेहरे पर खेलती रहती है !

अभिजात होने के कारण इस परिपक्वता के तत्त्व का आना स्वाभाविक था । किन्तु बात केवल विरासत की ही नहीं है । ऐसा जान पड़ता है कि अपने दीर्घ जीवन में बिना ढिंढोरा पीटे राजा साहब ने कुछ आदर्शों को आत्मसात किया और अपनी

अभिव्यक्ति में उनको निबाहा। सामंजस्य का दृष्टिकोण उनकी भाषा में सबसे अधिक समाया हुआ है। उन्होंने शैली-सौंदर्य के लिए बिना झिझक के विद्वत्ता के खजानों, गली के भिखमंगों की झोलियों, पंडितों की पोथी तथा मौलवियों के बस्तों—सभी से रत्न ढूंढ़ निकाले और उनका उपयोग किया।

बंगला भाषा और साहित्य के प्रति उनका स्नेह खरा और आजीवन था। बिहार में प्रायः बंगला साहित्य और साहित्यकारों से एक तरह का "लव-हेट" का नाता होता रहा है। उसके कई ऐतिहासिक कारण हैं। लेकिन मैंने कभी राजा साहब के मुँह से ऐसी कोई बात नहीं सुनी। यह बहुत कम लोग जानते हैं कि अपने लड़कपन में उन्होंने साहित्य-रचना बंगला में ही प्रारम्भ की थी।

यह उदार दृष्टिकोण सामाजिक समस्याओं के उद्‌घाटन में भी स्पष्ट है। पतिता स्त्रियों के प्रति जैसी सहानुभूति उनकी रचनाओं में लक्षित है वह उस युग के अन्य साहित्यकारों में नहीं दीख पड़ती। उनकी सहानुभूति मे दयनीयता को साहित्यिक प्रयोजन के लिए गहरा रंग देने की चेष्टा नहीं की गई। तथाकथित पतित स्त्रियों को उन्होंने मानववादी दृष्टिकोण से देखा।

यही बात इंद्रिय-सुख और आह्लाद की अनुभूतियों के प्रति उनके विचारों में लक्षित होती है। यह आश्चर्य की बात है कि जहाँ उनकी पीढ़ी के अन्य लेखक इंद्रिय-जन्य सुख के प्रति उदासीन थे अथवा उसकी अवहेलना करते थे वहाँ राजा साहब मानव देह की वासनाओं को जीवन का अभिन्न अंग मानते थे। इस मामले में वे आधुनिकों के शायद अधिक निकट थे। इस दृष्टिकोण की महत्ता इसलिए और भी बढ़ जाती है कि राजा साहब स्वयं अपने जीवन में अत्यंत संयमी और कुछ मानों में योगी पुरुष थे। बचपन में पिता का साया उठ जाने पर यह उनके लिए स्वाभाविक होता कि वे जमींदारों के लड़कों की भाँति गुलछर्रे उड़ाते। लेकिन, अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व को निबाहने की खातिर उन्होंने बहुत कुछ त्यागा और आत्म-नियंत्रण का अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया। बम्बई के निकट लोवनावला के कैवल्य आश्रम में रहकर उन्होंने आसन सीखे और अपने गिरते स्वास्थ्य को संभाला। कहते हैं कि बरसों तक उन्होंने नमक छुआ ही नहीं। इंद्रियों के आग्रह पर इतना नियंत्रण करने के बावजूद उन्होंने अन्य व्यक्तियों की मानव देह की कामनाओं को उपेक्षित नहीं किया। यह निस्संदेह मार्के की बात थी।

उनके व्यक्तित्व में बाहर से दीखने वाली इस तरह की विषमताएँ बहुत थीं। उनमें से एक यह भी थी कि राजा साहब अपने ऊपर बहुत कम खर्च करते थे। उनकी फटी हुई बनियानों को देखकर उनके छोटे भाई राजीवरंजन ने उनकी प्रताड़ना भी की। इन सब बातों से बाहरी रूप से यह जान पड़ता था मानो राजा साहब धन-संग्रह में अधिक रुचि लेते हों, धन-वितरण में नहीं। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि उन्होंने धन का सदुपयोग ऐसे अलक्षित रूप में किया कि बहुत लोग जान ही न पाये। 'नेकी कर कूएँ में डाल' इस कथनी को उन्होंने चरितार्थ कर दिखाया। न जाने कितने छात्रों की उन्होंने सहायता की लेकिन उस सहायता का जिक्र कभी अपनी जबान पर नहीं लाये। न जाने कितने दुखियों की सेवा की पर उसका ढिंढोरा नहीं पीटा। बिहार के हरिजन सेवक संघ के कर्णधार अवश्य रहे किन्तु प्रचार की दृष्टि से नहीं, बल्कि उसी आदर्शवादी प्रेरणा के आग्रह से जो अंत:सलिला फल्गु की तरह उनके जीवन में निरंतर प्रवाहित होती रही थी।

अपने अंतिम दिनों में उन्होंने जीवन के आदर्शों और व्यवहार के आयाम बदलते देखे। हम लोग जो उनसे बहुत छोटे थे हम भी इस परिवर्तन से क्षुब्ध हो चले हैं। लेकिन राजा साहब उस कड़वाहट के फेर में नहीं पड़े जो उनकी पीढ़ी के अनेक व्यक्तियों को ले बैठी। वर्तमान युग द्वारा आदर्शों की उपेक्षा का जवाब उनकी दृष्टि में विनोद और परिहास और थोड़ी-बहुत मीठी चुटकी थी। यह विनोदशीलता भारतेंदु युग की देन थी। हम लोग तो इसे पा ही नहीं सकते। न उनमें अहम्मन्यता की गंध थी न प्रहार करने की भावना। कुछ ऐसी मुस्कान जो सूफी और वेदान्ती के चेहरे पर खेलती रहती है उसी की झलक मैंने अकसर राजा साहब के मुखड़े पर देखी और उसी की प्रतिध्वनि मैंने अकसर उनकी रचनाओं में पायी।

जगदीश शुक्ल

हेड पण्डित, राजराजेश्वरी उच्च विद्यालय, सूर्य्यपुरा (शाहाबाद)

मैं गत चौआलीस वर्षों का राजा साहेब का अन्तरंग साथी हूँ। साथ के जीवन में सुख और दुःख की न जाने कितनी घड़ियाँ आईं और गईं; किन्तु राजा साहेब न सुख में फूल उठे, न दुःख में कभी विचलित हुए। संसार का सारा व्यवहार तो आपका परम्परागत शिष्टाचार था, वस्तुतः आप तो सच्चे साहित्यकार थे। आप घर में रहे या बाहर में, परिवार में रहे या दरबार में; किन्तु हृदय से कलाकार ही रहे।

✤

हमारे राजा साहेब

आज हमारे राजा साहेब हमारे बीच नहीं रहे। लक्ष्मी का लाड़ला होकर भी, लक्ष्मी के मस्तक पर पैर रखकर सरस्वती का जो साधक और आराधक लगातार साठ वर्षों तक सारस्वत-साधना करता रहा और अपने सुविचारों के सुमनों तथा सूद्गारों के रत्नहारों से वाग्देवता का अनूठा शृंगार करता रहा; अपने जीवन के कण-कण और क्षण-क्षण की आहुति देनेवाला वाणी का वह अधिकारी शृंगारी, साहित्य-मंदिर का वह तपस्वी पुजारी अपनी आयु के अस्सी वर्ष पूरा करने के बाद आज क्रूर काल का निर्मम आहार बन गया।

जिनका धन विशेषतः निर्धनों के काम आता रहा, जिनका प्रभाव प्रायः अभाव-पीड़ितों का साहाय्य करता रहा, जिनकी वाणी प्रेम, करुणा और सहानुभूति का सदावर्त बाँटती रही, वे हमारे राजा साहेब एक के नहीं, प्रत्येक के थे; स्वामी नहीं,

सेवक थे; लक्ष्मी के प्रत्याशी नहीं, सम्प्राप्त सम्पत्ति के प्रन्यासी (ट्रस्टी) थे; धन के राजा नहीं, मन के राजा थे।

राजा साहेब सहृदयों के हृदय-भूषण, भारतीयों के भारत-भूषण, मानव मात्र के मानव-भूषण, तथा भारत सरकार के 'पद्म-भूषण' थे। 'डाक्टरेट' और 'डि० लिट्' की उपाधियाँ तो उनकी साहित्य-सेवा की अनुगामिनियाँ रहीं। राजा साहेब का हृदय पद, प्रतिष्ठा, पैसा और प्रशंसा के मोह में कभी पड़ा नहीं; प्रान्तीयता, जातीयता, दलगत या व्यक्तिगत पक्षपात पर कभी अड़ा नहीं।

मैं गत चौआलीस वर्षों का राजा साहेब का अन्तरंग साथी हूँ। साथ के जीवन में सुख और दुःख की न जाने कितनी घड़ियाँ आईं और गईं; किन्तु राजा साहेब न सुख में फूल उठे, न दुःख में कभी विचलित हुए। संसार का सारा व्यवहार तो आपका परम्परागत शिष्टाचार था, वस्तुतः आप तो सच्चे साहित्यकार थे। आप घर में रहे या बाहर में, परिवार में रहे या दरबार में; किन्तु हृदय से कलाकार ही रहे। आपने एक बार नहीं, अनेक बार यह कहा है कि—

'अपना तो यही काबा, अपना तो यही हज है,
अपना तो यही काशी, अपना तो यही ब्रज है।'
'पीता हूँ वह मय नशा उतरता नहीं जिसका,
खाली नहीं होता है पैमाना मेरे दिल का।'

राजा साहेब के अस्सी वर्षों के जीवन में संघर्ष के भी छोटे-बड़े अनेक अवसर आए, किन्तु इतना महान् सौजन्य, ऐसा सुदृढ़ सौशील्य आपके साथ था कि आपको किसी पर क्रोध करते किसी ने नहीं देखा। शील का यह प्रशान्त महासागर कभी क्षुब्ध हुआ ही नहीं। आपकी क्षमा की क्षमता अद्वितीय थी। आपकी विनोद-प्रियता और जिन्दादिली के क्या कहने? आप जिस मजलिस में रहे मीरे मजलिस ही बनकर रहे—

फ़सुर्दादिल कभी खिलवत न अंजुमन में रहे
बहार होके रहे आप जिस चमन में रहे।

राजा साहेब आदि शंकराचार्य के अद्वैतमत से अधिक प्रभावित रहते थे; किन्तु इधर एक वर्ष से स्वामी रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैती विचार के ही विशेष प्रेमी और प्रशंसक बन गए थे। आपके महाप्रस्थान के एक सप्ताह पहले जब मैं आपसे

मिलने के लिए आपके कमरे में गया, तो कमर की दारुण-व्यथा से कराहते हुए आपने मुझसे कहा—

कोई दिन का मेहमा हूँ ऐ मेरे साथी,
चिरागे सहर हूँ बुझा चाहता हूँ।

मैंने कहा—'सीताराम सीताराम' कहिए। राजा साहेब वेदनाधिक्य से विवश होते हुए भी 'सीताराम सीताराम' कहने लगे। इसी क्रम में विनय-पत्रिका का एक भजन भी प्रेममग्न होकर स्वेच्छा से गाने लगे—

'नाहिनै नाथ ! अवलंब मोहि आन की।
करम-मन-वचन पन सत्य करुणानिधे,
एक गति राम ! भवदीय पदत्राण की।।

राजा साहेब का यह भक्ति-गान ही उनकी भक्ति-भावना का वास्तविक प्रमाण है। आपने 'अपना परिचय' में लिखा है—वही एक जो इस विश्व का कर्णधार है, मेरी जिन्दगी की नैया का खेवनहार भी। बस, एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास वही करुणानिधान है। ऊपर के भजन-गान का संदेश है कि अपनी अँधेरी घड़ियों में काम आनेवाला एकमात्र भगवान् ही है, इंसान नहीं :—

कहने को यों जहाँ में हजारों हैं यार दोस्त,
मुश्किल के वख्त एक है परवरदिगार दोस्त।

राजा साहेब संसार छोड़कर चले गए और राजा साहेब के रूप में हमारा संसार ही चला गया—दरबार भी चला गया, परिवार भी चला गया और कर्णधार भी चला गया। हम क्या कहें ? क्या क्या कहें ? कैसे कहें ? किससे कहें ?

'मेरा दर्देदिल कोई क्या जानता है,
जो गुजरी है दिल पर खुदा जानता है।'

राजा साहेब के स्वर्गवास से कला का वह कारखाना ही ध्वस्त हो गया, जो काव्य के नए-नए ग्रंथरत्नों को प्रस्तुत करके हिन्दी के ग्रंथागार को रत्नागार बनाता जा रहा था। कला का वह शृंगार, विचारों का वह निखार, काव्य-वीणा का वह झंकार अब कौन प्रस्तुत करेगा ? आज टूट गया वह सहृदय-हृदयों को उच्छ्वसित और उल्लसित करनेवाला साहित्य का सजीव सितार। आज लुट गया वह प्रेम, करुणा

ग्रौर सच्ची सहानुभूति का मधुर भाण्डार। ग्राज गिर गया सज्जनता ग्रौर शालीनता का, उदारता ग्रौर विनम्रता का, वह दृढ़तम ग्राधार। ग्राज कहाँ गया भाषा की शक्तियों पर ग्रद्भुत ग्रधिकार रखनेवाला हमारा वह कलाकार? ग्राज कहाँ गया हिन्दी भाषा का राजा हमारा वह विचित्र शैलीकार?

हिन्दी-भाषा-भाषी हम ब्रजवासी विरह-विह्वल होकर ग्राज ढूँढ़ रहे हैं ग्रपने राधिकारमण को। किन्तु हमारा राधिकारमण तो हिन्दी का संदेश लेकर स्वर्ग चला गया। ग्राज हमारा वह गद्य-कवि स्वर्ग की साहित्य-गोष्ठी में झूम-झूमकर ग्रपनी रचनाएँ सुना रहा है। स्वर्ग के देवता हमारे राजा कलाकार की, कल्पना की कमनीयता पर, संवाद की सरसता पर, शब्दों की सजावट पर, ग्रनुप्रासों के ग्रनूठेपन पर ग्रौर भाषा की भंगिमा पर झूम-झूम जाते हैं।

राजा साहेब की सुहावनी ग्रौर लुभावनी भाषा जब ग्राँखें नचाकर ग्रौर भौंहें मटकाकर कसकर ग्रँगड़ाइयाँ लेती है, तो देवपुरी के दीवाने देवताग्रों का दिल रस की मन्दाकिनी में डूबने-उतराने लगता है। जब वह बन-ठनकर ग्रपने पूरे शृंगार के साथ ग्रपनी ग्रलमस्ती में थिरकने लगती है, तो किन्नरों का गान बेसुरा लगने लगता है ग्रौर ग्रप्सराग्रों का नृत्य बेताल पड़ जाता है। राजा साहेब की ग्रनूठी शैली जब ग्रपने नाजो-ग्रंदाज ग्रौर ग्रदा के साथ दून पर ग्राती है, तो इसके एक-एक नाज पर, एक-एक ग्रंदाज पर ग्रौर एक-एक ग्रदा पर सारी-की-सारी सुर-सभा लोट-लोट जाती है।

राजा साहेब की समन्वय-शैली कभी हिन्दी की चोली ग्रौर चुन्दरी में चमक उठती है, कभी उर्दू की शलवार ग्रौर ग्रोढ़नी में निखर पड़ती है। कभी संस्कृत के चन्द्रकान्त ग्रौर कौस्तुभ से समलंकृत होती है, कभी फारस के याकूत ग्रौर जमुर्रद से सँवर जाती है। कभी हिन्दी की बिन्दी लगाकर लजीली कुलवधू की तरह सिर झुका लेती है, कभी उर्दू का सुरमा ग्राँखों में ग्राँजकर ग्रपनी ग्रनूठी ग्रदा से मुस्कुरा उठती है। इस प्रकार ग्रपनी तरुणाई ग्रौर लुनाई से, ग्रपने भावों ग्रौर प्रभावों से, ग्रपनी सद्भावनाग्रों ग्रौर सम्भावनाग्रों से, इसने देवलोक के हृदय पर हिन्दी साहित्य के दिग्विजय का झंडा गाड़ दिया है। ग्राज हमारी हिन्दी की विजय-वैजयन्ती देवताग्रों के लोक में, में ग्रासमान के तारे तोड़ रही है।

मगर भाई ! हमारा वह सौभाग्य-सूर्य स्वर्ग से लौटकर अब पृथ्वी पर नहीं आने का। अब वह स्वर्ग का ही सौभाग्य बन गया। अब तो हम उसके साहित्य में ही उसके सच्चे स्वरूप के दर्शन पा सकेंगे। सच पूछिए, तो साहित्य ही साहित्यकार का सच्चा और पक्का शरीर है। उर्दू के कवि अख्तर साहेब ने कितता अच्छा कहा है—

मेरा हर शेर है अख्तर मेरी जिन्दा तस्वीर,
देखने वालों ने हर लफ्ज में देखा है मुझे।

तो हम भी अब राजा साहेब के दर्शन करेंगे उनकी कला की कुशलता में, उनके भाषण की भव्यता में, उनकी कहानियों की कमनीयता में, उनके उपन्यासों की उत्कृष्टता में और उनके रस की रमणीयता में।

पार्थिव शरीर के द्वारा ही विचार की अभिव्यक्ति होती है, इसलिए भौतिक शरीर का भी अपना महत्त्व है; किन्तु शरीर के सम्बन्ध से विचारों पर विकारों का भी प्रभाव पड़ सकता है, अतएव विचार-शुद्धि में शरीर बाधक भी बनता है। राजा साहेब के विकारी शरीर को तो भस्म बनाकर हमने गंगा के पवित्र प्रवाह में प्रवाहित कर दिया। अब तो उनका अविकारी विचार ही हमारे बीच में रह गया है, जिसके दर्शन हम उनके साहित्य-शरीर में ही पा सकते हैं।

राजा साहेब के लिए सच्ची श्रद्धांजलि है, उनके विचार का अधिकाधिक प्रचार-प्रसार और उनके चरण-चिह्नों का व्यावहारिक अनुसरण। भगवान हमें शक्ति और प्रेरणा दें कि हम उनके चरण-चिह्नों पर चल सकें। विश्वास है, कि हमारे राजा साहेब लड़खड़ाते शब्दों की इस तुच्छ श्रद्धांजलि को भी स्नेह के नाते स्वीकार करेंगे।

'तेरा हुस्न बेशक बड़ी चीज है,
मेरा इश्क भी तो कोई चीज है।
भली चीज है या बुरी चीज है
मुहब्बत भी आखिर कोई चीज है।'

जानकीवल्लभ शास्त्री
चतुर्भुज-स्थान, मुजफ्फरपुर

✣

राजा साहब भी जीवन-जलयान के मस्तूल पर जय-ध्वज फहरा गए हैं। किसी और राव-रईस का होता यह जहाज तो कुल, धन-वैभव और मान-सम्मान लाद कर ही तूफान में चकरा जाता। हमसायों और दोस्त-अहबाबों की नाजबरदारी उसे डुबो कर ही दम लेती। मगर—

सोचनीय नहिं कोसलराऊ
भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ !

उन्होंने प्रकाण्ड कर्मक्षेत्र में भी आत्मा की पुकार सुनी। कर्तव्य से कहीं नहीं चूके; किन्तु कर्तृत्व की प्रेरणा की कभी अवहेलना भी नहीं की।

✣

"बक रहा हूँ, जुनून में क्या-क्या !"

ऐसा होता है :

एक बड़ी घड़ी छूटते क्षणों का छुटपन पी जाती है;

ऊब कर डूबते हुए दिन की शिथिल गोद में नवोदित सन्ध्या का धूल-भरा बचपन मचल उठता है;

मृत्यु का दिन !

क्या खूब !

वाह री बावरी अमरता !......

ऐसा होता है—

'सुबह होती है, शाम होती है,

जिन्दगी यूँ तमाम होती है !'

× × ×

काल कहीं नहीं आता-जाता—वह अचल है; अटल है,—देही चला जाता है :

'देही प्राणैर्विमुच्यते ।'

मृत्यु के शिकंजे से बच निकलने का क्या उपाय है ? काल का कठोर पाश एक-न-एक दिन प्रत्येक को जकड़ ही लेता है ।

जीवन को जन्म और मृत्यु से काट कर कहाँ रखा जा सकता है ? मृत्यु की अनिवार्य्यता ही तो जीवन का सबसे कटु यथार्थ है । और अवश्यम्भावी मृत्यु का निश्चित आश्वासन जीवन के दंशन को सह्य भी बनाता है ।

जरा और मरण का रहस्य ढूँढ़नेवाले बुद्धदेव बूढ़े भी हुए और मरे भी । अवश्य उन्हें मृत्यु का भय न हुआ । उन्होंने आनन्द को उपदेश देते-देते निर्वाण प्राप्त किया : 'अपना दीपक आप बनो !' मरणधर्मा मानव सहज ही अमर हो जाय तो आपस के सारे नाते-रिश्ते खत्म हो जायँ—वह सुरों से बड़ा विलासी और असुरों से अधिक दुर्दान्त हो उठे ! मृत्यु का भय ही जब-तब उसकी बेपनाह बहकी इन्द्रियों की लगाम थाम लेता है जिससे वह ज्यों-त्यों पारस्परिक सम्बन्ध निभा ले जाता है । इस निःस्व विश्व को आनन्दमय बनाए रखने के लिए मृत्यु अनिवार्य्य ही नहीं, आवश्यक भी है । हर धर्म के मूल में भी मृत्यु-भय है—

'गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्' अति प्रचलित उक्ति है । गोस्वामी तुलसीदास की अनुभूति और गहरी है :

भय बिन होइ न प्रीत ।'

ऐसे में समाज को उच्छृङ्खल और व्यक्ति को पथ-भ्रष्ट होने से बचा कर आनन्द

को सुरक्षित रखा जा सकता है, नहीं तो कबन्ध कामनाओं और नरमुण्डों का पैशाचिक द्वन्द्व हरे-भरे संसार को सुनसान श्मशान बनाए बिना न रहे।

अनन्त शून्य पथ पर नक्षत्रों की भीड़ उमड़ी हुई है; आगे बढ़ने का उन्माद अपने में अप्राकृत शक्ति सँजोए हुए है; नीहारिकाओं की धुँधली-धुँधली ज्योति नाकाम निगाहों को तरसा कर हद से गुजरती जा रही है; मृत्यु की मस्ती मुक्ति की मदिरा के नशे से कम नहीं,—तरंगें जड़ तटों को धक्के दे-देकर तोड़ रही हैं, हवा फूलों को चूम-चूम कर धूल पर बिखेर रही है……

काल का समुद्र ज्वार-भाटों के करिश्मे दिखा रहा है; हाहाकार मचाए हुए है कि अब तो सब ठाट पड़ा रह जाने दे! तेरा अपना कहीं ठीहा भी है? ठंडे-ठंडे ठिकाने लग जा!

लेकिन जंगल-पहाड़ की छोटी नदी रुकती नहीं, ठहरती नहीं, अपने रास्ते चलती चली जाती है; कभी आनन्दोन्माद से उच्छल चंचल और कभी थके हुए भारी और उदास कदमों से धीरे-धीरे चलती चली जाती है!

काल के कराल समुद्र में सदा के लिए अपने अस्तित्व को सुला देना होगा, इस कारण असाधारण तीव्रता से वह अपने प्राणों का जागरण कण-कण में प्रतिबिम्बित करती है और सीमा चाहे जितनी छोटी हो, अपने जीवन-प्रवाह को प्रखर से प्रखरतर बना कर एक-एक पत्थर में जिन्दगी की हलचल भर देती है और लोक-लोचनों से ओझल, उपेक्षा की उमस में ऊँघते-से झाड़-झंखाड़ों को जीवन के घात-प्रतिघातों और अन्तर्द्वन्द्वों से झकझोर कर प्राणों के प्रवहमान विस्तार की झाँकी दिखलाती है। कहती है: हो दो-चार घड़ी की जिंदगी, क्या फर्क पड़ता है?

'एत कथा आछे एत गान आछे,
एत प्राण आछे मोर
एत सुख आछे. एत साध आछे
प्राण हये आछे भोर!'

कौन कहेगा इस जीवन के मरण को निष्प्राण मरण? यही वह अमर मरण है, काल जिसके कृतित्व को नहीं, टेसुए बहाकर भी नहीं, पोंछ पाता।

'नाइटिंगेल' की टेर और 'हाइ पीरियन' की अनुगूँज से गीली-गीली, प्राणों की

सुगन्ध दिशाकाश में भर चुकने पर ही अन्तकाल में कवि कीट्स को अपनी देह में अनन्त बसन्त के फूल ही फूल उगते जान पड़े थे; और जब पलकों की छाँव में अँधेरा गहराने लगा था, गेटे को प्रकाश—और प्रकाश की प्यास लगी थी; और जब टैगोर अन्तिम बार शुभ्र शिखर की सैर पर निकले थे और उनका अन्तर नीले गहरे जल की निस्तरङ्ग निस्तलता में रूपान्तरित हो गया था और उनके आलोक-धौत अन्तर्नयनों ने निहारा था कि विचित्र-विचित्र छलनाओं के जाल से सृष्टि का प्रत्येक पथ आकीर्ण है और सरल जीवन को अचूक हाथों से झूठे विश्वास के फन्दे में फँसाया जाता है ! सो जो हो, मरीचिकाओं से बार-बार वञ्चित होनेवाला मन-मृग भी अन्त में शान्ति का अक्षय अधिकारी करार दिया जाता है ।

और, जब निराला का अङ्ग-प्रत्यङ्ग अकड़ने लगा था और मृत्यु की ठंडक उनके रक्त-मांस को सुन्न कर हड्डियों को तड़का रही थी और छाती धौंकनी के वेग के साथ फैलती चौड़ी होती चली जा रही थी और गरदन की शिराएँ दाँत पीस, होठ भींच कर पूरा जोर लगाने पर कन्धे तक तन आई थीं और मौत से जोर आजमाइश के सिलसिले में तन-बदन पसीने में डूब गया था और फिर तनी हुई शिराएँ बैठती गई थीं या साँसों की बेफाँस निकासी के सबब आहिस्ता-आहिस्ता नीचे उतरती हुई छाती की झिलमिलाती छाँह-तले सुस्ताती-सुस्ताती सो गई थीं और केवल एक अस्फुट-सी ध्वनि संज्ञाशून्य अँधेरे—उजाले की फाँक में गूँजती रह गई थी :

'पुनः सवेरा, एक और फेरा है जी का !'

All's well that ends well.

'वाह पीर औलिया, पकाई थी खीर, हो गया दलिया !'

यह कहावत भी कम लागू नहीं है । पावर और पैसे के पीछे पागल रहनेवालों में बिरला ही कोई ज्ञानी, भक्त या निष्काम कर्मयोगी होता है, वे मामूली नाम और अर्थ ही नहीं, अमरता भी खरीद सकते हैं । काल के गाल में समाने वाले तो भरसक वही सिरफिरे होते हैं, जो श्रम को शक्ति और कर्म को भक्ति मान कर ऋजु जीवन की जटिल साधना करते हैं । कुछ अनबूझे शब्दों के भँवर को जो ज्ञान-प्रवाह नहीं मानते, अर्थाभाव के कारण जिन्हें अर्थकरी विद्या से भेंट नहीं होती; सत्ता जिनके सगे-सम्बन्धी नहीं होते ।

ऐसे ही लोग काल को चलता करते-करते आप चले जाते हैं ।

काल कहीं नहीं आता-जाता।

बादल चलता है तो लगता है, आकाश चल रहा है; गाड़ी चलती है तो जान पड़ता है, हर अचल चल रहा है—जंगल-पहाड़, पेड़-पौधे—सब चल रहे हैं···

एक दिन : ऐसे ही लोग आँखों में रेत और गले में पानी भर कर बिसूरते हैं :

'कालो न यातो वयमेव याताः!',

मगर 'प्यारे हरीचन्द की कहानी' रह जाती है और 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' का लेखक नहीं भुठलाया जाता। नियम नहीं तो अपवाद ही सही। ऐसा होता है।

× × ×

राजा साहब भी जीवन-जलयान के मस्तूल पर जय-ध्वज फहरा गए हैं। किसी राव-रईस का होता यह जहाज तो कुल, धन-वैभव और मान-सम्मान लाद कर ही तूफान में चकरा जाता। हमसायों और दोस्त-अहबाबों की नाजबरदारी उसे डुबो कर ही दम लेती। मगर—

'सोचनीय नहिं कोसलराऊ, भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ।'

उन्होंने प्रकाण्ड कर्मक्षेत्र में भी आत्मा की पुकार सुनी। कर्त्तव्य से कहीं नहीं चूके; किन्तु, कर्तृत्व की प्रेरणा की कभी अवहेलना भी नहीं की।

भावना और कर्त्तव्य के संघर्ष में अक्सर भावना को ही कुर्बानी देनी पड़ती है और तब कर्म-कठोर जीवन रूढ़ और रूक्ष हो अपने पुरुषार्थ को प्रमाणित करता है।

राजा साहब ने तब भी पतवार नहीं छोड़ी जब जलयान के पेंदे में जल भर आया था। भाव और कर्म का यह विरल समन्वय है। गौरव के अभ्रभेदी शिखर तक उठने के लिए असाध्य और अनिवार्य्य को जोड़ कर उन्होंने सोपान-परम्परा खड़ी की थी। सहज बुद्धि और ईश्वर-प्रदत्त प्रतिभा के सन्धिस्थल में उनके साहित्य का यशःस्तम्भ खड़ा है।

निरन्तर प्रयत्नों के सौन्दर्य्य, विचारों और भावों की पारस्परिक अन्विति के अनुरूप चित्रभाषा; शक्ति के साथ तरलता, गीति के साथ दृढ़ता, लय के साथ तान, उजड़ी-उजड़ी बीरान चट्टानों के साथ जर्द-जर्द फूलों की बहार; दर्द का बोझ हल्की-हल्की मुसकान उगाता हुआ शून्य का सन्नाटा बर्फ के गालों से ढका-ढका, प्रकाश की प्यास पिए-पिए ताजगी रचने को मुरझा-मुरझा; घने जंगल में गहरा-गहरा बहता हुआ नाला खुश्की और सख्ती को कुरेद कर उभरी हुई सोंधी-सोंधी जिन्दगी को कलध्वनि से

आवाज देता हुआ और हर कड़वाहट को पीकर मरु-जैसे जलते प्राणों की खामोश उदासी में एक सुरीला दर्द बोने की व्याकुलता—राजा साहब के साहित्य की, समसामयिकता में शाश्वतिकता की, कुछ वे छवियाँ हैं, जिन्हें सूखे पारिभाषिक शब्दों वाली रूखी आलोचना नहीं सहेज सकी है, ठोक-बजा कर ठीक-ठीक देख लेने के पहले ही उसने अपना निर्वैयक्तिक मृत मन्तव्य बेशक उगल दिया है। पता नहीं, आलोचक अपने बारे में क्यों नहीं ऐसे निर्वैयक्तिक होते ; क्योंकि गलत फतवा देने का उनका जन्मसिद्ध अधिकार व्यावहारिक पद्धति अपनाने पर बारहा बेनकाब हो चुका है।

उदात्त व्यक्तित्व के अभाव में उच्चकोटि का सृजन असंभव है। भावना की ऊँचाई कला-कृति में सौन्दर्य्य की गहराई समा सकती है। यों रंगों और रेखाओं के कारण इन्द्रधनुष भी कम सुन्दर नहीं होता—

"रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्तात्
वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य"

—कालिदास

किन्तु ये रंगरंगीनियाँ बिखेरने के अलावा आकाश की ऊँचाई को और ऊँचा नहीं करते; ये रेखाएँ रूप के प्रवाह के उस पार की छाया-छवि नहीं आँकतीं।

राजा साहब रवीन्द्रनाथ के साहचर्य की प्रायः चर्चा करते थे, अवश्य इनकी मौलिक प्रतिभा उनसे अन्त तक अप्रभावित रही। अपने समय की अद्वितीय, हिन्दी की कदाचित् पहली मौलिक कहानी—कानों में कँगना—में काबुलीवाला का स्रष्टा कहीं नहीं उजागर होता।

कुछ ऐसा ही उनके सृजन और व्यक्तित्व में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है जो चाहे सावनी समाँ को गुंजरित करनेवाला रिमझिम-संगीत हो, चाहे ज्वालामुखी का विस्फोट, कभी अपने सलीके से अलग होता नहीं नजर आता। उनकी बाह्य एवं अभ्यान्तर प्रेरणाएँ आधारभूत तथ्य को यहाँ-वहाँ बहाए फिरती हैं, उनकी सृजन की आकुलता जिसका सदा साथ देती है। बात वजनी बन कर हृदय-हृदय में बैठने के बजाय उड़ी-उड़ी चलती है और कोई सहल रास्ता पेशेनजर हो तो वह हल्की-फुल्की उड़ान भी भूल जाती है।

कहानी, नाटक, उपन्यास—क्या नहीं लिखा राजा साहब ने ! लेकिन उन पर

गोर्की, मोपासाँ या इब्शन; शॉ का प्रभाव ढूँढ़ना ठीक वैसी ही ज्यादती है जैसी ज्यादती श्री हर्ष, बाणभट्ट या रतननाथ सरशार का उन पर प्रभाव ढूँढ़ना है।

राजा साहब का एक अपना ही रंग था। हवा के थपेड़ों से बजनेवाला वह पोला बाँस भर न था, बल्कि बाँस के रन्ध्रों पर फिरने वाली उँगलियों की उस्तादी ही उनकी हकीकत थी। आसूदगी में छिड़े हुए सुरों में चञ्चलता बस संगीतकला की मर्यादा निभाती थी। अन्यथा झंकृत मन्थरता विलम्बित लय की परिधि में ही गति पाती थी। गढ़ों को घाटियों में और सपाट को टीलों में तब्दील कर उन्होंने जिन्दगी की खूबियों और खराबियों को कागज पर नहीं उतारा। फिर भी उनमें जीवन की तीव्र चेतना थी और मानवीय संवेदनाओं में ऊर्जा की अतिरिक्त उत्तेजना उनके चरित्रों को अस्तित्व और विकास के लिए संघर्षरत अतः प्रदीप्त प्रकट करती है। राजा साहब के ही दूसरे सन्दर्भ में गूँजे शब्दों में—

'रत्न को मखमली लिहाफों की तह में छिपा कर रखने से फायदा? अगर सच्चा जौहर है, काँच नहीं, तो बाहर के सूर्य की रोशनी में इसकी आब घटेगी नहीं, जगत् की वायु से इसका रंग उड़ेगा नहीं।'—

इन्हीं शब्दों को मैं राजा साहब की निसर्ग ज्योति की परख में रखना चाहता हूँ। साथ ही विश्व-चराचर में उनका संस्थान ढूँढ़ने से पहले हिन्दी-मन्दिर में उनका स्थान प्रतिष्ठित देखना चाहता हूँ। प्रभाव से अधिक भाव, मेरे मानदण्ड का प्राण है। भाव—उच्छ्वास या उद्गार नहीं।

(२)

मैं 'अपनी करनी पार उतरनी' को इस जीवनावधि के लिए बहुत पहले चुन चुका हूँ। तात्कालिक सुख के अँधेरे में शाश्वत तेज का अनुसन्धान—मेरी मानसिक भूख-प्यास का भुलावा है। जीवन की सार्थकता अभिज्ञान में है या प्रकाश में,—इसे अनिर्णीत ही रहने देना चाहता हूँ। जिसे बाह्य रूप से छोड़ देना पड़ता है, मन उसे भी तो छाती से चिपकाए रहता है। ऐसे में उपलब्धि का गर्व गले; उच्चता की दीवार ढहे या आँखों में अक्लिष्ट स्वप्नों के सत्य-शिखर उभरें, क्या फर्क पड़ता है?

राजा साहब को मैं कब से जानता था यह बताना क्या मुश्किल है? कितना जानता था, इसे भी स्वार्थ की नागफनी पनपा कर, उसके काँटों से तोला जा सकता

मगर कुछ खोई हुई खामोश आहों को टटोल कर और उनके मुँह में दो बोल
ल कर भी तो बाहम खयालों का एहसास हो सकता है :—

तब बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के निदेशक स्वनामधन्य आचार्य्य शिवपूजन सहाय
। संचालक मण्डल के निर्णय के अनुसार मुझे 'ध्वन्यालोक' पर भाष्य लिखने के
ए आमन्त्रित किया गया था। तात्कालिक शिक्षामंत्री आचार्य्य बदरीनाथ वर्मा
अध्यक्षता में सामान्य समिति की बैठक हो रही थी। समिति का सदस्य मैं परिषद्
जन्मकाल से ही था। श्री जगदीशचन्द्र माथुर ने पूछा :

"आपका भाष्य कितने पृष्ठों का होगा ? अन्दाजन आप कितने पृष्ठ लिख
कते हैं ?"

"निर्मूल और अनपेक्षित न लिखने पर केवल पाँच हजार"—मेरा संक्षिप्त
तर था।

पाँच हजार पृष्ठ ?—समवेत स्वर का विस्मय गूँज उठा।

राजा साहब उठे :

"आज भारतवर्ष में आचार्य्य जानकीवल्लभ शास्त्री के अलावा ऐसा कोई है ही
हीं जो 'ध्वनि शास्त्र' पर हिन्दी-पाठकों के लिए सुगम और सुबोध भाषा में विशद
ौर प्रामाणिक भाष्य लिख सके !"

'मिथिला, मिथिला में'—कहते हुए एक सज्जन उठ खड़े हुए—'ऐसे और लोग हैं,
। सकते हैं......'

राजा साहब ने रोका :

"सिर्फ संस्कृत जानने से क्या होगा ? आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की जैसी ललित,
धुर और जिंदा भाषा लिख सकेंगे वे ? रूखी भाषा में सूखे वाद-विवाद कौन
ढ़ेगा ?"

—मैं शर्म और झेंप से नजर झुकाए, खुश्क गले से कुछ तरल बोल हिलकोर कर
ाढ़ने के लिए ज्यों-त्यों उठ खड़ा हुआ। मगर बात कुछ बनी नहीं। बुरी तरह
ड़खड़ा गया। सोचने लगा कि हम कभी ऐसे करीब न हुए कि मेरे शब्दों की ताजगी
ा वाक्य-विस्तार के सुडौलपन पर गौर करने का मौका मिला होगा, फिर राजा
ाहब पहले मेरे निर्मल ज्ञान और फिर उसकी अनुरूप अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में ऐसी

दृढ़ता से कैसे बोल गए ? मँजी हुई और चलती, बढ़िया और मुहावरेदार हिन्दी लिखना ही एक हद तक मुश्किल है फिर उसमें किसी शास्त्र की जटिलता और गहनता को आईने की तरह चमका कर, पारदर्शी बना कर प्रस्तुत करना कितना कठिन है ! 'हे ईश्वर, राजा साहब की इस भावाकुल आस्था को मैं किस जोत से उजालूँ ?' मगर जब मुँह खुला तो जैसे कुएँ का मेढ़क ही बोला—

आप जानते हैं : परिषद् ने 'काव्यमीमांसा' का एक अनुवाद प्रकाशित किया है। हिन्दी के कुछ विद्वानों ने उसकी तारीफ में कलम तोड़ ली है। बेशक ये विद्वान् संस्कृत नहीं जानते। अनुवाद में क्या छूटा, क्या टूटा, क्या कायदे का और क्या बेढंगा है, इन्हें नहीं मालूम। ये तो बस कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा पर फिदा हो गए। मगर कोई मर्मज्ञ देखेगा तो उसे वह अनुवाद कुछ यूँ ही-यूँ ही-सा, मालूम देगा।

—दरअस्ल मेरे लब पर यह फिकरा राजा साहब के दावे की ताईद में उफन आया था, जो जीभ काट कर फूक मारने पर भी फिर जमा नहीं। मैं किसी के ईमान को झुठला कर बददुआ लेना नहीं चाहता था फिर भी गाहे-गाहे इंसान से ऐसी गलती हो ही जाती है; नए-नए ख्वाब बुनती हुई निगाहों में गुस्ताख गुरूर शामेगम का धुआँ भर देता है !

यों राजा साहब की आँखों में चमक आ गई थी मगर मेरे तपे हुए सहरे-से नयन एक घायल हिरन की प्यास पिए हुए थे।

× × ×

पटना के पुराने बिहार विश्वविद्यालय में सिनेट की बैठक हो रही थी। रायबहादुर श्यामनन्दन सहाय उपकुलपति थे। Agenda में मेरी नौकरी के Confirmation-सम्बन्धी विचार-विमर्श भी शामिल था। साल भर से संस्कृत कॉलेज की सरकारी नौकरी छोड़ कर हिन्दी-साहित्य, विशेषतः छायावाद पढ़ाने के ख्याल से रामदयालु सिंह कॉलेज में आ गया था। अवकाश की अवधि समाप्त हो रही थी। आज जय-क्षय का फैसला होनेवाला था। मेरी असफलता और निन्दा के लिए लालायित व्यक्तियों की लपक-झपक और निष्ठाहीन मिथ्या समर्थन का खाका खींचना कठिन है। कुछ व्यक्ति मिश्र प्रकृति के होते ही हैं, उनकी दोधारी तलवार गरदन पर लटकती रहती है तो अपने को समझने में काफी सहूलियत होती है। कैसी भी क्लिष्ट-

कठिन संभावनाओं की कल्पना तब सचाई से नहीं डिगा पाती। मैंसब कुछ सुनने के लिए कान का मैल निकलवा करके ही हाजिर हुआ था।

ऐसे में आँखों में मुसकान की रोशनी और वाणी में प्रकाश की शब्द-शक्ति लिए हुए प्रो० नवलकिशोर गौड़ उठे और लय-पूर्ण विचारों के निर्मेघ गगन में मेरा नाम उछालने लगे। सहसा तुलसीदास जी का एक पद मन के वन में गूँज उठा कि राम ने अपने भलेपन से मेरा भला कर दिया।

'मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई'—विनयपत्रिका

मैं तो माँ का सूखा आँचल मुँह में देकर भूख की हुड़क बुझाने वाला बच्चा रहा हूँ, अहा! मेरे लिए गौड़ साक्षात् 'गौड' बन कर खड़े हुए हैं!

आइ० ए० में 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' पढ़ा था:

"The quality of mercy is not strained,
It droppeth as the gentle rain from heaven,
Upon the place beneath: it is twice bless'd,
It blesseth him that gives and him that takes:"

सच ही तो, जहाँ शिव जी या नलिन जी न थे, प्रो० दामोदर ठाकुर या डॉ० नर्मदेश्वर झा न थे, वहाँ यह ईश्वरीय अनुग्रह नहीं तो और क्या था जो मीटिंग में मेरी नौकरी पक्की कराने गौड़ जी आ गए थे।

लेकिन नहीं, नियति मेरी साधना की अनुगता नहीं हुई थी! वह तो कुछ और ही था—एक दुःखान्त विवाह का सुहागरात की रंगरलियों से भरा हुआ आरम्भ। प्रशंसा की फूँक से मेरी साधना की आग पर जमी हुई दैन्य की राख नहीं उड़ पाई।

और तभी राजा साहब उठ खड़े हुए और Superlative से शुरू हो कर मेरी सिफारिश में कुछ ऐसे नाम गिना दिए (बेशक वे नाम राहुल सांकृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी-जैसे कंकरीट और लोहे न होकर सर्वसहा धरित्री और खौलते-उबलते हुए

लावे के थे) जो एम० ए० पास न होने पर भी अँग्रेजों के जमाने से तबतक के कॉलेजों में सफल प्राध्यापक होते आए थे। और.....खैर,

सवाल डेढ़ टके की नौकरी का नहीं, राजा साहब के बेपनाह बड़प्पन का है। मेरी अकड़ी हुई देह पर से तो सख्त और कमजोर कदमों का वह कारवाँ भी गुजर चुका है जो सदियों से भूरे रंग की बंजर जमीन और सब्ज-सुर्ख चमन को एक-सी लापरवाही से रौंदता आया है।

उनके स्नेह और समादर के सम्मिलित संभ्रम का मैं कदापि अधिकारी न था। वह उनकी अपनी ही सदाशयता थी जो इस चारों ओर फैले हुए आकाश और हर ओर घिरी हुई धरती को फूलों से भर देती थी। मेरा मुर्दा अहङ्कार उनकी सरल वाणी का अलङ्कार बनने योग्य न था।

फिर तो मुड़ कर देखने पर ऐसे कितने ही अवसर याद आते हैं जिनका आँखों देखा हाल कहनेवाले कभी कोई मिल जायँगे। मैं अटल सच्चाई से कतराता नहीं, किन्तु जड़ वास्तविकता को रंगारंग कल्पनाओं से महकानेवालों की मुखरता को वधिर की तरह विस्मय से सुनने में भी एक आनन्द है।

"गुदाजे इश्क नहीं कम, जो मैं जवाँ न रहा,
वही है आग मगर आग में धुआँ न रहा"

उनके जीवन-काल में उन पर मेरा एक ही लेख छप सका :—'शैलीकार राजा साहब।' बीते दिनों की याद एक अजब धूमिल अवसाद मन में भरने लगती है! सोचा था, अलग-अलग दृष्टिकोण से ऐसे एक दर्जन निबन्ध लिख डालने पर 'राजा साहब' पर एक किताब ही तैयार हो जायगी। मगर मेरी तड़ित्-जलन बुझाने दल-बादल उमड़ पड़े : 'नई धारा' के कार्यालय से वह लेख चमत्कारपूर्ण ढंग से गायब हो गया। उदयराज जी के अलावा स्वयं 'राजा साहब' ने उसकी खोज ढूँढ में काफी वक्त दिया, मेहनत-मशक़्क़त की। मसलन—पत्र-पत्रिकाओं के ऑफिसों में खबर कर दी; खुद चौकसी बरती, तब कहीं 'पाटल'-सम्पादक श्री राम दयाल पाण्डेय ने दूसरे नाम से, दूसरी हस्तलिपि में उनके पास प्रकाशनार्थ पहुँचे हुए उस लेख को शनाख्त के लिए राजा साहब के पास भेजा और इस प्रकार महीनों बाद अनमिल मिलावट की बू लिए

हुए वह लेख मेरे नाम से 'नई धारा' में छपा। फिर क्या ? मेरा उत्साह ठंडा हो गया। और, मन की मन में ही रह गई।

× × ×

राजा साहब का साहित्य साठोत्तरी हिन्दी-समीक्षा के बहुत मुआफिक नहीं भी आ सकता है। 'सावधानी से कतराने या हकीकत को मेहनत से छिपानेवाले, आलोचकों को 'नासदीय सूक्त' के अन्दाज में पौ फटने से पहले की अन्धेरी गुफाओं का आभास राजा साहब भी दे सकते हैं। मेरी समझ से, आज जिस ज्योति से हर डगर जगर-मगर है उसे इस समतल तक उतारने की कठिन भूमिका अदा करनेवाला सरोजिनी नायडू के इन शब्दों को दुहराने का हकदार है :—

"The long night is o'er and our labour is ended,
Fair blow the fields that we tilled and tended;
Swiftly the harvest grows mellow for reaping
The harvest we sowed in the time of your sleeping."

तुम्हारे हृदय में अगर अनुभूति न रही, तो फिर तुम्हारे सर पर तपस्या की विभूति या मोतियों के मुकुट की दीप्ति रही या न रही—दोनों बराबर है।

—राधिकारमण

दुर्गा प्रसाद

उपायुक्त, वाणिज्यकर, हजारीबाग

✠

मुझे याद आता है १७ दिसम्बर १९५९, जब सूरजपुरा में मैंने उनके यहाँ जाकर उनका महल देखा, उनका सरोवर देखा और देखा बादाम का गाछ जिसे वे बहुत चाहते थे। उस समय लगा था जैसे मैं ऐसी जगह आ गया हूँ जहाँ कभी राजाओं के सपने जन्म लेकर शरीर धारण करते रहे होंगे। पर यह तो एक दूसरे साम्राज्य के राजा थे, जनमानस के राजा और तब लगता है काश आज वे सामने होते और मैं उन्हीं के अन्दाज में उनसे कह पाता—

किसी में रंगो बू ऐसा न पाया
चमन में गुल बहुत गुजरे नजर से।

✠

राजा साहब–जिन्होंने अपनी जिंदादिली से लोगों के दिलों पर राज किया

१९४६ में पटने से राजा साहब के संरक्षण में 'कहानियाँ' नामक एक पत्रिका निकलती थी। उसमें मैंने उन दिनों एक कहानी लिखी 'अधूरी कला'। पत्रिका में सर्वश्रेष्ठ कहानी के लिए पुरस्कार था। पुरस्कार मिलने की जो खुशी हुई वह उस

आह्लाद के सामने कुछ भी न था जो राजा साहब का वरदहस्त सर पर पाने से हुआ। यह मेरा दुर्भाग्य है कि मैं उनके आशानुकूल न बन सका पर उन्होंने तो जिसे अपना लिया बराबर के लिए अपना लिया। वे तो ऐसे जाज्वल्यमान नक्षत्र थे जो दूसरों के अँधेरे को रौशन करता है, एक ऐसी प्रतिभा थे जो सदियों में एक बार आती है।

मैं जब कालेज में पढ़ता था, राजा साहब ने एक भाषण दिया था—'जिनकी जवानी उनका जमाना।' हर सुनने वाला झूम-झूम उठा था। वे शब्दों में ताल और तरंग पैदा कर सकते थे। हर मौके के लिए मौजूँ शेर कह सकते थे। क्या हिंदी, क्या बंगला, क्या संस्कृत और क्या उर्दू ? लगता था भाषा को उन्होंने अपनी चेरी बना लिया है।

इस सम्बन्ध में एक घटना का जिक्र करूँगा। वह भी राजा साहब की ही जबानी। बात १९५९ की है। मैं आरा में था। राजा साहब ने शाम के समय डेरे पर आकर अपनी छड़ी से दस्तक दी। फिर तो कुछ ही देर में हम साहित्य की दुनिया में खो गये। राजा साहब ने ठीक उसके एक दिन पहले की एक घटना सुनाई जिसे मैं आज तक भूल नहीं पाया हूँ। आप भी उन्हीं के शब्दों में सुनिये।

बोले—"भई, कल की एक मजेदार बात सुनाता हूँ। पटने में मैं कल श्री बाबू (तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ० श्रीकृष्ण सिंह) के यहाँ गया था। बातों-बातों में जमींदारों की मौजूदा हालत और उन्हें मिलने वाले मुआवजा और जमींदारी बौण्डों पर बात छिड़ गई। मैंने कहा—श्री बाबू ! आपलोगों ने तो पलभर में राजा को रंक बना दिया पर कुछ उनकी सुध भी तो ली होती। आपने कहा कि हम जमींदारों को मुआवजा देंगे पर यह मुआवजा तो मानों स्वाती की बूँद जैसा दुर्लभ बन गया है। श्री बाबू ने उत्तर दिया—राजा साहब, यह किसी व्यक्तिविशेष का आश्वासन तो है नहीं कि आप घबरा रहे हैं। यह तो राज्य सरकार के द्वारा दिया गया आश्वासन है और हम इसे कार्यान्वित करेंगे भी। आप कम-से-कम इस बात पर तो भरोसा कीजिए कि यह सरकार का मामला है।

मैंने कहा—इजाजत हो तो इस बात पर एक शेर अर्ज करूँ।

श्री बाबू ने कहा—हाँ, हाँ, कहिए।

मैंने कहा—

'जिसकी बेवफाई पर हजारों जान देते हैं
खुदाया वह सितमगर बावफा होता तो क्या होता !'

श्री बाबू ने कहा—खूब कही। मगर यह तो सोचिए राजा साहब कि क्या छह महीने का खाना कोई एक दिन में खा सकता है ? मुआवजा के लिए हमारी इतनी बड़ी मशीनरी है, इतने लोग हैं, लाखों-करोड़ों का हिसाब है, वक्त तो लगेगा ही। आपको थोड़ा सब्र से भी काम लेना चाहिए।

मैंने कहा—इजाजत हो तो एक और शेर अर्ज करूँ।

श्री बाबू बोले—जरूर कहिए।

मैंने कहा—

'तेरे वादे पै सितमगर अभी और सब्र करते
अगर अपनी जिंदगी का हमें एतबार होता।'

श्री बाबू ने कहा—अब आपसे कौन बहस कर सकता है ? मैं तो बस इतना ही पूछूँगा कि अगर कोई दूसरा जमींदार मुझसे कहता तो मैं मान भी लेता पर आप को क्या कमी है ? प्रेस खोल रखा है, नई धारा निकलती है, बोरिंग रोड में मकान है, घर पर महल है, सैकड़ों बीघे की काश्त है, फिर आप क्यों बेताब हो रहे हैं ?

मैंने कहा—अब इजाजत हो तो एक और शेर अर्ज करूँ।

श्री बाबू ने कहा—सुनाइये, सुनाइये। आप न कहियेगा तो कौन कहेगा ?

मैंने कहा—

'मेरी खाक भी न रही लहद में मीर बाकी
उन्हें मरने ही का नहीं एतबार होता।'

श्री बाबू ने कहा—आपने मुझे लाजवाब कर दिया राजा साहब ! इसलिए साहित्यिक से जूझना खतरनाक होता है ! मैं हार गया।

मैंने कहा—तो इजाजत दीजिये कि आखिरी शेर अर्ज करूँ। और बिना उनकी इजाजत की प्रतीक्षा किये हुए कहा—यह जान लीजियेगा कि

'हमीं जब न होंगे तो क्या रंगे महफिल
किसे देख कर आप शर्माइयेगा ?'

× × ×

आज राजा साहब नहीं हैं, मगर उनकी बातें, उनकी जिंदादिली, उपन्यासों के जीवन्त पात्र, उनकी शेर-ओ-शायरी आज भी मानों इर्दगिर्द घूमती है। मुझे याद आता है १७ दिसम्बर १९५९, जब सूरजपुरा में मैंने उनके यहाँ आकर उनका महल देखा, उनका सरोवर देखा और देखा बादाम का गाछ जिसे वे बहुत चाहते थे। उस समय लगा था जैसे मैं ऐसी जगह आ गया हूँ जहाँ कभी राजाओं के सपने जन्म लेकर शरीर धारण करते रहे होंगे। पर यह तो एक दूसरे साम्राज्य के राजा थे, जनमानस के राजा और तब लगता है काश आज वे सामने होते और मैं उन्हीं के अन्दाज में उनसे कह पाता—

'किसी में रंगो बू ऐसा न पाया
चमन में गुल बहुत गुजरे नजर से।'

उठती जवानी तो सामने देखती है—पीछे नहीं। वह अतीत पर नहीं जाती—उलझी रहती है वर्तमान को लिये और रखती है भविष्य पर एक नजर।

—राधिकारमण

नगेन्द्र कुमार

विशेष पदाधिकारी (गजेटियार्स) राजस्व विभाग, पटना—१५

✠

राजा साहब लक्ष्मी और सरस्वती दोनों के कृपाभाजन थे। सरस्वती के शायद अधिक। मुझे विश्वास है कि आनेवाली पीढ़ियाँ दिनानुदिन उनकी रचनाओं से अधिकाधिक आनन्द प्राप्त करेंगी।

✠

राजा साहब से मेरी पहली मुलाकात

मैं एक क्षण उनकी ओर देखता रहा। सोचा, नहीं तो? इनसे तो पहले कभी भेंट नहीं हुई है? फिर मैं जरा गौर से उनकी ओर देखने लगा। नहीं, इन्हें पहली बार देख रहा हूँ।

यह घटना, जहाँ तक मुझे स्मरण हो रहा है, मार्च, १९४७ की है। मैं उन दिनों आरे में डिपुटी कलेक्टर के पद पर आसीन था। हाल में ही उस शहर में गया था। फिर एकदम जूनियर होने के कारण ऊँचे सर्किल में मेरा प्रवेश भी न हो सका था।

मैं हूँ राजा राधिकारमण। उन्होंने बड़ी सादगी से कहा।

राजा साहब!

मैं सहसा विश्वास न कर सका कि वास्तव में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी मेरे सामने खड़े हैं।

आरे का कतिरा मुहल्ला उन दिनों सिविल लाइन कहलाता था। बड़े-बड़े हाकिम-हुक्काम शहर के इसी हिस्से में रहते थे। राजा-महाराजाओं की कोठियाँ भी इसी तरफ थीं। जूनियर आफिसर भी सदा यत्नशील रहते थे कि मकान इसी तरफ मिले। किराया भले ही औकात से फाजिल क्यों न हो? पर ऊँचे अधिकारियों की आँख में जँचने के लिये यह आवश्यक था।

प्रातःकाल सात बजे का समय। मैं अपने दो मंजिले मकान के नीचे के बरामदे में खड़ा हूँ। यह मकान कतिरा की तिमुहानी पर अब भी मौजूद है।

—सोचा, कॉल देता चलूँ।

राजा साहब ने कहा।

—मुझे ही पहले आना था। क्षमा करेंगे, आने के साथ ही दो महीने के लिये दिहात में भेज दिया गया था। यही दो रोज पहले आया हूँ।

उन दिनों सरकारी आफिसर गिने-चुने होते थे। आरे में तो डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट, जिला जज और पुलिस सुपरिंटेंडेन्ट प्रायः अंगरेज ही होते थे। एक परंपरा बनी थी कि सरकारी अधिकारी एक खास वर्ग के लोगों से ही सामाजिक लगाव रखेंगे, जिसमें राजा, महाराजा और बड़े जमीन्दार प्रमुख थे।

—कृपया अन्दर पधारें।

दरवाजे के परदे को उठाकर मैंने उन्हें ड्राइंग रूम में बैठने का आग्रह किया।

—आज तो बस इतनी ही हाजरी रहे। फिर कभी आऊँगा।

कहकर राजा साहब ने बैठने में असमर्थता प्रगट की।

यह कैसा रहा। मैं मन-ही-मन भिन्ना उठा। आये भी और नहीं भी आये। हो न हो, इनके मामले मेरी तजबीज में हों।

राजा-महाराजा कहीं बिना अग्रिम सूचना दिये जाते हैं? वासन्ती हवा खाने राजा साहब अपनी कोठी से सबेरे निकले हों और शायद भूल से मेरे मकान में चले

आये ? सोचते हों पंडित विभूतिनाथ झाजी अब भी इस मकान में हों ? या ऐसी बात भी तो हो सकती है कि इस मकान में रहने से जूनियर आफिसर की कीमत भी बढ़ जाती है, चूँकि लोग तो यही न समझते हैं कि छोटे पावर का आदमी ऐसी कोठी में क्योंकर रहेगा ?

—देखिये, आलमारी के पहले खाने में मैंने आपकी पुस्तकें सजा कर रख दी हैं। मैं नियमित रूप से प्रति रविवार को दो घंटे आपकी कृतियों को पढ़ता हूँ।

राजा साहब ड्राइंग रूम में आकर पुस्तकों को देखने लगे।

—यह है 'तरंग' की पुरानी प्रति।

शायद आपकी यह पहली रचना हो ?

राजा साहब आश्चर्य से मेरी ओर देखने लगे।

फिर तो हमलोग साहित्यालाप में डेढ़ घंटे इस तरह खो गये कि चपरासी के स्मरण दिलाने पर कि कचहरी का समय हो रहा है, हमलोग उठे।

इसके बाद राजा साहब से हमारी दिनोंदिन घनिष्ठता बढ़ती गयी। आरे में वह बहुधा आते रहते थे। मैं भी जब विक्रमगंज जाता तो सूरजपुरा जाने को थोड़ा समय निकाल लेता था। आरे में संयोजित साहित्य एवं संगीत की कितनी ही गोष्ठियों में मैंने १९४७-४८ में उनका सहयोग प्राप्त किया। इनके विषय में तो कभी अन्य मौके पर ही लिख सकूँगा।

राजा साहब लक्ष्मी और सरस्वती दोनों के कृपाभाजन थे। सरस्वती के शायद अधिक। मुझे विश्वास है कि आनेवाली पीढ़ियाँ दिनानुदिन उनकी रचनाओं से अधिकाधिक आनन्द प्राप्त करेंगी।

जब जी में जी ही नहीं तो फिर जिन्दगी कोई जिन्दगी है ?

—राधिकारमण

नन्दकुमार राय
१/१ मालवीय नगर, नई दिल्ली-१७

राजा साहब शील के धनी तो थे ही, पर उससे भी बढ़कर वास्तव में वे शिल्प के कुबेर थे। उनकी पारदर्शी शैली में उनका व्यक्तित्व झाँकता है। इसलिए किसी भी पाठक—आलोचक को उनकी शैली के सम्बन्ध में न कोई भ्रम होता है, न हो सकता है। शैली और शैलीकार का यह सबसे बड़ा वैशिष्ट्य होता है। इनकी भाषा में एक सहज कोमलता व मृदुलता का अनुभावन होता है। भाषा की रंगामेजी इनके रेशमी शिल्प की सबसे बड़ी खूबी है। यही कारण है कि इनके साहित्य में शील और शिल्प का—विवेक व भावुकता का मणि-काञ्चन संयोग दिखाई पड़ता है।

शील और शिल्प के कुबेर : राजा साहब

साहित्यकार के व्यक्तित्व और लेखन की सबसे बड़ी पूँजी होती है—शील की महनीयता और उदात्तता। ऐसा इसलिए; क्योंकि उसका समस्त लेखन, वस्तुतः उसके ही निजी व्यक्तित्त्व का अन्वयन एवं योगात्मक अभिव्यक्ति होता है। सृष्टि के लिए दृष्टि की गहनता सर्वथा सापेक्ष होती है अन्यथा इसके अभाव में उसके (सृष्टि के) अन्धापन की सतत् संभावना बनी रहती है। दृष्टि जीवन और व्यक्तित्त्व की अंगीभूत चेतना है, जिसमें भावना, अनुभूति और प्रज्ञा का योगात्मक समाहार होता है। मोविज्ञान का अजमाया सत्य इस तथ्य का पक्षधर है कि व्यक्तित्व का निर्माण व निर्धारण वंशानुक्रम और परिवेश के योग से होता है अर्थात् वंश एवं वातावरण (Heredity & Environment) दो ऐसे अनिवार्य व मूलभूत तत्त्व हैं, जिनके

संयोग से व्यक्तित्व का निर्माण सुचारु रूप से होता है। किसी भी एक के अभाव में उसके पूर्ण वय-विकास में संदेह की किञ्चित् संभावना संभाव्य होती है। तब इतना अवश्य है कि वैसे व्यक्ति समाज और राष्ट्र में बिरले होते हैं, जो मनोविज्ञान के उक्त सिद्धांत के उदाहरण बन सकें। क्रांतिदर्शी कवि संत कबीर ने संभवतः इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए कहा था :

"सिंहों के नहिं लेहड़ें, हँसों की नहिं पाँति।
लालन की नहिं बोरियाँ, साधु न चलैं जमाति।।"

हिन्दी के मूर्द्धन्य कथाकार पद्मभूषण राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह को सुसंस्कृत, सम्मान्य परिवार (सूर्यपुरा-शाहाबाद के राजघराने) तथा साहित्यिक परिवेश में प्रादुर्भूत व प्रौढ़ होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनके पिता—ख्यातिप्राप्त कवि राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह 'प्यारे' भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र तथा रवि बाबू के अनन्य मित्रों में थे। इनके अतिरिक्त उनके (राजा साहब के पिता—'प्यारे' कवि के) अच्छे-खासे दोस्तों में अन्य कई प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे, जैसे श्री अतुलचन्द्र चटर्जी, मौलवी फजल इमाम तथा मिस्टर रॉबिन्सन आदि। ध्यातव्य यह है कि उनके दरबार में कवि लछिराम, कवि प्रभाकर (महाकवि पद्माकर के पौत्र) तथा कवि संत जैसे प्रातिभ कवि रहा करते थे, जिनका एकजुट संस्कारगत प्रभाव राधिकारमण प्रसाद सिंह पर पड़ा। स्पष्ट है कि साहित्यिकता उन्हें विरासत के रूप में प्राप्त हुई थी। इस प्रकार, कुल की कमनीयता और परिवेश की दो प्राञ्जल सीपियों के मध्य जिस मोती का आविर्भाव हुआ, उसे ही व्यक्ति-रूप में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के नाम से अभिहित किया गया।

विधेयात्मक तथा अभिधात्मक रूप से वे राजा थे—महान् राजा! न केवल इसलिए, क्योंकि लक्ष्मी की गोद में वे जन्मे, पले, बढ़े और विकसित हुए, प्रत्युत् इसलिए कि भावना और अनुभूति के धनी थे, शील का औदात्य उनका सहज स्वभाव था तथा अभिव्यक्तिगत शिल्प की इयत्ता पर था उनका आधिपत्य। इस प्रकार, भावना, अनुभूति, विचार, चिन्तन, शील और शिल्प—एक ही साथ वे सबके राजा थे। इतना सब कुछ होते हुए भी कभी उनके महनीय व्यक्तित्व पर अभिमान अथवा अहं भाव का दाग न लग सका; क्योंकि (सूर्यपुरा के) राजभवन में रहकर भी भगवान बुद्ध की भाँति सदैव उन्होंने 'चरम सत्य' और 'सत्ता' के चिन्तन में अत्मविसर्जन किया। सच्चा

साहित्यकार स्रष्टा की तरह महान तथा अनासक्त होता है। राजा साहब उसके विरल उदाहरण रहे हैं। साहित्य की साधना को अनवरत् रूप से उन्होंने अपने जीवन का चरम उद्देश्य माना। यही कारण है कि उनके साहित्य में समग्रात्मक रूप से उनकी निःस्वार्थ भावना तथा तपस्या की सुगंधि मह-मह करती प्रतीत होती है।

राजा साहब का प्रसंग जब कभी हमारे सामने आता है, मेरे भाल पर गर्व और स्वाभिमान की अनगिन रेखायें उभर आती हैं। लगता है, जैसे अपने ही परिवार की पितः पीढ़ी की प्रशंसा से मन गदरा-गदरा उठता हो। वस्तुतः वे दूसरों के लिए परिचय के साधन और माध्यम थे। बहरहाल, मैं अपने गाँव-नगर और प्रान्त से दूर—देश की राजधानी (दिल्ली) में रहता हूँ। जब किसी राजनीतिक नेता से यहाँ बातें होती हैं, तब शान से परिचय देता हूँ—'...हाँ! जी, बिहार रहता हूँ: राजेन्द्र बाबू का बिहार।' संयोगवश जब किसी साहित्यकार, लेखक अथवा बुद्धिजीवी से आत्म-परिचय देना होता है, आत्मश्लाघा के लहजे में तब जैसे कहता हूँ—'साहब, बिहार रहता हूँ: दिनकर, बेनीपुरी और 'राजा साहब' का बिहार।' दिनकर तो दूर के हैं किन्तु राजा साहब (...'हाँ, 'राम रहीम' के उपन्यासकार 'राजा साहब') से इलाके और जिले का नैकट्य और अपनापा है। इससे भी मजे की बात तो यह है कि उनके साथ मेरा वैयक्तिक व पारिवारिक सम्बन्ध भी कुछ कम सघन न था। किन्तु, क्रूर काल के दंशन ने इन सारे रिश्ते-नातों को स्मृति के श्वेत वस्त्रों से सदा के लिए आवृत कर दिया है सम्प्रति, शेष-परिशेष हैं—साहित्य के तट पर श्रद्धा की भाव-भीनी तरल तरंगें, जो साहित्य के उस सम्राट् व देवता के चरणों को स्पर्शित कर, बार-बार गमन-आगमन के नैरन्तर्य का उपक्रम करती हैं।

वस्तुतः राजा साहब के सम्बन्ध में मेरा संस्कार शुरू से ही बड़ा 'कॉन्शस' रहा है। मेरे पिता प्रारंभ से ही साहित्यिक प्रवृत्ति के व्यक्ति हैं। अक्सर राजा साहब और उनके लोकप्रिय उपन्यास 'राम-रहीम' की वे चर्चा किया करते तथा मैं पुस्तक के पृष्ठों पर टकटकी लगाए, बड़े गौर से उनकी वे बातें सुनता और ग्रहण करता। तभी से मेरे मन में राजा साहब से सम्बद्ध वे सारी बातें परतों की तरह पैठ गईं। कालांतर में मैं 'हर प्रसाद दास जैन कॉलेज' (आरा) में स्नातक 'प्रतिष्ठा' का छात्र था। उन्हीं दिनों कॉलेज में साहित्यिक सभा का आयोजन हुआ था। कई बड़े नामी-गरामी लेखक-साहित्यकार आए हुए थे। 'आचार्य-भाषण-मंदिर' में सभा की कार्यवाही

चल रही थी । संयोगवश, कुछ ही समय पश्चात् आकाश में बादलों की एक टोली का जमघट हुआ और पुनः वर्षा की रिमझिमाती बूँदों में धरती स्नात हो गई । छात्रों की भीड़ ने करवटें बदलनी शुरू की । तब तक राजा साहब ने अभिमंच से अपना अभिभाषरण प्रारंभ किया । वर्षा की गति, तब काफी जोरदार हो चुकी थी । लेकिन उनके भाषरण में इतना ओज, गांभीर्य और माधुर्य था कि छात्रों की भीड़ मंच के करीब, और—और करीब आती गई तथा घर भागते छात्र पुनः मंच के पास वापस लौटकर बड़े शान्त भाव से उनका भाषरण सुनने और ग्रहरण करने लगे । यह क्रम अन्त-अन्त तक बना रहा । यह घटना कम-से-कम इस बात का साबूत है कि राजा साहब की दिव्य वारणी में कितना मधुर आकर्षरण था । वैसे तो मैंने एकाधिक बार उनका दर्शन किया था लेकिन अपने शोध के क्रम में उनके आवास पर जा-जाकर अपनी शंका व समस्याओं के निदान के लिए मैं उन्हें कितना कष्ट दिया करता था । फिर भी, उनके चेहरे पर उदासी और परेशानी के भाव तो हुए नहीं, बल्कि स्मित मुद्रा में बड़े स्नेह से वे मिलते और मेरी जिज्ञासा का परिशमन करते । अब तो लगता है, जैसे अतीत के वे सारे परिघटित सत्य कल्पना और स्वप्न की सीमा बनकर मेरी चेतना के समक्ष आवर्त्तित हो रहे हों !

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (पृ० ५०४) में लिखा है—"सूर्यपुरा के राजा राधिकारमरण प्रसाद सिंह हिन्दी के एक अत्यन्त भावुक और भाषा की शक्तियों पर अद्भुत अधिकार रखनेवाले पुराने लेखक हैं। उनकी एक अत्यन्त भावुकतापूर्ण कहानी 'काँनों में कँगना' सं० १९७० में 'इन्दु' में' निकली थी । उसके पीछे आपने 'बिजली' आदि कुछ और सुन्दर कहानियाँ भी लिखीं ।' कतिपय समीक्षकों ने राजा साहब की पहली कहानी 'काँनों में कँगना' को ही हिन्दी की भी पहली कहानी मानना अधिक उचित माना है, जिससे असहमत नहीं हुआ जा सकता । आचार्य शुक्ल के उपर्युक्त उद्धरण से दो बातें स्पष्ट होती हैं । एक तो यह कि राजा राधिकारमरण प्रसाद सिंह भावुक कथाकार थे और दूसरी बात यह कि भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था । भावुक कथाकार अपनी कथा-यात्रा में जिन चरित्रों का निर्मारण करता है, उनके शील और व्यक्तित्व को अपनी प्रतिभा की कूँची से रंगसाजी कर प्रस्तुत करता है । चूँकि प्रस्तुत कथाकार स्वयं शील के प्रतिमान और उदाहरण थे इसलिए उनके कथा-साहित्य में उनके व्यक्तित्व से छनकर जो पात्र निर्मित हुए हैं,

निश्चय ही वे शील, संयम, करुणा, सहानुभूति और मानवता के उदात्त भावों के ज्ञापक प्रतीत होते हैं। अपने बहुचर्चित उपन्यास 'राम-रहीम' में एक स्थल (पृ० ५७) पर उन्होंने लिखा है—"राजा होने से कहीं ज्यादा जरूरी बन्दा होना है। सर पर ताज की तलाश से कहीं ज्यादा जरूरी आदमी के लिबास की तलाश है।......आदमी की पहचान **आदमीयत** है, दूसरी नहीं।" इस **'आदमीयत'** की सही तलाश, पहचान, उसके परिवर्द्धन और निर्वाह में ही उन्होंने आत्म-विसर्जन किया।

साहित्य का ग्रहण वे जीवन के परिप्रेक्ष्य में करते हैं। यही कारण है कि वे वैसी रचनाओं को ही विशेष महत्त्व देते, जो जीवन और समाज को क्वचित् श्रेयस् तत्त्व प्रदान कर सके। इस प्रकार, साहित्य में वे सोद्देश्यता के हिमायती रहे हैं। कहने का मूल अभिप्राय यह कि साहित्य को समग्रात्मक तौर पर वे लोकमंगल का एक विशिष्ट साधन मानते हैं। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का व्यक्तित्व स्फटिक-जड़ित संगमर्मर की तरह श्वेत तथा शील का आदर्श प्रतिमान था। इसलिए उनके साहित्य में अभिव्यक्त मूल अनुभूति और संवेदना में भी महनीयमता का संस्पर्श मिलता है।

राजा साहब शील के धनी तो थे ही, पर उससे भी बढ़कर वास्तव में वे शिल्प के कुबेर थे। उनकी पारदर्शी शैली में उनका व्यक्तित्व झाँकता है। इसलिए किसी भी पाठक-आलोचक को उनकी शैली के सम्बन्ध में न कोई भ्रम होता है, न हो सकता है। शैली और शैलीकार का यह सबसे बड़ा वैशिष्ट्य होता है। उनकी भाषा में एक सहज कोमलता व मृदुलता का अनुभावन होता है। भाषा की रंगामेजी इनके रेशमी शिल्प की सबसे बड़ी खूबी है। यही कारण है कि इनके साहित्य में शील और शिल्प का—विवेक व भावुकता का मणि-काञ्चन संयोग दिखाई पड़ता है।

शील, शिल्प और संयम का वह कुबेर, अब पार्थिव शरीर से हमारे बीच नहीं रहा, किन्तु उसके लेखन की जीवन्तता और शालीनता सदैव अक्षुण्ण रहेगी। स्मृति के इन घनीभूत क्षणों में वैसे उदारमना साहित्य-सम्राट् के लिए पूजा-अर्चन व श्रद्धा के दो पुष्प भर शेष-परिशेष हैं। मर कर भी काल के पत्र पर वे अमरता के शाश्वत वाचक हों—यही हमारा प्रणव-स्तवन है!

नरेश पाण्डेय 'चकोर'
बोरिंग रोड, पटना

एक जगह रहने के नाते उनसे कहीं न कहीं प्रायः रोज मुलाकात हो जाती थी। एक दिन देखा एक खोमचा वाले को रोके हुए हैं और उसके खोमचे से मिठाई लेकर झोंपड़ी के बच्चों, स्त्रियों और पुरुषों को बाँट रहे हैं। बाद में पता चला कि कभी-कभी वे वैसा करते हैं और खोमचा वाले को रुपया दे देते हैं।

आज चिर निद्रा में सोये राजा साहब के शांत, स्निग्ध और प्रसन्न चेहरे को देखकर ऐसा लग रहा है कि कोई ऋषि समाधिस्थ हो। आज करीब ६ बजे संध्या उत्तर बिहार के सम्पादक श्री रामरीझन रसूलपुरी जी से भेंट होने पर राजा साहब के निधन का समाचार सुन उनके अन्तिम दर्शन हेतु चलने के लिए उत्सुकता बढ़ी और तत्क्षण हमदोनों बोरिंग रोड स्थित उनके निवास की

श्रद्धेय राजा साहब!

ओर चल पड़े—रसूलपुरी जी को उनकी कुछ कहानी सुनते,सुनाते। सौभाग्यवश अन्तिम दर्शन हुए। वहाँ पर उनके अन्य कुटुम्ब के अलावा डॉ० बजरंग वर्मा तथा कुछ नेतागण उपस्थित थे। कुछ देर बाद अपने निवास पर आकर पत्नी को खबर सुनायी तो वे भी उनको याद करके रो पड़ीं।

राजा साहब के स्वर्गवास से ऐसा लगता है कि हिन्दी साहित्य का एक युग समाप्त हो गया। राजा साहब चले गए पर अपनी शैली अपनी अमर देन अपनी अमिट छाप छोड़ गए। उन्होंने क्या दिया और क्या न दिया यह समझना तो अच्छे समालोचक का काम है, मैं तो इस दिशा में एक कदम भी नहीं बढ़ सकता हूँ। किन्तु अभी जब मैं सोचने का प्रयास कर रहा हूँ तो उनकी बहुत सारी ही बातें मानस-पटल पर उभर आयी हैं और मन उन्हें कागज के चन्द पन्नों पर उड़ेलने के लिए बेचैन हो उठा है।

राजा साहब ने मेरे जीवन को एक बहुत बड़ा मोड़ दिया है। उनके प्रथम परिचय के बाद से ही मैं साहित्य-जगत् में प्रवेश करने की दिशा में बढ़ा। सन् १९६२ ई० की बात है। उस समय मेरा प्रथम अंगिका का नाटक 'किसान के जगाव' प्रकाशित हुआ था। एक सज्जन ने मुझे राजा साहब के दर्शन कराए। मैंने राजा साहब को उक्त पुस्तक भेंट की। राजा साहब बहुत खुश हुए। उन्होंने अंगिका के सम्बन्ध में बहुत सारी चर्चा की और तुरत मुझे कार पर बैठा कर चल दिए। मैं आश्चर्यचकित था और सोच रहा था कि वे मुझे कहाँ ले जा रहे हैं? रास्ते में भी वे बहुत-सी साहित्यिक चर्चा करते रहे और बोले मैं आपको डॉ० सुधांशु के यहाँ ले चल रहा हूँ: वे अंग भाषा परिषद् के अध्यक्ष हैं। थोड़ी देर में हमलोग सुधांशु जी के निवास पर पहुँच गए। राजा साहब ने मेरा उनसे परिचय कराया और 'किसान के जगाव' के सम्बन्ध में भी बातें छेड़ीं। फल-स्वरूप मैं अंगभाषा परिषद् के सभी लोगों से मिला और फिर अंगिका विकास अभियान में जुट गया। इससे स्पष्ट है कि राजा साहब एक उदार साहित्यिक थे और नए साहित्यिकों को वे सदा प्रोत्साहित करते रहते थे।

इसके बाद से तो मैं राजा साहब के यहाँ बार-बार जाने लगा और उनसे प्रेरणा

प्राप्त करता रहा। फिर १९६४ ई० से ही मेरा निवास भी उनके बगल में ही हो गया और अब तो मैं उनके निवास के निकट ही स्थायी रूप से निवास करने लगा हूँ। इन दिनों राजा साहब काफी बूढ़े हो चले थे फिर भी स्वास्थ्य इनका बिगड़ा नहीं था। वे रोज दो-ढाई मील टहलते थे। कभी-कभी मैं भी पकड़ा जाता था और चक्कर लगाना पड़ता था। लेकिन इनके साथ चक्कर लगाने में लाभ ही होता था सुललित भाषा सुनने का और अच्छे अनुभव से लाभ उठाने का। अब तक जितनी भी मेरी हिन्दी या अंगिका की पुस्तकें निकली हैं सभी पर राजा साहब के आशीर्वाद मौजूद हैं। अंगिका की पुस्तकों को मुझसे पढ़वाते और उस पर भोजपुरी में कुछ कहते थे।

राजा साहब से जब भी भेंट होती वे कभी तो ताड़गुड़ या कभी मधु की माँग करते थे। मैंने उन्हें एक बार बताया था कि मैं खादी बोर्ड में काम करता हूँ और वहाँ शुद्ध मधु, ताड़गुड़ मिलता है। तब से वे इन चीजों का प्रयोग प्रायः रोज करते थे। इसी सिलसिले में उनकी कुछ बड़ी मजेदार बातें याद हो जाती हैं :—

राजा साहब टहलते-टहलते कभी-कभी मेरे निवास पर आते थे और मेरी पत्नी से मेरे विषय में पूछताछ करते थे। एक दिन राजा साहब मेरे निवास पर आये और मेरी पत्नी से मधु की माँग की। बच्चे की तरह इन्होंने हाथ फैलाया और थोड़ा मधु हाथ में लिया। फिर हाथ धोकर थोड़ा मधु शीशी में लिया। मेरी चचेरी सास जो देहात से आई थीं आश्चर्यचकित थीं। लेकिन बाद में उन्हें राजा साहब की सरलता का पता चला तो बड़ी जोर से हँस पड़ीं।

एक जगह रहने के नाते उनसे कहीं न कहीं प्रायः रोज मुलाकात हो जाती थी। एक दिन देखा एक खोमचा वाले को रोके हुए हैं और उसके खोमचे से मिठाई लेकर झोपड़ी के बच्चों, स्त्रियों और पुरुषों को बाँट रहे हैं। बाद में पता चला कि कभी-कभी वे वैसा करते हैं और खोमचा वाले को रुपया दे देते हैं और रुपया न रहने पर शिवाजी से ले लेने की बात कह देते हैं।

कौन ऐसा व्यक्ति बोरिंग रोड में होगा जो राजा साहब को न जानता हो वैसे

साहित्यिक दुनिया में वे सभी साहित्यिकों के सिरमौर थे ही। अब वे सभा-समिति में नहीं के बराबर जाते थे। लेकिन जिस बैठक में वे गए वहाँ एक नयी रौनक छा जाती थी। पिछले वर्ष यानी १६७० में बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन की रजत जयन्ती में जब इन्हें वयोवृद्ध साहित्यिक पुरस्कार दिया जा रहा था तो इन्होंने कहा 'अब सूर्यपुरा के राजा, राजा साहब नहीं रहे लेकिन अब राजा साहब कलम के राजा हैं।' सचमुच इनके कथन में सोलह आने की सत्यता थी।

आज राजा साहब के निधन पर शोक से जहाँ मन भर आता है वहाँ उनकी सारी स्मृतियाँ उभर आती हैं और मन करता है लिखता ही रहूँ। किन्तु दुःख की इस वेला में अधिक क्या लिखा जाय। भगवान से मेरी प्रार्थना है कि हमारे शैली-सम्राट्, कलम के राजा, पद्मभूषण स्व० राजा राधिकारमण जी को चिर शान्ति मिले।

आदमी के भीतर विकार तो है ही, उसके भीतर एक हृदय भी है, जिसकी एक पुकार प्रेम है।

—राधिकारमण

नागेन्द्र नाथ पाण्डेय 'श्रमिक'
७१६/८ रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली—२२

✣

राजा साहब की उदारता एवं तत्परता के अनेक उदाहरण जो उनके समीप आया, उसके मस्तिष्क-पटल पर निश्चय ही अंकित होंगे। किसी भी आयोजन के लिए उन्हें निमंत्रित कीजिए, राजा साहब से स्वीकृति प्राप्त करने में कोई विलंब नहीं होता था।

✣

राजा साहब के साथ के कुछ पावन प्रसंग

उच्चतर माध्यमिक विद्यालय तिलौथू (शाहाबाद), बिहार के प्रांगण में आयोजित कवि-सम्मेलन-मंच पर बिहार राज्य के गण्यमान्य लब्धप्रतिष्ठ कवि उपस्थित थे। कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के वर्तमान अध्यक्ष एवं सुप्रसिद्ध कवि श्री रामदयाल पाण्डेय जी कर रहे थे। कवि-सम्मेलन प्रारम्भ होने के समय राजा साहब तिलौथू-नरेश के साथ सभा में पधारे। उनके स्वागत में मंच पर बैठे सभी कवियों ने उठकर उनका स्वागत किया, राजा साहब आकर अपनी मुस्कान

भरी स्वाभाविक आकृति में करबद्ध हो उनका अभिवादन स्वीकार करते हुए मंच के नीचे श्रोताओं के साथ ही बैठ गए। कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष कविवर पाण्डेय जी ने उनसे साग्रह अनुरोध किया कि "राजासाहब मंच पर आ जाएँ।" उस अवसर पर राजा साहब की नम्रता एवं सहज वाक्पटुता के दो-एक उदाहरण मेरे मानस-पटल पर यथावत् अंकित हैं। पहले राजा साहब करबद्ध हो मुस्कुराते रहे और यह कहते रहे कि बस, ठीक है। बहुत अधिक आग्रह पर उन्होंने कहा—"आज मैं पीने आया हूँ और आप कविगण पिलाने, पिलाने वाले से पीने वाले का आसन हमेशा नीचे होता है।" राजा साहब जैसे महान् साहित्यकार के मुख से इस प्रकार की बात सुनकर सभी निरुत्तर रह गये।

यह प्रसंग लगभग १९५८ का है, हिन्दी के इस स्वरूप पर उस समय बड़ा विवाद चल रहा था कि हिन्दी का स्वरूप उर्दू-मिश्रित हो, या शुद्ध संस्कृत पर आधारित। पं० नेहरू हिन्दुस्तानी के बहुत बड़े पक्षधर थे। राजा साहब की प्रशंसा करते हुए कविवर श्री रामदयाल पाण्डेयजी ने कहा—"राजा साहब की शैली अनोखी है। हिन्दी की गंगा और उर्दू की यमुना का मिश्रण कर इन्होंने एक नई दिशा प्रदान की है।" श्री पाण्डेय जी का इतना कहना था कि राजा साहब चुटकी ले बैठे—"पाण्डेय जी, तब आज से आप भी इस मिश्रित धारा के प्रवाह की पुष्टि में अपना पूर्ण सहयोग देने को कृत संकल्प हो जाएँ।" इसी तरह दोनों ही साहित्यकारों के मधुर साहित्यिक छुट-पुट संवादों से कवि-सम्मेलन प्रारंभ हुआ। राजा साहब लगभग तीन बजे प्रातः तक दत्तचित हो छोटे से बड़े सभी कवियों की रचनाओं का रसास्वादन करते रहे।

मैं उस समय सहसराम में नौकरी कर रहा था और साथ ही, श्री तुलसी साहित्य परिषद् नामक संस्था का संयोजक था। मेरे मन में अचानक यह बात उठी कि क्यों न हम राजा साहब निवेदन करें कि तिलौथू से लौटते समय सहसराम में अपने एक छोटे से भाषण का लाभ वहाँ की जनता को प्रदान करें। उसी समय मैंने उनसे प्रार्थना की और उदार राजा साहब ने कहा कि मैं संध्या लगभग ६ बजे तिलौथू के राजा साहब की गाड़ी से सहसराम आ जाऊँगा, आप मेरी प्रतीक्षा करेंगे। हाँ, सहसराम के सभी साहित्य-प्रेमियों को इसकी सूचना दे देंगे। उन्होंने मेरी कठिनाई को समझते हुए यह भी कहा कि अगर आयोजन

में किसी तरह की कठिनाई हो तो "शाहाबाद क्लौथ ट्रेडिंग शॉप" के प्रबंधक श्री गोवर्द्धन दास से सहायता ले लें।"

प्रात: ही मैं सहसराम पहुँचकर आयोजन से कार्यक्रम की सफलता के प्रयास में लग गया। श्री गोवर्द्धन जी ने राजा साहब के जलपान के प्रबंध का भार ले लिया, साथ ही, उन्होंने एक माइक की भी व्यवस्था करा दी और सारे शहर में इस बात का प्रसारण होने लगा कि संध्या को इस शहर में हिन्दी के प्रसिद्ध शैलीकार एवं उपन्यास-लेखक राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह आ रहे हैं। मैंने स्थानीय अनुमंडलाधिकारी एवं प्रखण्डविकास अधिकारी से मिलकर शहर के सबसे बड़े हॉल यानी 'टाउन हॉल' का आरक्षण करा लिया। शहर के एवं विशेष कर परिषद् के अध्यक्ष—उपाध्यक्षों से यह आग्रह किया गया कि वे सुन्दरतम पुष्प मालाओं के साथ आएँ और हॉल के द्वार पर राजा साहब का स्वागत करें। सहसराम की साहित्यिक पृष्ठभूमि सुदृढ़ है। शेरशाह के तालाब के किनारे के क्लब का वह छोटा सा आश्रमनुमा भवन अभी तक इस बात की याद दिलाता है कि जब राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह दिनकर सहसराम में उपरजिष्ट्रार के पद पर काम करते थे, तो उसी भवन के बरामदे में प्रत्येक संध्या उनकी कविताएँ सुनने के लिए स्थानीय साहित्य-प्रेमियों की बैठक वहाँ जमा करती थी।

राजा साहब ठीक ६ बजे टाउन हॉल के द्वार पर उपस्थित हो गये, उनकी मुस्कुराती आकृति कभी भुलायी नहीं जा सकती। हॉल खचाखच भरा जा रहा था। लगता था कि राजा साहब के आने के बारे में बहुत दिन पहले से वहाँ प्रचार किया गया हो। १०-१५ मिनट के अन्दर सारे हाल में तिल धरने की जगह न रही। मंच पर भी एक-से-एक बड़े अधिकारी एवं साहित्य-प्रेमी मौजूद थे। इस सभा के लिए एक भी निमंत्रण कार्ड न भेजा गया था। सिर्फ राजा साहब के नाम में इतना जादू था, लोग अपना समारोह समझकर दौड़ पड़े। उनके भाषण के पूर्व लगभग आधे घंटे तक स्थानीय कवियों द्वारा कविता-पाठ आदि का सरस कार्यक्रम चलता रहा। लगभग ७ बजे राजा साहब का भाषण प्रारम्भ हुआ—शैली का सम्राट् जब खड़ा हुआ और उसके स्वरों में हिन्दी के तत्सम, तद्भव, देशी एवं विदेशी शब्दों के साथ बिलकुल उपयुक्त-तम ढंग से उर्दू और अँगरेजी के अल्फाज श्रोताओं को आनन्दातिरेक से विभोर करने लगे तो भावविह्वल श्रोताओं की तालियों की गड़गड़ाहट से हॉल सतत गूँजता रहा।

राजा साहब का भाषण शुरू हुआ—"अब वह जमीं रही, न आसमान रहा। धन का राजा तो कभी का मर गया, हाँ, सूर्यपुरा निवासी कलम का राजा राधिकारमण अभी भी आपकी सेवा में है। दोस्तो, कलम की सेवा करो। कलम से साधना करो"—इस तरह के वाक्यों से वहाँ की जनता के मन में राजा साहब के प्रति जो अपार श्रद्धा जगी, उसे वे आज भी संजोए हुए हैं और आज उनके असामयिक निधन से उनका दिल भर उठा है।

राजा साहब की उदारता एवं तत्परता के अनेक उदाहरण जो भी उनके समीप आया, उसके मस्तिष्क पटल पर निश्चय ही अंकित होंगे। किसी भी आयोजन के लिए उन्हें निमंत्रित कीजिए, राजा साहब से स्वीकृति प्राप्त करने में कोई विलंब नहीं होता था। इसके अलावा, पढ़ाई-लिखाई नौकरी-चाकरी आदि के संबंध में सहायता के लिए उनके पास आने-जाने वालों की संख्या रोज ही पर्याप्त होती थी। पत्र, द्रव्य, पुस्तकें एवं वस्त्रादि जो भी आवश्यक हो देकर वे सबको संतुष्ट करने का प्रयास करते थे। ऐसी महान् विभूति को खोकर साहित्य-जगत् एक अपूरणीय क्षति का अनुभव करता है और ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

तुम किसी के होंठों पर मुस्कुराहट लाकर देखो, तुम्हारे दिल की पपड़ियाँ आप खुल पड़ेंगी और उसके भीतर का धुआँ साफ उड़ जायगा।

—राधिकारमण

प्रभाकर माचवे

मंत्री, साहित्य अकादमी, रवीन्द्रभवन, दिल्ली

जीवनकाल में राजा साहब का जो सम्मान चाहिये था हिन्दी में पूरी तरह नहीं हुआ। हिन्दी में 'मरणोपरान्त' ही उपाधियों, संस्तुतियों का ताँता लगता रहता है।

राजा साहब की याद में

वैसे राजा साहब की रचनाएँ बचपन से पढ़ता रहा हूँ। उनकी शैली का कौन कायल नहीं था ? लौह लेखनी के धनी जो इनेगिने शैलीकार हिन्दी में थे : उग्र, चतुरसेन शास्त्री, शिवपूजन जी, रामवृक्ष बेनीपुरी, श्रीराम शर्मा, सब एक एक कर चले गए। राजा साहब की भी बारी आ गई—

बाढ़ी आवत देखकै कलियन करी पुकार
फूली फूली चुन लई काल्हि हमारी बार

भाषा को एक लचीले अस्त्र की तरह प्रयुक्त करना, इस्पात की तरह दृढ़, मारक, टिकाऊ ढंग से, हँसी-मजाक नहीं। राजा साहब के पास भी वही शब्द-शक्ति थी—

सभी उत्तम रेखा चित्रकारों की तरह। उनके यहाँ किसी शब्द से परहेज नहीं था: उर्दू-फारसी, बंगला, खाँटी देशज-देहाती-आंचलिक, सब शब्द चलते थे।

मिलना उनसे दो-ही-तीन बार हुआ: एक बार उनके निवास में पटना में; दो बार दिल्ली में। साहित्य अकादेमी कार्यालय में और एक बार ज्ञानपीठ महोत्सव में। वे मुक्त सहज भाव से अपने जीवन के संस्मरण सुनाते थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की शतवार्षिकी के अवसर पर दिल्ली में अंतर्राष्ट्रीय लेखक गोष्ठी हुई। उसमें उन्होंने रवीन्द्रनाथ से भेंट के संस्मरण सुनाये थे।

सर्वत्र वही उदार भाव—धर्म, भाषा, प्रांत, जाति, मतवाद के भेद उस पीढ़ी के बुजुर्गों को छू नहीं गये थे।

'चुम्बन और चाँटा' उनका एक विवादास्पद उपन्यास था। मैंने उसकी चर्चा छेड़ी तो बोले: "यह प्रत्यक्ष जीवन के अनुभव पर आश्रित है।" फिर वे उस महिला के जीवन के बारे में बताते रहे।

जीवनकालमें राजा साहब का जो सम्मान चाहिये था हिन्दी में पूरी तरह से नहीं हुआ। हिन्दी में 'मरणोपरान्त' ही उपाधियों, संस्तुतियों का ताँता लगता रहता है।

उनका सर्वोत्तम प्रतीक-स्मारक है 'नई धारा'। इस पत्रिका के पहले अंक के पहले पृष्ठ पर बेनीपुरी जी ने मुझसे लिखवाया था। बाद में बहुत कुछ मेरा उसमें छपा। बराबर उत्सुकता से मुझ जैसे नौसिखुए, अनगढ़ भाषा लिखनेवाले की चीज पढ़ते। याद रखते। यह सब उस युग के साहित्यकारों का सौहार्द्र और विशाल मन का, स्नेह और अपनाने का संबल हुआ करता था। अब वह सब सपना है।

कामयाबी तो हिम्मत के हरम की बाँदी ठहरी।

—राधिकारमण

प्रेम नन्दन सिन्हा
'रामाधार हाउस', बोरिंग कनाल रोड, पटना-१

राजा साहब में विनोदप्रियता एवं वाक्पटुता काफी ऊँचे दर्जे की थी। उर्दू एवं फारसी के सैकड़ों शेर उन्हें जबानी याद थे और कुछ ही मिनटों की बातचीत में वे दर्जनों शेर सुना जाया करते थे। उनके लिखने की भाषा एवं बोलने की भाषा लगभग एक समान थी।

२५ मार्च '७१। चाय पी कर बैठा ही था कि अखबार आया, देख कर स्तब्ध रह गया–राजा साहब की तस्वीर एवं उनके दिवंगत होने की खबर छपी हुई थी। कुछ रोज पहले ही तो उन्हें देख कर आया था। ऐसा कुछ सोचा नहीं था, फिर भी उनकी हालत देख कर निराशा हुई थी। पैर एवं कमर में असहनीय पीड़ा रहने पर भी वह ऐसे निर्लिप्त भाव से पड़े थे जैसे संसार का विवर्जन कर रहे हों। बजाय मैं उनकी खैरियत पूछता उन्होंने

स्मृतियों में : राजा साहब

मेरी खैरियत के बारे में पूछा। फिर कुछ अस्फुट-सा बोल कर वह चुप हो रहे। यह अन्तिम साक्षात्कार था।

कुछ देर बाद मैं यह सोच कर चला कि मृत्यु कल दोपहर में हुई है, दर्शन का सौभाग्य तो नहीं मिला, फिर भी शिवाजी से मिल कर श्रद्धा निवेदित करने का अवसर तो प्राप्त कर ही लूँ। लेकिन सुयोग बाकी था, मैं अपने श्रद्धा-सुमन राजा साहब के ही चरणों में अर्पित कर सकने का अवसर प्राप्त कर सका। वहाँ उनके तमाम प्रशंसक एवं कृपापात्र व्यक्ति एकत्र थे। श्री देवकान्त बरुआ उसी वक्त पधारे थे। राजा साहब के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित कर उनके साहित्य के बारे में ही बोल रहे थे। श्री बरुआ साहित्यकारों के बीच महामहिम कहा जाना पसन्द नहीं करते, वह एक साहित्यकार के रूप में एक साहित्यकार को अपनी श्रद्धा निवेदित करने आये थे।

राजा साहब का शरीर बर्फ से सुरक्षित करके रखा गया था। और दिल्ली से बालाजी के आने की प्रतीक्षा थी। 'इंडियन एयर लाइन्स' की हड़ताल चल रही थी, उड़ानें बन्द थीं। पटने से श्री डालमिया का निजी हवाई जहाज उन्हें लाने गया हुआ था। थोड़ी देर बाद लगभग ११ बजे बालाजी पहुँचे। श्री बरुआ ने औपचारिकता की दो-चार बातें कीं, फिर शवयात्रा की तैयारी प्रारंभ हुई।

मैं लगभग १२ वर्ष पीछे मुड़ता हूँ। उस वक्त मैं कॉलेज के अन्तिम वर्ष में था और गुरुवर श्री वासुदेव नन्दन प्रसाद ने राजा साहब पर कुछ काम करने का भार मुझ पर सौंपा था। उस सिलसिले में मैं पटने आया तो राजा साहब से पहली बार मिला था। उसके पहले दर्शक के रूप में उन्हें कई सभाओं में बोलते भर ही सुना था। भाषा की उनकी फनकारिता पर मैं मोहाविष्ट-सा हो जाया करता था। अतः राजा साहब से मिलने एवं उन पर कुछ काम करने की एक लालसा-थी ही। बातचीत के पहले दौर में उन्होंने अपने बचपन के बारे में कहा था—'हमारे पिता के दरबार में एक-से-एक साकी थे—क्या शायर, क्या कवि! और हर शाम की महफिल में दौर-पर-दौर चलता रहा, आधी रात तक। अपना बचपन था तो क्या, वह कैसे हो पाता कि हम उस रस-परिवेशन से मुँह मोड़ बैठते।'

राजा साहब पैदाइशी कथाकार थे। विरासत में राज्य मिला और साथ-साथ

साहित्य। उन्होंने अपने परिवार में विरासत-रूप में साहित्य छोड़ा भी है। (शिवाजी हिन्दी साहित्य के एक जाने-माने हुए उपन्यासकार हैं।)

हिन्दी साहित्य में राजा साहब के नाम से जाना जाने वाला व्यक्ति राजा बाद में, साहित्यकार पहले था। उन्होंने उम्र भर तो साहित्य की सेवा ही की। मृत्यु-शय्या से भी उन्होंने साहित्य की ही सेवा की है। प्रमाण—'सारिका', अप्रैल, '७१ का अंक है। 'कानों का कँगना' से 'महँगा सौदा' तक एक बहुत लम्बी अवधि फैली हुई है। इस प्रकार राजा साहब हिन्दी के वरिष्ठतम कथाकारों में से थे।

राजा साहब का बचपन एवं युवाकाल के प्रारंभिक दिन विश्वकवि के अभिभावकत्व में बीते थे। अतः उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन के उन प्रारंभिक दिनों में कविताएँ एवं नाटिकाएँ भी लिखी थीं। दुर्भाग्यवश वे किसी लम्बे सफर में खो गईं। फिर उन्होंने उपन्यास ही लिखे। उनके उपन्यासों में 'राम-रहीम' एवं 'पुरुष और नारी' विशेष महत्व रखते हैं। 'राम-रहीम' उन्होंने एक चुनौतीवश लिखा था। नैनीताल में रहकर इस उपन्यास को लिखने में उन्हें ढाई महीने लगे थे। उक्त उपन्यास में दो विभिन्न चरित्र की नारियों पर बातचीत के सिलसिले में उन्होंने एक बार कहा था—'मानवता का धर्म सबसे ऊपर है। जहाँ मानवता का धर्म आया वहाँ सब धर्म बेकार हो जाते हैं। समाज के जिन मूल्यों की हम रक्षा करना चाहते हैं उनमें नारी की समस्या गम्भीरतम प्रश्न है। हमें इसका समाधान ढूँढ़ना पड़ता है। नारी-संस्कृति के त्याग और आत्मोत्सर्ग के बल पर सामाजिक आधारशिला टिकी हुई है।'

आधुनिक लेखन के सन्दर्भ में राजा साहब के उक्त कथन की प्रामाणिकता कदाचित् सिद्ध न हो, लेकिन इतना तो सच है कि राजा साहब ने पुरातन और नूतन के सुन्दर सामंजस्य की ऊँची कल्पना अपने लेखन में की है। उन्होंने अपने लेखन में किसी-न-किसी रूप में हमेशा ही एक सामाजिक आदर्श का प्रतिपादन किया है।

राजा साहब के लिखने की शैली भी सिर्फ राजा साहब की ही हो सकी। भाषा के रूप पर अगर ध्यान न भी दिया जाय तो जो चारित्रिक रूपांकन उनके लेखन में हुए हैं उन्हें भुला देना आसान नहीं। राजा साहब द्वारा सृजित पात्राएँ—बेला, बिजली, सुधा, किशोरी, धनिया एवं बिमला बहुत दिनों तक याद रहती हैं, शेक्सपीयर के नाटकों के पात्रों की तरह। प्रायः वे सभी पात्राएँ राजा साहब के जीवन में एवं आँखों से होकर गुजरी हैं। इस प्रकार राजा साहब अनुभव के धनी थे। उनके अनुभव के अतिशय

धनी होने का अन्य प्रमाण उनकी 'जानी-सुनी-देखी' सिरीज की रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में उन्होंने अपने अनुभवों की गाथा ही कही है, लेकिन इनमें कथा के अवयव वर्तमान हैं।

राजा साहब में विनोदप्रियता एवं वाक्पटुता काफी ऊँचे दर्जे की थी। उर्दू एवं फारसी के सैंकड़ों शेर उन्हें जबानी याद थे और कुछ ही मिनटों की बातचीत में वे दर्जनों शेर सुना जाया करते थे। उनके लिखने की भाषा एवं बोलने की भाषा लगभग एक समान थी। जब कभी वे बोलते भी थे तो एक अनूठी शैली में ही। वे संस्कृत साहित्य एवं इतिहास के अच्छे जानकार थे।

वंशपरम्परागत जो आदतें उन्हें होनी चाहिए थीं, उन्हें वे बहुत पहले त्याग चुके थे। उन्हें मैंने जब भी देखा अत्यन्त ही सीधे एवं सादे ढंग से जीवन-यापन करते हुए ही देखा और मुझे इस बात से हर बार संतोष ही हुआ कि मैंने जब भी उनसे बातें कीं, उनका साहित्यकार ही सामने प्रकट हुआ। उनमें एक धनीमानी व्यक्ति होने का अहंकार मैंने कभी नहीं पाया और व्यक्ति के स्तर पर उनकी यह महानता ही कही जाय तो ज्यादा उपयुक्त होगा।

राजा साहब ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कहीं आना-जाना, सभा-सोसायटी में सम्मिलित होना प्रायः छोड़-सा दिया था, फिर भी उनकी सामाजिक गतिविधियाँ एक समान ही चलती रहीं। वे जब कभी कहा करते थे—वे भोर का चिराग बन चुके हैं, फिर धीरे से कहते—कोई शाम का चिराग जला तो ले इस लौ से।

राजा साहब के साथ ही एक युग भी समाप्त होता है। उनके साथ ही लेखन की एक परम्परा का अन्त हो गया। उन्होंने साहित्य को जो दिया उसमें ही उनका रूप और नाम बसा रहेगा। उन्होंने जो भी किया अथवा लिखा वह किसी शोधकर्ता के लिए एक अच्छा और सुन्दर विषय बन सकता है। इस तरफ शोधकर्ताओं का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए।

कोई भी लेखक अपने पार्थिव शरीर में नहीं जीता, वह अपनी कृतियों में जीता है। मैं जब कभी भी उनकी लिखी पुस्तक उठाऊँगा, उनकी तस्वीर स्मृति-रूप में सबसे पहले सामने आएगी। राजा साहब अपने पाठकों की स्मृति में जीवित हैं और रहेंगे। इस प्रकार वह एक अमर कथाकार हैं।

परमानन्द पाण्डेय
बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना-४

समद्रष्टा राजा साहब भेद, वैषम्य और द्वन्द्व सहन नहीं कर सकते थे। अत: उनकी लेखनी वैषम्य के गर्त को पाटकर द्वन्द्वात्मक वस्तुओं को उस समन्वय-बिन्दु पर लाने के लिए सदा प्रयत्नशील रही, जो मानवता के केन्द्र पर स्थित था।

राजा साहब महान् थे

प्रशस्त ललाट, घनी भौंह पर पुराने किस्म का चश्मा जिसके भीतर चमकती उत्सुक आँखें, नुकीली नाक, ताम्बूल रंजित स्फूर्त अधरों पर कुछ कहने के पूर्व की ईषत् स्मिति—मानो अब बोले—"कहा तो क्या कहा, जब किसी ने सुना नहीं—किसी ने गुना नहीं।" सर पर कोकटी रंग की गाँधी टोपी, गले में दुपट्टा, हाथ में पतली छड़ी, हल्का गेहुँआ रँग, छोटा कद, बुजुर्गी की शरीर बंकिमा, अन्दाज की कदमपोशी—लघु काया में अपरिमेय महानता समेटे राजा साहब ! अब किसी सभा-गोष्ठी में हमें उनके दर्शन नहीं होंगे। पाटलिपुत्र के साहित्यिक मंच की एक और रौनक खत्म हो गयी—साहित्यगगन का एक और सितारा टूट गया। भाषा-शैली का बादशाह—भावों का राजा विदा हो गया। हिन्दी भारती के मुकुट का एक बहुमूल्य नग टूट गया।

पुण्यश्लोक राजा साहब की महानता अप्रतिम और विलक्षणता अद्भुत थी। अक्सर लोग कहते हैं कि बड़े लोगों की खूबसूरती पहाड़-जैसी होती है। पहाड़ दूर से देखने पर नीले बादल-सा मनोरम अथवा विशालकाय गजराज-जैसा सुशोभित होता है, किन्तु उसके निकट जाने पर ऊबड़-खाबड़ चट्टानें, मिट्टी और झाड़-झंखाड़ नजर आते हैं। पहाड़ के सौन्दर्य की कल्पना उसके नजदीक जाने पर दूर हो जाती है। बड़े लोगों का बड़प्पन दूर से आकर्षक दीखता है किन्तु उनके निकट आने पर—उनकी अनेक खामियाँ नजर आने लगती हैं। ऐसी लोगों की धारणा रहती है। किन्तु, पुण्यश्लोक राजासाहब के निकट जाने से उनकी महानता और अधिक विशाल मालूम होने लगती थी। उनसे मिलने के पूर्व कभी-कभी मन में होता था कि राजसी ठाट-बाट, सामाजिक वैषम्य, धार्मिक अन्ध-विश्वास आदि पर प्रहार करनेवाला साहित्यकार आखिर तो 'राजा' ही है—साहित्य और जीवन-व्यापार में सामंजस्य है या नहीं? मेरी यह शंका प्रथम दर्शन में ही निर्मूल हो गयी। सन् १९५० ई० में बिहार इंजिनियरिंग कॉलेज की रजत-जयन्ती के अवसर पर एक कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ था जिसमें राष्ट्रकवि दिनकर, श्री जानकीवल्लभ शास्त्री, श्री बेधड़क बनारसी आदि बड़े-बड़े कवि पधारे थे। पुण्यश्लोक राजाजी उद्घाटन-कर्त्ता थे। स्थानीय साहित्यकारों को बुलाने का भार मुझ पर ही था। मैंने सोचा था कि एक तो महान् साहित्यकार दूसरे राजा—तुरत आने के लिए तैयार होंगे नहीं, घंटों बैठना पड़ेगा, तब दर्शन देंगे, दरबारी अदब और तकल्लुफ के साथ मिलना होगा। किन्तु, जब उनको देखा तो चकित रह गया। एक दुबला-पतला आदमी गंजी पहने बरामदे पर टहल रहा है। देखकर सहसा विश्वास नहीं हुआ कि यही राजा साहब हैं। एक छोटा-सा पुतला और इतना महान् स्रष्टा। ओठों पर हल्की स्वाभाविक मुस्कुराहट, आँखों में एक विलक्षण ज्योति, लघु में विराट् झाँक रहा था। मैंने बड़ी श्रद्धा से हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और अपना उद्देश्य निवेदित किया। सहज भाव से वे बोले—"अपने को क्या, जहाँ कहिए चलता हूँ—जब कहिए चलता हूँ।"

मैंने अनुभव किया, वे सादा जीवन, उच्च विचार और सत्याचरण के प्रतीक थे। बड़े जमीन्दार के पुत्र होते हुए भी शान-शौकत, विलासिता से बिल्कुल दूर रहते थे। निकट जाने पर मालूम हुआ कि वे ऐसे नगराज थे जो दूर से तो मनोरम लगते ही थे, उनके हृदय से एक स्निग्ध निर्झर भी निरन्तर प्रवाहित था, जिसमें सहृदयता,

आत्मीयता और विश्वबन्धुता का रस था। उनका आचरण मानो कह रहा था—"आदमी का मोल उसके दिल व दिमाग की खूबी पर है, कुछ उसकी तिजोरी की पूँजी पर नहीं और न उसकी टीमटाम की रौनक पर"--(पुरुष और नारी)। इस प्रकार उन्होंने अपनी लेखनी और कर्म में दुर्लभ सामंजस्य स्थापित कर रखा था। उन्होंने तिजोरी को नहीं आदमियत को महत्त्व दिया था।

कई दशकों तक उनके दर्शन—अनेक बार सम्पर्क में आने के सुअवसर मुझे प्राप्त हुए। मानस में राजा साहब के कितने चित्र हैं--कितने संस्मरण हैं—क्या लिखूँ, क्या न लिखूँ ? क्या कहूँ, क्या न कहूँ ! बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् तथा साहित्य-सम्मेलन की बैठकों तथा अन्य साहित्यिक आयोजनों में जब उनके दर्शन होते, मैं बड़ी श्रद्धा से हाथ जोड़कर उनका अभिवादन करता।—और पूछता—"आप अच्छे हैं न ?" पुण्यश्लोक राजाजी अभिवादन का उत्तर देते हुए बोल उठते—"अरे अपना क्या, आप अच्छे हैं तो हम भी अच्छे हैं।" लहजे में प्रगाढ़ आत्मीयता टपकती थी। वास्तव में उनके लिए कोई गैर नहीं था जैसा उन्होंने कहा है—"न कोई अपना है, न गैर। अपनी-अपनी नजर का खेल है—बस।"—(धर्म की धुरी) इसीलिए और लोगों का कुशल ही उनका कुशल था।

पुण्यश्लोक राजा साहब की एक विशेषता थी कि वे किसी बैठक में लगातार एकाध घंटा बैठते नहीं थे। वे बीच-बीच में उठकर टहलने लगते, किसी से हाल-समाचार पूछ लेते अथवा किसी की ओर मुस्कुरा कर देख लेते। उनका यह आचरण संसार से उनकी अनासक्ति का द्योतक था। वह इस संसार में लिप्त नहीं होते; फिर भी, वे पलायनवादी नहीं थे। वे वर्ड्सवर्थ के स्कायलार्क (skylark) की तरह—

> Type of wise who soar but never roam,
> True to the kindred points of heaven and home.

दीन और दुनिया दोनों को देखनेवाले थे। वह शरीर से इस दुनिया में थे किन्तु उनकी अन्तर्दृष्टि सदैव उस ज्योति के दर्शन करती थी जिसकी किरणों में प्रेम, समता, मानवता, आत्मीयता आदि उद्भासित थीं। वे उसी अखण्डज्योति की किरणों से इस दुनिया को प्रकाशित करने के लिए सचेष्ट रहते थे।

समद्रष्टा राजा साहब भेद, वैषम्य और द्वन्द्व सहन नहीं कर सकते थे। अतः

उनकी लेखनी वैषम्य के गर्त को पाटकर द्वन्द्वात्मक वस्तुओं को उस समन्वय-बिन्दु पर लाने के लिए सदा प्रयत्नशील रही, जो मानवता के केन्द्र पर स्थित था। उनकी यह प्रवृत्ति उनके प्रथम उपन्यास 'राम-रहीम' के नाम से ही आभासित होती है। इसी प्रकार अन्य कृतियों के भी शीर्षक—जैसे पुरुष और नारी, पूरब और पच्छिम, हवेली और झोपड़ी, देव और दानव, अपना-पराया, आदि भी उसी प्रवृत्ति से प्रेरित हैं। इसीलिए उन्होंने एक विलक्षण शैली दी, जिसमें संस्कृत, फारसी, हिन्दी, अरबी, उर्दू के शब्द सहज रूप में प्रयुक्त हुए। वे हिन्दी, उर्दू को दो नहीं मानते थे जैसा कि 'पूरब और पच्छिम' में उन्होंने कहा है—

"दरअसल हिन्दी और उर्दू दो जबान नहीं—बस एक ही जबान के दो ढंग ठहरीं, जैसे राम और रहीम उस एक ही सत्ता के दो ढंग हो गये।"

उनकी भावप्रवणता भाषा की हदबन्दी नहीं मानती थी। इस सम्बन्ध में उन्होंने 'पूरब और पच्छिम' में स्पष्टतः लिखा है—

"वह जो किसीने कहा है न कि वह भाव भी क्या जो वाणी की परिधि—किसी भाषा की हदबन्दी में आ गया !"

आज वह विराट् साहित्यपुरुष हमारे बीच नहीं हैं; किन्तु उनका साहित्य हमें विरासत में मिला है जिसमें उनकी आत्मा रमती है और हमें पुकारकर कहती है—

"तुम यश और शान, मान और ज्ञान, जीवन के तमाम अलंकारों को सर से पैर तक लाख सजे रहो; पर इन सबके होते हुए भी अगर तुम पर आदमी का लिबास तो नहीं, सच मानो न तुम्हारी नग्नता छूटी, न तुमने मानवता पायी।"

मन-मदारी के डमरू पर ही इस शरीर का सारा तान-तेवर है।

—राधिकारमण

बदरी नारायण सिन्हा
उप-महानिरीक्षक, पुलिस-दस्तक पुनरीक्षा, पटना

हर शाम को बोरिंग रोड पर वह नजर आते थे, चलते-फिरते, पर कुछ सोचते हुए, कभी मेरे अहाते में आ धमकते, कुछ साहित्य छोड़कर और छेड़कर चले जाते, हमें आस्था से भर देते थे।

✣

"वह न रहे, एक युग न रहा।"

वह न रहे, यानी एक युग न रहा, दस वर्षों वाला युग नहीं, साहित्य का युग जिसकी ओर-छोर सहज ग्राह्य नहीं होती, जो विलीन भी नहीं होता, शब्दों में, पंक्तियों में, पुस्तकों में जीवित रहता है। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह। मात्र चार शब्द हैं पर कितना प्रतिनिधित्व-पूर्ण। और जब इन शब्दों के जीवन्त, चलते-फिरते रूप नहीं रहे, तब प्रत्येक शब्द की अर्थवत्ता चरितार्थ करनेवाला युग भी नहीं रहा। राजा अब न रहे, राधिकारमण अर्थात् जीवन की सुकुमारिताओं, रसों और स्पंदनों को अनुभव तथा अनुभव-गम्य करानेवाला साहित्य जाता रहा, प्रसाद, सिंह, माधुर्य, ओज और स्नेह से ओतप्रोत व्यक्तित्व नहीं रहा। राजा लक्ष्मण सिंह, राजा शिव प्रसाद सिंह से लेकर राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की एक लंबी पीढ़ी, जिसकी कोई सीमा नहीं, अब न रही, गद्य में वाक्य की निर्झरिणी उतारनेवाले गद्यकार नहीं रहे, उर्दू, फारसी, संस्कृत, अँग्रेजी, देशज, यहाँ तक कि स्थानीय बोलियों से प्राण उगानेवाले

शब्द-मुक्ताओं के चुननेवाले हंस, सारे के सारे हंस उड़ गये। एक युग नहीं, एक गद्य-शैली नहीं रही, प्रासादों में रहकर झोपड़ियों में रमण करनेवाली कल्पना और अनुभूति नहीं रही, कद्रदानी और अपनेपन को उड़ेलनेवाली पद्धति नहीं रही।

एक आलोचक के लिए किसी साहित्यकार की जीवतंता उसकी काया की धड़कनों में विद्यमान नहीं होती, उसकी प्राणवंतता तथा अमरता तो उसकी कृतियों में बोधस्य होतीं है। इसलिए, राजा साहब के सारे मुद्रित बोल के मोल तो बने ही हुए हैं और रहेंगे ही। उनकी ज़ुबान से उनकी देखी-सुनी, आपबीती कथाएँ न हम सुन सकें, यह तो हकीकत बन गई है पर उनके साहित्य में उनके दृष्टिकोण ही नहीं उनका व्यक्तित्व पूर्णतः मुखर और सजीव है। राजा साहब साहित्य में इतिहास लिखते थे, इतिहास से साहित्य नहीं गढ़ते थे। उनमें और श्री वृन्दावनलाल वर्मा में यहीं अंतर है। जीवंत साहित्य इतिहास होता है, मरा हुआ इतिहास साहित्य नहीं। "राम-रहीम" के लोग आज भूले-भटके या दुर्बल रूप में कहीं दीख पड़ जाएँ, यह संभव है पर वे लोग तो सदा के लिए चित्रित वहीं हैं। इस दृष्टि से राजा साहब उतने ही जीवंत कथाकार रहे जितने प्रेमचंद, या जैनेन्द्र कुमार। संस्मरणों की लड़ी प्रीति की डोर में पिरोई है। आरंभ तो मेरे दिवंगत श्वसुर डाक्टर श्री गणपत सहाय से ही है। नौजवान डाक्टर, कलकत्ता से पढ़-लिखकर आया हुआ डाक्टर, शाहाबाद जिला परिषद् के अध्यक्ष तरुण राजा से साक्षात्कार। रईसी ठाट-बाट, अचकन, पगड़ी और उनमें शाही कलंगी और कर्त्तव्य, जनता की सेवा!! सरस्वती का बंदन!!! ५० वर्ष पहले की बात। सन् १९६४ ई० में वही डाक्टर और जिला परिषद् के अध्यक्ष दो भूतपूर्व अधिकारियों के रूप में मिलते हैं, पाटलिपुत्र के एक ही मुहल्ले में रहने लगते हैं, एक दूसरे को पहचान नहीं पाते क्योंकि तबतक चेहरों पर बेशुमार झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, युग अंतिम साँस गिनने लगता है और तसवीर खुद आप ही पहचानी नहीं जाती। और सन् १९६५ ई० में डाक्टर चल बसते हैं और महज पाँच वर्षों बाद राजा साहब भी।

याद आ रही है पटने की एक हसीन शाम। १८ अप्रील, १९६५ ई०। बोरिंग रोड के चौराहे पर एक विशाल दिशा-संकेत—"प्राथमिकी" प्रकाशनोत्सव इधर को। गाड़ियों का ताँता, अधिकारियों की जिज्ञासा-भरी भीड़, साहित्यकारों का जमघट, श्रोताओं का धक्का, कलाकारों का संगीत, बाल-वृन्दों का उल्लास-भरा शोर-गुल और दुल्हे-सा शर्माया "प्राथमिकी" का लेखक, बुज़ुर्गों की तायदाद, श्री विश्वमोहन कुमार

सिंह, अरसे से साहित्य के प्रणेता और अध्येयता, प्राचार्य, उप-कुलपति, चिंतक श्री "माधव", राष्ट्रभाषा परिषद् के तत्कालीन निर्देशक, साहित्य की पवित्र सलिला के स्नानार्थी, सुसंस्कृत, सु-सभ्य अधिकारी समाज के नेता श्री मिथिलेश कुमार सिंहा, विद्या-प्रांगण की अमिट छाप लिये श्री केसरी किशोर शरण, तत्कालीन हिन्दी-आयुक्त, प्रौढ़ विचारों के पोषक श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा, हिन्दी विभागाध्यक्ष, साहित्य के मौलिक पारखी श्री केसरी कुमार, भारतीय आरक्षी-सेवा के कई जाज्वल्यमान् नक्षत्र, स्वयं मार्तण्ड श्री सच्चिदानंद अखौरी, और साहित्य, सुसंस्कृति, शिष्टता के शिरोमणि श्री राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह।

समारोह के अध्यक्ष थे मेरे गुरु श्री विश्वमोहन कुमार सिंह, संचालक थे हमारे प्रोत्साहक, नहीं, सबों के प्रोत्साहक, हा, वह भी चले गये, श्री ब्रजकिशोर "नारायण"। जब राजा साहब ने आशीर्वचन देने शुरू किये, आंनद की वर्षा ही शुरू हो गई, श्रोतागण रस की फुहार से सिक्त हो गये, हँसी का फव्वारा फूट पड़ा, हसीन शाम बौरा गई, वेला, जूही की सुरभि से नहा गई। और लोगों ने तो मिठाइयाँ खाईं, राजा साहब अपने पौत्र के लिए अपना हिस्सा ले गये और स्नेहार्द्र होकर। वह स्नेह की प्रतिमूर्ति थे, अपनेपन से भरे।

हर शाम को बोरिंग रोड पर वह नजर आते थे, चलते-फिरते, पर कुछ सोचते हुए, कभी मेरे अहाते में आ धमकते, कुछ साहित्य छोड़कर और छेड़कर चले जाते, हमें आस्था से भर देते थे।

सन् १९७० ई० में आखिरी दर्शन हुए। "आज तक की" की प्रति लेकर इंदु के साथ उनके यहाँ गया। विस्मृति गाढ़ी होती जा रही थी, कहने पर, शीलाजी के परिचय देने पर समझे, "आज तक की" के पन्ने उलटते रहे जैसे कोई पितामह अपने पौत्र को दुलराता हो और फिर कमरे में चले गये। जीवन थका-सा हो चला था।

फिर, मनहूस खबर समाचार-पत्र में ही पढ़ी। राजा साहब का शरीर नहीं रहा।

माधव
आचार्य, गया कॉलेज, गया

राजा साहब ने लिखा बहुत -- राम-रहीम ,चुम्बन और चाँटा, गाँधी टोपी, तब और अब—इत्यादि इत्यादि कुल मिलाकर छपे हुए हजारों पृष्ठ, परन्तु 'कानों में कँगना' अपूर्व है, अपूर्व रहेगी। उसकी जोड़ की कहानी हिन्दी में लिखी गयी, लिखी जायगी—कहना कठिन है। वह उठती गदराती जवानी की रचना है जिसमें भाव और भाषा का संयोग छवि और शृंगार के योग-जैसा मणि-कांचन योग है।

राजा साहब : एक पुण्य स्मरण

पूरी आयु, प्रचुर यश, पुष्कल सौभाग्य, धन, जन आदि भोग कर सहज भाव से वे स्वर्ग चले गये, अपने पीछे एक ऐसी दिव्य मङ्गलमयी लकीर छोड़ गये जिसके प्रकाश में अगली पीढ़ी के साहित्यकार एक ऐसा आलोक पायेंगे, जो शताब्दियों तक साहित्य-सेवा, निरलस निर्मल निःस्पृह अक्लान्त साहित्य-सेवा की प्रेरणा देता रहेगा। राजा साहब को साहित्य-सेवा अपने पूर्वजों से विरासत में मिली थी—इनके पिता, पितामह और

प्रपितामह स्वयं कवि थे और कवियों के कद्रदाँ थे। इनके दरबार में कवियों, गायकों, पहलवानों और कलाकारों का विशेष आदर था। अस्तु ये सब गुण राजा साहब को परंपरया प्राप्त थे। प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा ने भी इन्हें कविगुरु रवीन्द्रनाथ के सान्निध्य में ला दिया और एम० ए० तक पहुँचते-पहुँचते ये हिन्दी के अतिरिक्त अंगरेजी, संस्कृत, बंगला, फारसी के प्रवीण पंडित हो गये और इसीलिए इनकी शैली में इन सब भाषाओं का मनोहर पँचमेली, मादक समन्वय हुआ है।

साहित्य में "कानों में कँगना" कहानी को लेकर एक धूम-सी मच गई। मेरा अपना विचार है कि मात्र 'कानों में कँगना' ही राजा साहब को अमरत्व प्रदान करने के लिए पर्याप्त है। जैसे गुलेरी जी की 'उसने कहा था' और सरदार पूर्ण सिंह का 'मजदूरी और प्रेम' साहित्य की अनमोल निधि हैं और उस एक के कारण ही वे चिरस्मरणीय बने रहेंगे, उसी प्रकार राजा साहब का नाम लेते ही 'कानों में कँगना' की याद झलक मारने लगती है। प्रत्येक महान् लेखक—वह कवि हो या कथाकार जीवन में 'एक' ही रचना को लेकर अमरत्व संसिद्ध करता है जिसे अंगरेजी में 'मैग्नम ओपस' कहते हैं।

राजा साहब ने लिखा बहुत—राम-रहीम, चुम्बन और चाँटा, गांधी टोपी, तब और अब—इत्यादि-इत्यादि कुल मिलाकर छपे हुए हजारों पृष्ठ, परन्तु 'कानों में कँगना' अपूर्व है, अपूर्व रहेगी। उसकी जोड़ की कहानी हिन्दी में लिखी गयी, लिखी जायगी—कहना कठिन है। वह उठती गदराती जवानी की रचना है, जिसमें भाव और भाषा का संयोग छवि और शृंगार के योग—जैसा मणि-कांचन योग है।

राजा साहब को पहले-पहल मैंने कब देखा याद नहीं है, परन्तु उन्हें शाहाबाद जिला परिषद् के अध्यक्ष के रूप में, हरिजन सेवक-संघ के अध्यक्ष के रूप में, आरा नागरी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष के रूप में, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् के सम्मान्य सदस्य के रूप में, प्रान्तीय ललित कला अकादमी के उपाध्यक्ष के रूप में विशेष निकट से देखने को मिला। घनिष्ठता तब बढ़ी जब मैं बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् का निदेशक होकर पटना आया। बैठकों में राजा साहब एक स्थान पर मन मार कर बैठने के बजाय घूम-घूम कर लोगों से मिलना, कुशल-क्षेम पूछना और एकाध फुलझड़ियाँ छोड़ना अधिक पसन्द करते थे। वे सबके अपने थे। कोई उनके लिए पराया न था। भेद-भाव जाति-

पाँति की गंदगी में वे कभी उतरे ही नहीं। आज के वातावरण में जो [illegible] गई है, उसे देखकर वे मर्माहत, क्षुब्ध होकर पूछते, यह क्या हो गया है—[illegible] गया है—हम सीमा के अन्दर सीमा क्यों खड़ी करते जा रहे हैं ?

राजा साहब की रचनाओं में यत्र-तत्र विलासिता के चित्र बड़े ही रंगीन और चित्ताकर्षक उभर आये हैं—'राम-रहीम' में बेला और बिजली के चरित्र का [illegible] अध्ययन इसका प्रबल प्रमाण है; परन्तु स्वयं राजा साहब विलासिता से कोसों दूर रहे। राजा थे—दरबार में ये दृश्य उन्होंने अपनी खुली आँखों से देखे थे, परन्तु स्वयं उनका निजी जीवन एक योगी का जीवन था, सीधा-सादा, निःस्पृह और तपोमय। [illegible] का अभ्यास उन्होंने बहुत पहले भरी जवानी मे शुरू कर दिया था और इसका प्रभाव उनके भोजन तथा रहन-सहन, आचार-विचार पर गहरा पड़ा, पड़ना ही था। उन्होंने शराब-कबाब का बड़ा आकर्षक चित्र खींचा है, वेश्यानृत्य की मनोहर झाँकी दी है परन्तु मैं जानता हूँ शराब की एक बूँद भी उनके अधरों को छू न सकी। वे कट्टर शाकाहारी थे और स्त्रीमात्र के प्रति उनका बेटी, बहन, माँ का भाव था। [illegible] के संग में भी वे एक योगी थे। श्यामनन्दन सहाय, महावीर बाबू और [illegible] उनके प्राणप्रिय सखा थे परन्तु कभी भी शराब, कवाब और परायी सुन्दरी की ओर [illegible] अपने जीवन में ताका तक नहीं।

राजा साहब राजनीति में नहीं गये यह हिन्दी का सौभाग्य। राजनीतिज्ञों के वे मीठे आलोचक थे। आरा नागरी प्रचारिणी-सभा में जब राजेन्द्र बाबू को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया जा रहा था उस समय का राजा साहब का निर्भीक भाषण सुन कर बड़े बड़े गद्दीधारी नेता तिलमिला गये थे। 'खादी के कुर्ते में भी जेब होती है'—कितना गहरा व्यंग्य है ?

शब्दशिल्पी के रूप में बिहार में राजा साहब, बेनीपुरीजी, शिवपूजनजी और श्री कामता प्रसाद सिंह 'काम' का स्मरण सहज ही हो जाता है। राजा साहब शब्द के प्राणपिण्ड तक पहुँच जाते थे और उनके रस से पाठक के हृदय को झकझोर कर देते थे। इस बारे में वे 'गाथा सप्तशती' और 'कादम्बरी' की उपमा [illegible] जहाँ कथा मंद-मंद मधुर मोहक गति से अपने पूरे साज-सजावट आभरण और भावभंगिमा के साथ चलती है। उसके एक-एक पदचाप एक-एक अंग-संचालन,

अधरों की अरुणिमा, भौहों की भंगिमा का रस लेता हुआ पाठक बढ़ता है। कथा के अंत तक पहुँचने की हड़बड़ी नहीं है, त्वरा नहीं है, भाग-दौड़ नहीं है—'तब क्या हुआ ?' की उत्सुकता नहीं है, रस की धार चल रही है, पाठक उसमें मदहोश बह रहा है।

पटने में जब तक मैं बेली रोड वाले फ्लैट में रहा, राजा साहब के प्रायः नित्य दर्शन होते प्रातःभ्रमण में। वे नियमपूर्वक प्रातः भ्रमण के लिए निकलते और हम लोग पंचमंदिर में प्रायः मिल जाते—फिर साथ टहलते। टहलने का उन्हें भी शौक और मेरा भी अनुराग। वे प्रायः छाता और छड़ी दोनों रखते। धूप उन्हें सह्य नहीं थी। कभी-कभी तो ऐसा भी देखा गया कि एक बनियान पहने हुए हैं, ऊपर से एक चादर डाल ली है और टहलने निकल आये हैं। पूछने पर कहते—कपड़े-लत्ते की बड़ी बंदिशें सहनी पड़ी हैं—अब उनसे मुक्त होना चाहता हूँ—शरीर पर कम से कम कपड़ा अच्छा लगता है।' योगासनों के प्रति उनकी इतनी ममता कि मेरे निवास पर लगातार कई दिन आकर उन्होंने कई आसन मुझे सिखलाये। यात्राओं में भी, रेल की मुसाफिरी में भी, वे निर्धारित समय पर आसनों का अभ्यास कर ही लेते थे। कहते थे, जो अपने बनाये नियमों की रक्षा करता है, नियम उसकी रक्षा करते हैं। उनकी अनेक सूक्तियाँ हिन्दी का श्रृंगार बनकर चिर काल तक शोभा देती रहेंगी।

अन्तिम दर्शन (अब अन्तिम ही कहना पड़ता है !) तब हुए जब राजा साहब मगध विश्वविद्यालय में 'डाक्टर ऑव लेटर्स' की उपाधि से विभूषित होने और विश्वविद्यालय को गौरवान्वित करने के लिए गया पधारे थे। उसके दूसरे दिन हम-लोगों ने उनके सम्मान में स्नातकोत्तर विभाग में एक संगोष्ठी का आयोजन किया। राजा साहब के बाजू में बैठे थे इतिहास के पुराने पंडित श्री अस्करी साहब। पता नहीं उनकी उपस्थिति के कारण या यों अपनी मौज में राजा साहब बोल गये—'उर्दू एक जुबान हो सकती है, स्वतंत्र कोई भाषा नहीं है। वह हिन्दी की ही एक शैली विशेष है, और यदि उसे जीवित रहना है तो एक मात्र यही उपाय है कि उसे देवनागरी अक्षरों में लिखा जाय। बस क्या था, सभा में एक छोर से दूसरी छोर तक सनसनी हो गयी परन्तु राजा साहब खड़े रहे और कहते रहे "हाँ-हाँ, जो कुछ मैं कह रहा हूँ वह हँसी-मजाक में नहीं कह रहा हूँ, पूर्ण जिम्मेदारी और गंभीरता में कह रहा हूँ कि यदि उर्दू

को जिन्दा रखना है तो उसे नागराक्षरों में आना ही होगा; अन्यथा वह बेमौत मरेगी ...."। वातावरण को अतिशय गंभीर होते देख आपने कुछ शेर सुनाये और फिर अंत अंत में कहा—"अच्छा, मैं आप सभी से बिदा लेता हूँ—फिर आऊँगा तो रंग बाँधूँगा।"

परन्तु 'फिर' कौन आया है ? कब लौटकर आया है ? एक बार जो हाथ से निकल गया वह निकल ही गया.........हा हन्त !

बहुत शौक से सुन रहा था जमाना
तुम्हीं सो गए दासताँ कहते कहते......।

तुम नहीं मरते—मरती तो है यह देह, बस। मृत्यु तो अपनी मुक्ति है—मुक्ति। निधन होने से कोई निर्धन नहीं होता—उसकी सारी कमाई साथ ही जाती है।

—राधिकारमण

महेश नारायण
चिकित्सा पदाधिकारी, जिला जेल, सहरसा

✣

क्रोध किसे कहते हैं—आपने कभी जाना ही नहीं। लोगोंने आपकी कड़ी-से-कड़ी आलोचना की है, अप्रिय शब्दों का प्रयोग किया है, पर आपने जैसे कुछ सुना ही नहीं। मीठी बातों से बतियाते रहते, मुस्कुराते रहते। गुस्सा करनेवाला बर्फ हो जाता और बात आपकी ही रहती। क्रोध को विनम्रता से जीतने के ऐसे अनेकानेक उदाहरण हैं।

✣

'कानों में कंगना' सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी की प्रसिद्ध कहानी की आलोचकप्रवर मिश्रबंधु और पंडित रामचन्द्र शुक्ल इन दोनों ने बड़ी प्रशंसा की है। यह सन् १६१०-११ के आसपास लिखी गई थी। तब प्रेमचंद जी

ऐसे थे हमारे राजा साहब

हिन्दी में नहीं आये थे। राजा साहब की महत्ता का इसीसे अंदाज किया जा सकता है।

शुरू में कवीन्द्र रवीन्द्र और योगी अरविंद के सहयोग से बंगला में लिखना आरंभ किया। अंग्रेजी और उर्दू में भी कुछ कविताएँ लिखीं। बाद, आचार्य शिवपूजन सहाय की प्रेरणा से हिन्दी में आये, तो क्या कहानी, क्या उपन्यास—हर क्षेत्र में ऐसी धूम मची कि लोग चकित और हैरान रह गये। हजार पृष्ठों से भी अधिक का 'राम-रहीम' उपन्यास कुल तीन सवा तीन महीनों में तैयार कर बैठे; जो भाषा, शैली हर दृष्टि से आज भी अपने ढंग का अनूठा है। नैनीताल की सुरम्य पहाड़ी। आप बीमार। पूर्ण विश्राम की सलाह। लक्ष्मण तुल्य छोटे भाई सर राजीवरंजन की सख्त ताकीद कि भैया कुछ काम न करें। सभी के सो जाने पर कोठरी बंद कर खिड़कियों में परदा लगा रोशनी जला 'राम-रहीम' का प्रणयन किया जा रहा है, ऐसी थी आपकी हिन्दी सेवा की लगन!

नियमित जीवन। सवेरे-शाम कोस दो कोस का टहलना। आसन-प्राणायाम, भगवत्-भजन। मिर्च-मसाला-विहीन सादा सुपाच्य भोजन, जिसमें उबाली तरकारियों की ही अधिकता रहती। स्नान के पूर्व शुद्ध सरसों के तेल की मालिश। तीसरे पहर कागजी नींबू गारकर एक गिलास पानी। संध्या समय संतरा या कुछ दूसरा फल, ईख की गुलियाँ। रात में सोते समय सफगोल की भूसी। यही उनका सादा सरल जीवन था। जाड़े के दिनों में मैंने उन्हें भूँजे हुए चूड़े के साथ काजू मिला खाते देखा है, बाल-सुलभ सरलता के साथ। चाहे वह खा रहे हों, नाश्ता कर रहे हों या मालिश करा रहे हों, सब समय उनसे मिला जा सकता था। कोई रोक-टोक नहीं। दुढेकवा धोती, कुरता, बंद गले का कोट, दुपट्टा, कभी-कभी किश्तीनुमा टोपी, मस्तानी चाल, हँसता हुआ मुखमंडल, यही उनकी भेष-भूषा रही। बोरिंग रोड स्थित कोठी पर बाहर ओसारे में पान का डिब्बा और पीकदान रखा देख यह समझ पाना आसान था कि राजा साहब अन्दर हैं। भेंट हो सकती है। पुत्र, परिवार, नौकर, सभी से विनम्र भाषा में कुछ पूछते या अपनी आवश्यकता बताते। 'गुप्ता! मालिश ना होई?' यही उनकी मधुर वाणी थी। गुप्ता उनका निजी सेवक था।

मैंने सदा उन्हें एक-सा पाया। न कभी गमगीन, न गंभीर। ओठों पर हर समय मुस्कान की स्मित रेखा। पत्रों की भाषा भी मधुर। सभी को प्रियवर से ही संबोधित करते। हर पत्र का उत्तर यथाशीघ्र देते। देर होने का कारण बता क्षमा तक माँगते। मेरे पास उनके पचीसों ऐसे पत्र हैं जो उनकी महानता को सूचित करते हैं। जब कोई कभी, जिस किसी काम से भी उनके पास गया, ध्यानपूर्वक उसकी बात सुनीं।

यथासाध्य भरपूर सहायता या मार्गदर्शन करते। कभी कोई उनके पास से निराश या उदास न लौटता। धन का गुप्त और प्रकट दान चलता रहता। दुखी-दीन, आर्त्त की सहायता, प्रोत्साहन। वर्तमान रक्षामंत्री श्री जगजीवन राम एवं प्रसिद्ध नेत्र-चिकित्सक डॉ० दुखन राम के आरंभिक जीवन को नई मोड़ देने में राजा साहब का कितना बड़ा हाथ है—यह भविष्य ही बतायेगा। आपकी सहायता पाये कितने छात्र भारत के विभिन्न प्रांतों में प्रतिष्ठित पदों पर वर्तमान हैं।

आशा देवी नाम की एक वेश्या रहीं, जिन्होंने अपने अध्यवसाय के बल पर एम० ए० ही नहीं किया, स्कूल की निरीक्षिका भी बनीं। वह असाध्य रोग से ग्रस्त हो मृत्युशय्या पर अंतिम साँस गिन रही हैं, और राजा साहब उसके जीवन की घटनाओं को सुन अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'चुम्बन और चाँटा' का मसाला तैयार कर रहे हैं।

समय की नब्ज खूब पहिचानते थे। वर्षों पहले जब जमींदारी थी और अंग्रेजों का बोलबाला था, छुआछूत का भाव हटा बिहार प्रान्तीय हरिजन सेवक संघ के अध्यक्ष बने। अपनी रियासत की पिछड़ी कही जानेवाली जाति की जमात में जाकर बैठने-उठने लगे। कुल-परिवार के लोगों को यह बात पसन्द न आई। आलोचना हुई। मगर आप अडिग रहे। कहा, हवा के रुख को पहचानिए। यही समय आनेवाला है। राजा साहब की भविष्यवाणी सत्य निकली। राजा-महाराजा से स्वभावतः लोग डरते, सामने जाने तक में संकोच अनुभव करते हैं। पर एक आप थे जिन्हें सूर्यपुरा की जनता अपना त्राता समझती थी। आपके पिता की स्मृति में सूर्यपुरा (शाहाबाद) में एक हाई स्कूल स्थापित है। यदा-कदा आप उस स्कूल में पढ़ाने चले जाते। होस्टल में जा चौके में बैठ निरीक्षण करते, आज क्या खाना बना है? लड़कों के साथ टेनिस और हॉकी खेलने में लग जाते, जिसके स्वयं आप कालेज के दिनों अच्छे खिलाड़ी रहे। जरूरतमंद की स्कूल फीस माफ कर देते। किताब खरीदने के निमित्त अपने पास से रुपये की मदद करते। लड़के आप पर जान देते। सूर्यपुरा से आप पटने के लिए प्रस्थान कर रहे हैं, बहुत दूर तक आपकी प्रजा, जिसमें सभी तबके के लोग होते, आपको दूर तक पहुँचाने आती। आप भी सभी से घुलमिल कर बतियाते, सुख-दुख सुनते। ऐसी लोकप्रियता कितनों को नसीब होती है।

क्रोध किसे कहते हैं—आपने कभी जाना ही नहीं। लोगों ने आपकी कड़ी-से-कड़ी आलोचना की है, अप्रिय शब्दों का प्रयोग किया, पर आपने जैसे कुछ सुना ही नहीं। मीठी बातों से बतियाते रहते। गुस्सा करनेवाला बर्फ हो जाता और बात आपकी ही रहती। क्रोध को विनम्रता से जीतने के ऐसे अनेकानेक उदाहरण हैं।

आज युग ऐसा है कि छोटा लड़का, पढ़ लिख-कर सयाना हुआ। काम-काज में लगा। विवाह हुआ। पत्नी ले अलग हो जाता है। सम्मिलित परिवार का ढाँचा टूटता नजर आता है। राजा साहब दो भाई। दोनों को कई-कई लड़के-लड़कियाँ। आपने सबको सँजोकर एक सूत्र में गूँथ कर रखा। छोटे भाई के जीवनकाल में और उनकी असामयिक मृत्यु के पश्चात् भी पुत्र और भ्रातृपुत्र, पत्नी और भावज, कभी किसी में कोई भेद न रखा। गृहस्थी की गाड़ी में सभी को चढ़ा आजीवन रथ का पहिया खींचते रहे। दोनों भाइयों के प्रेम का क्या कहना? राजा साहब सरल जीवन के आदी। मगर फटी गंजी है तो उसके पहनने में भी संकोच नहीं। भाई की नजर पड़ी। नई गंजी मँगाई गई। बड़े भाई को उसे पहनने को बाध्य होना पड़ा। एक बार राजा साहब की धोती कुछ फट गई थी। सूई-तागा ले स्वयं उसे ठीक कर रहे थे। राजीवरंजनजी आ पहुँचे। आँखों से आँखों की भाषा में बातें हुईं। भैया, यह क्या कर रहे हैं? छोटे भाई के प्रेम पर बड़ा भाई दंग, संकोच से सिकुड़ा हुआ! भविष्य में ऐसा न करने का आश्वासन। राम-लक्ष्मण की ऐसी जोड़ी कहाँ मिलती है? यह बात कम लोगों को मालूम है कि जमींदारी से हजारों रुपये महीने की आमदनी होते हुए भी राजा साहब अपना गुजारा अपनी पुस्तकों की आय के एक भाग से ही करते रहे।

एक बार इनका एक विश्वासी नौकर खजाने से रुपया चोरी करने के अपराध में पकड़ा गया। राजकचहरी में पेशी हुई। खजाना खोलकर देखा गया कि उसमें उतने ही रुपये कम थे जितना उसने बीमार माँ या पत्नी की दवा के निमित्त निकाला था। सभी की यही राय हुई कि ऐसे अविश्वासी नौकर को जेल की सजा होनी चाहिए। दीवानजी उबाबले हो उठे कि बिना थाना भेजे इसे नहीं छोड़ूँगा। तब राजा साहब ने चुप्पी तोड़ी। कहा, मुंशीजी, तब इसकी जवान पत्नी के साथ भी आप ही सोइयेगा। विषाद का सारा वातावरण अट्टहास में बदल गया। नौकर को माफी दे दी गई। ऐसे क्षमा और दया की मूर्त्ति थे वे।

आखिर हिन्दी के लेखकों की ख्याति सीमित साहित्य के दायरे के भीतर ही रहती है। राजा साहब इसके अपवाद थे। शिक्षित समाज ही नहीं, उच्च सरकारी अधिकारी भी उनकी लेखनी के भक्त और प्रशंसक थे। एक साहित्यिक समारोह में भाषण देकर बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन-भवन पटना से राजा साहब बाहर निकले। बिहार सरकार के चीफ सेक्रेटरी सोहनी साहब भी वहाँ उनके श्रोताओं में थे। निकट आ बोले, बड़ा कमाल का भाषण रहा आज आपका। राजा साहब ने छूटते ही कहा—

पीता हूँ वह मय नशा उतरता नहीं जिसका,
खाली न होता है वह पयाम हूँ मैं।

और निकट खड़े लोगों की आँखों में सुर्खी दौड़ गई। क्या लेखनी क्या वाक्‌शक्ति, सब में कमाल हासिल था आपको कि पाठक और श्रोता मस्ती से झूम उठें।

असहयोग के दिनों में पूज्य राजेन्द्र बाबू शाहाबाद जिले के दौरे पर आए। राजा साहब ने सुविधा के ख्याल से उन्हें अपनी मोटर दे दी। दौरा समाप्त कर राजेन्द्र बाबू जिले से बाहर चले गये। अँग्रेज लाट ने आप से कैफियत पूछी कि ब्रिटिश सल्तनत को उखाड़ कर फेंक देनेवाले इस व्यक्ति को आपने अपनी कार क्यों दे दी? राजा साहब का साधा-साधा-सा उत्तर था, पैदल घूमते रहने में बहुत दिनों तक वे हमारे इलाके में पड़े रहते। गाड़ी दे दी कि जल्द-से-जल्द यहाँ से बाहर चले जायें। गवर्नर को इनकी इस हाजिरजवाबी पर कुछ बोलते नहीं बना।

सन् १९२६ में आप आरा जिला-परिषद् के सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुने गये। अंग्रेज कलक्टर ही डिस्ट्रिक्टबोर्ड का अध्यक्ष हुआ करता था। अतः जिलाधीश ने इनका प्रबल विरोध किया और इसकी खबर पटने पदाधिकारियों को पहुँचा दी। राजा साहब सीधे गवर्नमेंट हाउस पहुँचे और कहा कि यदि कलक्टर का यह रवैया रहा तो मैं अपनी राजा की उपाधि वापस कर दूँगा। लाट साहब को राजा साहब के तर्क और जोश ने प्रभावित कर दिया। १९३५ तक लगातार शाहाबाद डिस्ट्रिक्टबोर्ड की आपने चेयरमैनी की। और इसे तब छोड़ा जब सन् १९३५ में गाँधीजी के आह्वान पर आप बिहार प्रान्तीय हरिजन-सेवक-संघ के अध्यक्ष चुने गये। सन् १९२५ में महात्मा गाँधी जब आरा पधारे तो सरकारी अधिकारियों में विरोध की परवाह न कर आपने परिषद् के प्रांगण में ही उनका अभिनन्दन किया। आपके अभिनन्दन की वह भाव-भीनी भाषा आज भी लोग भूले नहीं हैं।

रचनाएँ अक्सर रात को ही लिखते। अक्षर आपके बहुत स्पष्ट और सुन्दर होते थे।

पत्नी का मृतक शरीर आँगन में पड़ा है। आप आसन, प्राणायाम कर प्रातः-कालीन भ्रमण के निमित्त निकल पड़े। लौटे तब तक शहर के प्रतिष्ठित नागरिक एवं सम्बन्धी जुट चुके थे। चेहरे पर उदासी छायी थी। राजा साहब उन्हें अपनी नई कहानी दिखाने लगे जैसे कुछ हुआ ही नहीं। अनासक्ति योग और स्थितप्रज्ञता का दूसरा उदाहरण इससे बढ़कर और दूसरा क्या हो सकता है?

सन् १९२१ में ३० वर्ष की अल्प आयु में आप बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के बेतिया अधिवेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। वहाँ जो आपका भाषण हुआ वह बहुत ही बेजोड़ था। भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी आत्मकथा में उसकी बड़ी प्रशंसा की है। काशी नागरी-प्रचारिणी-सभा के वार्षिकोत्सव के अध्यक्ष पद को

भी सुशोभित किया। साहित्य अकादमी, दिल्ली के आप सम्मानीय सदस्य थे। पिता श्री राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह जी 'प्यारे' कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और कवीन्द्र रवीन्द्र, दोनों की मित्रता में पले स्वयं एक अच्छे कवि थे जिनके दरबार में उस समय के प्रसिद्ध कवि और शायर रहा करते थे। पिता दीवान श्री रामकुमार सिंह जी 'कुमार' भी साहित्य, संगीत और कला के बड़े मर्मज्ञ थे। अतः जैसा स्वाभाविक था, राजा साहब का बाल्यकाल साहित्य रस का पान कर पल्लवित और पुष्पित हुआ। १८-१९ वर्ष की कच्ची उम्र में ही एक कविगोष्ठी में सम्मिलित हुए और ब्रजभाषा की एक ऐसी कविता सुनाई कि वाहवाही मच गई। समस्यापूर्ति थी "मेरे कर मेंहदी लगी है नंदलाल प्यारे, लट उरझी है नेक आँचल सँवार दे"। राजा साहब ने इसकी पूर्ति यों की—

आँख के उजारे मों लालन पी प्यारे, कचकारे घुँघरारे की छाया तन डारि दै।
मुरली धर दीजै हो मुरलीधर देखो टुक, कुंजन बिहार छाड़ि दुखिनी निहारि दै।
कानि मों राखो कान्ह सुनिये दे कान विनय, मारुत झकोरन के दुख ये निवारि दै।
दोनों कर फँस्यौ है गागर सर हाथ धरयो उर उघरो है नेक आँचल सँवारि दै॥

हिन्दी की पुरानी पीढ़ी के आप अन्तिम चिराग थे। जीवन में चढ़ाव-ही-चढ़ाव देखा। अंग्रेजी राजकाल में राजा की उपाधि, सी० आई० ई० से सम्मानित हुए। अपने देश में अपना राज हुआ तो पद्मभूषण, साहित्यवाचस्पति, डी० लिट् हुए। सूक्तियों की दृष्टि से हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ लेखक समझे गए। जीवन पर्यन्त साहित्य को अपने भावों की ज्योति दे अखंड समाधि में लीन रहे। सन् १९१० से १९७१ : पूरे ६२ वर्षों तक लेखनी को कभी विश्राम नहीं दिया। मन से सब को रिझाते रहे, तन को साहित्य-सेवा में लगाते रहे, धन से दीन-दुखियों का दुख-दर्द धोते रहे।

सेवा और समर्पण की ऐसी सलोनी सूरत अब देखने को कहाँ मिलेगी ? झोपड़ी और महल, ऐश्वर्य और दीनता, सभी का समान चित्रण करनेवाला यह अद्भुत चितेरा इस २४ मार्च १९७१ को ८२ वर्ष की उम्र में हम सभी को रुला इस असार संसार को छोड़ सदा के लिए विदा हो गए। हम उनके सुपुत्र 'नई धारा' के सम्पादक भाई उदयराज सिंह जी को क्या सांत्वना दें, जिनका संसार ही लुट गया।

रोना ही मेरे चश्म का दस्तूर हो गया।
दी थी खुदा ने नूर वह नासूर हो गया॥

जे० एन० सिन्हा
रातूरोड, राँची

राजा साहब आत्म-प्रचार से बहुत अलग रहा करते। दुनिया की दयनीय होड़भरी भीड़ और स्वार्थ की हाथापायी से वे दूर रहते।

परम-श्रद्धेय राजा साहब का पटना-निवास मेरे लिये तीर्थ-स्थान बन गया था। जब भी मैं पटना जाता अपने मित्र श्री ब्रज-किशोर 'नारायण' के साथ राजा साहब के दर्शन के लिये अनिवार्य रूप से बोरिंग रोड पहुँचता। 'नारायण' जी भी राजा साहब के परम भक्त थे। वे राजा साहब के सत्संग के लिये इस तरह प्रस्तुत रहा करते जैसे दौड़ के खेलाड़ी एँड़ी उठाये एक-दो-तीन

मेरे राजा साहब

की प्रतीक्षा कर रहे हों। मेरे पटना पहुँचते ही उनका पहला प्रश्न होता, "राजा साहब के यहाँ कब चलना है ?"

राजा साहब का व्यक्तित्व इतना आकर्षक, इतना पुनीत और इतना मंगलमय था कि उनसे साक्षात् होते ही दुःख-दर्द-रहित एक अलग दुनिया का बोध होने लगता। हम जब भी उनके यहाँ पहुँचते वे सुनते ही तुरत बाहर निकल आते और मृदुल मुस्कान से हमें अपने में घुला लेते। एक महान् साहित्यिक के अतिरिक्त वे राजा भी थे। वे यदि राजसी रवैया अपनाते तो असंगत न होता। लेकिन वे तो न औपचारिकता की कनफुसकी सुनते, न ड्राइंग-रूम का इशारा ही देखते ; बल्कि जिस लिबास में भी रहते, झट बाहर निकल कर हमारा आदर-सत्कार करने लगते। कभी तो धोती को लुंगी की तरह कमर में बाँधे और बदन में तेल मलते हुए, कभी धोती और गंजी पहने, फर्श के ऊपर की दरी पर बैठ जाते और कुशल-मंगल पूछते-पूछते शेरों की फुलझड़ियों से हमें प्रफुल्लित कर देते।

राजा साहब नये लेखकों को बड़ा प्रोत्साहित करते। जब मैं अपने कहानी-संग्रह "पहाड़ की पुकार" की पांडुलिपि उनके पास आशीर्वाद के लिये ले गया तो उन्होंने कुछ अंश पढ़कर ऐसे भाव दिखलाये मानों वे मनोमन अपना वरदहस्त मेरे सर पर फेर रहे हों। अपने "दो शब्द" में उन्होंने मुझे बढ़ावा देने के लिये बड़ी प्रशंसा कर दी।

राजा साहब आत्म-प्रचार से बहुत अलग रहा करते। दुनिया की दयनीय होड़भरी भीड़ और स्वार्थ की हाथापायी से वे दूर रहते। बोरिंग रोड का उनका निवास दुनिया का एक छोर था जिसे शान्ति का नीड़ बना वे साहित्य की सेवा किय करते। लेकिन, किसी साहित्यिक के पहुँच जाने पर वे इस तरह खिल उठते जैसे उसी मेहमान की इंतजारी में वे कभी से राह देख रहे हों। उनपर यही शेर लागू होता था—

मिसाले तार तम्बूरा
अलग हम सब से रहते हैं;
जरा छेड़े से मिलते हैं,
मिला ले जिसका जी चाहे !

रमेश कुंतल मेघ
रीडर-इंचार्ज, पंजाब यूनिवर्सिटी, प्रादेशिक केंद्र
द्वारा—दोआबा कालेज, जालंधर

राजा साहब हमेशा अपनी रचनाओं के बाबत सुधी पाठकों से पूछा करते थे। वे अपने पाठकों के प्रति कितने सहृदय और सजग थे! अपनी ही कृतियों की आशंसा तथा आलोचना को एक साथ सुन सकते थे।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह को जब मैंने सन् '५७ में पहली बार देखा तो वह एक महत्त्वपूर्ण प्रहर था मेरे जीवन का। डुमराँव राज की ओर से महाराजा कालेज की स्थापना आरा शहर में हो चुकी थी और मैं वहाँ साक्षात्कार के लिये पहुँचा था। प्रशासिका-समिति के सदस्यों में सेक्रेटरी श्री सुग्रीव सिंह, कालेज के हिंदी विभागाध्यक्ष श्री विश्वनाथ सिंह और राजा साहब

ताम्बूल द्रय....

भी थे। मुझसे उन्होंने जो प्रश्न पूछे वे तो याद नहीं हैं किन्तु इतना अवश्य याद है कि विश्वनाथ बाबू ने एक भी प्रश्न नहीं पूछा था और राजा साहब ने गहरी टोह ली थी।

समिति से बाहर आने पर राजा साहब भागलपुरी उत्तरीय से सजे हुए एक आधुनिक बाणभट्ट लग रहे थे। अगस्त की एक दोपहर थी। अतः वे काला चश्मा लगाए थे। हम कई लोग उन्हें घेर कर खड़े हो गए। इतना याद है कि उन्होंने मुस्कुरा कर मुझे एक ताम्बूल बीड़ा दिया। वह मेरे अध्यापक बनने का पहला सौभाग्य और सौगात था। यह मेरा पहला परिचय या साक्षात्कार था।

इसके बाद 'राम-रहीम', 'चुंबन और चाँटा', 'नारी क्या एक पहेली', 'अबला क्या ऐसी सबला' पढ़ने का उपक्रम आया। मुझे यह लगा कि बिहार में बाबू शिवपूजन सहाय को छोड़कर सभी लोग एक विशिष्ट पदगुम्फ की रीति अपनाते हैं। अगर मध्यकाल होता तो उस रीति को 'बिहारीय रीति' कह दिया जाता और कुंतक के न्याय से उस मार्ग को बाणभट्टीय मार्ग बता दिया जाता। राजा साहब की रूपकात्मक चमत्कारपूर्ण लेखनी और उनकी मानसिकता को—कम-से-कम मैं बाबू व्रजनन्दन सहाय से जोड़ सकता हूँ (विशेषतः उनके "सौंदर्योपासक" से)। राजा साहब हमेशा अपनी रचनाओं के बाबत सुधी पाठकों से पूछा करते थे। वे अपने पाठकों के प्रति कितने सहृदय और सजग थे ! अपनी ही कृतियों की आशंसा तथा आलोचना को एक साथ सुन सकते थे।

करीब दो-तीन वर्षों तक उनसे यदा-कदा मुलाकातें हुईं किन्तु वे बेहद संक्षिप्त थीं। डुमराँव राज्य भारतेंदु-युग में तो एक हिंदी-सृजनात्मक-केंद्र था। पं० नकछेदी तिवारी ने यहीं से अनेक ग्रंथों का प्रणयन किया था। राजा साहब और सेक्रेटरी श्री सुग्रीव सिंह से यह ज्ञात हुआ था कि राज के पुस्तकालय में अमूल्य पुस्तकें भरी हैं। कई बार योजनाएँ बनाईं, कई बार डुमराँव भी जाना हुआ किन्तु कभी भी सौभाग्य नहीं मिल सका कि राज के पुस्तकालय को देख पाता। राजा साहब बहुधा पटना रहते थे। अतः उनके विशिष्ट संपर्क से हमलोग वंचित ही रहे। उस समय आरा में रवींद्र भ्रमर, कुमार विमल, कपिलदेव पांडेय, लक्ष्मीशंकर शर्मा, श्रीराम तिवारी, चित्तरंजन, मनमोहिनी कांत, पूर्णमासी राय, जितराम पाठक, शुकदेव सिंह आदि का एक अच्छा भरापूरा कलामंडल था। काश, राजा साहब पटना के साथ-साथ आरा को भी वही प्यार दे पाते !!

रामकुमार वर्मा

अध्यक्ष, शासी मण्डल, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ

सूरत के साथ जिसने सीरत पाई हो, भाषा के अधिकार के साथ जिसने भावना की भंगिमा को पहिचानने की दृष्टि पाई हो, ऐसा कलाकार कहाँ है !

१८ जुलाई की शाम

साहित्य के श्रद्धेय सहयोगी और अपनी विशिष्ट साधना के तपस्वी श्री राधिका-रमण की स्मृति जीवन की अविस्मरणीय निधि है।

सन् १९३६। १८ जुलाई की संध्या। यूनिवर्सिटी से लौटा तो अपने मकान के बरामदे में (साकेत में) एक तेजस्वी व्यक्तित्व को आरामकुर्सी पर बैठे हुए पाया। उन्होंने स्वयं मुस्कुरा कर अपना परिचय दिया क्योंकि उनको मेरे घर तक पहुँचाने वाला विद्यार्थी वहाँ नहीं था। उनका नाम सुनते ही मैं आनन्द-विभोर हो गया क्योंकि उनकी कहानी 'कानों में कंगना' मैं एम० ए० के विद्यार्थियों को पढ़ा चुका था।

जलपान के अनन्तर उन्होंने अपने जीवन के उतार-चढ़ाव के न जाने कितने प्रसंग ऐसी मोहक मुस्कान के साथ सुनाये कि वह चित्र आज भी स्मृति-पटल पर है। रवि बाबू का साहचर्य उनकी स्फूर्ति और प्रेरणा का स्रोत था। फिर उन्होंने मेरे एकांकियों के सम्बन्ध में पूछा। मैंने बिहटा में हुई एक रेल-दुर्घटना पर एक एकांकी लिखा था।

मैंने वह पढ़ कर सुनाया। वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कुछ नवीन सुझाव भी दिये और उस दिन की स्मृति में मैंने उस एकांकी का नाम ही '१८ जुलाई की शाम' रख दिया जो 'रेशमी टाई' शीर्षक एकांकी संग्रह में संकलित है।

हम दोनों 'पद्मभूषण' हुए। उन्होंने मुझे बधाई का पत्र भेजा। इलाहाबाद से बाहर रहने के कारण मैं उसका उत्तर शीघ्र नहीं दे सका। उन्होंने शिकायत के तौर पर दो पंक्तियाँ लिख कर भेजीं—

तुम भूल कर भी याद नहीं करते हो कभी,
हम तो तुम्हारी याद में सब कुछ भुला चुके।

मैंने क्षमा-याचना का पत्र भेजा :—

दिल में है याद रूए-जानां की।
आईने में चिराग जलता है।

राजा साहब के चले जाने से एक सशक्त कलाविद् शैलीकार का अभाव बुरी तरह खटकने लगा है। सूरत के साथ जिसने सीरत पाई हो, भाषा के अधिकार के साथ जिसने भावना की भंगिमा को पहिचानने की दृष्टि पाई हो, ऐसा कलाकार कहाँ है!

यह तो कलाकार की कलम का करश्मा है कि वह जिधर ढल गई, मूरत बोल गई।

—राधिकारमण

राधाकृष्ण

२१, राधाकृष्ण लेन, राँची

उनकी भाषा में लोच और लचक और निरालापन था। भाषा की वह शैली अपना परिचय आप थी। वह भाषा स्वयं अपने आपको व्यक्त करती थी और लगता था जैसे कोई नृत्यांगना सोलहो सिंगार करके सौन्दर्य और आभूषणों से भरी किसी परी की तरह उतरी और छंदों के घुँघरू बाँधकर छुम-छुम नाच नाच रही है।

राजा साहब : एक याद

ईसाई धर्मशास्त्र में कहा गया है कि पहले कुछ नहीं था और उस शून्य में सर्वत्र अंधकार-ही-अंधकार भरा था। तब प्रभु ने कहा : प्रकाश हो जा! और प्रकाश हो गया।

कुछ ऐसा ही तो उस समय भी हुआ। पहले हिन्दी-साहित्य सूना था। सर्वत्र अभाव, निराशा और कुहरे उड़ रहे थे। ऐसे ही समय में राजा राधिकारमण आये और कहा : कहानी हो जा! और कहानी हो गई। उस कहानी के साथ-साथ एक प्रभात भी हो गया। हिन्दी-साहित्य की उस प्रत्यूष-वेला में वे उस नवयुवक चरवाहे के समान शोभायमान हुए जो अपनी कहानियों की रंग-बिरंगी गायों को हाँकता हुआ और मुरली पर भैरवी की तान लेता हुआ क्षितिज की ओर जा रहा हो। तब हल्की-हल्की हवा डोलने लगी और जीवन तथा जागरण के चिह्न दिखलाई देने लगे।

उनकी भाषा में लोच और लचक और निरालापन था। भाषा की वह शैली अपना परिचय आप थी। वह भाषा स्वयं अपने आपको व्यक्त करती थी और लगता था जैसे कोई नृत्यांगना सोलहो सिंगार करके सौन्दर्य और आभूषणों से भरी किसी परी की तरह उतरी और छंदों के घुँघरू बाँधकर छुम-छुम नाच नाच रही है। उन्होंने जैसी शैली और जैसी भाषा दी है वह उनसे पहले अनजान थी और उनके बाद भी प्रस्तुत नहीं हो पाई। जैसे क्रोटन के पत्ते हिलते हों, जैसे मौलसिरी के फूल झरते हों, जैसे नील आकाश में खंड-खंड बादल तिरते हों। भाषा निराली और भाव भी निराले। उन्होंने हिन्दी-कथा-साहित्य में वसन्तऋतु को उतारा और शोभा तथा सुगन्धि से भरे हुए नाना प्रकार के फूलों को खिलाया। इंद्रधनुष के मेहराव के भीतर से वे एक ही साथ आते और जाते हुए दिखलाई पड़ते थे। उनकी कहानियों के पात्र भी ऐसे थे जैसे वे नींद से जाग पड़े हों और उठकर उनकी कहानियों के जूलूस में सम्मिलित हो गये हों। वे पात्र एक तिलिस्म को तोड़ने के बाद दूसरे तिलिस्म को तोड़ते हुए आश्चर्यजनक और अजगैबी नहीं दिखलाई देते थे। वे ऐसे पात्र भी नहीं थे जो पुराने पुराणग्रंथों में उतरकर आये हों। उनके पात्रों में इतिहासपुरुष भी नहीं थे जो नारी और समृद्धि के लिए युद्ध करते हुए अपने गौरव की प्रतिष्ठा करते थे। उनके पात्र तो जान-पहचान के ऐसे लोग थे जिनसे रोज मुलाकात होती है। उनके बारे में कोई नहीं सोचता, लेकिन राजा साहब खास तौर से उनलोगों के बारे में ही सोचा करते थे।

उनके व्यक्तित्व में सरलता और सहानुभूति कूट-कूटकर भरी हुई थी। उनसे इतना स्नेह मिलता था कि लगता था जैसे ये गंगा और यमुना के पवित्र जल से स्नान करा रहे हों। तप्त हृदय भी शीतल हो जाता था। निराशा के अंधकार में भी वे आशा की किरण-रेखा खींच देते थे। एक बार आप उनसे मिलकर बातें कीजिये और आपको मालूम होगा जैसे युग-युग से इनके साथ आत्मीयता चली आ रही है। सरल, निर्मल, सहानुभूति से परिपूर्ण आशाभरे वचन। सुननेवाला मुग्ध हो जाता था। कदाचित् ही वे कभी किसी से कड़ी बात कहते हुए देखे गये हों। हमेशा मधु-मिश्री में घुले रहते और मिलनेवाले के मन में एक चाँदनी बिखेर देते। उनकी बातचीत की शैली भी वही थी जो उनकी कहानियों की थी। भाषण भी वे उसी प्रकार देते जैसे उसके एक-एक शब्द और एक-एक वाक्य अंधकार से निकलकर चमकते हुए आ रहे हों। उनमें

बंगला की सरसता थी, उर्दू की तड़प थी, अंगरेजी का संतुलन था और हिन्दी की सचाई थी।

उस महापुरुष की छत्रछाया और सान्निध्य का लाभ मैं नहीं उठा सका। मेरी परिस्थिति ऐसी थी ही नहीं कि उनके पास बैठता और उनसे कुछ सीखता। थोड़ी-बहुत जो मुलाकातें हैं वे ऐसी नहीं कि उनका उल्लेख किया जाय। अपना-अपना भाग्य है। संसार में सारी चीजें हैं। किसी को मिलती हैं, किसी को कुछ भी नहीं मिलती। पटने में आकाशवाणी का काम करते हुये दो वर्षों तक रहने का अवसर मिला, लेकिन ऐसा सुयोग नहीं मिल पाया कि राजा साहब के पास जाता और उनसे कथा-साहित्य की बातें करता और कुछ सीखता। जब तक पटने में रहा मेरे विरुद्ध तूफान उठाये जाते रहे, निन्दा और कुत्सा की लहर चलाई जाती रही। चाणक्य ? नामक मासिक पत्र तो शायद इसीलिये निकाला जाता था कि उसके प्रत्येक पृष्ठ में मेरी निंदा छापी जा सके। उस अप्रिय प्रसंग को न उठाकर केवल इतना ही कह देना काफी है कि पटने के तत्कालीन तथाकथित साहित्यक वातावरण ने मुझे वह अवसर दिया ही नहीं कि मैं अपने समय का सदुपयोग कर पाता। बड़ों के प्रति श्रद्धा समर्पित करता और छोटों को आगे लाने का प्रयत्न करता। राजा साहब से मिलने की और उनके पास बैठकर कुछ सीखने की बड़ी इच्छा थी, लेकिन वह मनोरथ पूरा नहीं हुआ।

राजा साहब की एक खास बात मुझे बड़ी अच्छी लगती थी। वह थी उनकी सरलता। अहंकार तो उन्हें छू भी नहीं गया था। समृद्ध राजा होते हुए भी वे इतने सरल और ऐसे निस्पृह थे कि लगता था कि जैसे हमलोगों के बीच के ही आदमी हों। पोशाक भी सीधी-सादी। न पहनने-ओढ़ने का शौक, न शान-शौकत दिखलाने की इच्छा। उन्हें तो बस एक ही शौक था। वे बड़े शौक के साथ पान खाया करते। बड़ी-सी पान की डिबिया। बातें करते जा रहे हैं और बीच-बीच में डिबिया से पान का बीड़ा निकालकर खाते जा रहे हैं। सभा हो, गोष्ठी हो, हर जगह उनका पान का बीड़ा चलता रहता। सरल इतने कि मालूम भी नहीं होता था कि वे इतने बड़े साहित्यकार हैं।

राष्ट्रभाषा-परिषद् की बैठकों में देखा करता था कि वे माधव जी से, छविनाथ पाण्डेय से, धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी से घुल-मिलकर बातें करते रहते। बेनीपुरी जी अगर कोई रिमार्क करते तो उनका जवाब तड़ से जड़ देते। शिवपूजन सहाय से उनकी बड़ी घनिष्टता थी थी। दोनों बड़ी देर तक बातें करते रहते थे। जी चाहता था कि उन दोनों साहित्यकारों के बीच पहुँच जाऊँ और सुनूँ कि वे लोग क्या बातें कर रहे हैं ?

भगर मुझे अपनी सीमा का ध्यान था और मैं दो बुजुर्गों की बातचीत के बीच में जाना उचित नहीं समझता था।

ध्यान तो उनका सब पर समान रूप से रहता था। कभी अगर मिल गये तो बड़े प्रेम से पूछते—"कहिये राधाकृष्ण जी, अच्छे तो हैं न ?"

और मैं निहाल हो जाता, क्योंकि आज के जमाने में इतना पूछनेवाले लोग भी नहीं हैं। उनमें सदा सरलता और सौजन्यता प्रतिबिम्बित होती रहती थी। कदाचित् ही कोई साहित्यिक ऐसा होगा जिसे उनका स्नेह न मिला होगा।

मुझे बड़ी इच्छा थी कि मैं जानूँ कि राजा साहब लिखते कैसे हैं? जब इस बात का पता लगाया तो स्तब्ध रह जाना पड़ा। वे कागज के छोटे-छोटे टुकड़ों पर, समाचार पत्र के कोने और हाशिये पर लिखते थे और उन टुकड़ों को सिलसिलेवार जमा कर लीजिये तो आपको एक पूरा उपन्यास मिल जायगा। जर्मनी का महाकवि शिलर था। वह लिखते समय सेव सूँघा करता था। डिकेन्स के बारे में सुना है कि वह खड़ा होकर ही लिख सकता था। जार्ज बर्नार्ड शॉ जब डबल डेकर बस में ऊपरी तल्ले पर चलते थे तो उन्हें नाटक लिखने की प्रेरणा मिलती थी। मगर राजा साहब की लिखने की प्रणाली तो सबसे विचित्र थी।

समय-सरिता के प्रवाह में हमलोग तिनके की तरह बह रहे हैं। संयोग होता है तो दो तिनके आपस में मिल लेते हैं। मेरा ऐसा भाग्य नहीं था कि राजा साहब के घनिष्ठ सम्पर्क में आ सकता। अब वह सुयोग भी छिन गया। अब भाग्य को दोष देकर ही क्या होगा? मगर एक बात है। राजा साहब से न मिलने पर भी मुझे लगता है कि वे मेरे बहुत ही निकट हैं। मुझे लगता है कि जैसे वे अदृश्य रूप से मेरे भीतर हैं और कुछ कह रहे हैं। मुझे ऐसा भी लगता है कि जैसे वे मरे ही नहीं हैं। लगता है जैसे वे जी रहे हैं और सदा-सर्वदा के लिये अमर हैं। मैं जो जानना चाहता था वे सारी बातें बतला रहे हैं। मैं जो सीखना चाहता था उसे खुले दिल से सिखला रहे हैं। अन्तर केवल इतना है कि वे प्रत्यक्ष नहीं हैं।

हाँ, वे अमर हैं, क्योंकि साहित्यकार अपने साहित्य के द्वारा अमर होता है। साहित्यकार को जो-कुछ कहना होता है वह अनन्तकाल तक अपने साहित्य के द्वारा कहता रहता है। उस साहित्य में उसकी आत्मा प्रतिबिम्बित रहती है।

रामदयाल पाण्डेय
सभापति, बिहार-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, कदमकुआँ, पटना

राजा साहब वीतराग पुरुष थे अथवा गीता के शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि 'वीतरागभयक्रोध' भी थे और थे 'ज्ञानतपसा पूत' भी। उनका जीवन योगी की भाँति था। साहित्य-योगी तो वे थे ही। वे गीतोक्त 'रागद्वेष-वियुक्त' ही नहीं; बल्कि 'योगयुक्त, विशुद्धात्मा, विजितात्मा, जितेन्द्रिय, सर्वभूतात्मभूतात्मा' थे और थे निर्लिप्त भी। मैंने उन्हें सदा निर्लिप्त पाया था। कहीं भी उनकी आसक्ति न थी। समर्पण और केवल समर्पण ही था। साहित्य-देवता के चरणों में उनका जीवन समर्पित था। वैसे जीवन में अकल्पनीय पावनता का निवास सर्वथा स्वाभाविक है। उनकी प्रत्येक साँस साहित्य-देवता की आराधना में समर्पित थी। मेरे जैसे साहित्यिक श्रमजीवियों का भला वैसा सौभाग्य कहाँ?

हिन्दी-साहित्य के 'राजा साहब'

साहित्य-वाचस्पति स्व० पद्मभूषण डॉ० राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह को किन शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पित करूँ, समझ नहीं पाता। वे तो स्वनामधन्य थे। उनके प्रति भला औपचारिकता क्या? वे मेरे तथा समस्त हिन्दी-जगत् के श्रद्धेय पुरुष थे—

वयोवृद्ध भी और विद्यावृद्ध भी। रचनावृद्ध भी उन्हें कहा जा सकता है, क्योंकि उन्होंने काफी रचनाएँ कीं। अस्सी वर्षों की अवस्था के पश्चात् उनका निधन हुआ। उनके निधन के समय मैं श्रीलंका गया था—श्रीलंका-हिन्दी-सम्मेलन का दशम वार्षिकोत्सव तथा श्रीलंकास्थित हिन्दी-स्नातकों का दीक्षान्त समारोह सम्पन्न करने। वहाँ से लौटने पर यह शोक-संवाद मिला तो मैं स्तब्ध रह गया। लगा कि एक आलोक-स्तंभ ध्वस्त हो गया। लगभग ६ दशकों तक वे निरन्तर हिन्दी-साहित्य को समृद्ध करते रहे। उनका शरीरान्त जैसे एक युगान्त का सूचक बना।

श्रद्धेय राजा साहब वस्तुतः राजा साहब थे, परंतु, स्वेच्छया वे अकिंचन साहित्यकारों की पंक्ति से पृथक् न होते थे और उनसे अभिन्न थे। बराबर वे कहा करते—'अंग्रेजी राज का राजा और सी० आई० ई० तो १५ अगस्त १९४७ को ही समाप्त हो गया।' किन्तु, हमलोग कहते कि हिन्दी साहित्य के राजा साहब तो अमर हैं; शरीरान्त भी उनका अन्त नहीं कर सकता। वे प्रेमचन्द-युग के विशिष्ट एवं वरिष्ठ कथाकार तथा उपन्यासकार थे। वे शैली-सम्राट् भी थे, जैसा मैंने उनके अभिनन्दन-ग्रंथ में लिखा। जब श्रद्धेय राजा साहब ने लिखना आरंभ किया था तभी उनकी शैली की ओर हिन्दी-जगत् आकृष्ट हुआ था। उन दिनों श्री चण्डी प्रसाद 'हृदयेश' की संस्कृतनिष्ठ आनुप्रासिक शैली काफी प्रचलित थी। आचार्य शिवपूजन सहाय जी के "विभूति' नामक कथा-संग्रह में हमें उसी प्रकार की शैली मिलती है। श्रद्धेय पं० नन्दकिशोर तिवारी जी की शैली भी वैसी ही रही। परन्तु, श्रद्धेय राजा साहब की शैली प्रेमचन्द जी की सामान्य बोलचाल की शैली भी न थी। वह थी संस्कृत और फारसी की गंगा-जमनी; क्योंकि उन्होंने इन दोनों भाषाओं का अच्छा अध्ययन किया था। उनकी शैली में पं० सदल मिश्र तथा राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की शैलियों का सम्मिलित एवं समन्वित रूप मिलता है।

राजा लक्ष्मण सिंह एवं राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के बाद हिन्दी जगत् में 'राजा साहब' के नाम से सम्बोधित एकमात्र साहित्यकार वही थे। अब तो कोई राजा रहा ही नहीं कि कोई साहित्यकार 'राजा साहब' के नाम से अभिहित किया जा सके। अतः हिन्दी-जगत् के अन्तिम 'राजा' वही थे।

राजा होकर भी वे कितने सीधे-सादे थे। सामान्य जन की तरह रहन-सहन और

मिलनसारी। 'विद्या ददाति विनयम्' की प्रतिमूर्ति। सबसे सदा मिलते और दिल खोलकर मिलते। मैंने १९३५ ई० में उनके प्रथम दर्शन किए थे। उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप मुझ पर पड़ी थी। उस छाप से ही प्रेरित होकर मैंने अपना प्रथम कविता-संग्रह 'गणदेवता' उन्हें ही समर्पित किया।

राजा साहब में न तो सामंतवाद की बू थी और न उनमें ब्रिटिश सत्ता की खुशामद-परस्ती थी। आखिर 'गाँधी टोपी' नामक कृति भी उन्हीं की देन है। भारत के स्वतंत्र होने के पूर्व से ही वे धर्मनिरपेक्ष अथवा सम्प्रदाय-निरपेक्ष थे। अपने 'राम-रहीम' नामक विख्यात उपन्यास की रचना उन्होंने उन्हीं दिनों की थी, जिसमें हिन्दू-मुसलिम एकता का अमर सन्देश भरा पड़ा है। अपने उस उपन्यास के द्वारा वे जहाँ हिन्दू और मुसलमान को समीप लाए वहाँ हिन्दी एवं उर्दू भाषाओं को भी काफी समीप लाए। वे बराबर कहा करते कि जो हिन्दी है वही उर्दू भी है; अन्तर केवल लिपि का है।

साम्प्रदायिक दृष्टि से राजा साहब का कबीरी स्वरूप रहा। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों ही के प्रिय रहे। चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, दोनों ही राजा साहब की कृति पढ़ने के लिए लालायित रहते। जिस सभा में उनके भाषण का कार्यक्रम रहता वह पहले से ही उनकी सुमधुर शैली का स्मरण कर झूमती रहती और उनका भाषण सुनने के पश्चात् तो वह लोटपोट हो जाती।

ऐसा लगता था कि राजा साहब गद्य-वक्ता नहीं, बल्कि, गद्य-गायक या गद्य-कवि हैं। उनका लिखित गद्य भी वस्तुतः गद्यकाव्य अथवा गद्य-गीत-सा प्रतीत होता है। उनकी वह शैली अनुकरण से परे और अमर है।

बिहार-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन से राजा साहब का सम्बन्ध, अत्यन्त पुराना था। इसके वे द्वितीय अध्यक्ष थे। द्वितीय अधिवेशन की ही अध्यक्षता उन्होंने बेतिया में की थी। प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष थे हास्यरसावतार पं० जगन्नाथ प्रसाद जी चतुर्वेदी। १९३७ ई० में आरा-अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष भी राजा साहब ही थे।

परन्तु, कृति-रत्नों से हिन्दी-साहित्य का भण्डार भरने में राजा साहब बिहार में सबसे आगे रहे। इस प्रकार उन्होंने न केवल गुण की दृष्टि से, बल्कि,. परिमाण की दृष्टि से भी विपुल साहित्य की रचना की। वस्तुतः वे समस्त हिन्दी-साहित्यकारों की प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित थे। अपने दीर्घ जीवन के अन्तिम क्षण तक भी वे लिखते ही रहे। अपनी अन्तिम कृतियों में से एक कृति का समर्पण उन्होंने मेरे नाम से किया

और इस प्रकार मेरे प्रति अपनी शुभकामना व्यक्त की। धन के धनी से भी बढ़कर वे प्रतिभा के धनी थे, अद्भुत धनी।

मेरे प्रति उनकी कृपा बराबर ही रही। १९४२ ई० की क्रान्ति के सम्बन्ध में जब मैं जेल गया था तब उन्होंने आरा जेल से भी मेरा समाचार लिया और गाँव आदमी भेजकर मेरे परिवार की खोज-खबर तो ली ही। पटना में यदा-कदा वे मेरे निवास-स्थान पर भी दर्शन देने की कृपा करते। वस्तुतः यह मेरे लिए गौरव एवं सौभाग्य का विषय था। उनके प्रति मेरी कृतज्ञता आजीवन बनी रहेगी।

अस्वस्थ रहते हुए भी श्रद्धेय राजा साहब बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के समारोहों में सम्मिलित होकर अपने भाषण द्वारा उन्हें अनुप्राणित किया करते थे। सम्मेलन के स्वर्णजयंती-समारोह में भी सम्मिलित होकर उन्होंने बड़ी भाव-विह्वलता से सम्मेलन के सम्मान-पत्र को स्वीकार कर उसे सम्मानित किया था। सम्मेलन भवन में वही उनका अन्तिम शुभागमन था। उसके बाद तो वे शय्याग्रस्त ही हो गए थे।

मुझे बड़ा खेद है कि उनकी अन्त्येष्टि के समय मैं अपनी श्रद्धांजलि न अर्पित कर सका, क्योंकि मैं श्रीलंका में था। वहाँ से लौटने पर मैं श्रद्धांजलि अर्पित कर सका और उनके श्राद्ध में भी सम्मिलित होकर उनके चित्र पर माल्यार्पण कर सका।

हिन्दी-जगत् उनके प्रति इसलिए भी आभारी रहेगा कि उन्होंने 'नई धारा' जैसी साहित्यिक मासिक पत्रिका प्रदान की, जिसका प्रकाशन नियमित रूप से चलता जा रहा है। 'प्रभा', 'सुधा', 'माधुरी', 'चाँद', 'हंस', 'विशाल भारत' आदि पुरानी साहित्यिक पत्रिकाएँ ही नहीं, बल्कि, 'हिमालय', 'पारिजात', 'अवन्तिका,' 'पाटल' आदि को भी काल-कवलित होना पड़ा। परन्तु, राजा साहब की 'नई धारा' चल रही है और आशा है कि चलती ही रहेगी। योग्य पिता के योग्य पुत्र श्री उदयराज सिंह उसका संचालन लगन से कर रहे हैं और नियमित रूप से घाटा उठाते चले जा रहे हैं। आर्थिक क्षति की वे कोई परवाह नहीं करते, और 'नई धारा' भी समुचित सरकारी प्रश्रय से वंचित ही है। यों, बिहार के हिन्दी-प्रेमियों का भी यह पुनीत कर्तव्य है कि वे 'नई धारा' को अस्तंगत न होने दें, जो कोई व्यावसायिक पत्रिका नहीं, बल्कि, विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका है और साहित्य-सेवा ही उसका एक मात्र उद्देश्य है।

श्रद्धेय राजा साहब वस्तुतः 'राजा साहब' नहीं, बल्कि, साहित्य तपस्वी थे। अपनी जमींदारी के स्वामित्व-बोध से वे अपने को मुक्त रखते थे। उसके संचालन से भी वे मुक्त ही रहते थे : सेवा, त्याग और साधना की त्रिवेणी पर स्थित साहित्य रूपी तीर्थराज ही उनके लिए सब कुछ था। निरन्तर साहित्य-साधना में ही अलमस्त फकीर की तरह उन्होंने जीवन-यापन किया। अपनी जमींदारी का स्वामित्व उन्होंने अपने अनुज 'कुँअर साहब' अर्थात् सर राजीवरंजन प्रसाद सिंह को सौंप दिया था, जिन्हें वे अतिशय प्यार करते थे। भरत तुल्य अपने अनुज को सूर्यपुरा का राज उन्होंने स्वेच्छापूर्वक सौंप दिया था। यहाँ पितृवचन के पालन अथवा विमाता कैकेयी की माँग का कोई प्रश्न ही न था। राजा साहब ने आजीवन साहित्यसेवा रूपी वनवास अथवा तपस्वी-जीवन को वरण किया। किन्तु, उनका यह वनवास भी निश्चिन्त न रह सका, क्योंकि 'कुँअर साहब' का निधन अल्पवय में ही हो गया, जिससे राजा साहब को बड़ी मार्मिक वेदना हुई। जिस प्रकार श्रद्धेय डॉ० सेठ गोविन्द दास पुत्रशोक की स्मृति से सदा व्यथित रहते हैं उसी प्रकार श्रद्धेय राजा साहब 'अनुज-शोक' की स्मृति से व्यथित रहते। उनका अनुज-प्रेम वस्तुतः अनुकरणीय था, जो भरत के प्रति श्रीराम के स्नेह-सदृश था।

राजा साहब वीतराग पुरुष थे अथवा गीता के शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि 'वीतरागभय क्रोध' भी थे और थे 'ज्ञानतपसा पूत' भी। उनका जीवन योगी की भाँति था। साहित्य-योगी तो वे थे ही। वे गीतोक्त 'रागद्वेष-वियुक्त' ही नहीं, बल्कि 'योगयुक्त, विशुद्धात्मा, विजितात्मा, जितेन्द्रिय, सर्वभूतात्मभूतात्मा' थे और थे निर्लिप्त भी। मैंने उन्हें सदा निर्लिप्त ही पाया था। कहीं भी उनकी आसक्ति न थी। समर्पण और केवल समर्पण ही था। साहित्य-देवता के चरणों में उनका जीवन समर्पित था। वैसे जीवन में अकल्पनीय पावनता का निवास सर्वथा स्वाभाविक है। उनकी प्रत्येक साँस साहित्य-देवता की आराधना में समर्पित थी। मेरे जैसे साहित्यिक श्रमजीवियों का भला वैसा सौभाग्य कहाँ ?

श्रद्धेय राजा साहब की स्मृति उत्प्रेरणामयी है, शक्तिदायिनी है, पूतकारिणी है। उनके चरणों में मेरी असंख्य श्रद्धांजलियाँ सादर समर्पित हैं। उनके ऋण से न तो मैं उऋण हो सकता हूँ और न हिन्दी-जगत ही उऋण हो सकता है। उनकी संस्था-

सेवा भी अनुकरणीय है। बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अतिरिक्त आरा नागरी-प्रचारणी-सभा, तथा शाहाबाद-जिला हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की भी स्थापना एवं प्रगति में उनका हाथ रहा।

उनके सुपुत्र प्रियवर शिवाजी (श्री उदयराज सिंह) श्रद्धेय राजा साहब की उपन्यास-रचना–परम्परा की रक्षा करेंगे और उनकी सुमधुर शैली को भी विकसित करेंगे, ऐसी साधार आशा मुझे है, क्योंकि वे भी प्रतिभा की देन से विभूषित हैं और स्व० राजा साहब की शैली का उत्तराधिकार भी उन्होंने ग्रहण किया है। परमात्मा उन्हें स्वस्थ-सुदीर्घ जीवन प्रदान करें कि वे साहित्य की अधिकाधिक श्रीवृद्धि कर सकें। हिन्दी साहित्यिक पत्रिका का संचालन अत्यन्त ही दुष्कर कार्य है। यह 'प्रेम-पंथ' की भाँति 'महाकठोर' है, तलवार की धार पर चलने के सदृश है। स्वतंत्र भारत के लगभग ढाई दशक व्यतीत होने पर भी यह सुकर न हो सका। प्रिय भाई 'शिवाजी' के साथ-साथ मैं 'नई धारा' के प्रति भी मैं हार्दिक शुभकामना व्यक्त करता हूँ, क्योंकि ये दोनों ही हिन्दी-जगत् को श्रद्धेय राजा साहब की देन हैं। इनके प्रति शुभकामना भी स्व० राजा साहब के प्रति श्रद्धांजलि का एक अनिवार्य अंग है। अतः इस प्रकार भी मेरी श्रद्धांजलियाँ स्व० राजा साहब के प्रति समर्पित हैं।

ज्ञान विवेक है, भक्ति भाव है। ज्ञान कर्म है, भक्ति रस है। ज्ञान बुद्धि है, भक्ति हृदय है। ज्ञान वीर्य है, भक्ति माधुर्य है। ज्ञान तत्त्व है, भक्ति सत्त्व है। ज्ञान नेम है, भक्ति क्षेम। ज्ञान सिंह है, भक्ति गउ। ज्ञान चैतन्य है, भक्ति प्राण। ज्ञान सत्य की रोशनी है, भक्ति प्रेम की चाँदनी। ज्ञान प्रकाश है, भक्ति उच्छ्वास। ज्ञान सारथि कृष्ण का शंख-निनाद है, भक्ति मुरली-मनोहर की मधुर ध्वनि!

—राधिकारमण

रामधारी सिंह दिनकर

उदयाचल, राजेन्द्रनगर, पटना-४

गृहपति होकर उन्होंने बड़ी - बड़ी जिम्मेवारियाँ निभायीं और सारा काम करते हुए इतना ऊँचा और इतना अधिक साहित्य भी लिखा, यह बताता है कि उनका हृदय वैरागी का हृदय था।

श्रद्धेय राजा साहब

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह हिन्दी के अद्भुत लेखक और विलक्षण शैलीकार थे। स्वभावोक्ति की शैली में वे लिखते ही नहीं थे। उनकी प्रत्येक रचना में वक्रोक्ति होती थी, सजावट होती थी और एक तरह का बाँकपन होता था, जो बता देता था कि यह भाषा बोलचाल की नहीं, साहित्य की है। नवजीवन, तरंग और कुसुमांजलि, राजा साहब की ये तीन पुस्तकें ऐसी हैं, जिनमें बंगला की तरह तत्समता की भरमार है, किन्तु उनकी बाद की रचनाओं—राम-रहीम, सूरदास, गाँधी टोपी, पुरुष और नारी; जानी-सुनी-देखी आदि—में हम एक ऐसी भाषा का स्वाद पाते हैं जिसमें संस्कृत और फारसी, दोनों ही भाषाओं का मिलाजुला रस है। लेकिन वक्रोक्ति की छाप उनकी

सभी पुस्तकों की भाषा पर है। फर्क यह है कि नवजीवन, तरंग और कुसुमांजलि की सारी पच्चीकारी संस्कृत के बल पर की गयी है, लेकिन बाद की रचनाओं में रत्न संस्कृत और फारसी, दोनों ही भण्डारों से लिये गये हैं। इन दो प्रकार की भाषाओं पर राजा साहब का कैसे अधिकार हुआ, इसका रहस्य हम उनकी शिक्षा-दीक्षा और संगति में ढूँढ़ सकते हैं।

राजा साहब कविता की ओर न जाकर गद्य की ओर क्यों चले गये, यह भी आश्चर्य का विषय है। राजा साहब के पितामह दीवान श्री रामकुमार सिंह ब्रजभाषा के कवि थे और 'कुमार' नाम से कविता लिखते थे। राजा साहब के पिता राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह तो बहुत अच्छे कवि थे और 'प्यारे' कवि के नाम से कविता लिखते थे। उनकी रचनाएँ एक बड़ी ग्रन्थावली में संकलित हैं। राजा साहब के पिता और पितामह केवल कवि ही नहीं थे, बल्कि कवियों के पोषक और आश्रयदाता भी थे। दीवान रामकुमार सिंह के दरबार में कवि और शायर पलते थे, जिनमें से लछिराम तथा पद्माकर के पौत्र प्रभाकर कवि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

लेकिन इतना ही नहीं था। राजा साहब के पिता जी कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के परम मित्र थे। कलकत्ते में राजा साहब का मकान रवीन्द्रनाथ के मकान के पास ही पड़ता था, अतएव जब राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह कलकत्ते से बिहार आते, तब अपने बच्चों को रवि बाबू की ही संरक्षकता में छोड़ जाते थे। अतएव यह स्पष्ट है कि राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के केवल पिता और पितामह ही कवि नहीं थे, प्रत्युत स्वयं विश्वकवि रवीन्द्रनाथ उनके अभिभावक थे। सोलह-सतरह वर्ष की उम्र में जब राजा साहब के भीतर रचना का स्फुरण हुआ, उन्होंने पहले कविताएँ ही लिखी थीं। ये कविताएँ वे ज्यादातर बंगला में लिखते थे और कभी-कभी उर्दू, ब्रजभाषा और अँगरेजी में भी। किन्तु शीघ्र ही उन्होंने गद्य की राह पकड़ ली और नवजीवन, तरंग तथा कुसुमांजलि लिखकर उन्होंने साहित्य-संसार को यह शुभ सूचना दी कि एक नया नक्षत्र क्षितिज से ऊपर उठ रहा है।

राजा साहब को संस्कृत और फारसी, दोनों ही भाषाएँ पढ़ायी गयी थीं। वैसे बी० ए० उन्होंने संस्कृत लेकर ही पास किया था और संस्कृत में विश्वविद्यालय में वे सर्वप्रथम हुए थे। किन्तु फारसी पढ़ना उन्होंने तब भी जारी रखा था।

नये लेखक के जीवन की सबसे बड़ी खोज उस लेखक का पता लगाना होता जिसके समान वह बनना चाहता है। स्पष्ट ही, राजा साहब के लिए यह आदर्श रवीन्द्रनाथ रहे होंगे और इसीलिए राजा साहब ने अपनी आरंभिक रचनाओं में बंग देश की गौड़ी रीति का अनुसरण किया।

सन् १९२० ई० के पूर्व ही राजा साहब हिन्दी के होनहार शैलीकार के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे, किन्तु तब तक उनकी कीर्त्ति कैवल नवजीवन, तरंग और कुसुमांजलि पर ही आधारित थी। सन् १९२० से सन् १९३५ ई० तक राजा साहब का साहित्यिक कार्य अवरुद्ध-सा रहा। उनकी जमींदारी कोरट हो गयी थी। कोर्ट से छूटने के बाद वह राजा साहब के प्रबंध में आयी। इस बीच वे जिला बोर्ड के चेयरमैन भी हुए और गांधी जी ने उन्हें हरिजन-सेवक-संघ का सेक्रेटरी भी बना दिया।

राजा साहब की पुस्तकों में 'राम-रहीम' का बड़ा नाम है। कहते हैं, यह पुस्तक उन्होंने डॉक्टर सच्चिदानन्द सिंह की चुनौती स्वीकार करके शुरू की थी और वे उसे 'वैनिटी फेयर' के जोड़ का बनाना चाहते थे। यह भी कहा जाता है कि जब राजा साहब इस उपन्यास के लिए समय निकालने लगे, उन्होंने गांधी जी से कहा कि मुझे राम-रहीम नामक एक बड़ा उपन्यास लिखना है, अतएव मुझे हरिजन-सेवक-संघ के काम से छुट्टी दीजिये। गांधी जी ने कहा, "छुट्टी इस शर्त्त पर कि राम-रहीम की भाषा हिन्दुस्तानी हो।" राजा साहब ने गांधी जी की शर्त्त मान ली।

लेकिन राम-रहीम की भाषा क्या वही हिन्दुस्तानी है, जिसका हिन्दी और उर्दू वालों ने विरोध किया था? मेरा ख्याल है, राम-रहीम की भाषा बोलचाल की भाषा नहीं है, वह साहित्य की भाषा है, जो विधिपूर्वक सँवारी गयी है, सजायी गयी है और जिसके भीतर अदृश्य रूप से बंगाल की गौड़ी रीति अपना काम करती है। जो भाषा राम-रहीम की है, उसी भाषा में राजा साहब ने अपना सारा साहित्य लिखा है। राजा साहब अनेक भाषाओं के पंडित थे। उन्होंने तरह-तरह की शैलियों का आनन्द लिया था और भाँति-भाँति के कलाकारों की रचनाएँ पढ़ी थीं। इसीलिए उनके आर्केस्ट्रा से एक नयी तान निकल सकी, एक नयी शैली फूट सकी। उनकी शैली गांधी जी को खुश करने की कोशिश से नहीं जनमी थी, बल्कि उसका जन्म राजा साहब की शिक्षा-दीक्षा और अत्यन्त व्यापक कलात्मक संस्कार से हुआ था।

राजा साहब की याद आते ही हृदय श्रद्धा से भर जाता है। वे बुजुर्ग होते हुए भी हमलोगों से पूरी तरह घुल-मिल जाते थे। सज्जन और सत्पुरुष वे हैं, जो अपनी प्रशंसा आप नहीं करते। राजा साहब के मुख से मैंने आत्म-प्रशंसा की कोई बात कभी सुनी ही नहीं। आत्म-संस्मरण सुनाने से भी वे परहेज करते थे। मैंने एक बार उनसे कहा था कि अपनी आत्मकथा आप लिख दें तो इस बहाने भी हिन्दी को हजार पाँच सौ पेज का अच्छा गद्य मिल जाय। राजा साहब ने कहा, आत्मकथा लिखने में आत्म-प्रशंसा से बचना मुश्किल होता है। वैसे जो घटनाएँ मैंने देखी हैं उन्हीं के आधार पर मैंने अपने उपन्यास लिखे हैं।

राजा साहब के पास सबसे पहले मुझे शिवपूजन बाबू ले गये थे। उस दिन राजा साहब ने मुझे जिस प्रेम से अपनाया, उनका वही प्रेम मेरे प्रति सदैव बना रहा। पछताता हूँ कि मुझसे उनकी कोई सेवा नहीं बन पड़ी, किन्तु, अपनी एक पुस्तक मुझे समर्पित करके उन्होंने मुझे अपना आशीर्वाद जरूर दिया।

राजा साहब का स्वास्थ्य बचपन से ही कमजोर था, किन्तु बचपन से ही वे स्वास्थ्य के ऊपर विशेष ध्यान देते आ रहे थे। इसीलिए भगवान ने उन्हे लंबी आयु दी। टहलना और योगासन उनके अटल नियम थे। एक बार दिल्ली से पटना हम एक ही ट्रेन से आ रहे थे। मैं यह देखकर दंग रह गया कि जहाँ भी ट्रेन दस मिनट को रुकती, राजा साहब ट्रेन से उतर कर प्लेटफार्म पर टहलने लगते।

राजा साहब आस्तिक मनुष्य थे और साधना उनकी भक्ति-मार्ग की थी। वे दूसरों का दुखड़ा बड़े ध्यान से सुनते थे और सबकी सहायता करने को तैयार रहते थे। जन्म तो उनका राजवंश में हुआ था, किन्तु विलासिता उनके पास फटक नहीं पायी थी। बचपन में उनका पालन कलक्टर की देखरेख में हुआ था, बल्कि कुछ दिन वे कलक्टर की कोठी पर ही रहे थे। उन दिनों वे चौकी पर सोते थे, उनके कमरे में पंखा नहीं था और अपना कमरा वे आप बुहार कर साफ करते थे।

गृहपति होकर उन्होंने बड़ी-बड़ी जिम्मेवारियाँ निभायीं और सारा काम करते हुए इतना ऊँचा और इतना अधिक साहित्य भी लिखा यह बताता है कि उनका हृदय वैरागी का हृदय था।

रामनगीना सिंह "विकल"
गोपालगंज (सारन)

कभी-कभी मैं सोचा करता था, अपने पिछले जन्म में वे शिल्पी रहे होंगे, पत्थर को तराश कर उसे सजीव-सा बनाते होंगे। वह कोई व्यावसायिक बुद्धि से नहीं, अपने कला-प्रेम से। इसीलिए करुणानिधान ने दूसरे जन्म में उन्हें शब्द-शिल्पी के रूप में सुख-सुविधापूर्ण राजपरिवार दिया।

वह शब्दशिल्पी !

राजा साहब अब नहीं रहे, यह सोचते ही मानस के आकाश में अनेकानेक स्मृतियाँ जगमगा उठती हैं, ताराओं-सी। फिर मन में आता है, वे हैं, रहेंगे—अमर रहेंगे। यों तो, अपने 'दरिद्रनारायण' मे, उन्होंने राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह को मार डाला था। हाँ, १९४७ में उन्होंने उद्घोष भी किया,—"मगर जिन्दा है राधिकारमण, कलाकार राधिकारमण"। यह सहज गर्वोक्ति कितनी सच्ची है ! वे हैं, रहेंगे, सदा रहेंगे। माना कि अपनी शैली वे साथ ही लिए गए मगर वह शैली उन्हें इस असार संसार में सदा के लिए छोड़ती भी गयी कि नहीं ?

कभी-कभी मैं सोचा करता था, अपने पिछले जन्म में वे शिल्पी रहे होंगे पत्थर को तराश कर उसे सजीव-सा बनाते होंगे। वह कोई व्यावसायिक बुद्धि से नहीं, अपने कला-प्रेम से। इसीलिए करुणानिधान ने दूसरे जन्म में उन्हें शब्दशिल्पी के रूप में सुख-सुविधा पूर्ण राजपरिवार दिया।

राजा साहब भविष्यद्रष्टा थे। जिस सांस्कृतिक समन्वय की या हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की उनकी कल्पना थी, वह निकट भविष्य में ही साकार होने जा रही, यह जोर देकर मैं कह भी दूँ।

मुझे वह दिन बराबर याद रहता है जब १९४२ में मैं उनके प्रेसिडेन्ट्स चैम्बर में मिला था। टॉमी देश में छा चुके थे। नेता-कार्यकर्ता जेलों में बन्द किए जा चुके थे। आन्दोलन ठंडा पड़ चुका था। कुछ उत्साही तथा नए कार्यकर्ता लुकछिप कर क्रान्ति को जगाए रखने में सक्रिय भी अबतक थे जरूर। इसी क्रम में पटने गया था। महीनों पहले सूर्यपुरा छोड़ चुका था मै। यह सुनकर कि वे कुँअर साहब के साथ पटने में हैं, दर्शन करने गया। उस दिन बातचीत का विषय देश तथा आन्दोलन के सिवा और हो भी क्या सकता था ? वैसी ही बातचीत के क्रम में मुझसे कहा उन्होंने, सरकार के प्रचार विभाग में नौकरी चाहें तो मैं दिला दूँ, काम केवल कुछ पैम्फलेट आदि देखकर निर्देश देना, अच्छी तनख्वाह और प्रोमोशन की गारंटी। मैंने कहा, यदि अंगरेजी सरकार अपना सारा एम्पायर भी दे दे तब भी मैं यह न कर सकूँगा। इस पर मुस्कुराते हुए उन्होंने जो कहा, उससे उस दिन उनके प्रति मेरे मन में आदर-भाव कुछ घट तो गया जरूर, मगर बाद में पाया कि बात सवा सोलह आने सच निकली। कहा था उन्होंने, "देखिए रामनगीना सिंह, आज जो गोली चला रहे हैं, स्वराज्य होने पर चाँदी काटेंगे। और श्री जयप्रकाश नारायण ? वे तुरत पकड़े जाएँगे। उनका पता सरकार को चल गया है। अभी इसलिए नहीं पकड़े जा रहे हैं कि सरकार उनके कार्यकलापों के आधार पर उनकी योजना की जानकारी प्राप्त कर ले।" पटने से घर आने पर जो साप्ताहिक 'नवशक्ति' का अंक आया, उसमें श्री नारायण के पकड़े जाने की बात पढ़कर दंग रह गया। आजादी मिलने पर गोली चलाने वाले ऑफिसरों की पदोन्नति पर भी दंग रह गया। ऐसे प्रत्येक अवसर पर राजा साहब की बात याद आ जाती। मेरी मानसिक आँखों के आगे उनके कतिपय रूप हैं जिनमें उनका द्रष्टा रूप सर्वाधिक स्पष्ट है। यह मैं अपना अनुभव कहता हूँ।

उन दिनों 'राम-रहीम' की चर्चा जोरों से होती रही। दो-चार अध्यापकों को यह कहते सुना कि राजा साहब ने हिन्दू नारी बेला का जीवन दुःखान्त बना दिया, यह अच्छा नहीं हुआ। संभवतः किसी आलोचक ने वैसा ही कुछ लिखा भी था। 'राम-रहीम' पढ़कर मैंने एक पत्र में उनको लिखा, "हमारा अध्यात्म-दर्शन आत्मिक सुख की उपेक्षा करके भौतिक सुख को स्वीकार भी कहाँ करता! सो यदि बेला का अन्त उस रूप में हुआ तो बुरा क्या हुआ? और फिर, राम और रहीम के नाम पर जो समाज का निर्माण हुआ है, 'राम-रहीम' उसका चित्र भी तो है।" उत्तर में उन्होंने लिखा, "यों तो 'राम-रहीम' पर बड़े-बड़ों की आलोचनाएँ पढ़ने को मिलीं, मगर रहस्य सुलझाया तो आपने। कम-से-कम, लेखक के भाव को समझ तो लिया ही आपने।"

मैंने कई बार देखा, जब कुँअर साहब से उन्हें कुछ परामर्श करना होता, तब उन्हें अपने पास न बुलवा कर स्वयं उनके पास जाने लगते। उधर कुँअर साहब अपनी ओर उन्हें आते हुए देख कुर्सी छोड़ इनकी ओर आने लगते। बीच में ही भेंट होती और तब दोनों वहीं बैठ कर बात करते। मुझे यह देख उन दिनों ताज्जुब भी होता था। बड़े भाई के व्यवहार में जो स्नेह एवं पारिवारिक सामञ्जस्य का भाव था, उसे देखने की दृष्टि कहाँ थी मेरी उस समय!

मैंने कहा, राजा साहब अमर हैं। एक दूसरे माने में भी अमर हैं। जो भी सहृदय जन उनसे एक बार भी मिला हो, अपनी स्मृतियों में उनसे उसी प्रकार मिलता रहेगा जैसा कोई अवसर पाकर अपने दूरस्थ मित्र से मिला करता है। हम जबतक रहेंगे, हमारे मानस में वे रहेंगे, रहेंगे और चमकते रहेंगे।

मेरी रुचि अध्यात्म में है। राजा साहब हैं, मैं हूँ; राजा साहब रहेंगे, मैं रहूँगा। वे कहीं रहें, मैं कहीं रहूँ, हमारा सम्बन्ध बना रहेगा। यह बात और है कि उस सम्बन्ध को हम परस्पर न जान सकें, मगर ऐसे या वैसे, बना तो वह रहेगा ही। कहा ही नहीं गया है, बात भी है कि Spiritual effinity कभी नहीं टूटती। मुझसे वे प्रायः अध्यात्म की बात भी कहा करते। एक बार तो मुझसे यह भी बतलाया उन्होंने कि किस प्रकार उनकी माँ ने परलोक से अपने रखे हुए गुप्तकोष का वह स्थान बतलाया जहाँ सचमुच वह कोष मिल गया। हाँ, उस माध्यम का नाम भी बतलाया जिनके द्वारा अपनी माँ का सन्देश उन्हें मिला था।

अपने पात्रों के भौतिक जीवन पर राजा साहब पूरी सहानुभूति के साथ हँसे-रोए भी हैं, दुनिया के सब खेलों में काल्पनिक हिस्सा भी लिया उन्होंने, मगर उनकी आत्मा तो सात परदों के पीछे की आत्मा पर ही टिकी रहती। उनका साहित्यिक महल, मेरी समझ से, इसी सूक्ष्म किन्तु ठोस बुनियाद पर निर्मित है। कोई इसे छोटे मुँह बड़ी बात कहे तो कहे, मैं अपनी कहता हूँ।

स्थान-संकोच है, क्या याद करूँ, क्या छोड़ूँ ? पत्र-द्वारा जो उनसे परिचय हुआ, क्या भूल सकूँगा ? किस सहृदयता से सूर्यपुरा में भेंट करने को लिखा उन्होंने, क्या भूल सकूँगा ? वहाँ जाने पर किस उत्सुकता से मुझसे पूछा, 'कुछ लिखते भी हैं, और मेरे 'ना' कहने पर किस श्रद्धा से कहा", "आप लिख सकते हैं, लिखिए, जरूर लिखिए। मैं कहता हूँ जरूर लिखिए, कुछ यों ही नहीं कह रहा हूँ, मैंने आपकी दो-दो चिट्ठियाँ पढ़ी हैं, हाँ, जरूर लिखिए।" क्या भूल सकूँगा ? और यह भी क्या भूल सकूँगा कि उक्त कथन मात्र प्रोत्साहन रहा। १६४० की बात है यह। अभी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आइ० ए० का छात्र था मैं। यह भूल नहीं सकता कि समय-समय पर मुझे सौ-दो-सौ रुपए भी देते रहे वे। यह भी नहीं भूल सकता कि जब भी रुपए वापस करने गया, उन्होंने कहा, अभी नहीं, और कमाइए, फिर कभी। कई बार यही एक उत्तर पाकर मैं समझ गया कि मुझे वे जो दे चुके, दे चुके। हाँ, गलत या सही, यह भी समझ गया कि किसी से लिया हुआ वापस करना चाहिए, यह मेरा भाव मरे नहीं, यह भाव भी उनका रहा। किसी-किसी ने उनकी सादगी एवं मितव्ययिता देखकर उन्हें कृपण भी कहा। मैं क्या कहूँ, कोई कहे न !

मेरी नियुक्ति सूर्यपुरा में हुई। प्रथम दिन ही एकान्त में मुझसे कहा उन्होंने, यह दरबार है, लाख चाहने पर भी किसी हद तक ही यह बदल पाया है, मुझे खुद इस स्थिति का मुकाबला करना पड़ता है, आप दूसरे वातावरण से आए हैं, आपसे मेरी सहानुभूति है और रहेगी, मगर किसी वातावरण में खप जाना, अपनी सूझ-समझ पर निर्भर है। यह सुनकर उस दिन तो मैं सशंकित जरूर हुआ, मगर जब तक वहाँ रहा, वातावरण में मुझे कोई प्रतिकूलता नजर न आयी। वहाँ हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक राजपूत, लगभग आधे शिक्षक राजपूत, राजकर्मचारियों में ७५ प्रतिशत राजपूत। सब पर राजा साहब का स्नेह।

सूर्यपुरा रहते समय कभी-कभी उनके साथ टहलने का अवसर भी मिल जाता। बातचीत भी चलती रहती। एक दिन टहलते समय सामने से एक होमियोपैथ आकर मिले। राजा साहब ने जो उनसे हालचाल पूछा, उसके जवाब में उन्होंने कहा, "ठीक ही है, जरा सीजन डल है।" बेचारे को सुनना पड़ा, "लाहोल्वेलाकुवत ! लोग बीमार पड़ें-मरें, सीजन अच्छा ! अच्छा रहा यह ! खैर मनाइए दुनिया का, भला हो दुनिया का, भला हो आपका।" मुस्कुराहट जो होमियोपैथ के चेहरे पर उभी, वह झेंप की ही थी, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

एक दूसरे दिन टहलते समय बातचीत के बीच राजा साहब अचानक मौन हो गए। जहाँ तक स्मरण है, बातचीत में मैंने आशा शब्द का प्रयोग किया था। संभवतः उनके मौन का वही कारण रहा। दो क्षण बाद उन्होंने कहा, "आशा...ऐसी है जो तार-तार होकर भी नहीं टूटती। मैं आशा शब्द के बाद कोई एक शब्द रखना चाहता हूँ, मिलता नहीं, ढूँढ़िए तो भला आप।" मैं अजीब हैरानी में पड़ा। जब पूछा कि किस भाव में तो हाथ-मुँह से मुद्राएँ बनाते हुए भी कुछ खास बात नहीं कह सके। कुछ सोचकर मैंने पूछा कि निगोड़ी शब्द कैसा रहेगा। जवाब मिला, 'हाँ कुछ तो कहा आपने जरूर मगर चाहिए कोई और ही शब्द।' जब मैंने बेहया शब्द दिया तो उनका चेहरा खिल उठा। कहा भी उन्होंने, 'आखिर आपने ढूँढ़ा तो, मगर मेरी कोशिश जारी रहेगी।' पता नहीं, किसी पुस्तक में यह वाक्य उन्होंने लिखा है या नहीं, और यदि लिखा है तो वहाँ बेहया शब्द ही है या कोई अन्य शब्द है। मैं समझ नहीं सका कि मेरी जाँच कर रहे थे वे या मुझे प्रोत्साहन दे रहे थे या सचमुच उस समय कोई समुचित शब्द सूझ नहीं रहा था उन्हें। वह जो हो, मैं यह भी मानता हूँ कि कभी-कभी वे उचित शब्द के लिए परीशान भी हो जाया करते। शब्द-शिल्पी जो रहे वे। अपनी शैली में विशुद्ध भाषा एवं अर्थवह शब्द देना भी ध्येय रहा उनका।

उनके मुँह से किसी की निंदा तो कभी सुनी नहीं गयी। तारीफ करना भी उनका अपने ढंग का रहा। एक बार जब मैंने उनसे पूछा कि विभक्तियों को अलग लिखना चाहिए या संज्ञा में मिलाकर; तो साश्चर्य कहा उन्होंने, "अरे ! एक सवाल ही रख दिया आपने हिन्दी-संसार के सामने।" फिर पूछा उन्होंने, "किसी लेखक को एक साथ लिखते पाया भी है क्या ?" मैंने डॉ० संपूर्णानन्द का नाम बतलाया और 'आज'

अखबार का भी। उस दिन मुझे लगा, मैंने ऐसी एक बात कही जो उन्हें विदित नहीं। दो दिन बाद उनके टेबुल पर, उन्हीं के कहने से पत्र-पत्रिकाओं के बीच एक चिट्ठ खोजते हुए, मैंने एक पत्र देखा जिसमें उसके लेखक ने वही प्रश्न उठाया था। दो महीने पहले का आया हुआ कार्ड था वह, ऐसा उस पर अंकित तिथि से पता चला। किसका भेजा हुआ था, नीचे के हस्ताक्षर में स्पष्ट नहीं था। जिस बात को वे स्वयं जानते रहे या किसी अन्य से सुन चुके थे, उसी को मेरे मुँह से सुनकर मेरी बात मान लेने का नाट्य करना तारीफ या प्रोत्साहन के सिवा दूसरा क्या रहा? प्रातःस्मरणीय श्री शिवपूजन सहाय और राजा साहब, ये दो ऐसे सज्जन रहे जो किसी में जरा-सी भी प्रतिभा या लेखन-रुचि देखकर प्रोत्साहन देने से बाज नहीं आते। और भी कोई ऐसे हुए हों तो मुझे पता नहीं।

एक बार हाथ में कोई कहानी की किताब लेकर बैठे थे—आँखें बन्द किए किञ्चित् झूमते हुए और दाएँ हाथ से मुद्रा जैसी बनाते हुए। इसी बीच जाकर मैंने प्रणाम किया। पुस्तक मेरी ओर बढ़ाते हुए और एक पंक्ति पर उँगुली दिए हुए, झूम-झूम कर कहने लगे, 'दिया जल रहा था, और जल रहा था।' मैंने देखा, उँगुली के नीचे वही छोटी पंक्ति है। मुग्ध थे वे उस छोटे वाक्य पर। शायद यह वाक्य श्री राधाकृष्ण की कहानी में था!

कई बार घटनाओं के संस्मरण भी मैंने उनसे सुने। सुनाते समय इतनी तन्मयता होती उनकी कि बीती बातों की प्रतिक्रिया उनके चेहरे पर वर्तमान हो जाती। वह भी इस कदर कि सुननेवाले पर भी असर पड़ जाय, हू-ब-हू।

दो-चार उनके भाषण भी सुनने का अवसर मिला। देश के सुप्रसिद्ध वक्ताओं के भाषण भी मैंने सुने हैं। राजा साहब की वक्तृता भी एक ही रही। जैसी कलम, वैसी जुबान। न कोई स्वर का विशेष उतार-चढ़ाव, न कोई खास किस्म का नाट्य, न कोई विशेष भावभंगिमाएँ, फिर भी कुछ ऐसा जो सारी नाट्कलाओं के ऊपर हो। वे भाषण नहीं देते थे, इसीलिए भाषण देते थे। हाँ, art is the concealing of art। भाषण दें या बातचीत करें, प्रायः अपनी पुस्तकों की पंक्तियाँ दुहराया करें। कभी-कभी तो पृष्ठ के पृष्ठ दुहरा जायँ। काव्य-पंक्तियों जैसी वे अपनी गद्य-पंक्तियों को

याद रखते। यों कहना चाहिए कि पंक्तियाँ उन्हें याद रहतीं। एक बार कहा था उन्होंने, "मैं अपनी पंक्तियों को गाता हूँ जैसे मन में।"

एक बार एक बड़े आदमी को अपने दोस्तों से कहते सुना था, राजघरानों के ऐसे उत्सवों में, जहाँ दर्जनों राजे-महाराजे अपने दर्प-दीपित व्यक्तित्व एवं भव्य वेशभूषा में समवेत होते, राजा साहब ही गले में चादर लपेटे धोती एवं लौंग कोट में आकर्षण का केन्द्र हो जाया करते।

मैंने जब भी उन्हें देखा, सामान्य पोशाक में ही देखा। वेशकीमती वस्त्र उनके बदन पर कभी देखे नहीं। एक बार कहा था उन्होंने कि जब उनके पिताजी का राज्य कोर्ट ऑफ वार्ड्स में चला गया था, उन्हें दाने के लाले भी पड़े थे। पता नहीं, मितव्ययिता का अभ्यास उसी का परिणाम था या राज्यसंपत्ति से अपने लिए वे उतना ही लेना फर्ज समझते थे जितना निहायत जरूरी होता। जो भी हो, यह गुण भी उनमें सहज ही आया हुआ मानता हूँ मैं।

हाँ, व्यक्तित्व में एक ही, मिलनसारिता में एक ही, साहित्य-शैली में एक ही, वक्तृता में एक ही, सहजता में एक ही, अनुभव में एक ही, सुख-सुविधा पाकर भी सामान्य जीवन-यापन में एक ही, राजा साहब एक ही रहे। वे अविस्मरणीय हैं, वे अमर हैं। कितने दुख के साथ कहना पड़ता है कि अब उनका भौतिक रूप केवल हमारे मानस में रह गया! मैं उनका स्नेह भूल नहीं सकता। मुझे वे कुछ का कुछ बनाना चाहते थे, मैं जो था वही बने रह जाने की प्रवृत्ति सँजोए रह गया। उन्हें मेरा सदा प्रणाम भाव!

हमारे होंठों पर घी की चिकनाहट से कहीं ज्यादा जरूरी जी की चिकनाहट है। हमारे चेहरे पर अगर आत्मा की प्रसन्नता न रही, तो फिर हीरे-मोती की चन्द्रिका रही या न रही, दोनों बराबर है। सुहाग के फूल में अगर प्रेम का पराग न रहा, तो वह खिला या कुम्हलाया—दोनों एक है। —राधिकारमण

रामरोझन रसूलपुरी

'उत्तर बिहार'-संपादक, पटना—१

प्रथम दर्शन में मैंने राजा साहब में जो सादगी देखी उससे सहसा तो ऐसा विश्वास हो नहीं ही रहा था कि यही राजा राधिकारमण हो सकते हैं। कारण, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की जिस ठाट-बाट और तड़क-भड़क वाली मूर्त्ति की मैंने कल्पना कर रखी थी—यह प्रत्यक्ष दर्शन सर्वथा उसके विपरीत था।

पुण्यश्लोक श्रद्धेय राजा साहब : कुछ संस्मरण—कुछ संदर्भ

१९५७ का वर्ष। सरायकेला, सिंहभूमि के अरण्य-पर्वत क्षेत्रों से वापस आकर 'उत्तर बिहार' साप्ताहिक का सम्पादन प्रभार सँभाले अभी कुछ मास ही बीते थे। अपनी संकोचशील प्रकृति के कारण, मैं मात्र कुछ परिचित मित्रों को छोड़कर पटना नगर के प्रसिद्ध साहित्यकारों के संपर्क में तब तक नहीं आ पाया था। किन्तु, संपादन प्रभार ग्रहण करने पर मैंने पटना नगर तथा राज्य के अन्य प्रमुख साहित्य-सेवियों को

'उत्तर बिहार' के अंक नियमित भेजवाने का प्रबन्ध करा दिया था। राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का नाम उस सूची की अग्रिम पंक्तियों में था। उन दिनों मैं बिहार आर्य प्रतिनिधि सभा, मुनीश्वरानन्द भवन, नया टोला, पटना स्थित कार्यालय के अतिथि निवास में ठहरा हुआ था। एक दिन प्रातःकाल एक अपरिचित सज्जन मिले और उन्होंने आग्रह किया कि "राजा साहब ने आपको अपने बोरिंग रोड स्थित कोठी पर याद किया है।" वह सज्जन पूछने पर मालूम हुआ कि अशोक प्रेस के कर्मचारी हैं और 'नई धारा' में प्रमुद्र संशोधन का कार्य करते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि सुविधानुसार आप जब भी कहेंगे मैं आकर आपको राजा साहब के पास ले चलूँगा। राजा साहब की यही आज्ञा है।" मैंने उन्हें दूसरे दिन प्रातःकाल पधारने का आग्रह किया। और, वे चले गये।

'राजा' उपाधियुक्त नाम तथा १९२० ई० में बेतिया में संपन्न होने वाले बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में उनके प्रकाशित चित्र के अवलोकन से जो प्रभाव मेरे हृदय-मस्तिष्क पर जमा हुआ था, उसके अनुकूल मैं राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह को एक देशी रियासत का भारी भड़कम रईस समझे हुआ था। बड़े-बड़े राजा-रईसों तथा आफिसरों से मिलने-जुलने की प्रवृत्ति स्वभावतः मुझमें नहीं थी। यथा अवसर किसी मान्य साहित्यकार के परिचय-भेंट को अपना सौभाग्य अवश्य समझता था। दूसरे दिन जब वे ही सज्जन लगभग ८ बजे प्रातःकाल मुझे बुलाने के लिए पधारे, तब बड़े ही संकोच और असमंजस के साथ मैं उनके साथ रिक्शा पर बैठा।

भव्य सूर्यपुरा कोठी का प्रांगण। सामने के बारामदे के पश्चिम वाली कोठरी में मुझे ले जाया गया। राजा साहब एक पलंग पर अत्यन्त सादे वेश-भूषा में लेटे हुए थे। संयोगवश उस दिन उनकी तबीयत कुछ सुस्त-सी लग रही थी। मुझे देखते ही उन्होंने अपनी टकसाली जुबान में कहा—"वाह, आप आ गये। मैं तो आपका इन्तजार कर रहा था। आपका अखबार मैं बड़े चाव से पढ़ता हूँ। साहित्य की दुनिया की खोज-खबर आप रखते हैं, इसी वास्ते बधाई देने को बुलाया हूँ।"

प्रथम दर्शन में मैंने राजा साहब में जो सादगी देखी उससे सहसा तो ऐसा विश्वास ही नहीं हो रहा था कि यही राजा राधिकारमण हो सकते हैं। कारण, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की जिस ठाट-बाट और तड़क-भड़क वाली मूर्ति की

मैंने कल्पना कर रखी थी—यह प्रत्यक्ष दर्शन सर्वथा उसके विपरीत था। किन्तु, अविश्वास का कोई कारण भी नहीं था। मैंने राजा साहब का चरणस्पर्श किया और उनके संकेत के अनुकूल बगल की कुर्सी पर बैठ गया। उन्हीं दिनों राजा साहब की नयी पुस्तक "चुम्बन और चाँटा" का प्रकाशन हुआ था। उन्होंने बड़े ही प्रेम से उसकी एक प्रति मुझे दी और कहा—"इसे पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया अवश्य व्यक्त कीजियेगा।"

राजा साहब के सहज स्नेहपूर्ण व्यवहार ने बरबस मुझे आकर्षित किया और मैं उनका सदा के लिए भक्त बन गया। 'चुम्बन और चाँटा' की समीक्षात्मक विवेचना का प्रकाशन यथा अवसर 'उत्तर बिहार' में हुआ। मेरा संपर्क उत्तरोत्तर राजा साहब से घनिष्ठ होता गया। कभी अकेले तो कभी स्वर्गीय श्री ब्रजकिशोर 'नारायण' जी के साथ राजा साहब के दर्शनों के अवसर आते रहे। राजा साहब ने मुझे मात्र शाब्दिक 'वाहवाही' ही नहीं दी, बल्कि अपनी मूल्यवान सम्मति और योग्य सुझावों से भी मेरा मार्ग-निदर्शन किया। उसी वर्ष (१९५७ ई०) दीपावली विशेषांक के निमित्त मैंने जब कोई रचना देने की प्रार्थना की, तब उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से अपनी स्वीकृति प्रदान की और "क्या और कौन" शीर्षक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ उन्होंने 'उत्तर बिहार' के लिए विशेष रूप से लिखने की कृपा की—जो १९५७ ई० के हमारे दीपावली विशेषांक को गौरवान्वित करने में समर्थ हुआ। उस संदर्भ में राजा साहब ने अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों का सजीव चित्रण प्रस्तुत करते हुए लिखा था—

"लीजिये, आज अपने अन्दर भी एक द्वन्द्व उठ आता है—अक्सर राग और विराग की जंग छिड़ ही जाती है—चाहे-अनचाहे। और क्यों न छिड़े, कहिये! वह धन-धाम जिसकी चकाचौंध में भटक कर हमने जवानी ऐसी निधि लुटा दी, वह सारा ऐशो-आराम का सरंजाम तो दो पल में लुट गया, छिन गया बैठे-बिठाये। अब रहा क्या? बस, एक संबल—अपनी कमजोर कलम और प्रभु का अटूट अवलम्ब!"

"तो जबतक वह अनित्य ही अपना आराध्य रहा, तबतक न साहित्य की ही वैसी सेवा बन पड़ी और न वह 'सत्य-नित्य' की ही आराधना हो पायी। होता भी कैसे? एक म्यान में दो तलवार तो रहने से रही।"

"मगर हाँ, साहित्य के अनुशीलन के साथ तो उस नित्य से, उस मनन-चिन्तन से, विरोध नहीं—उस भजन-पूजन से वैसा संघर्ष या अवरोध नहीं।"

राजा साहब के उपर्युक्त अनुभूतिपूर्ण विचार उनके महानतम जीवन-दर्शन के सूत्र हैं जैसे ! तब से प्रति वर्ष 'उत्तर बिहार' के दीपावली विशेषांक में, राजा साहब ने मेरे विशेष अनुरोध पर, लिखना स्वीकार किया और अपनी मूल्यवान् रचना तथा बहुमूल्य सम्मति से मुझे प्रोत्साहित करते रहे। १९५८ ई० के विशेषांक में मुझे "नया जमाना : नया रंग" शीर्षक सन्दर्भ प्रकाशित करने का गौरव प्राप्त हुआ। उस सन्दर्भ में उन्होंने आधुनिक नारी-समाज का जीवन्त शब्द-चित्र प्रस्तुत किया था।—

"बदल रही है यह दुनिया, लद चुके हैं वे नजरबन्दी के दिन—कहाँ से कहाँ उठ आई नारी आज !...शहरों में कितनी शादियाँ ऐसी हो रही हैं कि आँखें मिलीं, मिल गये दिल, जुड़ गये जीवन भी भरपूर। लीजिये, माता-पिता को पता तक नहीं, जाति और धर्म के भी धुर्रें उड़ गये पल में।......शिक्षितों की पाँत में तो विवाह-बन्धन की पुरानी परंपरा की कोई कीमत नहीं रही।"

"हाँ, देहाती दुनिया अभी कसमसा रही है; रह-रहकर ले रही है अँगड़ाइयाँ पर शहरों के कंधे से कंधा मिला नहीं पाती है। परदा अभी वैसा उठ न पाया है, पर अब उठा, तब उठा। वह घूँघट घटाटोप की अमलदारी ढलती जा रही है, ढलकर रहेगी देर-सबेर ! नई पीढ़ी की नस-नस में नई तड़प है, नई करवट।".........

".........जमींदारी गई, रईसी गई, ऐश-आराम की जिन्दगी गई। देहातों में अब पंडित-पुजारी की न वह पूछ है—न वह पैठ ! वेश्या और गवैया तो पैसे के साथ आये, पैसे से साथ उठ गये। उस दिन हमारे एक बूढ़े पंडित—जो अस्सी के पड़ोस में पहुँच चुके थे—भरे गले से उबल पड़े—"यह नया राज क्या आया, धन, धर्म और जाति के गढ़ ही ढह गये। लुट गये बेचारे पंडित, पहलवान, साधु, गवैया और वेश्या ! अब तो खादी की लीडरी की तूती बोलती है हर जगह।"

कौन कहे उनसे कि अभी क्या आया है, जो अब आ सकता है—

"जमाने का शिकवा न कर रोनेवाले
जमाना नहीं साथ देता किसी का।"

जान रखिये—

"तहे आसमाँ, आसमाँ और भी हैं
अभी सब्र के इम्तहाँ और भी हैं।"

बड़े-बड़े शहरों में तो नारी के सितारे बुलन्द पर हैं। समाज और राष्ट्र के सारे

दरवाजे खुल गये हैं उनके लिए भी । पुरुष और नारी की उठान में कोई भेद न रहा । क्या मिनिस्टिरी, क्या मेम्बरी, क्या अफसरी की ऊँची कुर्सी, क्या विदेश में राजदूत की ऊँची पदवी—किसी की मनाही नहीं।…एक-से-एक बनी-सँवरी हर क्षेत्र में । लगी रहे यह लौ, बनी रहे उनकी सार्वजनिक अनुभूति भी—अपनी तो यही तमन्ना है, यही प्रार्थना ।"

क्या जमाने के नये रंग का इससे भी अधिक उदात्त, प्रांजल शब्द-चित्र किसीने आँका है ?

१९५९ ई० के हमारे 'उत्तर बिहार' के दिवाली अंकमें राजा साहब ने 'नया दौर' शीर्षक संदर्भ लिखा । उस शब्द-चित्र में उन्होंने अपनी जादुई कलम से युग के नये दौर का जैसा सारस्वत चित्रण किया है वह शिवं-सुन्दरं के परिवेश में सत्य का बेलौस अनावरण है—

"आज तो वही नेता अपनी सत्ता का साकेत सँजो पाता है, जो एक कुशल अभिनेता भी है—बस, जुबान आसमान चूमती है और ईमान आस्तीन में मौन ! मन कहीं, चितवन कहीं और जुबान कहीं ।"

"वह मिनिस्टर या अफसर ही क्या, जो इस दुनियादारी की कला का कुशल ऐक्टर न हुआ—जुबान की कारीगरी चलती है; व्यवहार की बाजीगरी भी । बस, जिसे बोलचाल के कमाल हासिल हैं उसके मोहरे लाल हैं ।"

"आज अपने काम से काम है, अपने नाम से नाम ! और, अपना काम सँभाल लेने के लिए कोई भी काम बदनाम नहीं । जुबान पर राम है—चेतन पर काम । बस, जो बात के व्यापार का हुशियार—तजर्बेकार है, युग की नाड़ी पर उँगली का संचार है, आदमी की पहिचान को निखरी नजर है,—उसका निशाना तो कभी चूकने से रहा ।"

राजा साहब मात्र अपनी टकसाली शैली के आलंकारिक शब्दों को मर्मस्पर्शी भावों की चासनी में डुबोकर सहज भाव से अभिव्यंजित करने में ही माहिर नहीं थे, वरन् साहित्यिक विद्रूपताओं एवं सामाजिक कुंठाओं पर व्यंग्य करने में भी उन्हें कमाल हासिल था । १९६० ई० के 'उत्तर बिहार'—दिवाली अंक में "नई मांग—रुझान" शीर्षक संदर्भ में राजा साहब ने लिखा—

"आज कोई कहाँ सुन पाता है—वह कोकिल का कूंजन या नूपुर का शिंजन ! अब

तो कानों पर टकराती है भैंसागाड़ी की चरमर और गिट्टी कूटने वालों के हथौड़ों की कुड़मुड़ । जभी तो कवियों की दुलारी कमलिनी भी छाती कूटती है कि वह 'कुकुरमुत्ता' क्यों न हुई ?"

"कला की कलम" शीर्षक सन्दर्भ हमारे विशेष अनुरोध पर श्रद्धेय राजा साहब ने १९६२ ई० के दीपावली विशेषांक के लिए लिखा। और प्रूफ की शुद्धि पर विशेष ध्यान रखने का आदेश देते हुए हमें प्रदान किया। किसी भी सन्दर्भ को अपनी अभूत-पूर्व शैली का मुलम्मा चढ़ाकर उसे सलमे-सितारे-सा चमका देना राजा साहब की 'कला की कलम' की खास विशेषता थी। उन्होंने उस सन्दर्भ में लिखा—"कला की काकली भी कायर की काहिली पर नहीं कूजती। कलाकार कहीं का-पुरुष हुआ तो काल-पुरुष होने से रहा। और, कला की कलम, काल की कालिमा पर भी अपना रंग न चढ़ा सकी तो वह कलाकार की न होकर कलाबाज की ही हो रहेगी।".........

"तो भाई, भाव का पौधा भी अभाव के मरु में नहीं पनपता। भाषा की मिठास भूख के त्रास को नहीं मिटाती और भजन-गान भी भोजन-पान से अनजान रहकर नहीं हुलसता। माना कि शरीर ही सब कुछ है, पर यह भी मानिए कि शरीर ही सब कुछ नहीं है। पेट की आग सबपर हावी है जरूर, पर दिल की आग भी आग ही है—वह आग, जो एक छोटी-सी पूँछ से उचक कर लंका-दहन को उबल पड़ती है।"

१९६५ ई० के हमारे दीपावली विशेषांक में श्रद्धेय राजा साहब का संस्मरण-सन्दर्भ हमें देवता के वरदान-स्वरूप प्राप्त हुआ। उस वार्द्धक्य में जब कि राजा साहब का लिखना-पढ़ना बहुत ही कम हो गया था—उनसे कुछ लिखने के लिए आग्रह करना भी उचित नहीं जान पड़ता था, किन्तु शारदीया पूजा के बाद जब कभी भी मैं उनके दर्शनार्थ जाता, वे स्वयं ही बोल उठते—"इस बार भी दीपावली विशेषांक निकाल रहे हैं न ? हमें याद है कि आपके लिए कुछ लिखना ही है।" मेरा सिर श्रद्धा से उनके चरणों पर झुक जाता।

"हर रोज बरातें आती हैं : हर रोज जनाजे उठते हैं,' शीर्षक संस्मरण-संदर्भ में उन्होंने लिखा—"अपनी उम्र तो अब सत्तर पार की ठहरी। न बचपन का वह ढंग रहा, न जवानी का वह रंग। वह सारे के सारे तो ढल रही उम्र के साथ ढल गये जैसे, और रमते-रमते रम गया मन भगवान के भजन में। आँखों में वैसी ज्योति न

रही, शरीर की वह फुर्ती भी जाती रही तो क्या ? जैसे-तैसे छड़ी लिए पहुँच ही जाता हूँ मन्दिर की पौर पर सुबह-शाम !"

श्रद्धेय राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का जन्म एक संभ्रान्त रियासती वंश में हुआ था और उनके पूज्य पिता श्री राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह सूर्यपुरा (शाहाबाद) रियासत के मात्र लोकप्रिय रईस ही नहीं, फारसी, उर्दू, ब्रजभाषा (हिन्दी) बंगला, संस्कृत आदि के अच्छे विद्वान् थे । वे स्वयं ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे । उनका दरबार सदा कवियों-शायरों तथा विद्वानों से भरा रहता था । इस भाँति राजा साहब को एक साथ ही लक्ष्मी तथा सरस्वती का उभय वरदान जन्म से ही आनुवंशिक रूप में प्राप्त हुआ । राजा साहब की प्रतिभा बहुमुखी थी । उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानियाँ, स्केच तथा जानी-सुनी-देखी के रूप में अनुपम संस्मरण-साहित्य का अवदान हिन्दी-भारती को समर्पित किये हैं । मैं राजा साहब की साहित्यिक उपलब्धियों का प्रशंसक रहा हूँ और 'चुम्बन और चाँटा' (१९५७ ई०) के बाद राजा साहब के जितने भी ग्रंथ प्रकाशित हुए, उन्हें यथासमय राजा साहब ने 'उतर बिहार' को प्रेषित करवाया । हमें समय-समय पर राजा साहब की कृतियों की विवेचना करने का सौभाग्य रहा है इसे मैं अपना पुण्यफल मानता हूँ ।

श्रद्धेय राजा साहब अपने पार्थिव शरीर से हमारे बीच नहीं रहे किन्तु उनका यशः शरीर साहित्य-भारती को चिरकाल तक अपना विशिष्ट आलोक प्रदान करता रहेगा । उनकी पुण्य-स्मृति में मेरी श्रद्धा-सुमनांजलि समर्पित है ।

कला के किसी स्फुरण को शिखंडी बनाकर काम अपने धनुष पर वाण रखता है तो इस हरकत से कुछ कला की किरकिरी तो हुई नहीं—किरकिरी है उस कामुक कलाकार की । काली के हीले कलिया खानेवाले कुछ काली पर कालिमा नहीं लगा पाते—अपना ही कुल काला करते हैं ।

—राधिकारमण

मैंने राजा साहब के दर्शन किए थे

रामानुज लाल श्रीवास्तव
१४०८, सुभद्रानगर, जबलपुर—२ (म० प्र०)

✣

राजा साहब भी सम्मानीय प्रतिनिधि थे। गरम केसरिया शेरवानी-टोपी और बर्फ से सफेद चूड़ीदार में इनका भव्य व्यक्तित्व अपनी अलग छटा दिखला रहा था।

सन् १९३९ में कश्मीर की यात्रा की। लखनऊ में राजा साहब कृत 'राम-रहीम' की प्रति हाथ लग गई। फिर तो बाहर 'यहि अमरन को देश, इहैं कहुँ बसत पुरंदर' देखा किया और भीतर भाषा का, भाव का, कथानक का दिव्य सौंदर्य। प्रकृति और पुरुष का मेल हो गया।

मिर्जा 'गालिब' कहते हैं : 'काबअ से इन बुतों की भी निस्बत है दूर की।' ऐसा ही कुछ सम्पर्क मेरा भी है। बड़े भाई,

चि० रमेशचन्द्र श्रीवास्तव को मेरी भतीजी व्याही है और छोटे, चि० निर्मलचन्द्र श्रीवास्तव को राजा साहब की सुपुत्री। दरस-लालसा बनी रही, पर बहुत दिनों तक लेखनी के पावन प्रसाद से ही संतोष करना पड़ा।

जहाँ तक स्मरण है, सन् १९४१ या ४२ में कायस्थ-पाठशाला, प्रयाग द्वारा मुंशी काली प्रसाद कायस्थ-कुल-भास्कर का शताब्दि-समारोह बड़े धूम-धाम से मनाया गया। देशभर से प्रतिनिधि उपस्थित हुए। सम्मान्य अतिथि हैदराबाद के राजा धर्मकर्ण बहादुर थे। पाठशाला के अनेक भूतपूर्व सभापति उपस्थित थे, यथा मेजर डॉक्टर रणजीत सिंह, डॉ० सच्चिदानन्द सिनहा, मुंशी ईश्वर शरण, मुंशी हरनन्दन प्रसाद, जस्टिस कमलाकान्त वर्मा आदि। विशेष गौरव की बात यह है कि एक दिन महामना पं० मदनमोहन मालवीय और दूसरे दिन सर तेजबहादुर सप्रू ने प्रतिनिधियों को उद्बोधित किया था। राजा साहब भी सम्मानीय प्रतिनिधि थे। गरम केसरिया शेरवानी-टोपी और बर्फ से सफेद चूड़ीदार में उनका भव्य व्यक्तित्व अपनी अलग छटा दिखला रहा था। मैं भी एक अकिंचन ट्रस्टी के रूप में उपस्थित रहता था। जी भर कर दर्शन किए, पर समीप नहीं गया; क्योंकि इसका अलग से अवसर मिलनेवाला था।

एक रात मुशाअरा हुआ, जिसकी सदारत रायबहादुर सोहन लाल जी श्रीवास्तव ने की और जिसमें हज़रत 'नूह' नारवी की कविता सुनने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।

दूसरी रात कवि-सम्मेलन हुआ, जिसका सभापतित्व राजा साहब ने किया। डॉ० रामकुमार वर्मा आदि की कविताएँ सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने भी एक तुकबन्दी पढ़ी थी। राजा साहब से साधारण शिष्टाचार की कुछ बातचीत भी हुई थी। यह दरस-परस क्या कभी भूलेगा?

इसके बाद 'नई धारा' के प्रकाशन से ही एक सांयोगिक लेखक के रूप से मेरा संबंध बना हुआ है। यह मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य है कि अन्त-अन्त में पूज्य राजा साहब ने श्री उदयराज सिंह द्वारा मुझे स्व-सम्पादित "महाकवि 'अनीस' और उनका काव्य" पर मुबारकवाद भेजा।

राजा साहब की पुण्य-स्मृति को मेरी हार्दिक श्रद्धांजलियाँ अर्पित हैं।

लक्ष्मीनारायण शर्मा 'मुकुर',
राका प्रेस, बरौनी (मुंगेर), बिहार

मैंने अनुभव किया कि राजा जी पहले मानव थे और बाद में और कुछ। उनके हृदय में सरलता, सहृदयता और सरसता की त्रिवेणी प्रवाहित होती थी। उनमें शिशु-सुलभ सरलता थी। उनमें निरहंकारिता थी। वे मधुरभाषी थे और विनयिता की मूर्त्ति थे। उनमें आतिथेय भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। वे 'अन्तः शैवः बहिश्शाक्तः' नहीं थे। उनमें मन, वाणी और कर्म की एकता थी। वे उदार थे। वे दूरदर्शी थे। उनमें बौद्धिक चातुर्य था।

राजा साहब : अपनी उपमा आप

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी की साहित्यिक प्रतिभा निसर्ग की आकस्मिक देन नहीं थी। इसकी प्राप्ति उन्हें आनुवंशिक रूप में हुई थी। उनके पितामह सूर्यपुराधीश दीवान रामकुमार सिंह जी थे। उनका उपनाम था 'कुमार'। वे ब्रजभाषा में कविताएँ रचते थे। वे अपने युग के विख्यात कवि थे। उनके सुपुत्र थे श्री राज-

राजेश्वरी प्रसाद सिंह जी, जो भारतेन्दु युग के प्रतिनिधि कवि थे। भारतेन्दु और श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के घनिष्ठ मित्र थे और उनका उपनाम था 'प्यारे कवि'। वे हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, अरबी, फारसी और बंगला के ज्ञाता थे। उन्होंने श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'चित्रांगदा' नामक पुस्तक का रूपान्तर हिन्दी में किया था। उनकी विद्वत्-सभा में सर्व श्री लछिराम, प्रभाकर (महाकवि पद्माकर के पौत्र), सन्त, श्यामसेवक मिश्र (रीवाँ-निवासी), शमशुल उल्मा नवाब इमदाद, फजल इमाम, रबिन्सन, अनुकूलचन्द्र चटर्जी आदि विभिन्न भाषाविद्, कवि और विद्वान् थे।

राजा साहब का जन्म सन् १८९० ई० में हुआ था। पन्द्रह वर्षों की अवस्था तक उनका जीवन सुख-शान्ति- पूर्वक व्यतीत हुआ। अपने बचपन के अधिक दिन उन्होंने श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अभिभावकत्व में गुजारे। इस सम्पर्क से वे बंगला भाषा में पारंगत हो गये। उन्होंने शिक्षा के प्रारंभिक काल में ही संस्कृत और फारसी भाषाएँ पढ़ी थीं। इन भाषाओं के सम्मिश्रण से उन्होंने हिन्दी को एक नयी शैली से अलंकृत किया। इस शैली में संस्कृत की गंभीरता है और ओज है, फारसी की आत्मा है और चुलबुलापन है एवं बंगला की मार्मिकता है, मृदुता है और मनोहारिता है।

मेरी मान्यता है, हिन्दी में तीन शैलीकार हैं—राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी, श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' और श्री रामवृक्ष बेनीपुरी। राजा साहब की अभि-व्यक्ति-प्रणाली में सर्वत्र सजीवता है और है अर्थ-गांभीर्य। उनका शब्द-चयन सार्थक और उपयुक्त है। जिस प्रकार कुशल कारीगर मकान बनाने में जिस ईंट की जहाँ जरूरत होती है, उस ईंट को वहीं जोड़ता है और कुशल चित्रकार कहीं भी एक बूँद रंग व्यर्थ नहीं खर्चता, उसी प्रकार राजा साहब अपनी रचनाओं में जिस शब्द की जहाँ आवश्यकता होती थी उस शब्द को वहीं स्थान देते थे और कहीं भी एक शब्द अनुपयुक्त ढंग से प्रयुक्त नहीं करते थे। जिस प्रकार पाटल पुष्प को किसी माला में ही गुम्फित कर सकते हैं या किसी वस्तु को ही सजा सकते हैं तभी उसकी नैसर्गिक सुन्दरता अक्षुण्ण रह सकती है, अन्यथा नहीं ; उसी प्रकार उन्होंने जिन शब्दों में अपनी जीवनानुभूतियाँ व्यक्त की थीं, उनके लिए वही उपयुक्त शब्द थे। यदि हम चाहें कि पाटल पुष्प की पंखुड़ियाँ तोड़कर किसी माला में गुम्फित करें या किसी वस्तु को सजाएँ तो उनकी प्रकृति-प्रदत्त श्री-शोभा का नाश हो जायेगा। इसी प्रकार यदि राजा

जी के एक भी शब्द को हम उलट-पलट करें तो एक ओर भाव-सौन्दर्य विकृत हो जायेगा और दूसरी ओर वह शब्द अपनी सान्दर्भिक सार्थकता खो देगा। यही उनकी सफलता का मूल है। इस विचार से जब मैं उनका स्मरण करता हूँ तब मुझे अपनी एक कविता स्मृत हो जाती है जिसे मैं उद्धृत करता हूँ—

"यदि एक ईंट भी व्यर्थ रही शिल्प की शिल्पी-चतुरता क्या ?
जिन ईंटों की है जहाँ जगह वे वहीं रहें।
वे हिलें-डुलें किंचित न, हवाएँ लाख बहें;
यदि एक बूँद भी रंग व्यर्थ चित्रक की सूक्ष्म सुघरता क्या ?
त्यागें रेखाएँ तनिक नहीं अपनी सीमा,
युग पर युग बीते, रंग न हो किंचित धीमा;
यदि एक शब्द भी व्यर्थ रहे सर्जक की कला-कुशलता क्या ?
हो पंक्ति-पंक्ति में गुम्फन माला-सा सार्थक,
प्रत्येक शब्द उपयुक्त भाव का हो व्यंजक;
यदि किंचित भी विपरीत हुई ध्वनि, कवि की काव्य-चतुरता क्या ?"

प्रतीत होता है, भाषा उनकी चेरी हो। उसे मुहावरों और लोकोक्तियों से मण्डित करने में वे हिन्दी में अपना सानी नहीं रखते। इस कला के वे आचार्य थे। शायद कोई वाक्य मुहावरे या लोकोक्ति से रहित हो।

अंग्रेजी में लोकोक्ति है—Style is the man himself. अर्थात् शैली में व्यक्तित्व व्यक्त होता है। यह उक्ति यदि पूर्णरूपेण किसी साहित्यकार की शैली के बारे में चरितार्थ होती है तो वह है राजा साहब की गद्यात्मक शैली। यही कारण था, डॉ० कृष्ण सिंह (बिहार-केसरी) ने लिखा था—"राजा साहब की अनुपम गद्यशैली के विषय में क्या लिखूँ ? उसका पूरा जादू तो उन्हीं पर पड़ा है जिन्हें राजा साहब के श्रीमुख से हजारों की मजलिस में इनके चंचल गतिपूर्ण और मादक लय-सम्पन्न वाक्यों को सुनने का सुअवसर मिला हो। फिर भी स्वयं पढ़ने पर भी इन गद्य-पुंजों में विद्युत-सी चमक का आभास होता है। मुहावरे और पर्याय-वाची शब्द तो राजा साहब की लेखनी के गुलाम हैं। हिन्दी, उर्दू, बंगला, संस्कृत और फारसी—इन

भाषाओं के गहन अध्ययन ने उनकी भाषा को जो विविधता प्रदान की है, वह अन्य किसी भी आधुनिक हिन्दी लेखक को मयस्सर नहीं।"

राजा साहब ने अपने साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश बंगला कहानियों और कविताओं से किया था। सन् १९०८ ई० के आसपास उनकी बंगला-अंग्रेजी रचनाएँ कलकत्ते की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं। उन्हें हिन्दी में लाने का श्रेय आचार्य शिवपूजन सहाय जी को है। सहाय जी की प्रेरणा से राजा जी ने हिन्दी में लिखने का श्रीगणेश किया। उन्होंने 'नवजीवन' नामक एक लघुउपन्यास की रचना की और कुछ कहानियों की भी जो 'गल्प कुसुमांजलि' में संगृहीत हुईं। इन पुस्तकों की भाषा में संस्कृत शब्दों की भरमार है। यह भाषा बंगला भाषा से प्रभावित थी।

हिन्दी के आधुनिक उपन्यासकारों और कहानीकारों में राजा जी का नाम शीर्ष स्थान पर है। आलोचकप्रवर श्री शान्ति प्रसाद जी द्विवेदी ने उन्हें हिन्दी के गद्य-निर्माताओं में प्रमुख स्थान दिया है। राजा जी ने हिन्दी पाठक प्रस्तुत किये। उन्होंने सर्वाधिक रूप में उपन्यास रचे—राम-रहीम, संस्कार, सावनी समाँ, पुरुष और नारी, सूरदास, टूटा तारा आदि। उनके उपन्यासकार ने पीड़ित भारतीय नारियों की ओर हमारी सहानुभूति उत्पन्न की है। इन उपन्यासों में नारी-जीवन की दुर्दशा अपनी खूबियों और खामियों के साथ चित्रित है। उनके जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति संस्कृत के इस श्लोक में हुई है—

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यं।
सन्त परीक्ष्यान्तरदमजन्ते
मूढ़ पर प्रत्ययनेयं बुद्धिः॥"

अर्थात् न सभी पुरानी वस्तुएँ अच्छी हैं न सभी नवीन वस्तुएँ बुरी हैं। विद्वान् परीक्षा करके दो में से एक ग्रहण करते हैं परन्तु मूर्ख दूसरों द्वारा ही प्रेरित होते हैं।

अंग्रेजी में एक उक्ति है—Literature is the mirror of life. अर्थात् साहित्य जीवन का दर्पण है। पोद्दार श्री रामावतार 'अरुण' ने लिखा है—

"साहित्य स्वयं जीवन का शाश्वत दर्पण है,
कविता ही तो साकार सत्य का गुंजन है।"

यह बात राजा साहब के साहित्य के सम्बन्ध में पूर्णतः लागू होती है। उन्होंने अपने वर्ण्य-विषय जीवन से ग्रहण किये थे। यही कारण है, उनके साहित्य में जीवन्तता का प्राचुर्य है। यह सही है कि 'राम-रहीम' की रचना की प्रेरणा उन्हें थैकरे के 'वैनिटी फेयर' नामक उपन्यास से प्राप्त हुई थी; लेकिन उन्होंने कुछ क्षेत्रों में थैकरे को पीछे छोड़ दिया। 'राम-रहीम' हिन्दू सामाजिक जीवन की बुराइयों का यथार्थ सजीव चित्र है। उन्होंने हमारे सामाजिक जीवन की अनेक समस्याओं का विवेचन-विश्लेषण सफलतापूर्वक किया है।

उनकी कहानियों में उनके उपन्यासों की अपेक्षा अधिक विषयगत विविधताएँ हैं। उनकी प्रथम कहानी 'कानों में कँगना' सन् १९१३ ई० में प्रकाशित हुई थी। तब हिन्दी कहानी बैठना ही सीख रही थी। 'कानों में कँगना' कहानी का वातावरण रूमानी है। इसमें उपदेश का भी पुट है,, लेकिन इसमें वह नींव है जिस पर आधुनिक कहानी-साहित्य का महल खड़ा है। राजा जी के कहानीकार के व्यक्तित्व में चिन्तक, तत्त्वज्ञानी और दार्शनिक का व्यक्तित्व भी घुला-मिला है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—"......चतुरसेन शास्त्री, राजा राधिकारमण, शिवपूजन सहाय, हृदयेश, गोविन्दवल्लभ पन्त, ज्वालादत्त शर्मा, पदुमलाल पन्नालाल बख्शी, गोपाल राम गहमरी, गंगा प्रसाद श्रीवास्तव, वृन्दावन लाल वर्मा, रायकृष्ण दास आदि कहानीकारों की रचनाएँ प्रकाशित हुईं और हिन्दी का कहानी-साहित्य बहुत तेजी से आगे बढ़ा।"

राजा जी ने जिन जीवन-चित्रों की रचना की थी वे साहित्य की अनुपम देन हैं। इनमें उनकी वैविध्यमयी जीवनानुभूतियों ने साहित्य का रूप धारण कर लिया है। इन्हें न आत्मकथा कहा जायगा न संस्मरण न रेखा-चित्र। लेकिन इनमें उपन्यास, आत्मकथा, कहानी, रेखाचित्र और संस्मरण के समन्वित रूप दृष्टिगोचर होते हैं। यही इनकी महत्ता है। ये चित्र स्वयं बोलते हैं।

राजा जी ने छात्र-जीवन में 'नये रिफार्मर' नामक एक नाटक रचा था। इसके बाद उन्होंने 'अपना-पराया', 'धर्म की धुरी', और 'नजर बदली, बदल गये नजारे' नामक नाटक रचे थे। इनमें अभिनेयत्व का अभाव है लेकिन उनकी अन्य रचनाओं में नाटकीयता का प्रवाह उच्छल रूप में है। उनके संवादों में सटीकता है और पैनापन है। इनमें शक्ति की प्रचुरता है।

राजा जी ओजस्वी वक्ता थे। १६२० ई० में उन्होंने बेतिया में बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्षीय भाषण में अपनी अप्रतिम वक्तृत्वकला का परिचय दिया था। इसके बारे में देशरत्न डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है—"उन्होंने जो भाषण वहाँ किया था वह इतना मनोहर और सुन्दर था तथा उसमें भाषा और भाव दोनों का ऐसा अच्छा सम्मिश्रण था कि उसका असर मेरे दिल पर आज तक है···।' वार्त्तालाप में वे हिन्दी, अँग्रेजी, उर्दू, फारसी, संस्कृत और बंगला की कविताएँ धाराप्रवाह रूप में सुनाते थे।

मैंने उनके दर्शन जून, १६६६ ई० में किये थे। 'नया जीवन' (सहारनपुर, उत्तर प्रदेश) के वर्चस्वी सम्पादक श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने मुझे लिखा था कि मैं राजा साहब से इन्टरव्यू लूँ और उसे 'नया जीवन' में प्रकाशनार्थ भेजूँ। मैं रिक्शा पर बोरिंग रोड (पटना) जा रहा था। अचानक सड़क किनारे एक मोटर देखी। वह खड़ी थी। उसमें जो व्यक्ति थे वे मात्र धोती और गंजी पहने हुए थे। मैंने उनसे पूछा—"राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी का निवास-स्थान किधर है?"

"क्यों?"

"मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ।"

"आपका नाम?"

"लक्ष्मीनारायण शर्मा 'मुकुर'।"

"मैं ही राधिकारमण प्रसाद सिंह हूँ। रिक्शा छोड़ दीजिए, आइए मोटर में और चलिए मेरे निवास-स्थान पर।"

मैंने उन्हें प्रणाम किया। मैं विस्मय में डूब गया। मेरी कल्पना को आघात लगा। राजा साहब और इस साधारण वेश में! मैंने उनसे निवेदन किया—"आप चलिए, मैं रिक्शा पर आपके निवास-स्थान पर आ जाता हूँ।" उन्होंने अपने निवास-स्थान का पूर्ण निर्देश कर दिया। बात यह थी कि रिक्शावाले को देने के लिए मेरी जेब में रेजगारियाँ नहीं थीं। मैं रुपया भुनाना चाहता था। पान-दूकान में मैंने रुपया भुनाया: जब मैं उनके निवास-स्थान पर पहुँचा, उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा—'आइए।'

मैंने तीन-चार घण्टों तक उनसे वर्त्तालाप किया। विभिन्न प्रश्न उन्होंने मुझसे

पूछे और मैंने उनसे। उन्होंने सभी प्रश्नों का उत्तर सहृदयतापूर्वक दिया। चलने के समय अपनी कुछ पुस्तकें मुझे देने के लिए अपने सुपुत्र श्री उदयराज सिंह (सम्पादक, 'नई धारा', पटना) को आदेश दिया। मैं उनके सुपुत्र के साथ मोटर में अशोक प्रेस, पटना—६ गया।

मैंने अनुभव किया कि राजा जी पहले मानव थे और बाद में और कुछ। उनके हृदय में सरलता, सहृदयता और सरसता की त्रिवेणी प्रवाहित होती थी। उनमें शिशु-सुलभ सरलता थी। उनमें निरहंकारिता थी। वे मधुरभाषी थे और विनयिता की मूर्ति थे। उनमें आतिथेय भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। वे 'अन्तः शैवः बहिश्शाक्तः' नहीं थे। उनमें मन, वाणी और कर्म की एकता थी। वे उदार थे। वे दूरदर्शी थे। उनमें बौद्धिक चातुर्य था। वे 'जैसी बहे बयार, पीठ तब तैसी कीजै' की नीति के कायल नहीं थे। वे अपने सिद्धान्त का पालन दृढ़तापूर्वक करते थे। यही कारण था, जब वे खम ठोक कर मैदान में उतरते थे तब पीछे नहीं हटते थे। मान्टेगू चेम्सफोर्ड सुधार के अनुसार कुछ सदस्यों ने उनका नाम जिला बोर्ड के चेयरमैन के पद के लिए प्रस्तावित किया। जिला के नये अँग्रेज कलक्टर ने यह पसन्द नहीं किया क्योंकि अब तक कलक्टर ही जिला बोर्ड के चेयरमैन का पद सुशोभित करते थे। उसने एक चाल चली और एक प्रस्ताव बनाया जिसके अनुसार चेयरमैन के पद के लिए जिले का कोई व्यक्ति योग्यता नहीं रखता था। राजा साहब को इस प्रस्ताव की एक प्रति प्राप्त हुई। उनके स्वाभिमान को ठेस लगी। उन्होंने तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर से भेंट की और कहा कि यदि मैं चेयरमैन के पद के भी योग्य नहीं हूँ तो 'राजा' की उपाधि की क्या आवश्यकता है ? गवर्नर ने कलक्टर को दूसरे जिले में तबादला किया। राजा साहब सात वर्षों तक चेयरमैन के पद पर निष्कंटक रूप में रहे। सन् १९२७ ई० में जब महात्मा गाँधी बिहार आये तब राजा साहब ने उन्हें जिला बोर्ड की ओर से मान-पत्र समर्पित किया। इस वजह से उन्हें जिला बोर्ड के चेयरमैन के पद से त्याग-पत्र देना पड़ा। गांधी जी ने उन्हें हरिजन-सेवा-संघ के अध्यक्ष-पद पर प्रतिष्ठित किया। वे सेवा-कार्य में जुटे। लेकिन जब उनके साहित्यकार ने साहित्य-सर्जना की ठानी और हरिजन-सेवा-संघ की अध्यक्षता से मुक्ति के लिए गाँधी जी से प्रार्थना की तब गाँधी जी ने उनसे यह वचन लिया कि वे अपनी रचनाएँ

हिन्दुस्तानी में करेंगे। राजा साहब ने इस वचन का पालन अक्षरश: किया और ऐसी शैली खोज निकाली जिसने हिन्दी साहित्य में उन्हें अमर कर दिया।

वे जिन्दादिली के प्रतीक थे। हरदिल अजीज थे। वे पर-निन्दक और आत्मश्लाघी नहीं थे। वे निष्कपट और निष्कलुष थे। वे क्षमा की मूर्ति थे। वे अजातशत्रु थे। उनमें देवोपम गुण थे। उनके निधन से हिन्दी ने एक अनुपम रत्न खो दिया। किसी ने ठीक कहा है—

"हजारों साल नर्गिस अपनी बेनूरी पर रोती है,
बड़ी मुद्दत पर होता है चमन में दीदवर पैदा।"

कवि की कला अगर करतालियों की सस्ती सुराही की चाट पर ढली-की-ढली रह गई, तो फिर वह अमृत के प्याले ढाल नहीं पाती। उसे तो अतीत की ईंट और वर्त्तमान के चूने-गारे से भविष्य का भव्य भवन तैयार करना है।

—राधिकारमण

व्योहार राजेन्द्र सिंह

जबलपुर

अंतिम समय तक उनकी प्रतिभा कुंठित नहीं हुई। वृद्ध हो जाने पर भी उनकी लेखनी तरुण बनी रही।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह हिन्दी के गण्यमान्य लेखकों में थे जिन्होंने अभिजात्य वर्ग में जन्म ग्रहण कर जनसाधारण से अपने को एक रूप कर दिया। इसी कारण से वे उनके दुख-सुख को पहचान सके और अपने उपन्यासों तथा कहानियों में उनके हर्ष, शोक भावनाओं और आंकाक्षाओं को अंकित कर सके। उनमें कल्पना के साथ अनुभूति थी। इसी कारण वे समाज के यथार्थ की अनुभूति कर उसे आदर्श लोक की ओर अग्रसर कर सके। उनके पात्र जीते-जागते हैं, सजीव हैं। वर्त्तमान जीवन का

राजा साहब की विशेषता

उनमें स्पंदन है तथा भविष्य के लिए एक अजेय आशा। उनकी सशक्त लेखनी ने समाज के ऐसे चित्र उभारे हैं जिन पर काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भूतकाल के न होकर वे आज भी चलते फिरते हैं, बोलते चालते हैं, साँस लेते और आगे बढ़ते जाते हैं।

अंतिम समय तक उनकी प्रतिभा कुंठित नहीं हुई। शरीर वृद्ध हो जाने पर भी उनकी लेखनी तरुण बनी रही। किसी समालोचक ने कहा है कि वृद्धावस्था में ही लेखनी में प्रौढ़ता आती है; क्योंकि जीवन के सारे संचित अनुभव एकीकृत और घनीभूत होते हैं। संवेदना भी तीव्रतम हो जाती है और वह जीवन के सभी अनुभवों को बाँट लेना चाहती है। जीवन भर जो अनुभव कृपणतापूर्वक संचित किये जाते हैं वे उदारतापूर्वक वितरित कर दिये जाते हैं।

राजा साहब की प्रतिभा सदैव विकासोन्मुख रही, वह सदा ताजी रही, कभी बासी नहीं पड़ी, सदा नये-नये वाक्यों का उन्होंने सृजन किया। कभी एक की छाया दूसरे पर नहीं पड़ी। जिस प्रकार संसार में एक व्यक्ति दूसरे से नहीं मिलता उसी प्रकार उनके पात्रों में विविधता है और प्रत्येक का अपना एक व्यक्तित्व है। किन्तु, जिस प्रकार सभी व्यक्तियों में मानवता समान रूप से व्याप्त रहती है उसी प्रकार उनके पात्र भी मानवीय संवेदनाओं से संयुक्त हैं।

राजा साहब के जाने से हिन्दी साहित्य की वह पीढ़ी समाप्त होती है जो पुरातन होते हुए भी नवीन युग-संवेदनाओं से संयुक्त थी।

किसी की हवस भी बूढ़ी होती है? छाती के रोएँ सफेद होते हैं; पर छाती का लहू लाल ही रहता है।

—राधिकारमण

वासुदेवनन्दन प्रसाद,
रीडर, हिन्दी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

उस समय मेरी मनःस्थिति विचित्र थी। मैं सोच रहा था—राजा का यह रूप औरों से कितना भिन्न है! यह व्यक्ति परम्परागत राजाओं की पंक्ति में कहीं खड़ा नहीं है। राजा और रंक में कोई अन्तर नहीं। गलती से किसी ने इसे 'राजा' बना दिया। इन्सान के चोले में यह और कुछ हो तो हो, पर राजा नहीं हो सकता। कैसी विडम्बना! न राजा का रूप-रंग, न उसकी शान-शौकत और न रहन-सहन!

कालजयी राजा साहब

मेरे जीवन में राजा साहब तब आये जब मैं पितृविहीन होकर, एक अबोध, अनजान और अनुभवहीन नवयुवक की तरह, सहारे, साये और मार्गदर्शन की खोज में, इधर-उधर भटक रहा था। तब मैं गया कॉलेज के हिन्दी विभाग में हिन्दी प्राध्यापक के पद पर नियुक्त हो चुका था। उन दिनों (१९४८-५०) के राजा साहब का 'सूरदास', 'पुरुष और नारी' आदि औपन्यासिक कृतियाँ आई० ए० के पाठ्यक्रम में

निर्धारित थीं और मुझे इन पुस्तकों को पढ़ाना पड़ता था। इसके पूर्व मैं राजा साहब के साहित्य से बहुत अधिक परिचित नहीं था। लेकिन, अध्यापन के क्रम में जब मैं 'पुरुष और नारी' तथा 'सूरदास' का विशद अध्ययन करने लगा तब मेरे मन में उनके लेखक से मिलने की और राजा साहब पर एक स्वतंत्र पुस्तक लिखने की उत्कट कामना जमी। मेरे मन में उनकी जो तस्वीर थी, वह आन, बान और शान से भरपूर एक राजा की थी। पहले बड़ी हिचक हुई कि एक राजा से मैं कैसे मिल सकूँगा? कहाँ मैं और कहाँ एक राजा? बड़ा अन्तर्द्वन्द्व हुआ। फिर राजा का चित्र मानस से बलात् हटाकर कर उसके स्थान पर एक विनीत साहित्यिक का चित्र आँका। उनके दर्शन का निश्चय किया।

सन् १९५१ की बात है। दिसम्बर का महीना रहा होगा। गया से २५ वर्षीय वासुदेवनन्दन प्रसाद चला 'राम-रहीम' के यशस्वी लेखक से मिलने। मन में और रास्ते में बड़ी-बड़ी बातें सोचीं, नये-नये सपने सँजोये और कागज पर प्रश्नों की एक लम्बी तालिका बनायी। लगभग ग्यारह बजे दिन में, मैं बोरिंग रोड (पटना) पहुँचा। तब राजा साहब किराये के एक मकान—एक कोठी में रहते थे। कोठी बड़ी आसानी से मिल गयी। दरवाजे पर पहुँचते ही मेरे मन में राजा की एक भव्य मूर्त्ति फिर उभर आयी। मैं द्वंद्वों से घिरा था। सोचा—इतने बड़े आदमी से मेरे-जैसा एकदम मामूली आदमी कैसे उनका साक्षात्कार कर सकेगा! इस उधेड़-बुन में ही था कि एक आदमी ने पूछा—किसे खोजते हैं? मैंने झिझकते हुए कहा—राजा साहब को। उस आदमी ने उँगली से इशारा करते हुए कहा—सीधे चले जाएँ—उस बरामदे में, भेंट हो जायेगी। मैं धीरे-धीरे सहमे कदम बढ़ाता गया। एक पोर्टिको में आकर खड़ा हो गया। मन ने पूछा—क्या मैं गलत जगह तो नहीं आ गया? मेरी दृष्टि हठात् एक अधनंग व्यक्ति पर गयी—वह सामने बरामदे में एक चटाई पर बैठा तेल मालिश करा रहा था। उसने इशारे से बुलाया—पास गया। उसने पूछा—किसे खोजते हैं आप? मैंने कहा—राजा साहब को। उसने एक कुर्सी पर बैठ जाने को कहा। फिर पूछा—कहाँ से आ रहे हैं आप? मैंने जवाब दिया—गया से।

उस व्यक्ति ने फिर पूछा—क्या काम है उनसे? मैंने कहा—मैं उनके दर्शन करना चाहता हूँ और उनके साहित्य पर एक पुस्तक लिखना चाहता हूँ। वह व्यक्ति बड़े हल्के ढंग से मुस्कराया। फिर बोला—क्या आपने राधिकारमण की सभी पुस्तकें

पढ़ी हैं ? मैंने कहा— अभी दो ही पुस्तकें पढ़ी हैं—'सूरदास' और 'पुरुष और नारी'।

क्या 'राम-रहीम' नहीं पढ़ा ?

नहीं, क्योंकि वह मुझे मिला नहीं। पता नहीं क्यों, राजा साहब की किताबें किताब की दूकानों में नहीं मिलतीं। मैं उनकी सारी रचनाएँ पढ़ना चाहता हूँ। क्या वे दे सकेंगे ?

क्यों नही !

उस व्यक्ति ने बड़ी आत्मीयता से मेरा नाम पूछा, काम-धाम, परिवार आदि के बारे में पूछा। मैं संक्षेप में जवाब देता गया। राजा साहब से मिलने की कामना बल पकड़ती जा रही थी। मैंने पूछा—क्या राजा साहब इस समय मिल सकेंगे ? उसने कहा—हाँ, हाँ क्यों नहीं ? आप राधिकारमण से ही तो बातें कर रहे हैं। काटो तो खून नहीं। मैं झेंप गया। सोचने लगा—क्या यही राजा का रूप है ? क्या हमारे राजे-महाराजे इसी तरह, इतने मामूली ढंग से रहते हैं ? पुरानी तस्वीरों में राजाओं के जो चित्र देखे हैं, उनसे तो इनका चेहरा बिलकुल नहीं मिलता। उनकी आन-बान और शान कुछ और है और इनका रहन-सहन कुछ और ही है ! एक मामूली चटाई पर बैठनेवाला व्यक्ति राजा नहीं हो सकता ! मैं चुप था। उन व्यक्ति ने टोका—क्या सोच रहे हैं आप ?

मैंने पूछा—क्या राजा साहब और राधिकारमण प्रसाद सिंह एक ही व्यक्ति हैं ? उस व्यक्ति ने मुस्कुराते हुए कहा—'सन् १९४७ की आजादी में राजा तो हिन्दुस्तान की जमीन से सदा के लिए उठ गया, अब तो सिर्फ राधिकारमण बच गया है। मैं वही हूँ। उस समय एक दूसरा आदमी, शायद नौकर रहा हो, बाहर आया और उस व्यक्ति से बोला—राजा साहब, अन्दर चलिए, नहाने के लिए पानी तैयार है। मुझे विश्वास हो गया कि अब तक मैं जिस आदमी से बातें कर रहा था, वह राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ही थे। उसी क्षण उनकी सरलता, आत्मीयता और निरभिमानता पर मन न्योछावर हो गया। उस समय मेरी मनःस्थिति विचित्र थी। मैं सोच रहा था, राजा का यह रूप औरों से कितना भिन्न है ! यह व्यक्ति परम्परागत राजाओं की पंक्ति में कहीं खड़ा नहीं है। राजा और रंक में कोई अन्तर नहीं। गलती से किसी ने इसे 'राजा' बना दिया। इन्सान के चोले में यह और कुछ हो तो हो, पर राजा नहीं हो सकता। कैसी विडम्बना ! न राजा का रूप-रंग, न उसकी शान-शौकत

और न रहन-सहन ! तभी से मैंने श्री राधिकारमण प्रसाद सिंह को सदा साहित्यिक समझा, राजा नहीं । पर दुनिया उन्हें सदा 'राजा साहब' कहती आयी, क्योंकि उनका राजत्व भौतिक ऐश्वर्यों में न होकर सन्त और परात्मा की विभूतियों में निहित था । वे दौलत के नहीं, दिल के राजा थे। इसलिए उनको 'राजा साहब' कहना असंगत न था ।

नौकर ने फिर कहा—सरकार, पानी तैयार है । राजा साहब ने ठहरने का इशारा किया । उन्होंने पूछा—राधिकारमण के साहित्य में वैसे कुछ नहीं है । आप उस पर पुस्तक लिखना क्यों चाहते हैं ? मैंने जवाब दिया—मृग को अपनी कस्तूरी के अस्तित्व का बोध नहीं रहता । आपके साहित्य में जीवन का जो सौरभ है, वह अनूठा और अनोखा है । मैं उसी अनूठेपन को अपनी पुस्तक में दिखाना चाहता हूँ । मुझे आपकी सारी पुस्तकें चाहिए । उन्होंने डाक से किताबें भेज देने का आश्वासन दिया ।

वह दर्शन, वह भेंट, वह साक्षात्कार मेरे जीवन का एक स्वर्णिम अवसर था, जिसे मैं कभी नहीं भूलता । वह मुलाकात क्रमशः आत्मीयता में बदल गयी । उनका अशेष स्नेह पाकर मैं धन्य हो गया । मेरा भटकाव दूर हो गया । पिता का अभाव भी मिट गया । मुझे लगता है कि यदि मैं उनके स्नेहिल सम्पर्क में नहीं आता तो मेरे जीवन की दिशा कुछ और होती । मेरा वर्तमान उनके स्नेह का परिणाम है । लगभग २०-२१ वर्षों का यह गहरा रिश्ता मुझे सरल रेखा की तरह अग्रसर करता रहा । पिता के अभाव में पिता का प्रेम और स्नेह मुझे उन्हीं से मिला पर समय कभी किसी का साथ नहीं देता—वह सबसे बड़ा छलिया है ।

२४-३-१९७१ को वे अपने प्यारों को विलखते छोड़ उठ गये । तभी मुझे महसूस हुआ—आज दूसरी बार अनाथ हुआ हूँ । किन्तु ऐसा विश्वास है कि अन्तरिक्ष से उनके उद्बोधन सदा होते रहेंगे, उनका साहित्य जीवन का मधुमास लुटाता रहेगा । उन्होंने साहित्य का जो अक्षय ताजमहल अपने पीछे छोड़ा है, उस पर काल का पदचि ्न लगने से रहा । वह अजेय है; राजा साहब कालजयी हैं ।

विमल राजपुरी

विमल कुटीर, राजपुर (भागलपुर)

और, राम-रहीम पढ़कर तो मुझे ऐसा लगा कि हिन्दी साहित्य में कबीर एवं तुलसी के बाद यदि कोई आजतक समन्वयवादी साहित्यकार हुए हैं तो वे राजा जी ही हैं।

विधि का विचित्र विधान अव्यधानित गति से अनवरत गतिमान होते रहता है। और, यह विधान जहाँ वर्तित होता है, वही मर्त्यमंडल है, संसार है। यह नाम सत्य अर्थ में चरितार्थ है—मृत्यु फिर जन्म, जन्म फिर मृत्यु; यही तो मर्त्यमण्डल है। और, संसार संसरण करने के लिए ही तो है। इसीलिए, जिसकी 'सौरी' जलती है उसका 'सारा' जलेगा ही और 'सारा' जलेगा तो 'सौरी' जलेगी ही। यही तो आवागमन की प्रक्रिया है। चराचर जीव इसी प्रक्रिया के सूत्र में आवद्ध हैं। यह प्रक्रिया अभिनय के नाम से भी अभिहित किया जाता है। जिसका रंगमंच मर्त्यमंडल है। आसमान

टूटा पिंजड़ा उड़ा कीर, अवशेष रही केवल मीर

ऊपर का परदा है। दिशाएँ अगल-बगल के परदे हैं। और, अभिनेता चराचर जीव मात्र हैं। सुख-दुःख अंक-परिवर्तन हैं। वर्ष, पक्ष, मास, ऋतु आदि ही गर्भांक हैं। माया रूपी नटिनी बार-बार नृत्यकला, भाव-भंगिमा आदि अभिनेताओं को सिखाती रहती है; और वह एक सूत्रधार ही दर्शक एवं संचालक दोनों है। और, यह मृत्यु, यही तो जीवन की पूर्णता है। मृत्यु निर्वाण नहीं, मोक्ष नहीं ! यह तो पट-परिवर्तन मात्र है। यात्री जैसे किसी धर्मशाला में रात भर के लिए विश्राम कर लेता है, फिर सुबह अपनी यात्रा पर चल पड़ता है; फिर रात्रि में कहीं विश्राम करता है; सुबह

चल पड़ता है। यही चलना और विश्राम आवागमन है। लोग भ्रम में पड़कर किसी की मृत्यु के लिए रो पड़ते हैं। यही तो माया है। गीता में आत्मा को अजर, अमर, नित्य, शाश्वत, अदाहक आदि कहा गया है। बिल्कुल सत्य के समीप है।

तो, २४ मार्च '७१ को हमारे 'राजा जी' एक लम्बा अभिनय अभिनीत कर आराम करने चले गए स्व-सहयोगी एक वृहत् परिवार छोड़कर! विश्राम कर लेने के बाद यात्री चला ही करता है—पर राजा राधिकारमण सिंह एक ऐसे यात्री थे, एक ऐसे अभिनेता थे, जो एक बार की यात्रा के लिए ही आए थे, एक बार के लिए ही अभिनेता बन कर आए थे, ऐसा सूक्ष्म दर्शन से ही देखा जाता है। क्यों नहीं, वह तन से तपस्वी, मन से मनस्वी और धन से धीर थे। मानव में इन तीनों का विरल संयोग ही तो मानव को महामानव बनाता है। फिर वह आवागमन के पचड़े से दूर रहता है।

सन् '५६ की घटना है। विद्यालय से अध्यापन-कार्य परित्याग कर मैं पटना अपने अभिन्न मित्र (प्रोफेसर पीताम्बर झा, दर्शन विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना) के पास आया था। अशोक प्रेस के समीप ही उनका डेरा था। इसीलिए, घूमता-घामता मैं अशोक प्रेस पहुँच गया। अशोक प्रेस के अध्यक्ष स्वर्गीय राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी के सुपुत्र श्री उदयराज सिंह उर्फ शिवाजी ने मुझसे परिचय पूछा और मुझे अपने प्रेस में ही रह जाने का आदेश दिया। मैं विद्वद्पारखी श्री शिवाजी की बातों को ठुकरा न सका।

इसी वर्ष, श्रावण पूर्णिमा के दिन मैं बोरिंग रोड स्थित राजा जी के निवास-स्थल पर, शिवाजी एवं उनके बाल-बच्चों को आशीर्वाद एवं राजा जी से मिलन-लाभ के लिए पहुँचा। यद्यपि इसके पूर्व राजा जी को मैंने कई बार अशोक प्रेस में देखा था। कभी-कदा दो-चार साहित्यिक बातें भी हुई थीं। पर, यहाँ तो बरामदे में आरामकुर्सी पर निश्चल समाधि रूप योगी-जैसा उन्हें बैठा देखकर मैं दंग रह गया। वस्तुतः "जाके नखशिख जटा विशाला, सो प्रसिद्ध तापस कलिकाला" वाले वे योगी नहीं थे। राजवंश में उत्पन्न, सारी सुविधाएँ उपस्थित—फिर भी एक साधारण धोती और एक बनियाइन, यही तो उनके तन पर था। भीतर जाकर सभी को आशीर्वाद देने के बाद राजा जी को प्रणाम करने उनके समक्ष मैं आया। मैंने ज्योंही प्रणाम किया, झट उन्होंने भी प्रणाम कर दिया। कुछ देर साहित्यिक चर्चा हुई। राम-रहीम उपन्यास

की वार्ता मैंने चलाई थी—इसी क्रम में रस एवं अभिव्यंजना का विषय भी आ गया था। बहुत ही पाण्डित्यपूर्ण शैली में उन्होंने रस एवं अभिव्यंजना पर ऐसा प्रकाश दिया कि मैं बागबाग हो उठा। मुझे उसी समय विश्वास हुआ कि राजा जी संस्कृत भाषा के भी विशेषज्ञ हैं। पुनः कई एक शेर उन्होंने ऐसी सुनाये कि मेरा हृदय उत्फुल्ल हो उठा। बीच-बीच में वह पान की खिल्ली स्वयं खाते और मुझे भी देते। मैं मन-ही-मन सोचता कि ये अहम्मन्यता से कितनी दूर आगे बढ़ गए हैं। कहाँ एक महान् साहित्यकार, उस पर भी राजा और कहाँ मैं? इसी प्रकार भाषा-सम्बन्धी भी बहुत सारी बातें हुई। समय काफी हो गया था अतः आदेश पाकर मैं अशोक प्रेस चला आया। इसके बाद वह एक दिन अशोक प्रेस आए और उन्होंने मुझसे कहा कि मैं रोज आकर बोलता जाऊँगा और आप लिखते चलेंगे। मैंने स्वीकार लिया। "नजरे बदलीं बदल गए नजारे" नाटक पुस्तकाकार में आया। इसमें कई स्थल पर शब्दों एवं उनके प्रयोगों पर मैंने जोर दिया तो उन्होंने वैसा ही किया, क्योंकि वे गुणज्ञ थे, अभिमान-रहित थे।

सन् '५९ से '६२ तक में मैंने राजा जी की बहुत सारी कृतियाँ पढ़ लीं। राम-रहीम, तब और अब, सावनी समाँ, पूरब और पच्छिम, नारी क्या एक पहेली आदि। और, राम-रहीम पढ़कर तो मुझे ऐसा लगा कि हिन्दी साहित्य में कबीर एवं तुलसी के बाद यदि कोई आजतक समन्वयवादी साहित्यकार हुए हैं तो वे राजा जी ही हैं। उनके समग्र साहित्य के अनुशीलन से परिलक्षित होता है कि वे कभी वादों के घेरे में नहीं उलझे। बल्कि उनकी एक अलग शैली थी। उर्दू, हिन्दी, बंगला, अंगरेजी तथा प्रान्तीय, लोकभाषा आदि का उन्होंने खुल कर अपने साहित्य में प्रयोग किया है। पर, कथानक के भावों में तनिक व्यवधान नहीं हो पाया है। भाषा उनकी मानो पंचमेल मिठाई हो गई है जो पाठकों को रसास्वादन सतत कराती रहती है। पाठक एक बार कोई उपन्यास पढ़ने उठाएगा तो बिना समाप्त किए दम नहीं लेगा।

वस्तुतः राजा जी की भाषा में सहजता, सरलता, सुबोधता के साथ-साथ विराट् दार्शनिकता भी है, पर, दर्शन की गुत्थियों में उनका साहित्य उलझा नहीं है। बिल्कुल उन्मुक्त व्योम-विहारिणी चिड़िया-जैसी इनकी भाषा फुदकती चलती है, जो पाठकों को मनोहारिणी जँचती है।

—

वैद्यनाथ शर्मा,
पटसारा (मुजफ्फपुर)

वे कई भाषाओं के विद्वान् थे तो भी उन्होंने हिन्दी में रचना कर एक साहसिक कार्य किया क्योंकि तब हिन्दी को पूछता ही कौन था ?

पावन प्रसंग

स्व० राजा जी की याद आते ही आँखें गीली हो उठती हैं और उनमें फिरने लगते हैं वे प्रसंग जिनके द्वारा उनको जानने-सुनने का मौका मिला था। वे बिहार के एक अद्भुत शैलीकार थे एवं पुरानी पीढ़ी के एकमात्र प्रतिनिधि। अब वे भी हमारे बीच न रहे। यों तो राजा जी का नाम बचपन में ही सुन रखा था एवं उनकी एकाध कहानी भी पढ़ चुका था तो भी उनसे पहला साक्षात्कार हुआ पटना के पोस्ट ग्रेजुएट होस्टल के वार्षिकोत्सव में। उक्त उत्सव में राजा जी ने अध्यक्षासन को सुशोभित किया था। वहीं उनके प्रथम दर्शन का सौभाग्य मिला। मैं उन्हीं के दर्शनार्थ उक्त जलसे में सम्मिलित हुआ था। वे कई भाषाओं के विद्वान् थे तो भी उन्होंने हिन्दी में रचना कर एक साहसिक कार्य किया क्योंकि तब हिन्दी को पूछता ही कौन था ? उनकी भाषणकला सचमुच ही मनोमोहक थी। मैं आद्योपान्त मन्त्रमुग्ध हो भाषण सुनता रहा। तब मैं पटना साइन्स कालेज का—आई० एस-सी० का—छात्र था। वह सन् १९५३ का जमाना था। राजा जी का व्यक्तित्व भी आकर्षक था। उनपर जो आँखें टिकीं तो हटने का नाम न लेती थीं। भाषण के दौरान राजा जी ने सामयिक प्रसंगों के साथ साहित्यिक चर्चा भी की। उर्दू के 'लोच' की उन्होंने भरपूर वकालत की और

इसके प्रमाण में एक मिसाल उन्होंने पेश किया जो कि आज भी मुझे हू-ब-हू याद है।

निगाहों से बचके चले जाइयेगा।
पर खयालों से बचके कहाँ जाइयेगा ।।

उन्होंने यह भी दावे के साथ कहा था कि इस जोड़ की पंक्तियाँ हिन्दी-साहित्य में चिराग लेकर ढूँढने पर भी नहीं मिलेंगी। तभी मैं गुनगुना उठा था सूरदास की वे पंक्तियाँ जो निश्चय ही उन पंक्तियों से पहले की हैं—

बाँह छुड़ाये जात हौ अबल जानके मोहि।
हृदय से यदि जाओ तो मर्द बखानौं तोहि ।।

राजाजी के कहने का तात्पर्य उर्दू बानगी के लहजे से रहा होगा न कि भाव से। उनके प्रथम भाषण से ही बड़ा प्रभावित हुआ और दर्शन एवं श्रवण का भरपूर आनन्द लूटा।

दूसरा प्रसंग है साढ़े सोलह वर्ष बाद का जबकि मैं बिहारी लेखकों एवं कवियों के 'इण्टरव्यू' छपाने की योजना बना रहा था। कथाकार के रूप में पहली नजर उन्हीं पर पड़ी तो उनसे पत्राचार किया। वे बीमार थे तो भी विलंब से ही सही उन्होंने स्वलिपि में संक्षिप्त पत्रोत्तर दिया और अपना समय 'इण्टरव्यू' के लिए देने को राजी हो गये; परन्तु साथ ही उन्होंने अपनी सम्पूर्ण रचनाओं को पढ़ने का आग्रह भी किया। उनकी आज्ञा के अनुसार मैंने उनकी एक-एक रचना का पाठ क्रम से प्रारम्भ किया परन्तु रचनाएँ समाप्त हो भी न पायी थीं कि दुर्भाग्यवश वे ही समाप्त हो गये और मेरे मन की बात मन ही में रह गयी। जब रेडियो पर उनके स्वर्गारोहण का समाचार सुना तो कपाल पीटकर रह गया कि मेरा काम न बना। खैर! क्षणभंगुर संसार में सब कुछ सहना ही पड़ता है। मैंने उनके संबंध में कुछ प्रश्न तैयार किये थे जिनके उत्तर उनके साहित्यिक पुत्र उदयराज जी से चाहूँगा।

उनके निधनोपरान्त मैंने उनके पुत्र के नाम संवेदना-संदेश भेजा। उनके श्राद्धकर्म में सम्मिलित होने का निमंत्रण आया तो सही, पर हाय रे मैं कि उस अवसर पर जा न सका। ये ही कुछ पावन प्रसंग हैं जिनके द्वारा साहित्यिक श्रेय के राजा जी यावज्जीवन मेरी स्मृति में विद्यमान रहेंगे।

श्यामनन्दन सहाय

अवकाश प्राप्त प्राचार्य, बैंक रोड, पटना

उनके कुछ उपन्यास मेरी अलमारी में रखे हैं। इन्हीं को देखकर हम सोचते हैं कि अभी राजा साहब की आत्मा जीवित है। "फूल गिरा पर खुशबू रह गयी, वीणा बज चुकी पर उसकी गूंज रह गयी।" शेली की मशहूर पंक्ति मुझे याद पड़ती है—"Music, when soft voices die, vibrates in memory."

"बीती बहारें गुलशन हर ओर रंजो गम है"

जब मैंने सुना, (आँखों के खराब होने से मैं देख नहीं सकता, अखबार पढ़ नहीं सकता) कि राजा साहब का देहावसान हो गया तो सन्न रह गया, काटो तो खून नहीं; पर बहुत चाहने पर भी अपनी लाचारियों के कारण मैं उनकी अरथी की यात्रा में शामिल

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह

नहीं हो सका पर मेरा हृदय बाँसघाट तक गया और मैंने अन्तर्दृष्टि से उनकी चिता को सजाते देखा तब मुझे भाई रामरुद्र प्रसाद सिंह जी कि ये पंक्तियाँ याद पड़ीं जिन्हें मैंने दो-चार रोज पहले उन्हीं के सामने दुहराया था—

"फूला फला जिसे कल देखा, जिसे सभी करते थे प्यार।
आज चिता पर वह सोता है, देता सब को कष्ट अपार।"

तब मुझे महसूस हुआ कि ठीक ही दादू दयाल जी ने कहा था—

"सदा न बागां बुलबुल बोले, सदा न बाग बहारां।
सदा न जवानी रहती यारों, सदा न सोहबत यारां।"

राजा साहब चल बसे। उनके साथ एक दुनिया ही चली गयी, उस दुनिया की झलक हमें चलचित्र का आभास देती है। तस्वीरें स्मृति के सामने आती हैं और चली जाती हैं, न जाने कहाँ विलीन हो जाती हैं। वे तस्वीरें मेरी अनुभूतियों से सम्बद्ध हैं। राजा साहब से तो मेरा पारिवारिक सम्बन्ध था ही, पर मैं उसकी चर्चा नहीं करता। मैं उन अनुभूतियों के विषय में कहना चाहता हूँ जिनकी छाप मेरे मस्तिष्क और हृदय पर पड़ी। कुछ अनुभूतियाँ तो मेरे बुढ़ापे की हैं जब कोई विशेष घटना नहीं घटी और मेरी स्मरण-शक्ति क्षीण हो गयी। अधिकतर अनुभूतियाँ मेरे बचपन और जवानी की हैं जब मैं राजा साहब के बहुत ही निकट सम्पर्क में रहा। आज भी मेरी अन्तर्दृष्टि के सामने सूर्यपुरा का उद्यान-भवन है, जिसमें एक तरफ बरामदे के सामने पक्की क्यारियों में बेला, जूही, चमेली और शायद गुलाब लगे थे और पक्की पगडंडियों पर अपने साथियों के साथ राजा साहब टहलते रहते थे—कभी सुबह, अक्सर शाम को। उनके साथ टहलनेवालों के कुछ नाम मुझे याद पड़ते हैं—मास्टर साहब, श्यामबिहारी लाल, सिद्धू बाबू, कामेश्वर नाथ (बबन बाबू), गणेश लाल, रामचन्द्र लाल, बद्री लाल इत्यादि। टहलते-टहलते कुछ दिलचस्प कहानियों का जिक्र करते, कभी शेर और कविताओं से अपने संगी-साथियों का दिल बहलाते। उन दिनों मेरे पिता, जिनका जन्म सूर्यपुरा में ही हुआ था, पटना में मजिस्ट्रेट थे। काम से छुट्टी लेकर सूर्यपुरा जाया करते थे। उनके साथ मैं और मेरे छोटे भाई जगतनन्दन, जो आजकल बिहार लोकसेवा आयोग के चेयरमैन हैं, जाया करते थे। हमलोग बंगला ही पर ठहरते थे। आज ६३ वर्ष पार करने के बाद मुझे न वे कहानियाँ ही याद हैं और न शेर और न कविताएँ

ही, अब तो बच रहे सिर्फ उन कहानियों का वातावरण और शेर और कविताओं का गुंजन। लिखने की बात तो छोड़िए, जब राजा साहब बोलते थे, साधारण विषय पर भी, तो उनकी शैली जो हिन्दी और उर्दू मिल जाने से गंगा-जमुनी कहलाती थी, लय और सुर से भरी होती थी। उसमें एक अजब स्पन्दन होता था, सिहरन होती थी, जिससे हृदय थिरक उठता था। मेरा हिन्दी का अध्ययन कुछ खास नहीं था पर राजा साहब के सम्पर्क में, मेरे मस्तिष्क में, एक ऐसी शैली का आविर्भाव हुआ कि उस मेरी शैली के बारे में राजा साहब ने स्वयं कहा था, जब हम दोनों पटना युनिवर्सिटी सिनेट के सदस्य थे, कि मैंने उनकी शैली चुरा ली है। बिहार के शिक्षकों की सभा में दिया हुआ मेरा एक व्याख्यान किसी हिन्दी पत्रिका में छपा था जिसको राजा साहब ने पढ़ा था। ह्वीलर सिनेट हाउस में मुझसे मिलते ही उन्होंने कहा, "भाई श्यामनन्दन, तू त हमरा के हू-ब-हू उतार देले बाड़अ।"

सूर्यपुरा के बंगला के दूसरे बरामदे के सामने एक कमल के फूलों से भरा तालाब था। उस तालाब के एक कोने पर बरामदे के पास हम दोनों भाइयों को अपने व्यायाम से तनी हुई बाँहों पर राजा साहब झुलाते और कुछ गुनगुनाते जाते थे। राजा साहब के छोटे भाई स्वर्गीय सर राजीवरंजन प्रसाद सिंह के दैनिक कसरतों से मैं काफी प्रभावित हो चुका था और जब मुझे राजा साहब की सबल बाँहों का स्पर्श मिला तो मुझमें भी व्यायाम करने की रुचि पैदा हुई। उन दिनों से १९४८ तक, जब मेरी आँखें खराब हो गईं और डॉक्टर ने कसरत करना मना कर दिया, नित्य व्यायाम किया करता था, जिससे मेरा शरीर काफी गठ गया था। अब लकवा के मार देने से वह शरीर तो अन्तर्ध्यान हो गया तो भी शारीरिक व्यायाम का महत्त्व मेरे मस्तिष्क में, मेरे दिल और दिमाग में बना है और वर्षों तक मैं विभिन्न विद्यालयों और महाविद्यालयों में जब शिक्षक रहा तब व्यायाम के महत्त्व पर बोलता और लिखता रहा। इंगलैंड के प्रसिद्ध उपन्यासकार George Meredith के शब्दों में "Blood brain and brown" को मैं अपने व्याख्यान एवं लेखों में उद्धृत करता रहा और महात्मा गांधी के शिक्षा के लक्ष्य—The aim of education is to drawout the best that is in the mind, body and sprit of the child.' को दुहराता रहा। और यह असर मुझ पर पड़ा था राजा साहब के नित्य व्यायाम का।

दिन बीतते गये। मेरा बचपन न रहा, जवानी आयी और मैं स्कूल से निकलकर कॉलेज में जा पहुँचा। इसी समय मेरे पिता का स्वर्गवास हो गया और मेरे सूर्यपुरा जाने का सिलसिला टूट गया। जब कभी कॉलेज में छुट्टी मिलती मैं बाबूबाजार आरा में अपने चाचा के यहाँ चला जाता। मेरे चाचा उस समय आबकारी के अवकाशप्राप्त ऑफिसर थे। वे वृद्ध हो चुके थे इसलिए मुझ पर कड़ाई नहीं करते थे। अब मुझे कहीं और कभी आने-जाने की स्वतंत्रता थी। गर्मी के दिनों में जब मेरा कॉलेज बन्द रहता था मैं आरा के रमना में चाँदनी रात में काफी देर तक राजा साहब के साथ टहलता रहता था। उन दिनों मुझमें टूटी-फूटी कविता बनाने की धुन थी। टहलता-टहलता मैं उन कविताओं को राजा साहब को सुनाया करता था। और, उनके आदेशानुसार पंक्तियों में हेर-फेर करता रहता था। धीरे-धीरे मुझमें हिन्दी-साहित्य की ओर झुकाव हो गया। अब मैं उपन्यासों और कविताओं का अध्ययन करने लगा। प्रमुख लेखकों के प्रसिद्ध ग्रन्थों का अध्ययन कर गया, यहाँ तक कि मेरे कई लेख सरस्वती, माधुरी, विशाल भारत, आज में छपे। क्रमशः हिन्दी में मेरी रुचि बढ़ती गयी और मैं हिन्दी में एम०ए० की परीक्षा देने को सोचने लगा। पर, दूसरी ओर अंग्रेजी का भी प्रभाव था जो स्वर्गीय डॉ० सच्चिदानन्द सिंह और स्वर्गीय डॉ० अमरनाथ झा के घनिष्ठ सम्पर्क से बढ़ता गया। इस झुकाव में मेरे पिता की देन कम नहीं थी ; और अंग्रेजी में मैं ने भारत में और भारत के बाहर की भी डिग्रियाँ ले लीं। अंग्रेजी ही मेरे शिक्षण का विषय रहा, पर हिन्दी में मेरी दिलचस्पी बनी रही और उत्तरोतर बढ़ती गयी ; यह राजा साहब का ऋण मुझ पर आज भी लदा है। पढ़ने-लिखने की तो बात छोड़िये, जब मेरी जबान लकवा से लड़खड़ाने नहीं लगी थी तब मैंने राजा साहब के तर्जे-बयाँ को अपना लिया। और मेरी बातचीत में उनकी गुफ्तगू की खुशबू आने लगी। आज भी जब मेरा स्मृतिपट धुँधला हुआ चला जा रहा है—मुझे राजा साहब के वाक्यों और वाक्यांशों की कुछ-कुछ याद आती है जैसे, उन्होंने अखिल भारतीय अछूतोद्धार सम्मेलन में सभापति के आसन से कहा था "यह राम तो मेरा राम नहीं, इस राम से मेरा काम नहीं।" यह महात्मा गाँधी के शुरू किये हुए हरिजनों के मंदिर- प्रवेश-आन्दोलन के सिलसिले में कहा गया था।

एक ऐसी ही अनुप्रासभरी भाषा से उनकी कहानी 'गाँधी टोपी' का आरंभ होता

है—"मिश्र जी की मूछें कड़ी न रहतीं तो अभाव की तड़ी बेभाव की न पड़ती। मलाई की मलाहियत पर पली हुई जबान छाछ के छूछेपन पर तिलमिला उठी।"

यह तो हुई राजा साहब के मुहावरों की बात, उनके मुहावरों से उनकी कृतियाँ और उक्तियाँ लबालब थीं। अब तो मैं आँखों से नहीं नजर आने से उनकी किताबों में उनके वाक्यों को ढूँढ़ नहीं सकता फिर भी उनका एक ऐसा ही वाक्य उनके 'तरंग' के शुरू में है—"आकाश स्वच्छ था। नीलाभ, उदार सुन्दर"। इसी तरह उनके वाक्यों में अनेक शब्द नाचने और झूमने लगते हैं। शब्द बदलते थे पर अर्थ नहीं बदलता है। इस तरह उनका शब्द-चयन अत्यन्त सुन्दर था। उनकी शैली अपने ढंग की अपनी थी। यह तो हुआ उनकी भाषा की ओर संकेत। उनकी विद्वत्ता बहुतों को नसीब नहीं। वह बंगला, हिन्दी, उर्दू, अँग्रेजी, फारसी और संस्कृत के अपने ढंग के विद्वान् थे। उनका ज्ञान अथाह था। सिर्फ किताबों का ज्ञान ही उनको नहीं हासिल था, विद्या की सभी शाखाओं से उनका परिचय था। उनकी वाकफियत दुनिया से कम नहीं थी। समाज के सभी स्तरों को वे खूब जानते थे। व्यक्तियों के मनोभावों को पहचानते थे और विशिष्ट महामानवों से उनका सम्पर्क था। उनकी पुस्तक 'तब और अब' में उन्होंने गुजरी हुई दुनिया और खोई हुई सभ्यता और संस्कृति का चित्रण किया है। महापुरुषों की, जैसे डॉ० स्वर्गीय सच्चिदानन्द सिन्हा जिनको उन्होंने नजदीक से जाना था, उन्होंने चर्चा की, 'टूटा तारा' में मौलवी साहब आदि साधारण पर दिलचस्प व्यक्तियों का तसकिरा है। उनके एक व्याख्यान का शीर्षक—"जिनकी जवानी उनका जमाना"—तो आम पढ़े-लिखे लोगों की जबान पर है और उनकी एक इधर की किताब में उनकी ही पंक्तियाँ तो मैं बदलते हुए जमाने को देखकर अक्सर कहा करता हूँ—"जमाना के हाथों से कोई चारा नहीं है, जमाना हमारा तुम्हारा नहीं है।"

एक बार जब मैं एम० ए० में पढ़ता था तो डाक बंगला रोड पर स्थित उनके निवास-स्थान 'हर निवास' के फाटक पर मेरी उनसे भेंट हो गयी। मुझे प्रोत्साहित करते हुए उन्होंने मुझसे कहा, 'खूब पढ़ो और बढ़ो'। जब मैंने कहा कि बहुत पैसे कमा कर क्या होगा ? धन से बहुत बुराइयाँ होती हैं तब उन्होंने मुझसे कहा, 'वीरभोग्या वसुन्धरा।' एक बार जब मैं किसी प्रभावशाली व्यक्ति से तंग आ गया तब मैंने उसका जिक्र उनसे किया। उस पर उन्होंने कहा,

"किसकी बनी रही है, किसकी बनी रहेगी।
कबतक खिंचे रहोगे, कबतक तने रहोगे।।"

इसी तरह की बात मुझसे कुछ दिन बाद स्वर्गीय डॉ० सच्चिदानन्द सिन्हा ने उसी व्यक्ति के विषय में कहा था, Shyamnandan—Don't be disturbed. You do not know when and where the hand of God will fall. धीरे-धीरे मेरे स्वभाव में भी राजा साहब के सम्पर्क से परिवर्तन होने लगा। वर्षों की बात है उन दिनों मैं पटना ट्रेनिंग कॉलेज में प्राध्यापक था। एक दिन संध्या काल में कवियों की टोली जुटी। कवि-सम्मेलन हुआ। राजा साहब ने सभापति का आसन ग्रहण किया। श्रोताओं में मैं भी एक था। मेरी कुर्सी सभापति के स्थान के निकट ही थी। मुझ पर राजा साहब की नजर पड़ी। उन्होंने मुझे बुलाया और नजदीक बैठाकर कहने लगे—'श्यामनन्दन' रास्ते में मैं एक मुसलमान दोस्त के घर गया था। उसने एक शेर पढ़ा—

"हँसने में जो आँसू आते हैं, तस्वीरें दो दिखलाते हैं।
हर रोज बारातें आती हैं, हर रोज जनाजें उठते हैं।।

राजा साहब की जिन्दगी बहुत सादी थी, वे अक्सर कहा करते थे कि मेरा खर्च किताबों की Roylty से चलता है। मैं जमींदारी का कुछ भी नहीं लेता। उनका पोशाक बहुत ही साधारण था। आज भी मेरी स्मृति के सामने उनकी सादी टोपी, आँखों में सुनहला चश्मा, लम्बा कोट, गले में चादर, मामूली जूते और हाथ में छड़ी की तस्वीर आती है। उनमें अभिमान छू भी नहीं गया था। राजा साहब समदृष्टि थे। जब वे टहलने निकलते थे तब रास्ते में चनाजोर गरम वाले को रोककर गाना सुनने लगते थे। राजा से रंक तक, अफसर से चपरासी तक से उनका व्यवहार शिष्ट होता था। सबके साथ वे मधुरभाषी थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि अपने से उम्र में बड़े लोगों को सम्मान दिखलाते थे। सिन्हा साहब की बात जाने दीजिए, वह तो उनके पिता के मित्र और समवर्त्ती थे। गाँवों में अनेकों लोग जिनकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी और जिनपर माँ सरस्वती की कृपा नहीं हुई थी, बाबा और चाचा होने के नाते राजा साहब से इज्जत पाते थे। इस सिलसिले में मुझे एक घटना याद आती है। महावीर बाबू पटना हाईकोर्ट के ऐडवोकेट जेनरल राजा साहब के अनन्य मित्र थे। वे मेरी सहधर्मिणी की बड़ी बहन, जो बनारस में व्याही थी, के नन्दोई थे। एक दिन बनारस में महाबीर बाबू के ससुराल बाबू जयन्ती प्रसाद के घर पहुँचे तब मेरी साली का छोटा बच्चा चुन्नू था जो अब इलाहाबाद हाईकोर्ट का ऐडवोकेट है। चुन्नू ने राजा

साहब से सहज भाव से पूछा, "तू के हउग्र ? राजा साहब ने हँसकर कहा, 'हम राजा हईं ।" चुन्नू ने राजा की तस्वीरें देखी थीं, वह बोल उठा, "ना तू राजा ना हउग्र । तोहार पगड़ी कलंगी ग्राउर तलवार कहाँ बा ।" वहाँ जितने व्यक्ति थे हँस पड़े । जब राजा साहब मेरे यहाँ ग्राते थे तो मेरे बच्चे को बादाम, पिस्ता, ग्रखरोट ग्रौर किसमिस जेब से निकालकर देते ग्रौर थपकियों के साथ बातचीत करते थे । इससे यह जाहिर होता है कि राजा साहब बच्चों से भी दिलचस्पी रखते थे । वह तो मैंने ग्रपने ही बचपन में देखा था । ये सोहबत के छींटे मुझपर पड़ते गये ग्रौर मेरा स्वभाव प्रभावित होता रहा ।

यही थे सूर्यपुरा के राजा साहब जिनके व्यक्तित्व ने ग्रनेकों को ग्राकृष्ट किया ग्रौर चकाचौंध में डाल रखा । राजा साहब ने "राम-रहीम" को पहचाना, 'पुरुष ग्रौर नारी' को जाना, 'टूटा तारा' को देखा ग्रौर 'तब ग्रौर ग्रब' की बातें देखीं सुनीं ग्रौर उसी 'तरंग' ने उनके हृदय को ग्रान्दोलित कर दिया ।

ग्राज राजा साहब हमारे बीच नहीं रहे । प्रयाग की सरस्वती के ऐसा पाटलिपुत्र की रेत में लुप्त हो गये । पर दो पुत्र रत्न ग्रौर पुत्रियाँ छोड़ गये । ग्रौर छोड़ गये एक भतीजा कृष्णराज सिंह जो राणा जी कहलाते हैं । राणा जी राजा साहब के ग्रनुज स्वर्गीय कुमार सर राजीवरंजन प्रसाद सिंह के एकलौते पुत्र हैं जो बिहार के सार्वजनिक जीवन में भाग लेते रहे हैं ग्रौर 'विधान सभा' के सदस्य रह चुके हैं । राजा साहब के बड़े कुमार श्री राजेन्द्र प्रताप सिंह जिन्हें हम 'बाला जी' के नाम से पुकारते हैं, 'राज्य सभा' के सदस्य हैं । दूसरे उनके छोटे कुमार हैं श्री उदयराज सिंह, जो शिवाजी के नाम से प्रसिद्ध हैं । शिवाजी की लेखनी से साहित्य की 'नई धारा' फूट निकली है ग्रौर उन्होंने ग्रपने पितामह स्वर्गीय राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह ग्रौर पिता स्वर्गीय राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की साहित्यिक परम्परा को जीवित रखा है । राजा साहब के कुछ उपन्यास मेरी ग्रलमारी में रखे हैं । इन्हीं को देखकर हम सोचते हैं कि ग्रभी राजा साहब की ग्रात्मा जीवित है । "फूल गिरा पर खुशबू रह गयी, वीणा बज चुकी पर उसकी गूंज रह गयी । शेली की मशहूर पंक्ति मुझे याद पड़ती है—

"Music, when soft voices die, Vibrates in memory."

श्याम सुन्दर घोष

हिन्दी-विभाग, गोड्डा कॉलेज, संताल परगना (बिहार)

हाँ, उस सभा की जो विशेष बात स्मरण है वह यह कि राजा जी जैसा लिखते हैं वैसा ही बोलते भी हैं यह मैंने मान लिया। उसी दिन मेरी यह धारणा खंडित हुई कि वे बने हुए लेखक हैं। उनकी शैली जो हमारे लिए बिल्कुल अस्वाभाविक है, उनके लिये बिल्कुल स्वाभाविक है, यह उसी दिन जाना था। तब उनको देख-सुन कर आश्चर्य हुआ था और आश्चर्य से बढ़कर आनन्द कि ऐसा भी सम्भव हो पाता है।

राजा जी !

साहित्य के बारे में जब थोड़ी सी समझ आई, और इस दृष्टि से जब साहित्य का अध्ययन करने लगा, तो पढ़ी और जानी हुई चीजों को नये सिरे से समझने का प्रयास किया। इस सिलसिले में कितने ही लेखकों और कवियों की ओर दृष्टि गई। यह लगभग वह समय था जब कि मैं जीवन-संघर्षों में कुछ हद तक जूझ चुका था और प्रारम्भिक पढ़ाई की मंजिलें पार कर कॉलेज में दाखिल हो चुका था। इसी क्रम में

मैंने राजा जी के साहित्य पर विचार किया था और जो सबसे पहली बात मेरे मन में आई थी वह यह कि ऐसी शैली लिखने वाला बड़ा बना हुआ लेखक होगा। वास्तव में मनुष्य अपने जीवनानुभवों से पूर्वग्रहग्रस्त हो जाता है। मुझे शुरू से जीवन में जिन दिक्कतों का सामना करना पड़ा था उनके कारण रस, रंग और आकर्षण का असमय में ही हनन हो गया था। आज सोचता हूँ तो पाता हूँ कि यह अच्छा ही हुआ। इसीलिये बहुत जल्द भावुकता से मेरा छुटकारा हो गया और हर वह लेखक, कृति या शैली, जो रंगीन और मोहक थी, मेरे लिये अस्वाभाविक और आलोच्य हो गयी। यह प्रवृत्ति अब न रही हो यह बात भी नहीं, हालाँकि यह सही है कि अब नजरिये में उतना नुकीलापन नहीं रह गया है।

राजा जी की रचनाएँ जब भी पढ़ता था अक्सर यह सोचता था ऐसा कैसे लिखा जा सकता है? फिर सोचता था राजा हैं इसलिये लिख लेते हैं। जैसे बहुत साज सम्भार के साथ मुरेठा बाँधते होंगे वैसे ही कलम भी चलाते होंगे। मुख्तसर बात बस इतनी थी कि मुझे उनकी शैली न रुचती थी; अस्वाभाविक मालूम होती थी, जब कि मैं अपने अग्रजों और अनुजों को उनकी शैली पर न्योछावर होते देखता था। तब अपने आप पर कोफ्त होता था, सोचता था मेरी ही संवेदनशीलता कुंठित है या कि मारी गई है लेकिन फिर मेरा मन इसे मानने से इनकार करता था।

बी० ए० पास करते वक्त मेरी मनःस्थिति बहुत कुछ यही थी। साहित्यिक संस्कारों, जटिल जीवनानुभवों और नयी साहित्यिक समझदारी के कारण एक कशमकश का निरन्तर अनुभव होता था। तभी बी० ए० पास कर पटना विश्वविद्यालय में एम० ए० में दाखिला लिया था। ठीक-ठीक याद नहीं, शायद बरसात का मौसम था और रात में पटना कॉलेज के जेमनाजियम हॉल में कोई कवि सम्मेलन और मुशायरे का आयोजन था। राजा साहब सभापतित्व कर रहे थे। मैं श्रोताओं में बैठा कविताएँ सुन रहा था। और कवियों को बुरी तरह 'हूट' होते देख रहा था। तब पटने के लिये नया था और एक छोटे कस्बे से आने, और कुछ अपने अन्तर्मुखी स्वभाव की वजह से सम्मेलनों आदि में कविताएँ पढ़ने से कतराता था। लेकिन दोस्त मेरे हुनर से वाकिफ थे और सम्मेलनों में भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया करते थे। लेकिन उस शाम की तो बात ही जुदा थी। मैं दिलोजान से कविताएँ पढ़ना चाहता था लेकिन मेरे दोस्त थे कि

कविता पढ़ने के लिये बिल्कुल ही नहीं कह रहे थे। कहाँ तो मैं उम्मीद कर रहा था कि वे मेरा नाम डायस पर दे आयेंगे और तब मुझे पुकारा जायगा तो मैं कुछ इस भाव से उठूँगा कि 'चलो भई, हम तो कविता पढ़ना नहीं चाहते लेकिन यदि तुम बहुत मजबूर करते हो तो लो, कविता पढ़ देते हैं; लेकिन ऐसा कुछ नहीं हो रहा था। शायद इसकी वजह यह थी कि मेरे दोस्त कवियों को एक-एक कर 'हूट' होते देख रहे थे और वे नहीं चाहते थे कि मेरा भी यही हाल हो जब कि मेरा मन इसी कारण कविता पढ़ने को हो रहा था। मेरा ख्याल था कि कविगण कविताओं का गलत चयन कर रहे हैं इसलिये 'हूट' हो रहे हैं। इस सिलसिले को तोड़ना जरूरी है। यही ख्याल कर मैंने अपने एक मित्र को एक चिट दिया और मंच पर दे आने को कहा। उन्होंने मुझे बहुत सहानुभूतिपूर्ण नेत्रों से देखा और चिट मंच पर दे आये। अगले ही क्षण राजा जी की ओर से बुलावा आ गया शायद इसलिये भी कि वे देख रहे थे कि मंच के कवि तो 'हूट' हो रहे हैं देखें शायद कोई नवसिखुआ ही कुछ रंग जमाये। मैं लोगों की निगाहें झेलता हुआ रुंधे पाँवों आगे बढ़ा था और कुछ रूबाइयाँ पढ़ गया था। अब आज तो वे सब याद नहीं, हाँ, पहली रुबाई जरूर याद है—

अच्छा हुआ जो तुम से मुलाकात हो गई।
अच्छा हुआ जो तुम से भी दो बात हो गई॥
हम आज मिले कल जुदा होना ही पड़ेगा।
अच्छा हुआ जो रास्ते में रात हो गई॥

कहना नहीं होगा कि मैं हूट होने से साफ बच गया और बदले में मुझे राजा जी का प्रोत्साहन मिला। वे बहुत स्नेह से इधर-उधर की कुछ बातें पूछते रहे। यदि मुझमें व्यावहारिकता होती तो तभी का स्थापित वह संबंधसूत्र मैं और भी मजबूत कर सकता था; लेकिन उसके बाद तो मैं मिला तक नहीं। यह न तो संकोच के कारण हुआ और न अहम्मन्यता के कारण, बस केवल इसलिये कि वे बड़े लेखक हैं, मैं उनसे मिल कर क्या करूँगा? हाँ, उस सभा की जो विशेष बात स्मरण है वह यह कि राजा जी जैसा लिखते हैं वैसा ही बोलते भी हैं यह मैंने मान लिया। उसी दिन मेरी यह धारणा खंडित हुई कि वे बने हुए लेखक हैं। उनकी शैली, जो हमारे लिये बिल्कुल अस्वाभाविक है, उनके लिए बिलकुल स्वाभाविक है यह उसी दिन जाना था। तब

उनको देख-सुन कर आश्चर्य हुआ था और आश्चर्य से बढ़कर आनन्द कि ऐसा भी सम्भव हो पाता है।

राजा साहब की शैली में भी वैविध्य और विकास है यह बहुत कम लोग मानेंगे। लेकिन, यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो यह स्पष्ट होगा। राजा साहब ने लिखा भी है—"यह सच है कि हमारी वह शैली अब न रही जो पहले थी। बिगड़ी या बनी यह तो अपनी-अपनी नजर है।" इससे भी उनके विकास का पता लगता है। और वैविध्य के बारे में उन्होंने डॉ० गोपाल प्रसाद वंशी को एक पत्र में लिखा था—"शायद आपको पता नहीं कि अलग-अलग शैलियों में खुल खेलने का हमारा एक खास मर्ज है। 'राम-रहीम' की शैली और थी, 'पुरुष और नारी' की शैली और, 'गाँधी टोपी' की शैली और थी, 'सूरदास' की और।" इस दृष्टि से राजा जी की शैली के सूक्ष्म-विकास और वैविध्य का अध्ययन अभी शेष है। शैली में यह विकास और वैविध्य क्यों है, इसकी भी छानबीन होनी चाहिये, इसे केवल उनकी तबियत का रंग या असर मान कर न छोड़ देना चाहिये।

राजा जी की शैली ने मेरी ही तरह बहुतों को भ्रम में रखा होगा ऐसा मैं सोचता हूँ। उनके व्यक्तित्व की सरलता के सामने अक्सर उनकी शैली आ खड़ी होती थी और इसलिये उनका सरल सहज व्यक्तित्व छिप जाता था। लेकिन जो इस दुस्तर दीवार को लाँघ सकता था उसे राजा जी का सहज स्नेह सहज ही प्राप्त हो जाता था। राजा जी की तुलना में हम नये लोग कैसा लिखते हैं और वह राजा जी को कहाँ तक पसन्द आ सकता है, यह सहज ही समझा जा सकता है। लेकिन इस बात को जानते हुए भी एक बार मैंने अपने कहानी-संग्रह की भूमिका लिखने के लिये उनसे आग्रह किया था। तब वे मोतियाबिन्द से परेशान थे और सहज ही भूमिका लिखना टाल सकते थे लेकिन उन्होंने तुरत उत्तर दिया—

बोरिंग रोड, पटना
१७-७-६३

प्रियवर,

आपका पत्र मिला। मैं इन दिनों मतियाबिन्द से लाचार हो गया हूँ, लिखना-पढ़ना प्रायः छूट ही गया है, आपरेशन होने वाला है। ऐसी हालत में भूमिका के रूप

में तो कुछ लिखना सम्भव नहीं है। हाँ, अगर आप पुस्तक भेज दें और चाहें तो किसी तरह अपनी शुभ कामना के कुछ शब्द लिख-लिख,कर भेज सकता हूँ।

सस्नेह

राधिकारमण प्रसाद सिंह

और फिर आठ दिनों के बाद हमारे पत्र का उत्तर आया :

प्रियवर, २६-७-६३

आपका पत्र मिला। अभी तो मैं बीमार हूँ—आँखों की लाचारी भी है। डॉ० दुखनराम आपरेशन करने जा रहे हैं।

आप सितम्बर में एक कार्ड डालकर मुझसे पूछ लेंगे।

सस्नेह

राधिकारमण प्रसाद सिंह

यह तो अच्छा हुआ कि मैंने अपने लोभ का संवरण कर लिया और उन्हें कष्ट न दिया नहीं तो पता नही वे अपने स्वभाव की सरलता के कारण कितना संकुचित होते और क्या कुछ न लिखते !

राजा जी के साहित्य पर बहुत लिखा गया है और आगे भी लिखा जायगा। लेकिन उनका व्यक्तित्व भी कम सरल, मोहक और आकर्षक नहीं था। इस मामले में उनकी शैली उनसे प्रतिद्वन्द्विता करती थी और बराबर बाजी मार ले जाती थी। इसलिये लोगों की निगाह उनकी शैली पर पहले जाती थी। इससे उनके व्यक्तित्व का कुछ हद तक नुकसान होता था। उनका व्यक्तित्व जहाँ तक ध्यान आकर्षित करने के योग्य था वहाँ तक लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित न कर पाता था। इसलिये उनके साहित्य की अपेक्षा उनके व्यक्तित्व की चर्चा कम हुई है, यद्यपि मैं ऐसा मालूम करता हूँ कि उनकी अधिक चर्चा होनी चाहिये थी।

राजा जी के साहित्य में एक निरन्तर खोज, एक मासूम बेचैनी, एक अव्यक्त दर्द आदि देखे जा सकते हैं। इस रूप में उनका व्यक्तित्व एक कलाकार का व्यक्तित्व था। वे रस और आनन्द की वर्षा करते हुए भी अन्ततः एक मीठे दर्द का ही इजहार करते हैं। कुल मिला कर उनका साहित्य यही स्पष्ट करता है कि इस दुनिया में कहीं कुछ गलत जरूर है जो चलनेवाले संगीत को बेसुरा बनाता है। इस बेसुरेपन के कारणों

की गहरी छानबीन उन्होंने नहीं की है, यह उनकी प्रवृत्ति भी नहीं थी, लेकिन इसे उन्होंने रेखांकित जरूर किया है।

राजा जी जैसे लेखक हिन्दी में और वह भी आधुनिक युग में हुए, यही मेरे लिये आश्चर्य का विषय है। आगे तो उनके होने की कोई सम्भावना ही नहीं है। आज मुझे उनकी शैली के कारण जितना अचरज होता है उससे कई गुना अधिक अचरज आनेवाली पीढ़ी को होगा। तब वे इस लेखक के बारे में और भी जानना चाहेंगे। लेकिन मेरा ख्याल है कि राजा जी खुद अपने बारे में, अपनी रचनाओं में, जितना बता गये हैं उससे अधिक उन्हें और कुछ उनके समकालीनों से या कि परवर्तियों से मालूम न हो सकेगा। इस रूप में उनका किस्सा उन्हीं के साथ समाप्त हो गया लगता है।

आजतक तो साहित्य हमारी रंगीन वासनाओं के पैर का घुँघरू बना रहा, अब उसे विप्लव के ताण्डव का डमरू बना कर रखना है। उसे काव्य की मार्मिकता से खींचकर जीवन की वास्तविकता की ओर ले जाना है। वह यौवन की गुदगुदियों की क्यारी में सदियों से बुलबुल रहा, आँसू और उसाँस की आबहवा में काफी भटक चुका, अब उसे प्रत्यय की रागिनियों से खेलना है, जीवन की चोटियों पर तीर की तरह उड़ना है।

—राधिकारमण

श्रीरंजन सूरिदेव
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् पटना—४

राजा साहब की भाषा-शैली के अनुकरण का न्यूनाधिक प्रयास भी हिन्दी में हुआ, किन्तु वह तो सहज अनुकरणीय है नहीं, इसलिए अननुकरणीय ही बनी रही।

राजा साहब : भाषिकी क्रान्ति के सन्देशवाहक

भाषा और शैली के माध्यम से होनेवाली क्रान्तियों के इतिहास में जिन हिन्दी पुरोधाओं के नाम स्वर्ण-वर्ण में अंकन के योग्य हैं, उनमें पुण्यश्लोक राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह एक महत्त्वपूर्ण अभिधा हैं। राजा साहब, कहना न होगा कि हिन्दी के लिए अपनी शैली की सारस्वत चेतना द्वारा भाषिकी क्रान्ति के सन्देश-वाहक के रूप में प्रतिष्ठित थे। निश्चय ही राजा साहब की भाषशैली में एक नया उन्मेष है, जो भारतीय वाङ्मय की चिरन्तन जीवनी-शक्ति का आधार लेकर उभरी और इसके स्वरूप की परिपूर्णता के द्वारा उन्होंने समकालीन हिन्दी-साहित्येतिहास से इसकी संगति बैठाने की जो पद्धति स्वीकार की, वह अपूर्व और अद्वितीय है।

राजा साहब अब दिव्यलोक के सदातन अतिथि हो गये! उनके बारे में मेरी आत्मिकी धारणा 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' वाली न होकर 'यद् गत्वा न

निवर्त्तन्ते' वाली है। राजा साहब के लोकान्तरित होने से केवल हिन्दी ही हतप्रभ नहीं हुई है, अपितु हिन्दीज्ञों को भी भरी हृदयाघात लगा है। उनका सुखद स्मरण आते ही उनकी शलाकापुरुष-जैसी आकृति मनोगोचर हो उठती है और उनसे लगी-लिपटी अनेक कथा-वार्त्ताएँ दुहरने लगती हैं।

पुण्यश्लोक आचार्य शिवजी और आचार्य नलिनजी की उपनिषद् में सदा सम्मिलित रहनेवालों को विभिन्न बहुश्रुत विद्वानों से परिचय प्राप्त करने का दुर्लभ सौभाग्य सहज ही सुलभ होता था। राजा साहब के निकट सम्पर्क में आने का मुझे जो सौभाग्य सहज ही प्राप्त हुआ, उसका समस्त श्रेय उक्त उपनिषद् को ही है। इसके अतिरिक्त, बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की सेवा की जो थोड़ी-बहुत घड़ियाँ मुझे मयस्सर हुई थीं, वह भी मेरे लिए, अनेक अखिलभारतीय स्तर के विद्वानों से सम्पृक्त होने की दृष्टि से, कामदुघा सिद्ध हुईं। कहना यह कि राजा साहब की उदार स्नेह-परिधि में प्रवेश-स्वीकृति सम्मेलन के माध्यम से ही मुझे प्राप्त हुई।

हिन्दी सेवी जानते हैं, नलिन-युग सम्मेलन का स्वर्ण युग था। बच्चनदेवी-साहित्य-गोष्ठी के तत्त्वावधान में विद्वद्गोष्ठियाँ तो निरंतर आयोजित होती ही थीं, इसके अलावा सम्मेलन का 'अनुशीलन-वेश्म' भी सतत साहित्य-चर्चा से मुखर रहता था। प्रायः प्रत्येक गोष्ठी या सभा में राजा साहब की सहज उपस्थिति शोभाश्री की उत्कर्षविधायिका हुआ करती थी। राजा साहब की उँगलियों के पोरों पर झूमनेवाली लेखनी से परिचितों को उनकी मुहावरा-मधुर वचोभंगी आप्यायित कर देती थी।

राजा साहब किसी दिवंगत साहित्यकार की शोकसभा में अपनी श्रद्धा निवेदित करते हुए कहते : 'आप क्या उठ गये कि मेरा दिल ही बैठ गया।' आज उनकी वही वचोभंगी, जब वे स्वयं दिवंगत हो गये हैं, हमारे हृदय की स्मृतिगुहा में कचोट पैदा करती है। उनका उठ जाना निश्चय ही हमारे हृदय को उन्मथित कर देता है!

राजा साहब के निकट बैठकर उनके सरस वार्त्तालाप सुनने का मौका कई बार मुझे नसीब हुआ है। यों, राजा साहब का निकट-दर्शन पहली बार तब हुआ, जब अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त प्रकाशन-संस्थान ज्ञानपीठ प्रकाशन के संचालक श्री लक्ष्मी-चन्द्र जैन के साथ मैं इनके (राजा साहब के) बोरिंग रोड-स्थित आवास पर गया था। श्री जैन उस समय एक बालोपयोगी मासिक निकालने की योजना लेकर बिहार के

प्रतिष्ठित कथाकारों से मिलने पटना आये थे। राजा साहब के निश्छल मुखमण्डल पर तिरती रहनेवाली बाल-सुलभ मुस्कराहट जिसने देखी है, उसके लिए वह चिरस्मरणीय हो गई है। प्रत्येक रचनाकार को अपनी कृतियों की प्रेषणीयता की जिज्ञासा का आग्रह स्वभावतः रहता है। मिलने पर राजा साहब मुझसे पूछते : 'आपने मेरी कौन-कौन सी कृतियाँ पढ़ी हैं ?' मैं दो-एक के नाम लेता। तब वे साग्रह कहते : "'चुम्बन और चाँटा' कैसा लगा आपको ?" और फिर, कहते कि मैं तो उर्दू और अँगरेजी का आदमी था। हिन्दी में ले आने का सारा श्रेय तो शिवपूजन बाबू को है। इस प्रकार, अपनी गर्वोक्ति के परिहार में वे जाने कितनी ऐसी बातें करते, जिनसे उनके स्वच्छ मानस का पारदर्शी प्रतिबिम्ब हमारी अन्तश्चेतना को अभिभूत कर लेता। हमारी अपनी धारणा है कि राजा साहब को स्वयं अपनी समस्त कथाकृतियों में 'चुम्बन और चाँटा' सर्वाधिक प्रिय थी। क्योंकि 'मेघदूत' की यक्षिणी या 'बाणभट्ट की आत्मकथा' की भट्टिनी की तरह 'चुम्बन और चाँटा' की अकल्पित कथानायिका कृतिकार के अन्तरंग का मर्मस्पर्श करती सी लगती है। स्पष्ट ही, प्रस्तुत कृति में जीवनानुभूति की संवेदना की तीक्ष्णता के प्रति कृतिकार का जो आन्तरिक आग्रह है, वही मुझे इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है।

राजा साहब, जैसा नाम से भी स्पष्ट है, राजन्य-कुल के प्रतिनिधि सदस्य थे। फिर भी, वे अपनी कृतियों में निम्नवर्ग की उच्चता के विधान का सदा आग्रही रहे। हालाँकि, विचारक बनने का आग्रह उन्होंने कभी प्रकट नहीं किया। उन्होंने पूर्णता का दावा भी कभी नहीं किया, तो अपूर्णता की आशंका भी उन्हें नहीं थी। उनके कथा-पात्र विद्रोही चेतना से सम्पन्न होते हुए भी कथाशिल्प के धारक नहीं हैं, उनका सामर्थ्य तो भाषा-शैली के बीच अभिव्यक्त हुआ है। फलतः वे कथापात्र अनावश्यक वैषम्य और निरर्थक अतीत-आसंगों को ध्वस्त कर नूतन के लिए कोई विस्फोटात्मक भूमिका नहीं बनाते, अपितु वे रोमानी वृत्ति की कायाकल्पता का ही अधिकतर विन्यास करते हैं। राजा साहब की भाषा-शैली या शब्दावली इस मानी में भाषिकी क्रान्ति का प्रतिनिधित्व करती है कि वह विपन्न और असम्पन्न जीवन की सम्पन्न भावात्मकता के लिए चिन्तित हुई है, जिसमें अन्तस्संघर्ष की सम्भावनाओं का नव्य संयोजन हुआ है। निस्सन्देह, राजा साहब कथा के क्षेत्र में मूलतः भाषा के ही प्रयोक्ता थे।

राजा साहब अनेक साहित्यिक संस्थानों से सम्बद्ध थे । बिहार-राष्ट्रभाषा परिषद् से तो उनका बड़ा ही आत्मीयत्वपूर्ण लगाव था । कोई भी साहित्यिक संस्थान राजा साहब को अपने से सम्बद्ध कर गौरवान्वित होता था । परिषद् के संचालक-मण्डल की बैठकों में वे प्रायः सम्मिलित होते, परन्तु वे बराबर जंगम स्थिति में रहते । इसलिए, बैठकों में जब वे भाग लेते होते, तब बीच-बीच में बैठक से बाहर निकल आते और इधर-उधर घूमते—चंक्रमण करते । उनको इस प्रकार निर्द्वन्द्व घूमते देख सहज ही मैं और मेरे मित्र उनतक खिसक आते और उनकी रसमयी वचोभंगी का आनन्द लेते ।

राजा साहब मितभाषी तो थे ही, मिताहारी भी थे । फलों में उन्हें काजू और नारंगी अधिक अनुकूल जँचती थी । ईख की गुल्लों को भी रसपूर्वक चूसते हुए उन्हें मैंने देखा है । उनकी इस फलप्रियता और रसास्वादकता में उनके सात्त्विक जीवन-दर्शन एवं रागात्मक अनुबन्ध की झाँकी अनायास मिल जाती थी ।

राजा साहब लौकिक धरातल पर रहते हुए भी निरन्तर अलौकिक परिवेश में विचरते रहते थे । यही कारण है कि मैंने उन्हें दुनियाबी साधारण बातें करते कभी नहीं पाया । जब भी मिला, साहित्यिक माहौल में उन्हें खोया हुआ पाया । इसीलिए तो, उन्हें यह शेर बहुत ही मौजूँ मालूम होता था—

> गर्क होकर रोल तू मोती खुद अपने वास्ते ।
> डूबकर उभरो तो औरों के लिए साहिल बनो ।।

राजा साहब के लिए हर समय साहित्य का समय था । इसलिए, राजनयिक या साहित्यिक दल के दलदल में धकापेल करते उन्हें कभी नहीं देखा । उनकी तो बराबर यही तमन्ना रहती थी कि प्रत्येक लेखक की उसकी अपनी उँगलियों के पोरों में कलम झूमती रहे । दल-निरपेक्षता या वादनिरपेक्षता ही सच्चे साहित्यकार की निशानी मानी गई है । राजा साहब तो दिन-रात अपनी रचना में बेल-बूटे उगाने की धुन में ही मस्त रहते थे । उनको फुरसत कहाँ थी कि वे उदात्त जीवन से अनुदात्त जीवन पर उतर आते ।

आचार्य शिवजी ने राजा साहब की भाषिकी क्रान्ति की चर्चा करते हुए लिखा है कि भाषा में कसीदा काढ़ना ठठा नहीं है । इसके लिए मुहावरों की बन्दिश का आभास और सूक्तियों की सूझबूझ तथा मनोगत भावधारा में गहराई तक पैठने की क्षमता चाहिए । कहना अपेक्षित न होगा कि राजा साहब को यह स्वाभाविक शक्ति

चिन्तनशीलता और तल्लीनता के नैरन्तर्य से प्राप्त हुई थी। अनेक भाषाओं की अभिज्ञता के साथ अपनी भाषा की सजधज पर गहरी निगाह रखनेवाले राजा साहब के समान साहित्यशिल्पी आज हिन्दी में अंगुलिगण्य क्या, नगण्य हैं। तभी तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे निष्पक्ष, अतएव निर्मम आलोचक को भी राजा साहब की भाषा के प्रति प्रशंसामुखर होना पड़ा है।

राजा साहब ने एक ओर जहाँ अनेक रूढ़ मुहावरों का प्रयोग किया है, वहीं दूसरी ओर अनेक मुहावरे स्वयं गढ़े भी हैं। उन्होंने जिस मनोज्ञ भाषा-शैली के द्वारा हिन्दी-गद्य में एक क्रान्तिकारी लहरा बहाई है, वह भाषा-शैली उनकी पूर्ण वशंवदा है। तभी तो उन्होंने उसे यथेच्छ चारियों में परिवर्त्तित किया है। निस्संशय, राजा साहब की सूक्तियों को मान्त्रिक सिद्धि प्राप्त है। इसलिए, पाठकों को वह सहसा आविष्ट कर लेती हैं। संक्षेप में यह कि राजा साहब की शैली कपूर से नहाई हुई और चाँदनी से पोंछी गई देहयष्टिवाली नायिका जैसी है, जो स्वयं रसाक्त होकर साधक कलाकार या कृतिकार की रचना-शय्या पर आया करती है और कृतिकार की भाषा को नई भंगिमा देकर उसमें भावों की नई लहर पैदा कर देती है।

राजा साहब को पारम्परिक रूप से अपने कविर्मनीषी पिता पुण्यश्लोक 'प्यारे कवि' की काव्य-प्रतिभा विरासत में मिली थी, जिसका सफल उपयोग उन्होंने अपने काव्य-गन्धि गद्य में किया है और ततोऽधिक परिनिष्ठित गद्य-संस्कार उनके कथाकार पुत्र श्री उदयराज सिंह की कथाकृतियों में सहजतया सन्निहित मिलता है। राजा साहब की भाषा-शैली के अनुकरण का न्यूनाधिक प्रयास भी हिन्दी में हुआ, किन्तु वह तो सहज अनुकरणीय है नहीं, इसलिए अननुकरणीय ही बनी रही।

राजा साहब की पार्थिवता इतनी जल्दी तिरोहित हो जायगी, विश्वास नहीं था। किन्तु, विधि का विधान ही कुछ ऐसा है कि मृत्यु पर किसी का नियन्त्रण नहीं रहता। किन्तु, इतनी आश्वस्ति तो सहज ही प्राप्त है कि रचनाकार अपनी रचनाओं में शाश्वत रूप से प्रतिष्ठित रहता है। राजा साहब का कीर्त्ति-काय उनकी अपनी रचनाओं में अपनी ऊर्जस्वल भाषा-शैली के कारण कल्पान्त स्थायी बना रहेगा, इसमें विचिकित्सा का अवसर नहीं।

शिवमंगल सिंह
भूतपूर्व प्रधानाध्यापक, राजराजेश्वरी उच्चविद्यालय
सूर्यपुरा (शाहाबाद)

एक और बड़ा महत्त्व का गुण आपमें था जिसका सर्वथा अभाव इस स्वार्थ के युग में देखा जा रहा है। आप जात-पात के भेद-भाव से अछूता रहे। साम्प्रदायिकता आपको छू नहीं गई थी। आपके दफ्तर में कई प्रमुख पद पर मुसलमान थे। आप कायस्थ थे और मैं राजपूत। पर जीवन में जात का प्रश्न कभी नहीं उठा। स्कूल के शिक्षकों में कायस्थों की संख्या अत्यन्त अल्प थी। सभी नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर होती थीं। छह साल तक शाहाबाद जिले के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन रहे पर आपने इसे कायस्थों से नहीं भर दिया। राम और रहीम में उन्हें कोई भेद नहीं मालूम होता था। इसी विचारधारा का फल आपका प्रमुख उपन्यास 'राम-रहीम' है।

वह जीवन साथी

श्रीमान् राजा साहब के सम्पर्क में मैं १९१९ की जनवरी में आया। उसी समय सूर्य्यपुरा में हाई स्कूल की स्थापना हुई थी। मैं उसके प्रधानाध्यापक के पद पर नियुक्त होकर वहाँ गया और इसी पद पर ४० वर्षों तक कार्य सम्पादन कर १९५८ ई० की पहली नवम्बर को अवकाश ग्रहण कर सूर्यपुरा से विदा हुआ। इस लम्बी अवधि में मैं प्रायः प्रतिदिन श्रीमान् राजा साहब के निकटतम संसर्ग में रहा। यदि मुझमें

लिखने की शक्ति होती तो मैं श्रीमान् के संस्मरण का एक बृहत् ग्रंथ लिख डालता। पर दुःख है कि उनकी वे सब स्मृतियाँ मेरे हृदय के पिटारे में ही बन्द चली जाएँगी।

मैं १९१९ की जनवरी में सूर्य्यपुरा गया। एक सप्ताह के बाद श्रीमान् मुझको साथ लेकर आरा अपने ससुराल चले गये। माघ का महीना था। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। राजा साहब बड़े तड़के चार ही बजे उठ कर बाहर बरामदे में पड़ी एक छोटी चौकी पर आ बैठते थे। छोटक खानसामा पहले ही उस चौकी पर एक कम्बल डाल देता था और सिगार का डिब्बा रख देता था। वहीं एक ओर निकट की कुर्सी पर मैं भी आकर बैठ जाता था। एक रात बड़ी सर्दी पड़ रही थी। सर्वत्र कुहरा छाया हुआ था। वर्फीली हवा चल रही थी। राजा साहब नित्य की तरह चौकी पर बैठे सिगार पी रहे थे। मैं समीप ही में ऊनी चादर ओढ़े कुर्सी पर बैठा था। अभी चारो ओर अंधकार छाया हुआ था। उसी समय एक नंग-धिड़ंग काला-कलूटा भिखमंगा सर्दी से थर-थर काँपता न जाने से कहाँ से आकर राजा साहब के सामने खड़ा हो गया। उसके शरीर पर एक लंगोटी के सिवा कोई कपड़ा नहीं था। उसके मुँह से कोई आवाज नहीं निकल रही थी। राजा साहब की दृष्टि उस पर पड़ी। कुछ क्षण तक वे उसकी ओर देखते रहे। करुणा से उनका हृदय भर आया। आँखें डबडबा आईं। दो-चार बूंद आँसू भी गिरते देखा। सहसा चौकी पर से उठे। अपनी नई दोलाई जाकर उसे ओढ़ा दिया। छोटक को पुकारा। उसे वक्स में के कपड़ों में से एक गंजी, एक कमीज, एक कोट, एक धोती लाने के लिए कहा। उन्होंने छोटक को उस भिखमंगे को ये कपड़े पहराने को कहा। जब उसे कपड़े पहराये गये तब उस दोलाई को ओढ़वा कर उसके हाथ में ५) रुपया छोटक द्वारा दिलवा कर उसे विदा किया। मैं आश्चर्य से यह दृश्य देखता रहा। ५२ वर्ष बाद आज भी वह नजारा मेरी आँखों के सामने ज्यों-का-त्यों विराज रहा है।

श्रीमान् राजा साहब और उनके अनुज श्रीमान् कुमार राजीवरंजन प्रसाद सिंह जी को तीन चीजों से पूरा परहेज था। ये थे पहलवान, शराब और वेश्या नृत्य। इन्हीं तीन के कारण स्टेट ऋणग्रस्त हो गया था। कोर्ट ऑफ वार्ड ने ऋणमुक्त कर स्टेट राजा साहब को सौंपा था। तीन साल तक कोर्ट ऑफ वार्ड के अन्दर राजा साहब ने अपने ही स्टेट के मैनेजर के रूप में काम किया था। दोनों भाइयों के शुद्धाचरण का

प्रभाव उनके लड़के श्री बाला जी, श्री राणा जी तथा श्री शिवा जी पर पड़ा जो इन व्यसनों से आज तब दूर रह सके हैं।

संध्या ४ बजे से रात के १२ बजे तक मैं राजा साहब के साथ रहता। ३ बजे राजा साहब कचहरी से उठ कर स्कूल में आ उपस्थित होते और ग्यारहवें वर्ग में १ घंटे तक छात्रों को अँग्रेजी पढ़ाते। ४ बजे से ५ बजे तक हम लोगों के साथ स्कूल के मैदान में टेनिस खेलते और जब लड़के ५ बजे खेल के मैदान में जुटते तब उनके साथ एक घंटे तक हॉकी और क्रिकेट खेलते। फुटबौल के मौसम में बैठकर लड़कों का खेल देखते और हप्ते में एक बार खेलाड़ियों को अपने साथ बंगले पर ले जाकर मिठाइयाँ खिलाते थे।

संध्या होने पर मैं बाबू राधा प्रसाद सहायक प्रधानाध्यापक, बाबू हरिनाथ सहाय सहायक शिक्षक तथा बाबू गणेश प्रसाद सहायक शिक्षक के साथ बंगले पर पहुँच जाता। उपरोहित श्री विन्देश्वरी प्रसाद उपाध्याय आ उपस्थित होते। ८ बजे तक साहित्य-चर्चा होती। रीतिकाल के कवियों की रचनाओं पर विचार-विमर्श होता। बिहारी, मतिराम आदि के दोहों पर आलोचना होती। ८ बजे उपाध्यायजी के चले जाने पर राजा साहब हम सब लोगों के साथ भोजन करते। भोजन में चचा साहब बाबू श्याम बिहारीलाल आ सम्मिलित होते और अपने विनोद से भोजन को और भी सुस्वादु बना देते। भोजनोपरान्त वृज जमता। १० बजे तास का खेल समाप्त होता। सब लोग अपने-अपने घर जाते। मैं रोक लिया जाता। अब राजा साहब का स्वाध्याय प्रारम्भ होता। मुझे भी पढ़ने के लिये कुछ दे देते। इसी निस्तब्धनिशा में 'तरंग' लिखा गया था। १२ बजे तक यह अध्ययन और लेखन का कार्य चलता। तब मुझे फुर्सत होती। राजा साहब सोने जाते। मैंने उनको आजन्म चौकी ही पर सोते देखा। चौकी पर गुलगुला तोशक कभी नहीं। एक कम्बल उस पर एक कालीन, उस पर चादर और दो तकिये। एक मच्छड़दानी अवश्य रहती थी। आप ४ बजे उठ जाते। शौचादि से निवृत्त हो छड़ी घुमाते नहर के किनारे दो मील तक बड़ी तेजी से टहलते। उसी समय से लोग उनके पीछे लग जाते। बंगले पर लौटते-लौटते अनुगामियों की काफी संख्या हो जाती। उनमें प्रत्येक का काम निबटाते जाते और लोग एक एक कर खिसकते जाते। दूसरों का ताँता बँधा रहता। रमजान अली, नसीर खाँ,

चचा साहब आदि मुलाजिम जुट जाते और रियासत का काम शुरू हो जाता। उनकी ड्योढ़ी नहीं लगती थी। सभी आते-जाते रहते। ग्यारह बजे तक लगातार काम करते रहते। १२ बजे नौकर सरसों का तेल सारे शरीर में मर्दन करते-करते पसीने से तरबतर हो जाता। सर में कैस्टर आॅयल दिया जाता। सरसों का तेल मर्दन करने का आपको व्यसन था। बाहर कहीं जाते तो यह तेल टिन में बन्द साथ जाता। एक बजे दिन में भोजन करते। प्रातःकाल का नास्ता बहुत हल्का रहता। उसमें प्रधानता छेना की रहती जिसमें मधु मिलाकर चमच से खाते। थोड़ा मेवा-अखरोट, किसमिस और बादाम फुलाकर रगड़ा हुआ लेते पर इनकी मात्रा अति न्यून होती। आप पान खाने के बड़े शौकीन थे। पनबटे में मगही पान की गिलौरियाँ भरी रहतीं। डिबियों में जर्दा और पान के मसाले जो प्रायः बनारस से पार्सल में आते थे, रखे रहते थे। पास में सिगार और सलाई की एक छोटी पेटी पड़ी रहती। खाने और स्नान के समय भी रियासत तथा आगंतुकों का काम चलता रहता। मुह में कौर चबा रहे हैं और आॅर्डर लिखवा रहे हैं। एक बजे से दो बजे तक पास के बेंच पर एक चादर डलवाकर माथे के नीचे तकिया रख सो जाते। ठीक दो बजे उठ जाते और कचहरी में आकर दो घंटे तक वहाँ स्टेट का काम देखते। असामी टेबुल पर सलामी के एक या दो रुपये रखते जाते, अपने काम का निवेदन करते, आॅर्डर पाते और चलते जाते। चार बजे तक, प्रायः नित्य ४०-५० चाँदी के रुपये टेबुल पर जमा हो जाते। राजा साहब न उनको देखते और न छूते, गिनना तो दूर रहा। उनके उठ जाने पर एकाउन्टैंट रुपयों को गिनते, उठाते, कैशबुक में जमा करते और खजानची के हवाले करते। उनके ही ईमान पर इस नित्य प्रति आनेवाले आय का हिसाब रहता। राजा साहब ने कभी यह नहीं सोचा कि एकाउन्टैंट और खजानची इसमें गड़बड़ कर सकते हैं और वास्तव में इन लोगों ने कभी गड़बड़ किया भी नहीं।

स्कूल से राजा साहब को अत्यधिक स्नेह था। ४ बजे से ६ बजे तक आप प्रति-दिन स्कूल में रहते। ग्यारहवें वर्ग में अंग्रेजी पढ़ाते, टेनिस, हॉकी, क्रिकेट खेलते और कुर्सी पर बैठकर फुटबौल का खेल देखते। १९२० ई में जब स्कूल का विशाल भव्य भवन बनने लगा तब से इसके निर्माण काल तक का सारा काम आपने अपनी निगरानी में रखा। हॉल के निर्माण के समय एक विकट समस्या आ उपस्थित हुई —३४ फीट

लम्बा, डेढ़ फीट मोटा और ६ इंच चौड़ा लोहे का गार्टर २२ फीट ऊँची दीवालों पर कैसे चढ़ाया जाए ? इतने बड़े और वजनी ६ गार्टरों का चढ़ाना दुष्कर कार्य था। राजा साहब ने गाँव के तगड़े नवजवानों को ललकारा। मोटे-मोटे रस्से जुटाये गये। बाबूलाल साव ने मिठाइयाँ भरे थाल सामने ला रखे। डेलाइट जलाये गये और रात में जय महावीर के घोष के साथ बातबात में सब गार्टर दीवाल पर यथास्थान रखे दिखाई पड़े। राजा साहब खड़े लोगों को ललकार रहे थे। देश के कितने राजे सार्वजनिक कार्य में इतनी दिलचस्पी और तत्परता दिखाते थे।

राजा साहब अक्सर छात्रावासों में आ जाते। छात्रों के साथ चौकी पर बैठ जाते। अँग्रेजी के इडियम का अर्थ पूछते, नहीं आने पर बताते और वाक्यों में प्रयोग करना सिखाते।

प्रति वर्ष वसंतपंचमी के दिन स्कूल की वर्षगाँठ मनायी जाती। तीन-चार दिन पहले ही से खेलों की प्रतियोगिताएँ प्रारम्भ हो जातीं। पारितोषिक वितरण राजा साहब के करकमलों से होता। रात में प्रायः डी० एल० राय के नाटक खेले जाते जिनमें शिक्षक और छात्र भाग लेते। एक महीना पहले से रिहर्सल होता। राजा साहब प्रायः उसमें उपस्थित रहते और पात्रों को ट्रेनिंग देते। उस सस्ती के जमाने में १००) गरीब छात्रों को पुस्तक देने के लिये, १००) नाटक के खर्च के लिये और १००) आगन्तुक सज्जनों के भोजन-सत्कार के लिये दिये जाते थे। १००) महीना गरीब छात्रों के भोजन के लिये देते थे जिससे २५ गरीब मेधावी छात्रों को भोजन दिया जाता था। उस समय चार रु० में छात्रावास में महीना भर का भोजन होता था। जिले भर के मिडिल स्कूलों के गरीब मेधावी छात्र प्रतिवर्ष यहाँ आते और शिक्षा पाते थे। एक साल जब राजा साहब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन थे, शाहाबाद के सिविल सर्जन बटुक बाबू को सूर्य्यपुरा के अस्पताल में निरीक्षण करते देखा। उसी दिन स्कूल की वर्षगाँठ मनायी जा रही थी। प्रातःकाल अवशेष खेलों की प्रतियोगिताएँ चल रही थीं। टग ऑफ वार का आइटम आया। बटुक बाबू अस्पताल के स्टॉफ के साथ स्कूल में आये। आगे-आगे राजा साहब आ रहे थे। बटुक बाबू ने प्रस्ताव रखा कि अस्पताल के स्टॉफ के साथ जिसमें मैं पहला रहूँगा स्कूल के स्टॉफ टग ऑफ वार में आगे आवें। राजा साहब ने कहा कि उस दल में मैं पहला रहूँगा। इस मनोरंजक प्रतियोगिता को सैकड़ों छात्र और ग्रामवासी देख रहे थे। स्कूल के शिक्षक तगड़े निकले। जब राजा

साहब ने देखा कि बटुक बाबू के दल के पैर डगमगाने लगे तब उन्होंने शिक्षकों को ढील देने का संकेत किया और बटुक बाबू का दल जीत गया। रात में बटुक बाबू छात्रों द्वारा प्रदर्शित नाटक—दुर्गादास—देखने राजा साहब और कुमार साहब के साथ स्कूल में आये। लड़कों के प्रदर्शन से इतने प्रसन्न और प्रभावित हुए कि 'एनकोर, एनकोर' की झड़ी लगा दी और राजा साहब से कहा—राजा साहब, हम सूर्य्यपुरा में हैं कि कलकत्ते के कोर्निथियन थियेटर में। इस दिहात में यह साज-सज्जा और इतना फाइन ऐक्टिंग। इसमें आपके हाथ की ट्रेनिंग प्रत्यक्ष दिखाई देती है।

राजा साहब का जीवन अत्यन्त सादा था। धोती, कुर्ता, गंजी, गर्दन में लिपटी हुई एड़ी तक लटकती सूती चादर और दुपलिया टोपी उनका परिधान था। हाकिम-हुक्काम या अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति से मिलने जाते तब उजला सूती चूड़ीदार पैजामा, काली शेरवानी और मोटे ऊनी या सूती कपड़े की गाँधी टोपी धारण करते थे। जूता और पैताबा तो रहते ही। मैंने उनको कोट, पैंट और टाई में केवल एकबार मसूरी में देखा जब घोड़े पर बैठकर आप ने अपना फोटो खिचवाया था। आपको अपने कपड़ों पर कभी ध्यान नहीं रहता था। धोती फट गई है, कुर्ता फट गया है, चादर फट गई है, कपड़े मैले हो गये हैं, इसकी उन्हें कोई फिक्र नहीं। यह देखना उनके खानसामे छोटक, अनुज कुमार साहब और उनकी सहचरी धर्मपत्नी रानी साहिबा का काम था। आपको इस लापरवाही के लिये कभी-कभी अपने अनुज कुमार साहब की स्नेह भरी झिड़की भी सहनी पड़ती थी जिसे आप मुस्कुराते हुए सर नीचा कर चुपचाप सह लेते थे। लोग कहा करते थे कि ये पूर्व जन्म के तपस्याभ्रष्ट योगी हैं।

राजा साहब बड़े विनोदी भी थे। उनके दफ्तर में भगवत प्रसाद नाम का एक १८ वर्ष का युवक था। था वह मातृ-पितृ-विहीन। अपने मामा के साथ रहता था जो उसी दफ्तर में काम करते थे। राजा साहब इस टुग्रर लड़के पर बड़ा स्नेह रखते थे। लड़का था बहुत तेज और अपना काम बड़ी सतर्कता से करता था। एक साल उसकी शादी हुई। दुलहिन नवादा के निकट उसके गाँव में थी। जब एक महीना बीत जाता राजा साहब १०-१५ रुपये उसके हाथ में धरते और उसे घर जाने को बाध्य करते। भगवत मुस्कुराता नीची निगाह कर 'ना' 'ना' कहता जाता और राजा साहब स्नेहपूर्ण डाँट दिखाकर उसे घर भेज देते। जब कई बार ऐसी ही बात हुई तब एक दिन एकाउन्टैन्ट साहब जो दफ्तर के सुपरिन्टेन्डेन्ट भी थे, कहने लगे कि भगवत को बार-बार

पैसा देकर घर भेज देते हैं इससे काम में हर्ज होता है और दूसरे-दूसरे मुलाजिम कुड़-कुड़ाते हैं। मैं भी वहीं पास में बैठा था। राजा साहब धीरे से मुस्कुराये और नीचे दृष्टि किये कहा—हम जानते हैं उसका काम हर्ज नहीं होता। उसका काम बराबर अपटुडेट रहता है एकाउन्टैन्ट बाबू, आप अपनी जवानी के दिनों को याद कीजिये। एकाउन्टैन्ट बाबू पानी-पानी हो गये और मुस्कुराते हुए चले गये। छात्रावास में आते तब सयाने लड़कों से पूछते—आपकी शादी हुई है कि नहीं। लड़के शर्मा कर चुप रह जाते। किसी ने कहा कि हाँ, शादी हो गई है तब पूछ बैठते—'बाल-बच्चे'। लड़के मुस्कुराते भाग जाते। विनोदी होते हुए भी आपको मैंने कभी किसी युवती पर नजर उठाते नहीं देखा, नजर गड़ाना तो दूर रहे।

आपका हृदय करुणा और सहानुभूति से पूर्ण था। स्थानीय अस्पताल में अक्सर टहलते आ जाते। मरीजों के बिस्तरों के निकट खड़े होकर उनके कष्ट की कहानी सुनते। अक्सर उनकी आँखें डबडबा आतीं। डॉक्टर को दवा-दारू की उचित व्यवस्था करने को कहते और फलादि के लिये रुपये भेजवा देते थे। दूसरे की खुशी में बहुत खुश होते। प्रथम श्रेणी में प्रवेशिका पास होने वाले छात्रों को अपने सामने बुलवाते, उनके घर का परिचय पूछते और उन्हें आगे पढ़ने के लिए उत्साहित कर मिठाइयाँ खिलाते।

राजा साहब में जो मैंने सबसे बड़ा गुण देखा वह था उनमें क्रोध का सर्वथा अभाव और अलौकिक सहनशीलता। इनके नजदीक के सम्पर्क में रहते मैंने कभी भी उनको किसी पर चिल्ला-चिल्ला कर बिगड़ते और क्रोध करते नहीं देखा। दूसरे के दुर्वचनों को बड़ी धीरता से सुनते और सर नीचा कर मुस्कुराते जाते। कभी-कभी आसामी लोगों को जिनकी अनुचित माँगों को अन्य अस्वीकार कर देते थे, बहुत कड़ी-कड़ी बात इनके मुँह पर कहते मैंने सुना। मुझे क्रोध आ जाता था और मैं विचलित हो जाता था पर राजा साहब मुस्कुराते जाते और कहते जाते—See, see, master sahab, see his human weakness—मुझे उनकी सहनशीलता पर आश्चर्य होता और उनके प्रति सम्मान से सर झुक जाता। मैंने उनकी इस सहनशीलता और क्रोध के अभाव को अपने जीवन में उतारने का प्रयास किया है।

इनका हृदय कवि का भावुक हृदय था। १९२४ ई० के ग्रीष्मकाल में हम लोग मंसूरी में थे। जिस कमरे में राजा साहब सोते थे उसी कमरे में अपनी चौकी के निकट ही मेरी भी चारपाई लगवा रखी थी। एक कोने में छोटक खानसामा सोता था।

बगल के एक छोटे कमरे में बालक वालाजी और उनका नौकर बड़क खानसामा रहते थे। उन दिनों राजा साहब शाहाबाद जिला बोर्ड के चेयरमैन थे। डाक से जरूरी फाइल प्रायः नित्य आया करते थे। रात को खाना खाने के बाद आप ९ बजे से १२ बजे तक फाइल में उलझे रहते। उन्हें पढ़ते, मेरे साथ डिसकस करते और आर्डर लिखते जाते। मैं भी नींद के वेग को रोक्ते १२ बजे तक तपस्या करता। जब कभी उनको प्यास लगती और मैं पानी लाने के लिये छोटक को पुकारता तब आप हाथ के इशारे से मुझे मना करते, धीरे से कहते—अहा! कितनी सुनहली नींद में सोया है! हम-आपको ऐसी गाढ़ी नींद कहाँ मयस्सर है? इसको तोड़ना बड़ा भारी गुनाह है—जब मैं उठकर सुराही की ओर बढ़ता तब कहते—हैं, हैं, यह आप क्या कर रहे हैं, और इसके पहले कि मैं सुराही के निकट पहुँचूँ आप मुस्कुराते सुराही के निकट पहुँच जाते और गिलास में पानी ढार कर पी लेते। कितना कोमल करुणापूर्ण उदार हृदय था! आपने अपने जीवन में किसी को 'ना' नहीं कहा और यथाशक्ति सबों की माँगों को पूरा करने का प्रयास किया। आप कॉलेज में या ओवरसियरी पढ़नेवाले अनेक छात्रों की सहायता ३०-३५) माहवारी देकर करते थे। इनकी संख्या एक दर्जन से अधिक थी। उस समय ३०) में पढ़ाई का सारा खर्च निबह जाता था।

एक और बड़ा महत्त्व का गुण आपमें था जिसका सर्वथा अभाव इस स्वार्थ के युग में देखा जा रहा है। आप जात-पात के भेद-भाव से अछूता रहे। सांप्रदायिकता आपमें छू नहीं गई थी। आपके दफ्तर में कई प्रमुख पद पर मुसलमान थे। आप कायस्थ थे और मैं राजपूत। पर जीवन में जात का प्रश्न कभी नहीं उठा। स्कूल के शिक्षकों में कायस्थों की संख्या अत्यन्त अल्प थी। सभी नियुक्तियाँ योग्यता के आधार पर होती थीं। रियासत के तहसीलदारों में राजपूतों की संख्या अधिक थी। ६ साल तक शाहाबाद जिले के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन रहे पर उन्होंने इसे कायस्थों से नहीं भर दिया। राम और रहीम में उन्हें कोई भेद नहीं मालूम होता था। इसी विचारधारा का फल उनका प्रमुख उपन्यास 'राम-रहीम' है।

हिन्दी साहित्य-जगत् में राजा साहब एक अपूर्व शैली के जन्मदाता के रूप में अवतरित हुए। संस्कृत, हिन्दी, फारसी, अरबी, उर्दू और अंग्रेजी शब्दों को यथा-स्थान एक साथ पिरोने में आप दक्ष थे। उनका हृदय कवितामय था। अतः उनका गद्य भी पद्यमय है। लोग समझते होंगे कि राजा साहब सोच-सोच कर शब्दों को

गढ़ते होंगे और बड़े परिश्रम से उनको अपने वाक्यों में जोड़ते होंगे। पर यह बात नहीं थी। उनके तुक से अलंकृत वाक्य बेप्रयास धाराप्रवाह मस्तिष्क से निकलते जाते थे जिन्हें वे पास के किसी रद्दी कागज के टुकड़ों पर पेंसिल से लिखते जाते थे। ये कागज पिन से नत्थी कर दिये जाते थे और तब कापी पर दूसरों के द्वारा लिखे जाते थे। लिख जाने के बाद राजा साहब कापी को फिर से पढ़ जाते थे और फिर पेंसिल से ही बढ़ा-घटा कर आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर प्रेस के लिये कापी तैयार करवाते थे। पर मूल लेख में नाम मात्र का परिवर्तन होता था। 'तरंग' के बाद कई वर्षों तक राजा साहब की लेखनी साहित्य के क्षेत्र में आने से रुकी रही। स्वर्गीय सिन्हा साहब के यह कहने पर कि हिन्दी में थैकरे के 'वैनिटी फेयर' के मुकाबले का कोई उपन्यास नहीं है और वर्तमान में ऐसा कोई हिन्दी का लेखक भी नहीं है जो ऐसी चीज प्रस्तुत कर सके, राजा साहब ने उस चैलेंज को स्वीकार कर लिया और उनकी युग से विश्राम करनेवाली लेखनी फिर से साहित्य के मैदान में उतर आई और ऐसी चमकी कि बेला और बिजली का आश्रय ले 'राम-रहीम' की जननी हुई और सिन्हा साहब ऐसे प्रकांड विद्वान् को स्वीकार करना पड़ा कि 'राम रहीम' का स्थान उपन्यास-जगत् में 'वैनिटी फेयर' से किसी प्रकार हीन नहीं है। उन्होंने कहा—'ललनजी, मैं तो स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था कि तुम हिन्दी में इतनी उत्कृष्ट चीज प्रस्तुत कर सकते हो और इतनी सजीव और मनोमोहक शैली में। भाई, मैंने तुम्हारा लोहा मान लिया। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम अपनी कलम की बदौलत साहित्य-क्षेत्र में अमर हो जाओगे। राजा साहब ने कई बार अपने व्याख्यानों में एलान कर दिया था कि सूर्यपुरा का राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह तो कभी का मर चुका। अपने कलम का धनी राधिकारमण आज आप लोगों के सम्मुख उपस्थित है। सिन्हा साहब के आन की अनी न रहती तो राजा साहब की बँधी लेखनी मुक्त हो साहित्य-जगत् में पुनः न विचरती और जब मुक्त हुई तब छूट कर खेली और दर्जनों पुस्तकों की जननी हुई। राजा साहब के मौखिक व्याख्यानों में भी चुलबुलाती, इठलाती भाषा निकलती थी जो श्रोताओं के अनवरत करतल-ध्वनियों के बीच सरकती जाती थी।

राजा साहब के विषय में एक और बात कह कर मैं अपने इस संस्मरण को समाप्त करूँगा। राजा साहब में सब विरोधी तत्त्वों को सम्हाल कर कार्य करने की अपूर्व क्षमता थी। He Knew how to manage men.

छह बर्षों तक आप शाहाबाद डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन रहे। अँग्रेजों का जमाना था। जिले का अँग्रेज कलक्टर जिला बोर्ड का चेयरमैन होता था। जब गैर सरकारी चेयरमैन का विधान हुआ तब तत्कालीन कलक्टर ने इनको इस पद के लिये उम्मीदवार होने से रोकने के लिये बहुत प्रयत्न किया पर राजा साहब अडिग रहे। बोर्ड में एक-से-एक पेंचीली समस्यायें आती रहती थीं जिनमें सदस्य कट्टर विरोधी दलों में विभक्त देखे जाते थे। पर राजा साहब उनके नेताओं से एक एक कर हाथ में हाथ मिलाये बोर्ड के हाते में हँस-हँस कर बातें करते और उनका समाधान निकाल लेने के उपरान्त सभा भवन में आ बैठते और घंटे आध घँटे में सारे एजेंडा को सर्व सम्मति से निबटा देते। १६३०, ३१, ३२ तीन साल तक मैं भी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का सदस्य था जब डुमराँव के महाराजा कुमार श्री रामरणविजय सिंह जी चेयरमैन थे। इस बोर्ड के सदस्यों में सभी प्रमुख राजपूत सदस्य बराबर उनके खिलाफ आवाज उठाते रहे और प्राय: प्रत्येक बैठक में सभा भवन में हो-हल्ला होता रहता था। १६१६ ई० से मरन काल तक आप सूर्यपुरा माध्यमिक विद्यालय की प्रबंध समिति के सभापति रहे। इस लम्बी अवधि में एक भी ऐसा प्रस्ताव नहीं पारित हुआ जिसमें किसी को कोई आपत्ति हो और इस विद्यालय के सम्बन्ध में एक भी शिकायत शिक्षा विभाग के अधिकारियों के पास गई हो। शिक्षा विभाग के अधिकारी और शिक्षा मंत्री श्रद्धेय श्री बद्रीनाथ वर्मा अक्सर कहा करते थे कि जहाँ विद्यालयों की प्रबन्ध समितियों के झगड़े निबटाने में हमलोगों का अधिकांश समय व्यतीत होता है वहाँ सूर्य्यपुरा ही एक ऐसा विद्यालय है जहाँ से कभी भी कोई शिकायत का आवेदन पत्र नहीं आया।

सूर्यपुरा का राज परिवार सदा ही राष्ट्रीय संघर्ष में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध कांग्रेस की सहायता करता रहता था। राजेन्द्र बाबू और अनुग्रह बाबू को संघर्ष संग्राम चलाने में यहाँ से बराबर आर्थिक सहायता मिलती रहती थी। १६३६ के कौंसिल चुनाव में मैं ही कांग्रेस के उम्मीदवार अपने ही स्कूल के पूर्ववर्ती छात्र बुद्धन राय वर्मा को रुपया पहुँचाया करता था। राजा साहब इस खूबी से यह काम करते थे कि अंग्रेजी अधिकारियों को इसकी कोई खबर नहीं लगती थी।

१६३५ ई० में राजा साहब सांघातिक रूप से बीमार पड़े। 'राम-रहीम' की रचना चल रही थी। राजा साहब लिखने से बाज नहीं आते थे। डाक्टरों ने लिखने-पढ़ने की कड़ी मनाही कर रखी थी। कुमार साहब का इनके ऊपर कड़ा पहरा रहता था।

मजाल नहीं कि कोई उनके निकट जा सके। मई के अंत में कुमार साहब उनको लेकर आबहवा बदलने के लिये नैनीताल चले गये। मैं भी साथ गया। राजा साहब का इलाज चल रहा था। देह सूख कर लकड़ी हो गई थी; महामृत्युञ्जय का जाप हो रहा था। मार्केश का योग आ जुटा था। सब लोग उनके जीवन के लिये चिंतित थे। राजा साहब कुमार साहब के कड़े पहरे में रह रहे थे। पढ़ना-लिखना बंद था। राजा साहब उस विशाल भवन के एक कमरे में बंद रहते थे। कुमार साहब ९ बजे रात में खा-पीकर सो जाते थे। मैं थोड़ी दूर पर बंगले के आउट हाउस के एक कमरे में रहता था। कुमार साहब के सो जाने की पक्की खबर पा जाने पर राजा साहब धीरे से अपने कमरे से निकलते, मेरे कमरे का किवाड़ खटखटाते और जब मैं आवाज सुनकर दरवाजा खोलकर बाहर निकलता तब वे साँसी से कुछ न बोलने का संकेते करते और हाथ पकड़ कर अपने कमरे में में लिवा जाकर दरवाजा बंद कर देते। खिड़कियों के शीशों पर पहले ही से कागज साट दिया गया था कि लैम्प का प्रकाश बाहर दिखाई न पड़े। 'राम-रहीम' का डिकटेशन शुरू होता। साँसी से आप बोलते जाते और मैं लिखता जाता। कलेजे में हड़कंप समाया रहता कि कहीं कुमार साहब को इस षड्यंत्र का पता लग गया तो राजा साहब पर जो बीतेगी वह तो बीतेगीही मेरी तो उलटे छुरे से गर्दन रेती जायेगी। पर मैं विवश था। राजा साहब को किसी बात में मना नहीं कर सकता था। इस प्रकार जान पर खेलकर राजा साहब ने साहित्य-सृजन किया है। है कोई दूसरा ऐसा मिसाल साहित्य-सेवा का ?

१९५२ ई० में काँग्रेस सरकार ने सूर्यपुरा रियासत को अधिकृत कर लिया और उसके बाद श्रीमान् पटने चले गये। ६ साल और टुअर होकर सूर्यपुरा में मैंने येनकेन प्रकारेण कालयापन किया। १९५८ के नवम्बर में अपनी सेवा का ४० साल समाप्त कर मैंने अवकाश ग्रहण किया। राजा साहब मुझे अपना भाई कहा करते थे। जब किसी अपरिचित सज्जन से मेरा परिचय कराते थे तब अन्य बातों के साथ यह कहना कभी नहीं भूलते थे कि ये हमारे अपने परिवार के व्यक्ति के सदृश हैं। मैं इनको अपना भाई समझता हूँ। मेरे सभी लड़कों के ये शिक्षा-गुरु हैं। अवकाश प्राप्त करने के बाद जब कभी मैं पटने में जाता था तब आपकी आँखें मुझे देखकर सजल हो जाती थीं। मालूम होता था अतीत की स्मृतियाँ उनको विह्वल कर देती थीं। स्वस्थ होने पर खोद-खोद कर परिवार के सभी व्यक्तियों का हाल पूछते। सूर्यपुरा के उस आनन्दमय जीवन की शृंखला समाप्त हो गयी। उस चमन के सब फूल झर गये। अकेला मैं अन्तिम घड़ी की प्रतीक्षा में अटक रहा हूँ।

शंकर दयाल सिंह
संसद्सदस्य, १० मीनाबाग, नई दिल्ली

✣

श्मशान की भूमि कभी वीरान नहीं रहती और न तो गंगा का तट ही कभी खाली रहता है। अर्थी का सामान बेचने वालों की दूकानों पर भी लोगों का अनवरत आवागमन बना रहता है। 'लेकिन किसी-किसी की अर्थी जब उठती है तो लगता है जैसे जमाना उठ गया और किसी-किसी की जब चिता जलती है तो लगता है जैसे युग जल गया।

✣

'आपने मेरी कौनसी पुस्तक पढ़ी है?' उन्होंने, पहली मुलाकात में ही मुझसे यह सवाल पूछा था।

'कई पुस्तकें पढ़ गया हूँ'—मेरा सहज उत्तर था।

'जैसे कौन-सी ?'

राम और रहीम एक साथ चला गया

'गाँधी टोपी, पुरुष और नारी, चुम्बन और चाँटा तथा राम-रहीम।' मैं कहाँ जानता था कि इस उत्तर के साथ ही फँस जाऊँगा।

मैंने जिन-जिन पुस्तकों के नाम लिए वे सबों में से एक-एक संदर्भ पूछकर मेरी परीक्षा लेने लगे और मैं हर सवाल के जवाब में केवल बगलें झाँकता रहा।

इतने संदर्भ उन्होंने मेरे सामने रख दिए जिनमें से किसी की भी व्याख्या मैं नहीं कर सका। झेंपा, सकपकाया और बुरी तरह अपने को जलील महसूस किया और उसके बाद एक-एक कर करीब उनकी बीस पुस्तकें पढ़ गया।

कुछ ऐसे होते हैं जो जीवन जीते हैं, लेकिन उनमें भी कुछ ऐसे होते हैं जो जिन्दगी को साथ लिए चलते हैं। इतिहास जिस सच्चाई का नाम है—इतिहास-पुरुष उसकी काल-रेखा होता है। श्मशान की भूमि कभी वीरान नहीं रहती और न तो गंगा का तट ही कभी खाली रहता है। अर्थी का सामान बेचने वालों की दूकानों पर भी लोगों का अनवरत आवागमन बना रहता है। लेकिन किसी-किसी की अर्थी जब उठती है तो लगता है जैसे जमाना उठ गया और किसी-किसी की जब चिता जलती है तो लगता है जैसे युग जल गया।

राजा साहब की अर्थी जमाने का प्रतीक है और उनकी चिता पटना के उस स्वर्णिम युग का—जब कोई न कोई गोष्ठी, मिटिंग, परिचर्चा, जयंती का आयोजन प्रतिदिन होता रहता और उनमें से अधिकांश में राजा साहब अध्यक्ष, उद्घाटनकर्त्ता या प्रमुख वक्ता के रूप में मौजूद रहते। उनका हर वाक्य ऐसा सजीव और सटीक होता था जिसे सुनने के लिए श्रोता लालायित रहते थे।

उनके भाषण का तर्ज भी कुछ और ही था। शुरू करते 'वे विद्वान् पीछे थे, इंसान पहले। वे जमाने की ऐसी तस्वीर थे, जिनमें तवारीख बोलता था।'

हर भाषण में दो-चार शेर-शायरी, जुमले और खरोंच उनकी अपनी खूबी थी। शायद ही किसी में यह प्रतिभा हो। जो वे बोलते थे, वही लिखते थे और जो वे लिखते थे वही बोलते थे।

इधर चार-पाँच वर्षों में प्रायः शिवाजी से मिलने उनके यहाँ जाता था। बरामदे पर ही बिस्तरे पर लेटे हुए या कुर्सी पर बैठे हुए वे मिल जायें और उनका पहला सवाल हो—'क्या टाइम हो रहा है?'

आधे घण्टे, एक घण्टे अगर मैं बैठ जाऊँ तो इस बीच में कम-से-कम ५-६ बार जरूर आते थे यह पूछने कि क्या टाइम हो रहा है। पता नहीं घड़ी की सुइयों से उनको कौनसा अनुराग था या समय की सीमा को लाँघ कर वे आगे बढ़ जाने के लिए बेताब हो रहे थे। जिंदगी उनके लिए कभी भी बया का घोसला नहीं था। वे बुलबुल की तान पर कम ध्यान देते थे। उसके नीड़-निर्माण की ओर उनका ज्यादा ध्यान रहता था।

राजा साहब का नाम प्रेमचन्दकालीन साहित्यकारों की कोटि में आता है। साहित्य का क, ख, ग पढ़ने वाला विद्यार्थी भी इस बात को जानता है कि "कानों में कंगना" हिन्दी प्रारम्भिक कहानियों में है, जिसे लेकर न जाने कितनी चर्चाएँ अब तक हो चुकी हैं। उन्होंने कभी भी अपने जीवन को राजसी व्यामोह में नहीं फँसने दिया, साधना के पथ पर सिद्धि की ओर बराबर वह बढ़ते रहे और जीवन की अन्तिम वेला तक कभी भी उन्होंने उसमें कमी नहीं आने दी।

राजा साहब के नहीं रहने से एक ओर जहाँ हिन्दी-साहित्य की गौरव-गरिमा को क्षति पहुँची है वहाँ दूसरी ओर बिहार ने अपना सबसे बड़ा साहित्यिक रत्न खो दिया है। इतिहास के एक ऐसे काल में उन्होंने अपने जीवन को बोधमण्डित किया था जो क्षण सत्यं, शिवं, सुन्दरं कहा जा सकता है। समाज में और साहित्य में आज व्यक्तित्व का ह्रास हो रहा है।

स्वर्गीय डा० अनुग्रहनारायण सिंह जी की शोकसभा का आयोजन पटना ह्वीलर सीनेट हाल में किया गया था। मुझे जहाँ तक स्मरण है जयप्रकाश जी ने उस शोक-सभा की सदारत की थी और राजा साहब मुख्य वक्ताओं में एक थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि उन्होंने अपने भाषण में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अन्त में एक शेर पढ़ा था—

"हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है,
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदवर पैदा।'

आज मुझे भी राजा साहब के सम्बन्ध में यही बात याद आ रही है।

सियाराम तिवारी
प्राध्यापक, हिंदी, भागलपुर विश्वविद्यालय

राजा जी के लिखने और बोलने की शैली एक थी। उनकी वाग्मिता अद्भुत थी।

राजा साहब के साहित्यिक व्यक्तित्व से प्रभावित मैं अपने हाई स्कूल के दिनों में ही हो गया था। मैं उनके व्यक्तित्व से इतना आकृष्ट था कि उसी समय एक बार हाजीपुर में उनका शुभागमन हुआ और किसी कारण से मैं उनके दर्शन न कर सका तो मुझे बड़ा दुख हुआ था। उस सुयोग के छूटने का दुष्परिणाम यह हुआ कि १९५८ के उत्तरार्द्ध से जब मैं पटने में रहने लगा तभी उनके दर्शन हो पाये। उनसे वार्तालाप का सुअवसर मुझे और देर से

राजा साहब

मिला। १९६४ में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के वार्षिकोत्सव के अवसर पर वज्जिका भाषा और साहित्य पर मेरा निबंध-पाठ होनेवाला था। मंच पर अनेक व्यक्तियों के साथ मैं भी बैठा था। उन्होंने अपने पास के किसी व्यक्ति से मेरा पता लगाया और मुझे अपने पास बुलाकर मुझसे पूछताछ की। जिस आत्मीयता से उन्होंने बातचीत की, उससे मुझे बड़ा आनंद आया। उसी वर्ष के अंत में श्री शैलेश मटियानी मेरे अतिथि बने। पटने में जिन लोगों से वे मिलना चाहते थे, उनमें पहला नाम राजा जी का था। मैंने उनको लेकर राजा जी के बोरिंग रोड स्थित निवास-स्थान पर उनके दर्शन किये। उनकी सरलता, निरभिमानता और आत्मीयता का दूसरी बार साक्षात्कार हुआ।

राजा जी के लिखने और बोलने की शैली एक थी। उनकी वाग्मिता अद्भुत थी। वे श्रोता को मात्र प्रभावित ही नहीं करते थे, वे उसे अपने साथ बहा ले चलते थे। श्रोता को वे एक क्षण के लिए भी विलग नहीं होने देते थे। गद्य में वे कविता के गुण भर देते थे।

उन्हें मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित है।

प्रत्येक काँटे में भी फूल है और हर फूल में परिमल। एक ओर से हमें इस मकरन्द की एक-एक बूँद को बटोर कर हृदय के सनातन राग की मीठी आँच पर उतारना है, दूसरी ओर से मधु-भण्डार को दोनों हाथों से जगत् के कोने-कोने में वितरण करना है।

—राधिकारमण

सियाराम शरण प्रसाद
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, रामेश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

✣

समझ में नहीं आता कि मैं कैसे अपने मन को समझाऊँ। कैसे समझूँ कि नये लेखकों, नयी पीढ़ी को गौरव देनेवाले, छोटे-से-छोटे साहित्यिक को स्नेह-छाया देनेवाले, गांधी भावधारा की जाह्नवी फैलानेवाले अब हमसे दूर, बहुत दूर स्वर्ग में चले गए।

✣

काश ! राजा जी की आयु और लम्बी होती !

जैसे ही आकाशवाणी से सुना कि अब राजा साहब नहीं रहे, तो मेरा हृदय धक् से कर उठा। इधर कुछ दिनों से वे बराबर अस्वस्थ चल रहे थे। भाई उदयराज जी भी पत्र द्वारा उनके स्वास्थ्य की सूचना दे रहे थे। मुझे लगा जैसे किसी क्रूर ने मेरे कलेजे को दो टूक कर दिया हो। आँखों के आगे अंधेरा छा गया। मन सिसक उठा। १९५४ से जिस महान् साहित्यकार की शीतल-छाया का सुख भोग रहा था, वह सुख मेरे सिर से उठ गया। लेकिन, नहीं, मुझे तो लगता है अब भी राजा साहब

कुर्सी पर पाँव फैलाये बैठे हैं। मुझे देखते ही उनकी आँखों से स्नेह की अमृत-बूंदें बरस रही हैं, साहित्य से लेकर परिवार तक का समाचार पूछ रहे हैं। समझ में नहीं आता कि मैं कैसे अपने मन को समझाऊँ। कैसे समझूँ कि नये लेखकों, नयी पीढ़ी को गौरव देनेवाले, छोटे-से-छोटे साहित्यिक को स्नेह-छाया देनेवाले, गाँधी भावधारा की जाह्नवी फैलानेवाले अब हमसे दूर, बहुत दूर स्वर्ग में चले गए। समझ में नहीं आता कि राजा साहब के किस प्रसंग को कहूँ, किस महानता का उल्लेख करूँ, स्नेह की किस अद्वितीय छटा को शब्दों में बाँधने की चेष्टा करूँ। इतनी घनिष्ठता कि अर्थ पहले ध्वनित हो उठते हैं, शब्द पीछे रह जाते हैं। हाँ, राजा साहब, पद्मभूषण डॉ० राजा राधिकारमण सरस्वती के जितने दुलारे थे, साहित्य-जगत् के उतने ही बड़े शिखर थे और व्यक्तित्व के उतने ही धनी थे, महान् थे, गंगा सदृश पावन और सांस्कृतिक पुरुष थे। उनका अभाव मात्र मेरे ही लिए नहीं अपितु हिन्दी-जगत् के लिए, भारतीय समाज के लिए बहुत बड़ी क्षति है।

मेरी आँखों के सामने १९५४ का वह दिन साकार है जब मैं उनके प्रथम साक्षात्कार के लिए पटना, उनके निवास-स्थान पर गया था। उन्होंने मुझसे अत्यन्त प्यार से पूछा था—"क्या—क्या आप ही सियारामशरण हैं? इतनी छोटी उम्र और ऐसी साहित्यिक प्रौढ़ता!" तब मैं लजा गया था। फिर अनुभव किया था, राजा साहब नये लेखकों को उतने ही स्नेह से अपनाते हैं, उसे प्रोत्साहन देते हैं, उसे अपने स्नेह-जल से सींचते हैं। सचमुच, राजा साहब नयी पीढ़ी को स्नेह देनेवाले, उत्साहित करनेवाले महामानव थे।

और, फिर दुःखहरण पुस्तकालय का वार्षिकोत्सव भी मेरी आँखों के सामने उभर आया है। अनेक ख्यातिप्राप्त बुजुर्ग साहित्यिकों के सामने साँवलिया बिहारी लाल वर्मा को टोकते हुए उन्होंने कहा था—"अरे, आप सियाराम शरण प्रसाद को नहीं जानते? इनकी कला की कुशलता पर मुझे नाज़ है। कला उम्र की दासी नहीं होती। इस छोटी उम्र के सियाराम शरण की प्रतिभा मुझे मुग्ध किये विना नहीं रहती।" हाँ, ये ही शब्द उन्होंने सभा में अनेक मान्य अतिथियों, सरकारी अधिकारियों और प्रौढ़ साहित्यिकों के बीच कहे थे—यह नये साहित्यकारों को प्रोत्साहन नहीं तो और क्या था—नई पीढ़ी का स्वागत नहीं तो और क्या था? इतनी उदारता, अपने छोटे लेखकों

को उत्साहित करने की निष्ठा तथा सहृदयता किसी महान् आत्मा में ही तो होती है। आज के इस घोर स्वार्थी, अहंग्रस्त, कुंठा-जर्जर समाज में ऐसी महान् आत्मा विरले ही मिलती है।

गर्मी की वह सन्ध्या भी मेरी आँखों के आगे चलचित्र की तरह साकार है, जब सफेद धोती-कुर्त्ता पहने, गले में चादर लपेटे, हाथों में छड़ी लेकर राजा साहब बोरिंग रोड से कैनाल बोरिंग रोड की ओर मेरे साथ घूमने चल पड़े थे। उनकी रसमयी भाषा, जादूभरी शैली को सुनकर कुछ अपरिचित व्यक्ति भी धीरे-धीरे उनकी वाणी का प्रसाद पाने के लिए उनके पीछे-पीछे चलने लगे थे। सुहृद् संघ के वार्षिकोत्सव में उमड़ती अपार भीड़-राशि का उनका पहला वाक्य ही सुनकर झूम उठना मैं नहीं भूल पाता हूँ। बोरिंग रोड पर पैदल चलते हुए उन्होंने स्पष्ट कहा था—"सियाराम शरण जी, साहित्य साधना है, पवित्र पूजा है। आप हिन्दी के अलावे और कितनी भाषाएँ जानते हैं? मैं तो कहूँगा कि हिन्दी, उर्दू, बंगला, तमिल आदि भाषाओं को सीख लीजिये। उसके साहित्य को भी पढ़िये। मैंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर को पढ़ा तो कुछ पाया ही, खोया नहीं। मैंने गीता, वेद, कुरान, बाइबिल को पढ़ा तो कुछ लिया ही, गँवाया नहीं। मेरी तो राय है कि हिन्दी के हरएक लेखक को देश की अन्य भाषाओं में कम-से-कम एक अवश्य सीख लेनी चाहिए। इससे भावात्मक एकता को शक्ति मिलेगी। हमारे जमाने में साहित्यिक अध्ययन-मनन में रुचि लेते थे। आज कम पढ़ने और अधिक प्रदर्शन करने में लोग विश्वास रखते हैं। लेकिन वही दीप अधिक देर तक अपनी लौ की चमक फैलाता है जिसमें घी रहता है। साहित्य-जगत् में भी वह लेखक ही अधिक सफल होता है जिसमें साधना रूपी घी से प्रतिभा की बाती जलती है।" तो राजा साहब चाटुकारिता पर नहीं साधना पर जोर देते थे। फिर वे मुझे एक केन्द्रीय प्रचार अधिकारी के पास ले गए जहाँ अनेक साहित्यिक वाद-विवाद हुए—किसी अपमान की भावना से नहीं, सीख और शक्ति भरने की भावना से। भला नये लेखकों को ऐसा अभिभावक कहाँ मिल सकता है?

राजा साहब का दरवाजा मेरे लिए सदा खुला था। मैं जब, जिस समय उनके यहाँ गया राजा साहब ने स्नेह से दर्शन दिया—घंटों बातें कीं। साहित्यिक और व्यक्तिगत समस्याएँ मैंने उनके सामने रखीं, उन्होंने अभिभावक की तरह उनका

निराकरण किया। राजा साहब अहम् से मुक्त सच्चे गाँधीवादी थे—साहित्य और व्यक्तित्व दोनों दृष्टियों से। आज साहित्यिकों की बात छोड़िये, छोटे भी अहम् और दर्प से चूर दूसरों के प्रति असहिष्णु बने दीख पड़ते हैं। बात-बात में आत्म-प्रशंसा की बू उनके शब्दों से फूटती है। परन्तु, राजा साहब वास्तव में धन से ही नहीं, मन से भी राजा थे। कोई भी आये, राजा साहब के दर्शन का, खुलकर बातें करने का, सौभाग्य उसे मिल सकता था। गाँधी आन्दोलन में भाग लेनेवाले वे सच्चे अर्थ में राजा थे, महान् आत्मा थे। आज मेरे ऐसे, नयी पीढ़ी के हजारों कवि-लेखक यही अनुभव करते होंगे कि उनका अभिभावक, उनका शुभेच्छु उनसे दूर चला गया। मैं आज छाया-विहीन होकर पूछता हूँ कि है कोई ऐसा सुहृद, है कोई ऐसा पहुँचा हुआ साहित्यकार, ऐसा धनी, जो एक ही प्रकार का स्नेह छोटे-बड़े सभी को पूजा के प्रसाद की तरह निश्छल भाव से देता हो? काश! राजा जी की आयु और लम्बी होती!

धर्म वही है जो हमारी आध्यात्मिक सत्ता को जगाकर हमारे प्राणों में विश्व-वेदना का सुर भर दे और इन्द्रियों के इन्द्रजाल को चीर कर हमें हमारे अन्तर की महत्ता का पता बता दे।

—राधिकारमण

सीतारामशरण रघुनाथ प्रसाद 'प्रेमकला'
अखिल भारतीय रूपकला संघ, पटना

कुछ वर्ष पहले जब मैंने उनको राजा साहब कहते हुए सम्बोधन किया तो उन्होंने मुझसे यों कहा कि मेरे श्री प्रेमकला जी, अब राजा की हैसियत से राधिकारमण नहीं रहा पर हिन्दी-जगत् में कहानी-लेखक के रूप में रहूँगा और भविष्य में भी मुझे लोग याद करते रहेंगे।

श्री राजा साहब

आपने राजवंश में जन्म लेकर एक साधारण व्यक्ति-सा जीवन व्यतीत किया, जिसकी महानता संसार में सर्वत्र विदित है। आप राजा की उपाधि पाते हुए एक उच्चकोटि के हिन्दी कहानी-लेखक और कवि बन गये। आपके गुलिस्ते सुनने के लिए सभी लालायित रहते थे। आप हंस के सदृश चलते हुए जब कभी हिन्दी साहित्य सम्मेलन या श्री रूपकला संकीर्तन सम्मेलन या इन महान् आत्मा श्री रूपकला जी के वार्षिक जन्मोत्सव में विद्वत् समाज में जाते तो लोग देखते ही आनन्द से लोट-पोट हो जाते थे और बड़ी उत्सुकता से श्री राजा साहब के मुखारविन्द की ओर अवलोकन कर उनके वचनामृत को सुनते रहते थे।

जिस प्रकार अमावस्या की रात्रि में चन्द्रमा के बिना सारा नभमंडल और जगत् सूना और अन्धकार हो जाता है वैसे ही भानु-सा मुखड़ा प्राप्त किये हुए मेरे प्रिय राजा के नहीं रहने तथा यम के गृह जाने से सारा हिन्दी-जगत् और सभी प्रेमी के घर अंधकार हो गया है। आप उच्चकोटि के लेखक रहने पर भी मन में कभी मान, अपमान एवं अभिमान को स्थान नहीं देते थे। वे सभी से प्रेम करते थे, यही कारण है कि वे इस जगत् में अपने परिवार में हों या और किसी जगह में सबके प्रेमी बन गये थे। वाह रे राजा साहब ! यही कारण है कि आपका सुस्वागत करने के लिये स्वयं श्री यम महाराज अपने द्वार पर इष्टमित्रों तथा पारषदों के साथ पधारे थे। आप श्रीमान का सजधज से स्वागत ऐसा ही हुआ था जिस प्रकार स्वर्गीय डॉक्टर श्री राजेन्द्र प्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति तथा आचार्य श्री शिवपूजन सहाय जी पद्मभूषण और स्वर्गीय श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार सम्पादक 'कल्याण' और 'कल्पतरु' और संचालक गीताप्रेस का हुआ। आप जैसे प्रभावशाली थे वैसे ही नाम के धनी थे। किसी से मिलने-जुलने में कभी किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं करते थे। क्या अमीर, क्या गरीब आपके सामने एक थे जैसे एक तश्त में मलाई-खोआ और दूसरे तश्त में चने के सत्तू की कदर होती हो। आपने कभी भेद-भाव नहीं रखा। यही कारण है कि आप राम-रहीम, गाँधी टोपी तथा अनेक महान ग्रन्थ और कहानी लिखकर अमर हो गये।

कुछ वर्ष पहले जब मैंने उनको राजा साहब कहते हुए सम्बोधित किया तो उन्होंने मुझसे यों कहा कि मेरे श्री प्रेमकला जी, अब राजा की हैसियत से राधिकारमण नहीं रहा पर हिन्दी-जगत् में कहानी-लेखक के रूप में रहूँगा और भविष्य में भी मुझे लोग याद करते रहेंगे।

आपकी सज्जनता से अनेको विद्वद्जन पाले-पोसे गये हैं जिनकी गणना अनन्य है। आपके परिवार से बहुतों के परिवार का पालन-पोषण होता था।

आप ही के सदृश आपके अनुज भ्राता स्वर्गीय श्री कुमार राजीवरञ्जन प्रसाद सिंह भी थे, जो सभी के प्रेम-भाजन बनते हुए जनता-जनार्दन की अनेक प्रकार से सेवा करते थे। वे बिहार कौंसिल के अध्यक्ष के रूप में थे। आपकी भी ख्याति अनुपम थी।

मेरे प्रिय राजा साहब के दोनों सुपुत्र श्री बालाजी और श्री शिवाजी उसी प्रकार उदार चरित्र वाले हैं जो सदैव अपने चचेरे भाई स्वधन्य श्री कृष्णराज सिंह के साथ सदा परामर्श सब मामलों में करते रहते हैं। एक दूसरे से ऐसा मेल रहता है मानो श्री राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नजी में रहता था।

धन्य है वह परिवार जहाँ स्वजन सनेही का जन्म होता है।

आपने अपने पिता स्वर्गीय श्री राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिन्हा का नाम अनेको प्रकार से उन्नत किया। आपने उनके नाम पर सूर्य्यपुरा (शाहाबाद) अपने जन्म स्थान पर उच्च विद्यालय की स्थापना की और श्री राजराजेश्वरी पुस्तकालय की भी। सहस्रों ज्ञान विज्ञान और अनेकों प्रकार के जहाँ धार्मिक ग्रन्थ रखे, जिसकीख्याति सर्वत्र है।

अब मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मेरे प्रियतम प्राण आपको शान्ति प्रदान करें और आपके तेज के प्रताप से आपके परिवार के सभी लोग, पुत्र, पुत्री, पौत्र, पौत्री सब आनन्द से रहें।

धनी होना और है, आदमी होना और। धनी होना और है, धन्य होना और। हाँ, जो हृदय का धनी है, वही सच्चा धनी है; वही आदमी है, वही धन्य है।

—राधिकारमण

सुरेन्द्र जमुआर
दुजरा, पटना

राजाजी जब कभी किसी तरह की बातें करते, तो उसमें शायरी का रंग जरूर भर देते थे। इससे चित्त बड़ा हरा हो उठता था। वे बोलते थे बड़े सहज ढंग से, किन्तु उनकी बातों से साधुता और विनय की भावना टपकती थी।

साधु प्रकृति के शैलीकार : राजाजी

मुझे जब कभी राजाजी के बोरिंग रोड, पटना स्थित मकान पर जाने का मौका मिलता, तो सबसे पहले राजाजी के दर्शन होते थे। मिलने पर कहते—""घड़ी में कितने बजे हैं ! ठीक समय बताइए। आप कहाँ से आए हैं ? क्या नाम है ?" इस प्रश्न का उत्तर देने के बाद वे बड़े उल्लास के साथ बातें करते थे। 'नई धारा' संपादक और राजाजी के पुत्र श्री उदयराज सिंह से अक्सर मिलता हूँ। साहित्यिक गप्प-शप होती है, कुछ इधर की कुछ उधर की ! उदयराजजी का घरेलू नाम है शिवाजी। राजाजी मिलने पर बड़े मीठे और साफ लहजे में पूछते—'क्या शिवाजी से मिलना चाहते हैं ?' मेरे हाँ, कहने पर वे अन्दर जाकर खुद आवाज लगाते—"शिवाजी ! जमुआर साहेब आइल बाड़न। तोहरा से बात करिहें। बाहर बइठल बाड़न।" और आवाज देकर बाहर बरामदे पर अपने बिछावन पर बैठ जाते और कुशल-क्षेम पूछते। कुछ शेरो-शायरी सुनाते, अपनी आप-बीती से वाकिफ कराते। मिलने पर हमेशा एक बात

अवश्य बोलते थे—शिवजी (आचार्य शिवपूजन सहाय) की ही प्रेरणा से मैंने हिन्दी-जगत् में प्रवेश किया। पहले उर्दू और बंगला में कहानी वगैरह लिखता था।

शिवाजी से मिलने के दौरान राजाजी से अक्सर भेंट हो जाती थी। एक तरह से मैं उनके परिवार का एक छोटा-सा अंग बन गया हूँ। राजाजी जब कभी किसी तरह की बातें करते, तो उसमें शायरी का रंग जरूर भर देते थे इससे चित्त बड़ा हरा हो उठता था। वे बोलते थे बड़े सहज ढंग से, किन्तु उनकी बातों से साधुता और विनय की भावना टपकती थी। विदा लेते समय वे बड़े विनम्र होकर कहते—"जमुआर साहेब, बड़ी मेहरबानी होगी। एक खत लेटर-बॉक्स में छोड़ देंगे।" मैं उनका आदेश बड़ी खुशी से निभाता। मैं उनकी किसी पुस्तक की चर्चा करता कि अमुक पुस्तक नहीं मिली है, तो वे बड़ी खुशी से कहते—"मेरी सारी पुस्तकें शिवाजी से माँग लीजिए। और कुछ लिखिए।"

जनवरी ७१ के तीसरे सप्ताह में समाचारपत्र में उनके गिरने की खबर पढ़कर अत्यंत व्यथा हुई थी। मन में सोचा—बेचारे को बुढ़ापा में कितना भारी कष्ट हुआ! ४ फरवरी ७१ को उनकी पोती यानी शिवाजी की ज्येष्ठ पुत्री की शादी थी। निमंत्रण मिलने पर मैं विवाह-समारोह में गया था, किन्तु राजाजी को न पाकर मन बहुत दुखी था। जाँघ की हड्डी टूटने के कारण वे चल-फिर नहीं सकते थे। उनका इलाज घर पर ही चल रहा था, किन्तु उतनी भीड़-भाड़ में राजाजी से मिलने में असुविधा थी। लगभग शादी के दस दिन बाद शिवाजी से मिला। देखा कि राजाजी शय्या पर अचेत पड़े हैं, मुख से बोली जल्दी निकलती नहीं। उनके निधन के दो सप्ताह पहले फिर शिवाजी से मिला। उस दिन भी यानी १० मार्च ७१ को श्रद्धेय-राजाजी की दशा में सुधार न पाकर बड़ी पीड़ा हुई। घर के एक नौकर को उनकी सेवा में मशगूल देखा। २४ मार्च ७१ को जो होना था, वही हुआ। राजाजी चल बसे, किन्तु याद छोड़ते गए। ६ अप्रैल ७१ को शिवाजी ने अपने स्वर्गवासी पिताजी के श्राद्धकर्म में बुलाया था। शाम ६ बजे पहुँचा था। लगा कि सूर्यपुरा कोठी का एक सजग पहरुआ न जाने, दैनिक नियम के अनुसार, कहाँ टहलने चला गया है! उनकी स्मृति में मेरी श्रद्धा के दो सुमन!!

सुरेश्वर पाठक
सम्पादक—मूल्यांकन, पटना १७

स्व० पद्मभूषण श्री राजा राधिकारमण सिंह की ही अध्यक्षता में बैठक हुई। लगभग पचास हरिजन-सेवक गाँधी जी को तीन ओर से घेर कर बैठ गये, जो राजा साहब के पार्श्व में समासीन थे। गाँधी जी एक-एक कर सभी कार्यकर्त्ताओं से उनकी हरिजन-सेवा के मार्ग में उपस्थित अड़चनों के सबंध में पूछ-ताछ करते और उन्हें दूर करने के उपाय भी साथ-साथ बतलाते जाते थे।

सन् १९३४ की बात है। उसी साल १५ जनवरी को बिहार में प्रलंयकर भूकंप हुआ था और सारा मुंगेर नगर उसके चपेट में पड़ कर विध्वंस हो गया था। मैं उस समय मुंगेर जिला हरिजन-सेवक संघ का मंत्री था। प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ के अध्यक्ष थे हमारे स्वर्गीय राजा साहब और प्रधान मंत्री स्व० विन्ध्येश्वरी प्रसाद वर्मा, जिन्हें हमलोग विन्दा बाबू कहा करते थे।

राजा साहब और गाँधी जी

बिहार के भूकंप-पीड़ित क्षेत्रों की दुर्दशा को स्वयं अपनी आँखों से देखने और पीड़ितों को सान्त्वना प्रदान करने के लिए तपोपूत महात्मा गाँधी, उस समय भूकंप-ग्रस्त क्षेत्रों का परिभ्रमण करने बिहार पधारे थे और पटने में ब्रजकिशोर-पथ पर अवस्थित पीली कोठी में उनका शिविर था।

गाँधी जी इस प्रांत में, हरिजनों की सेवा में संलग्न हरिजन कार्यकर्त्ताओं से मिलकर कुछ बातें करना और उन्हें मार्ग-दर्शन देना चाहते थे। आदेशानुसार विन्दा बाबू ने प्रांतीय हरिजन-सेवक-संघ की कार्य-समिति के सदस्यों और जिला-संघों के मंत्रियों की एक बैठक महात्मा गाँधी के शिविर में बुलवा ली थी।

स्व० पद्मभूषण श्री राजा राधिकारमण सिंह की ही अध्यक्षता में बैठक हुई। लगभग पचास हरिजन-सेवक गाँधी जी को तीन ओर से घेर कर बैठ गये, जो राजा साहब के पार्श्व में समासीन थे। गाँधी जी एक-एक कर सभी कार्यकर्त्ताओं से उनकी हरिजन-सेवा के मार्ग में उपस्थित अड़चनों के संबंध में पूछ-ताछ करते और उन्हें दूर करने के उपाय भी साथ-साथ बतलाते जाते थे। इसी क्रम में राजा साहब ने गाँधी जी से विनम्रतापूर्वक पूछ दिया, "महात्मा जी, यह बात हमलोगों की समझ में नहीं आ रही है कि एक ओर तो हमलोग विद्यार्थियों को सरकारी विद्यालयों से, उन्हें गुलामखाना समझ कर, असहयोग करने का आह्वान करते हैं, मगर दूसरी ओर हरिजन विद्यार्थियों को उन्हीं गुलामखानों में भर्त्ती होने के लिए मात्र प्रोत्साहित ही नहीं करते, बल्कि भर्त्ती करा देने के बाद उनके पढ़ने-लिखने की सारी व्यवस्था भी कर देते हैं। क्यों नहीं हमलोग उन्हें औद्योगिक शिक्षा की ओर उन्मुख होने के लिए प्रोत्साहन दें।"

गाँधी जी ने उत्तर दिया, "राजा साहब, आपका कहना ठीक है किन्तु यदि हम हरिजनों के बच्चों को सरकारी स्कूल-कॉलेजों में भर्त्ती नहीं करावेंगे तो हरिजनों का विश्वास हमलोगों पर से उठ जायगा। उन्हें तो स्वभावतः यह आशंका होगी कि जिस राह पर चल कर बड़े लोग आगे बढ़े हैं, उसे छोड़कर दूसरे मार्ग का अवलम्बन करने का उपदेश वे लोग क्यों दे रहे हैं ? हरिजन चैतन्य तो हैं नहीं, जो हमारी-आपकी इस सूक्ष्म बात को समझ सकें। वे यही समझ बैठेंगे कि हमलोग उन्हें पढ़ाना नहीं चाहते, केवल हरिजन-सेवा का ढोंग फैला रहे हैं। और, यदि हरिजन हमारे प्रति अपना विश्वास खो देंगे, तो उन्हें सुधारने में हमें सफलता नहीं मिलेगी।"

राजा साहब सहित हमलोग गाँधीजी के उत्तर से संतुष्ट हो गये।

सुरेश कुमार
सहायक संपादक, नई धारा, पटना—६

✣

…और इस तरह मेरे लिए इस पितृ-वियोग के साथ-साथ साहित्य के उस सच्चे संत के पितृ-स्नेह के उस लम्बे अध्याय का अंत हो गया, जिसके साये में मैं पला, फला और अब लगता है, बाकी जिंदगी की हर घड़ी मेरे लिए बला बन गई है!…

✣

अध्याय का अंत

"तूं चल जइबऽ त लिखे के हमार उत्स चल जाई।"
"तब हम कभी ना जाइब।"
और मैं कभी न गया।

मगर आज जब वह सदा के लिए चले गए तो लोकाचार की पुकार है कि मुझे कुछ लिखना चाहिए। अब मैं क्या लिखूँ, कैसे लिखूँ? रह गया है भीतर कुछ भी, जो बाहर आ सकेगा? क्या बचा है—बचा है कुछ भी? सब-कुछ तो चला गया। फिर लेखनी इतनी कृतघ्न होगी जो अब भी कोई उत्स उठा पाएगी?

× × ×

१९३४ का प्रलयकारी भूकम्प। दो महीने बाद। मार्च का महीना। अचानक धुन सवार हुई बापू के चरणों में अपने को समर्पित कर देने की। सेवाग्राम की छाया छूने की। पूज्य राजेन्द्र बाबू को लिखा। उन्होंने सदाकत आश्रम में मिलने का आदेश दिया। घर से अस्सी मील पैदल चलकर सदाकत आश्रम पहुँचा। बिहार रिलीफ कमिटी की मीटिंग चल रही थी। जमनालाल बजाज, आचार्य कृपालानी,और जाने कितने नेता जुटे थे। मैंने दूर ही से प्रणाम किया। बाबू बरामदे में निकल आए। महापुरुष के स्नेह से निहाल हो गया। भावना में न बह कर कर्त्तव्य की राह पकड़ने का आदेश मिला। 'नवशक्ति' के सहारे साहित्य और देश की सेवा भी कीजिए, परिवार को सहारा भी दीजिए। और १९३५ में 'नवशक्ति' का प्रकाशन प्रारंभ होते ही बाबू के आदेश से मैं 'नवशक्ति' में जा जुटा।

× × ×

और तीसरे दिन राजा साहब की कार नवशक्ति-कार्यालय के सामने आ लगी। तब स्व० नलिन जी के मकान में 'नवशक्ति' का प्रेस और दफ्तर था।

'शास्त्री जी, दो दिन के लिए सुरेश को छोड़ दीजिए, मुझे कुछ लिखवाना है।'

और स्व० श्री देवव्रत शास्त्री ने मुझे बुलाकर राजा साहब के सामने कर दिया। मैं उनके साथ सूर्यपुरा चला गया।

महीने में तीन-चार बार यही सिलसिला चलता। कभी पटना, कभी सूर्यपुरा।

× × +

उस बार जब सूर्यपूरा से पटना लौटने को हुआ तो रात के ग्यारह बजे राजा साहब से मिलने गया।

"सुबह चल जाइब।"

"तूं चल जइबऽ त लिखे के हमार उत्स चल जाई!"

और उनकी आँखें भर आईं। मुझे इस भावना की कल्पना भी न थी। भला मैं क्या था—किसी उत्स के प्रेरक का तद्भव और तत्सम तो क्या, अपभ्रंश भी तो नहीं! हाँ, यह उनका ममत्व और स्नेह नहीं तो और क्या था?

इस स्नेह-भावना का सामना मैं न कर सका और एकबारगी मुँह से निकल गया—

"तब हम कभी ना जाइब!"

और मैं कभी न गया। हृदय ने कहा—राम के हनुमान बन जा! मन ने कहा—

गाँधी के महादेव बन जा ! क्या बन सकता, क्या बन सका—न हनुमान का तप, न महादेव का ज्ञान। फिर भी एक आस्था उग आई—निरी निष्ठा भी कुछ कम नहीं। एकलव्य ही सही।

× × ×

राजा साहब ने इक्यासी की उम्र में अपना शरीर छोड़ा। इक्यासी की अवधि के इकतालीस साल मेरा उनसे सम्पर्क रहा। इसका आरंभ तब हुआ जब मैं पन्द्रह साल का था और वह चालीस के थे। आज मैं स्वयं छप्पन तक पहुँच गया और उन्हीं के शब्दों में अब तो 'आनेवाले कल को देखना आनेवाले काल को देखना है।'

पाँच साल का भी न हुआ कि मातृहीन हो गया और पचीस साल का भी न था कि पितृहीन बन गया। तबसे इन तीस-इकतीस वर्षों की अवधि तक मेरे लिए माता-पिता सब-कुछ वही रहे। मुझे कभी एहसास भी न हुआ कि मैं पचास पार कर गया—उन्हें देखता और लगता, मैं वही पन्द्रह-का-पन्द्रह हूँ। माता की गोद और पिता का साया—मैंने तो अपने को बराबर बालक ही पाया।

और आज अचानक लगता है—मैं सदियाँ पार कर संसार के सागर के इस पार आ पड़ा हूँ !

× × ×

जमींदारी के झमेलों में सुबह छः बजे से रात के दस बजे तक घिरे-के-घिरे रहते। जाने कितनी पेचीदगियाँ पैतरे बदल-बदल कर आतीं और वह थे कि लगातार सोलह घंटे इस चक्रव्यूह में उलझे रहने के बाद जब एक बार उस राजनीति के अखाड़े से झटक कर निकल आते तो साहित्य-सर्जन की देहरी पर आते-आते लगता उस चकोह का कोई एक असर भी कहीं उनकी काया के आसपास भी न रह गया और तब एक बजे रात तक कहीं 'राम-रहीम' की झाँकियाँ चलतीं, कहीं 'पुरुष और नारी' की गुत्थियाँ सुलझतीं तो कहीं 'टूटा तारा' जमीन-आसमान को एक करता चमक उठता।

यह रोज की बात थी जो हर रात की रात चलती रही। महीने पर महीने बीते, साल पर साल बीते, पर यह तार कभी टूटा नहीं, यह क्रम कभी कटा नहीं। साहित्य के संत की साधना कभी थकी नहीं, कभी रुकी नहीं। कभी थमी नहीं, कभी थथमी नहीं। वह बोलते, मैं लिखता। अखबार के पन्नों, पुस्तकों की जिल्दों और चिठ्ठियों के टुकड़ों पर टँके अक्षर कॉपियों पर उतर आते और एक-पर-एक कहानियों,

उपन्यासों और जाना-सुना-देखा-भाला [illegible]
बिखरे मोती भी सँजोए गए और अंतिम संचय उनके कुछ भाषणों का संकलन बनकर आया जिसे मेरे लिए आँसू का उपहार बनाकर वह मुझे सौंप गए कि 'जिनकी सेवा के सहारे अपनी कितनी कृतियाँ प्रकाश पाती गईं।' और जिसके बाद तो मैं उस अंधकार में पड़ गया हूँ जिसका मैं आरंभ ही देख सका हूँ, अंत तो मेरा अंत ही देखेगा।

× × ×

जब मैं अशोक प्रेस और 'नई धारा' के दायरे में आया तो रात-रात की लिखाई के क्रम में व्यतिक्रम आने लगा। वह चाहते मैं सदा उनके पास रहूँ पर यहाँ तो 'प्रेस' का शब्दार्थ ही है 'दबाना' और इस दबाव से मैं कब-कितना निकल सकूँ? कोई दिन ऐसा न गया जब उनका कोई पुर्जा न आया—'दस मिनट भी आ जा'। कोई ऐसा इधर आनेवाला न हुआ जो उनके यहाँ पहुँचा तो एक पुर्जा उसे न मिला कि यह अशोक प्रेस में सुरेश कुमार को दे दीजिएगा। ऐसा दिन में तीन-तीन चार-चार बार भी हुआ। एक बार तो बोरिंग रोड से बी० एन० कॉलेज आनेवाले एक बन्धु को ऐसा ही एक पुर्जा मिला कि 'रास्ते में' अशोक प्रेस में सुरेश कुमार को देते जाइएगा! कोई भी किसी भी काम से उनके पास पहुँचा तो पहली शर्त्त उसके सामने पेश हुई—सुरेश को ले आइए तो आपका काम हो जाएगा। मैं तो उस काम के लिए बेकाम ही था लेकिन यह उनका तकियाकलाम बन गया था जैसे। चाहते रहे किसी हीले मैं उन तक पहुँच पाता। कभी खत का जवाब जाने में देर हो गई तो दूसरा खत आता—'तूं काहे इतना कठोर हो गइलऽ? अइसन तो कभी ना करत रहऽ?' मुझे कसक हो उठती अपनी बेबसी पर और दिल भर आता उनकी ममता पर। जब जाता तो वे ऐसे खुश होते जैसे कुछ बिछड़ा उन्हें मिल गया। और काम क्या होता—सिर्फ यही कि 'अब फिर कब अइबऽ?' मैं समझ जाता, अपने स्नेह से सींचे बिरवे को माली अपनी आँखों देख-भर लेने का ममत्व बिखेर रहा है। और, मैं इस नेह से निहाल हो जाता।

× × ×

उनका तमाम लगाव एक-एक कर छूटता गया और वह भीतर से अनासक्त होते गए। जमींदारी खत्म होने के बाद उनकी सांसारिक सक्रियता समाप्त-सी हो चली।

वह दिन-रात की भीड़भाड़ छुँट चली। वह राजदरबार का झमेला झिलमिला कर ओझल होने लगा।

दूसरा लगाव अपने अनुज से था। उनके लिए सुख-सुविधा के सामान जुटाने में अपनी हर सुख-सुविधा को भुलाए रहना उनका सबसे बड़ा मनबहलाव था। राम-लक्ष्मण का यह जोड़ा जिस दिन फूट हो गया, उनके मन का ममत्व जैसे टूट गया और उनके अंतर के अंतर से पुस्तक-समर्पण के रूप में वह वाणी फूट पड़ी—

'अपने अनुज राजीवरंजन को,
जो जबसे उठ गए, मेरा दिल बैठ गया !'

उसके बाद उनकी सती-साध्वी पतिपरायणा पत्नी का परलोकवास। जिस पर उनका मुख मौन रहा, आँखों की नमी आँसू का पानी बनने से रुकी रही, पर आंतरिक ममता का आत्मिक बंधन विलीन हो गया।

और, अब तो सब-कुछ के बाद साहित्य ही उनका सब-कुछ रह गया जिसके लिए उन्होंने एक बार नहीं, बार-बार कहा कि—

"अपना तो यही काबा, अपना तो यही हज है।
अपना तो यही काशी, अपना तो यही ब्रज है।"

× × ×

इधर कुछ वर्षों से उन्हें भास गया था कि इस जीवन का अंत अब बहुत दूर नहीं और तब अपनी कृतियों के प्रकाशन की ममता और उत्सुकता में कुछ आतुरता आने लगी। यह अपने कनिष्ठ पुत्र श्री शिवाजी के नाम अँगरेजी में लिखे उनके इस पत्र से स्पष्ट है :—

Garden House
Surajpura
10-5-56

Shivaji,

My health is no longer what it was before. I feel the difference now and I also feel that I am growing weak with the advance of old age. One has to be prepared now for the other world. I want to utilise my money now for the excellent publication of my books—good paper, good binding, good cover

& good publication. Sanjiwan Press or any other Press you know, best. I have finished my book 'चुम्बन और चाँटा' which I am sure will be unique in the literary world. I am anxious to put it in the Press earliest. I shall meet all the expenses. I want you to relieve Suresh for a month or so to help me to see it through. I shall pay his salary for the months he is employed on this task.

I am equally anxious to see Ram-Rahim, Toota Tara, my favourite books published during 1956 at any cost. I want to depute Suresh to see it through and I am willing to send a cheque for Rs. 1000/- or more for the purchase of paper.

The real fact is that now my days are numbered and the only desire that I have now is to see my books well published before I leave particularly those books for which I have got ममता।

I don't wish to spend a pie out of what I have in the Bank on myself or for any comfort of mine except on my book publication. you can show this letter to Balaji & Ranaji. I only hope & pray that you will see this last wish of mine through earliet.

Read this letter carefully & act up to it before it is too late.

R. P. Sinha

'चुम्बन और चाँटा' छपा, राम-रहीम' भी छपा, 'टूटा तारा' भी छपा, और भी कितनी छोटी-बड़ी किताबें छपीं। फिर श्री शिवाजी ने उनकी ग्रंथावली के रूप में उनकी समग्र रचनाओं के क्रमबद्ध प्रकाशन की एक योजना बनाई। इस बीच प्रेस की व्यस्तता और अन्य कई अप्रत्याशित अड़चनों के हुजूम में यह योजना पड़ी-की-पड़ी रह गई और आज हृदय में एक कसक उठ आती है कि इस योजना के कार्यान्वियन का आरंभ वे नहीं देख सके। भविष्य अनुकूल रहा तो इस मनचाही की पूर्त्ति पर उनकी आत्मा को तो अवश्य संतोष होगा।

× × ×

होनी तो होकर रहती है—हाँ, हीला कुछ-न-कुछ निकल ही आता है। चार-चार पाँच-पाँच मील टहलना उनका रोज का रोजमर्रा था। इधर कुछ कमजोरी बढ़ी तो यह फासला कुछ घटता गया, फिर भी यह सिलसिला कभी रुका नहीं। मगर उस दिन सुबह यों ही अपने मकान के मैदान में ही जाने कैसे क्या तरपट पड़ गया और वह

गिर गए। दाहिनी जाँघ की हड्डी टूट गई। डॉक्टर लोगों की राय से पैर प्लास्टर किया गया और वह रोगशय्या पर पड़ गए जो अंततः मृत्युशय्या ही सिद्ध हुई। यहीं से उनके अंत का आरंभ हो गया। एक ही मुद्रा में पड़े-पड़े पीठ और कमर में जख्म हो गए और पीड़ा बहुत बढ़ गई। और यह दुर्घटना कुछ ऐसे बेमौके हुई कि नियति की कठोरता को क्या कहे कोई !

राजा साहब की पौत्री, श्री शिवाजी की पुत्री, मंजरी की शादी के कुल दो सप्ताह बाकी बच गए थे। वैसे तो घर-बाहर सब जगह सभी बच्चों-बच्चियों पर उनका स्नेह अपार था, पर मंजरी के प्रति उनका स्नेह विशेष था और उसकी शादी की बात से उन्हें अंदर-ही-अंदर बड़ी खुशी थी। मंजरी को भी बाबा पर पूरी श्रद्धा थी।

जैसे-जैसे मंजरी की शादी करीब आती गई, राजा साहब की बीमारी बढ़ती गई। चलना-फिरना तो बन्द हो ही गया था, अब जिंदगी के अंत के आसार भी आने लगे। जिस रात हम सभी मंजरी को हल्दी चढ़ा रहे थे, हमारा दिल भर आया था कि आज वह खड़े रहते तो सबसे पहला आशीर्वाद मंजरी उन्हीं का पाती। पर, आज तो उनकी हालत और भी खराब हो गई। और हल्दी की खुशी में एक ऐसी आशंका का पुट पड़ गया कि सबका दिल आधा हो गया।

× × ×

जिस समय मंजरी की बारात दरवाजे लग रही थी उस समय राजा साहब की हिचकी चल रही थी और श्री शिवाजी सहित सारे परिवार को ऐसी हदस और दहशत हो गई कि रंग में भंग की ऐसी अप्रत्याशित आशंका और कहीं क्या होगी ? लड़की की शादी का मामला, वर-पक्ष के लोगों पर क्या प्रतिक्रिया हो—कहीं कुछ हो गया तो ! और, फिर कैसे-क्या कोई कर सकेगा ? सारा हुलास उदास हो गया। मगर शादी तो अब रुक भी कैसे सकती थी ? एक अजीब स्थिति हो गई। राम-राम करते बारात दरवाजे लगी और जल्दी-जल्दी रात के साढ़े आठ बजते-बजते ही सिन्दूर-दान का रस्म पूरा कर दिया गया, तब कहीं जान में जान आई। भला राजा साहब, जिन्होंने अपने सरस साहित्य से कितनों को लहालोट और लोटपोट किया, अपनी प्यारी पौत्री के यज्ञ के योग में कुयोग कैसे आने देते—सब कुछ निभ गया, सब कुछ ठीक हो गया।

और, जब सिन्दूर-दान के बाद मैं उनके दर्शन को गया—यह मान कर कि अब तो यह अंतिम दर्शन ही है, वे एकाएक पूछ बैठे—

"मंजरी चल गइली ?"

मैंने मन-ही-मन परमात्मा को धन्यवाद दिया और कहा—"ना, अभी ना।"

"और मेहमान ?"

"ऊ भी बाड़न ।"

"कब जइहें ?"

"काल्ह ।"

"कितना आदमी बारात आइल बाड़न ?"

"बारह-पंदरह ।"

भरदिन बोलचाल बिलकुल बन्द रहने और हिचकी की हालत से गुजरने के बाद यह वार्त्तालाप ! मैं तो आश्चर्य और आनन्द से अभिभूत हो गया ।

मंजरी ने आकर बाबा को प्रणाम किया, बाबा ने आशीर्वाद दिया और मैंने मन-ही-मन मंजरी का भाग्य सराहा ।

और दूसरे दिन सवेरे वह अखबार पढ़-सुन रहे थे, राजनीति की बातें कर रहे थे ! जहाँ शादी के समय एक-एक पल पहाड़ हो रहा था, वहाँ शादी के करीब पचास दिन बाद तक वह जीवित रहे । मंजरी ससुराल गई भी, फिर आई भी और अंत समय उनके पास भी रही, उन्हें फूल भी चढ़ाया । मैंने देखा, बाबा के उठ जाने से शायद सबसे अधिक शोकाकुल वही थी ।

× × ×

अंत के ठीक दस दिन पहले । शाम को मैं उन्हें देखने गया । उनकी आँखें कमजोर हो गई थीं । पहचान भी लड़खड़ाने लगी थी । मैंने जाकर प्रणाम किया । उन्होंने धीमी आवाज में पूछा—"आप कहाँ से आ रहे हैं ?"

मेरी आँखों में आँसू आ गए । जिंदगी में पहली बार मुझसे वह भोजपुरी में न बोलकर खड़ी बोली में बोले । लगा, मैं उनसे दूर पड़ गया । पर, समझते देर न लगी, उन्होंने मुझे पहचाना नहीं ।

"हम हईं सुरेश !"

और जब उन्होंने दुहराया—'सुरेश ?' तो मैंने देखा, उनकी आँखें भर आई हैं । मेरा दिल भर आया ।

"तोहार कइसन तबीयत बा ?"

जहाँ मैं उनकी तबीयत की बात पूछता, उन्होंने ही मेरी तबीयत का हाल पूछ दिया । पुत्र-पुत्री—अनिल, बिन्दु, मदन, मंजु और पूरे परिवार का समाचार भी पूछ गए ।

"हमार तबीयत त ठीके बा । आपन तबीयत कइसन बा ?"

"हमार कवन, अब दस दिन के…

और वह रुक गए।

"सब ठीक हो जाई।"—मैंने कहा।

"तोहरा कितना रुपया चाहीं ? बतावऽ तो हम इंतजाम कर दीं।"

"हमरा कुछ ना चाहीं। रउआ अच्छा हो जाईं—बस इहे चाहीं।"

फिर लगा, वह डूब गए।

मैं एकटक उनका चेहरा देखता रहा।

"हमरा मुँह पर आपन हाथ रख दऽ।"

मैं कुछ समझ न पाया—यह क्या कह रहे हैं और क्यों कह रहे हैं ? मैं थथम गया।

"तनी आपन हाथ हमरा मुँह पर रख दऽ।"—उन्होंने फिर दुहराया।

अब मैं क्या रुकता ? दो-तीन बार अपनी उँगलियों से उनके होंठों को सहला दिया। वे संतुष्ट हो गए। बोले—"अच्छा, अच्छा !…" लगा, एक बहुत बड़ा इतमीनान उन्हें मिल गया। मैं तो विचलित हो गया। आज भी जब-जब यह दृश्य मन के पटल पर खिंच आता है तो हृदय भर आता है, आँखें तर हो जाती हैं। आखिर यह था क्या ? चालीस साल से ऊपर की आत्मीयता थी जो आज इस रूप में उभर आई या मुझ अभागे को आशीर्वाद का यह अंतिम अनुपम उपक्रम था ? या मुझे इसे याद कर जिंदगी भर रुलाने का यह निठुर नेह ?

× × ×

एक दूसरे दिन गया तो वह अलस्त हो गए थे। श्री शिवाजी की धर्मपत्नी (श्रीमती शीला सिन्हा) उनके सिरहाने बैठी गीता-पाठ कर रही थीं। मेरे पहुँचने पर उन्होंने राजा साहब के कानों के पास झुक कर जोर से कहा—

"सुरेश बाबू आइल बाड़न। कुछ कहे के बा?"

वह चुप।

शीला जी ने पूछा—"सुरेशबाबू से कुछ कहब ?"

उन्होंने 'हाँ'-सूचक सिर हिलाया।

सरयू ड्राइवर ने कह दिया—"किताब लिखवाइब ? राम-रहीम छपवाइब ?"

उन्होंने फिर वैसे ही सिर हिलाया। फिर कुछ नहीं।

मैं लौट आया।

× × ×

मृत्यु के एक दिन पहले।

शाम को मैं अपने छोटे पुत्र मदन के साथ उनके दर्शन को गया। वह शान्त भाव से लेटे थे। गले में घरघराहट उभर आई थी। बेबी (श्री शिवाजी की पत्नी) ने बताया, आज सुबह से ही बोलना बिल्कुल बन्द है। समझते देर न लगी कि अब अंत में देर नहीं।

उनकी कमर का कपड़ा कुछ गंदा हो गया था। 'बेड शोर' का रूप दर्दीला हो गया था। भीतर-ही-भीतर टीस और पीड़ा बेहद थी जिसे वे चुपचाप बर्दाश्त कर रहे थे। बर्दाश्त की उनकी जीवन-भर की साधना अभी भी कमजोर नहीं पड़ी थी। अंत समय तक अपनी बीमारी और व्यथा के बारे में उन्होंने कभी किसी से कोई बात न की। जब पूछा भी गया तो बोले—ठीक है। वह दुख-सुख से परे हो रहे थे।

श्री शिवाजी की पत्नी ने कहा कि इनके कपड़े कैसे साफ किए जायँ? सारे जख्म खोलने पड़ेंगे—पट्टी बदलनी पड़ेगी।

गुप्ता तो उनका हनुमान ही था। चट बोल उठा—"हम सब ठीक कर देब।"

हम लोगों ने उन्हें नीचे उतारा। गुप्ता ने सब गंदगी साफ की। मरहम-पट्टी सब नई बदली। स्वामी की सेवा की प्राचीन परम्परा के संस्कार को साकार किया। बेबी अंत-अंत तक उनकी सेवा में बराबर तत्पर रहीं। उनकी आत्मा का अंतिम आशीर्वाद उन्हें अवश्य फलेगा।

× × ×

ग्यारह बजे रात तक मैं उनके चेहरे पर अपनी अभागी आँखें गड़ाए खड़ा रहा।

एकबारगी मन की आँखों पर एक कॉलिज की मजलिस का एक दृश्य नाच उठा। विद्यार्थियों की भीड़ का वह आलम। एक नेता बोलने को उठे। विद्यार्थियों ने हल्ला मचाया—राजा साहब बोलें! लाख रोकने पर भी कि पहले और कार्यवाही होने दीजिए, राजा साहब जरूर बोलेंगे—लड़के काहे को मानें! आखिर राजा साहब उठे और तालियों की गड़गड़ाहट से सारा वातावरण गूँज उठा। शेरों की फुलझड़ियाँ उनके मुँह से झरती रहीं, लच्छेदार भाषा की चाशनी छनती रही और सारी मजलिस मस्ती में झूमती रही। तालियाँ पिटती रहीं और घंटों का समय मिनटों में सिमटता रहा।

और आज यह दृश्य कि वह मौन निःस्पन्द चुप पड़े हैं! दिल कचोट गया—यह कैसी विचित्र विडम्बना!

× × ×

और वह अंतिम दिन। चौबीस मार्च।

दिन के एक बजे। बनवारी ड्राइवर राणाजी का जीप लेकर आया। राणाजी की माँ की हालत रात खराब थी। उनके लिए आॅक्सीजन आया था। उनकी हालत सम्हल गई। पर, राजा साहब की हालत बिगड़ गई। राणाजी की माँ के लिए आया आॅक्सीजन तबतक राजा साहब को चल रहा था। बनवारी ने कहा—'अस्पताल से आॅक्सीजन लेकर जल्द चलिए। हालत बहुत खराब है।'

रामचन्द्र प्रसाद को साथ लेकर आॅक्सीजन लिये डेढ़ बजते-बजते वहाँ पहुँचा। पर, हमलोगों का पहुँचना और उनके प्राणों का पयान साथ-साथ ही हुआ। आॅक्सीजन की आवश्यकता न पड़ी। सब-कुछ समाप्त हो गया। वह उठ गए। अब कौन कहता उनसे—

'कल तो कहते थे कि बिस्तर से उठा जाता नहीं,
आज दुनिया से भी उठ जाने की ताकत आ गई ?"

जब बेबी ने बताया कि कल दिन-भर कंठ बंद रहने के बाद रात दो बजे एक बार उनके कंठ से अचानक निकला—'सुरेश' और यही आवाज उनकी आखिरी आवाज थी, तो उस रात उनके पास अपने न होने का दुर्भाग्य मेरा दिल कचोट बैठा।

और, इस तरह मेरे लिए इस पितृ-वियोग के साथ-साथ साहित्य के उस सच्चे संत के पितृ-स्नेह के उस लम्बे अध्याय का अंत हो गया, जिसके साये में मैं पला, फला और अब लगता है, बाकी जिंदगी की हर घड़ी मेरे लिए बला बन गई है !

× × ×

उनके उठ जाने की खबर बात-की-बात में चारों ओर फैल गई और शोक की लहर सब ओर दौड़ गई। दर्शनार्थियों का ताँता लग गया।

उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री बालाजी (श्री राजेन्द्र प्रताप सिंह, एम० पी०, राज्य सभा) को दिल्ली फोन किया गया। अग्निदान उन्हें ही देना था। उसी समय केन्द्रीय बजट पेश हुआ था। संसद्भवन में ही उन्हें खबर मिली। मगर इंडियन एयरलाइन्स की हड़ताल चल रही थी। किसी भी तरह वायुयान की व्यवस्था न हो पाई। दो पहर बाद साहु जैन का वायुयान यहाँ से गया पर रात की उड़ान पर पाबन्दियाँ लगी हुई थीं। उधर से वायुयान उन्हें लेकर उस दिन लौट न सका।

शव बर्फ से सुरक्षित रखा गया। वह शांत-सौम्य अनासक्त योगी का प्रसाद-पूर्ण मुखमण्डल सबकी श्रद्धा का उद्वेलक था। अन्त्येष्टि दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दी गई।

× × ×

दूसरे दिन सुबह। राज्यपाल श्री देवकान्त बरुवा का संदेश आया कि वह स्वयं आकर स्वर्गगत राजा साहब के पवित्र चरणों पर फूल चढ़ाना चाहते हैं। और, यहाँ से खबर जाने के बाद वह शीघ्र ही आ पहुँचे। बड़ी श्रद्धा से शव के पैताने दोनों हाथ जोड़ खड़े हुए और देर तक भावभरी गंभीर मुद्रा में राजा साहब के चिरशांत मुख-मण्डल पर दृष्टि लगाए रहे। फिर उन्होंने बताया कि बचपन में जब राजा साहब कलकत्ते में कवीन्द्र रवीन्द्र के मकान के पास-पड़ोस में रहते थे तो उसी मकान के पास-पड़ोस में मेरा परिवार भी रहता था और मैं उसी समय से राजा साहब और उनके साहित्य से परिचित था। बरुवा साहब स्वयं एक सशक्त कवि हैं और हमारे सर्वोच्च शैलीकार, गद्यकवि राजा साहब के संबंध में उनके उद्‌गार ने वहाँ उपस्थित सबको भावविह्वल कर दिया।

तबतक श्री बालाजी भी आ गए। राज्यपाल काफी देर से बैठे थे। फिर श्री बालाजी से बातें कर वह विदा हुए। प्रेस कर्मचारियों के साथ फोरमैन श्री रामवृक्ष सिंह ने आकर सब सामान जुटाया और तब अर्थी अपनी अंतिम यात्रा को चल पड़ी।

वातावरण शोक और करुणा से भर गया जब साहित्य के इस महान् संत के शव को चंदन की चिता पर सुला दिया गया। श्री बालाजी ने अग्निदान दिया और चिता प्रज्वलित हो उठी।

इसी बीच इस कर्मठ कथाकार की अंतिम क्रिया के साथ एक और छोटी करुण कथा जुड़ गई। जब अग्निदान की परिक्रमा करते-करते उनके मुख पर अग्नि रखने को श्री बालाजी रुके तो सहसा उनका दिल सहम गया—एँ, मुख पर आग कैसे रखूँ?—और उनका हाथ थथम गया, वह ठिठक गए। फिर यह भावना कठोर सत्य के सामने झुक गई और उन्होंने अग्नि उनके मुख पर रख दी। जिस मुख से जीवन-भर अमृत का रस-स्रोत ही झरता रहा, उस मुख पर आज आग की लपट दौड़ गई।

सब-कुछ गवाँकर, सब-कुछ लुटाकर रात के सात बजे तक हमलोग अपने-अपने घोंसलों में लौट आए।

× × ×

उस दिन से कई रात नींद नहीं आई। लगता, वह पुकार रहे हैं—सुरेश! और मैं उठ बैठता। आधी सदी के सारे सीन सामने से तैर जाते और दिल उस गहराई में डूब जाता जिसका थाह आज तक किसी ने पाया नहीं।

अब तो लगता है जैसे कुछ बचा ही नहीं अपनी जिंदगी में। एक गरीब को एक राजा का साया मिल गया—शायद यह गलत था। आज यह साया सर से उठ गया तो सब-कुछ सूना-सूना हो गया। सब ओर से सन्नाटा। अब तो आस भी एक त्रास बन गई, साँस भी एक फाँस हो गई। और, दुनिया का छल-छद्म जब मौत का आतंक फैलाने आता है तो यह दिल मचल उठता है—

'उसे डराते हो मौत से क्या,
वह जिंदगी ही से डर चुका है!'

× × ×

वह असीम सागर, अगाध समुंदर थे—मैं तो नमक का पुतला हूँ। अलग से थाह पा सकूँ या थाह पाकर अलग रह सकूँ—दोनों असंभव है। श्रद्धा की अंजलि, भक्ति की आरती क्या दूँ उन्हें? सत्ता का समर्पण भी तो अपने वश की बात नहीं। फिर औपचारिकता का आवरण डालकर उस महान् आत्मा के आगे अपने को बेनकाब करूँ—यह कृत्रिमता कैसी कठोर होगी? यह तो कृतज्ञता नहीं, कृतघ्नता होगी। यह तो श्रद्धा का भी श्राद्ध होगा।

हाँ, उनके उस पार के अस्तित्व के परमात्मा के सम्मुख मेरी समग्र श्रद्धा की भावना की आत्मा उन्ही की वाणी के वरदान को दुहराकर बस करती है कि—

'रहिहौं खड़ी-खड़ी मुख निरखत,
बहिहैं नेनन नीर!'

सांवलिया बिहारी लाल वर्मा
गीताभवन, सीतामढ़ी

सूक्ष्म बातों को भी बड़े रोचक ढंग से बहुत सुहावनी भाषा में व्यक्त करने की उनमें क्षमता थी। उनके लिखने और कहने का ढंग निराला था। निकट सम्पर्क में आने पर उनसे ज्ञात हुआ कि उनके अधिकांश उपन्यासों और कहानियों के कथानक मन गढ़न्त न होकर वास्तविक घटना पर आधारित होते थे। अनेक घटनाओं की पृष्ठभूमि से मुझे अवगत भी कराया।

उपन्यासकारों के सिरमौर राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह

जहाँ तक मुझे स्मरण है बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना १९१९ में हुई और मुंगेर जिला निवासी प्रसिद्ध विद्वान् स्वर्गीय पण्डित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने सभापति का आसन ग्रहण किया। उसी अवसर पर सम्मेलन की नियमावली बनी। अगला अधिवेशन बेतिया में हुआ और उसके सभापति हमारे राजा साहब

निर्वाचित हुए। इस चुनाव पर मुझे आश्चर्य हुआ; क्योंकि राजा साहब की ख्याति तब तक पूर्ण रूप से नहीं फैली थी और लगभग २६-२७ वर्ष के नवयुवक मात्र थे। मैंने समझा कि चूँकि सम्मेलन बाल्यावस्था में है और इसे समृद्धों की सहायता अपेक्षित है अतः संचालकों ने राजा साहब को सभापति निर्वाचित किया। किन्तु, अध्यक्षपद से आपने जो भाषण दिया उसकी प्रशंसा सर्वत्र मुक्तकंठ से हुई और मैं स्वयं विशेष रूप से प्रभावित हुआ। बाद सम्मेलन के कुछ अधिवेशन हुए; किन्तु कहीं उनका दर्शन नहीं हुआ। एम० ए० की परीक्षा पास कर जब १६२१ की जुलाई में मैं पटना कॉलेज का अर्थशास्त्र का अध्यापक हुआ और १६२३ की मई में त्यागपत्र देकर जब मैंने छपरे में वकालत करना आरम्भ किया, हठात् राजा साहब के प्रथम दर्शन और सत्संग का अवसर उपस्थित हुआ।

इसी बीच म्युनिसिपल एक्ट का आमूल परिवर्तन हुआ, जिसके परिणामस्वरूप १६२३ में ही नया चुनाव हुआ और मैं भी सदस्य निर्वाचित हुआ। राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के अग्रज लोकसेवक स्वर्गीय महेन्द्र प्रसाद चेयरमैन निर्वाचित हुए। मैं महेन्द्र बाबू का विश्वासपात्र बन गया था; अतः जब तेलपा (छपरा) और एकवना घाट (शाहबाद) के सम्मिलित घाट की बन्दोबस्ती आरा में हुई, कार्य मेंव्यस्त रहने के कारण महेन्द्र बाबू स्वयं न जा सके और मुझे अपना प्रतिनिधि मनोनीत कर भेजा।

बेतिया सम्मेलन के अवसर पर राजा साहब का फोटो पत्रों में राजसी पोशाक में छपा था। अतः जब मैं बन्दोबस्ती की बैठक में आरा गया और दूसरे दिन राजा साहब के पास जिला बोर्ड के उनके आफिस में पहुँचा तो उनको देखकर अवाक् रह गया। न वदन पर जरी या रेशमी की शेरवानी थी और न कलँगी-पगड़ी; सीधे-सादे वेश में उनके दर्शन हुए। बड़े प्रेम से मिले। न मैंने राजसी रोबदाब देखा और न बड़प्पन की अकड़। पहले तो सन्देह हुआ कि राजा साहब नहीं हैं—उनके सेक्रेटरी हैं, और बाद में राजा साहब आवेंगे। किन्तु १६१६ में सीधे-सादे वेशभूषा में अपने समय के महान् और निर्भीक नेता और राजेन्द्र बाबू के राजनैतिक गुरु स्वर्गीय श्री ब्रजकिशोर प्रसाद को देखकर जो भ्रम हुआ था, उस कारण हम सजग और सचेत रहे।

इस प्रथम भेंट के बाद अनेक वर्षों तक उनसे मिलने का अवसर नहीं मिला।

राजा साहब के सुपुत्र श्री उदयराज सिंह उर्फ शिवा जी के उद्योग से 'नई धारा' का प्रकाशन १९५० से आरम्भ हुआ। स्वर्गीय भाई रामवृक्ष बेनीपुरी के अनुरोध पर उसमें मेरा लेख प्रकाशित होने लगा, तब यदा-कदा राजा साहब का दर्शन होने लगा। इसी बीच राष्ट्रभाषा-परिषद् की स्थापना हुई और राजा साहब के साथ-साथ मैं भी एक सदस्य मनोनीत हुआ। इन्हीं दिनों १९५२ में विधान-परिषद् का सदस्य निर्वाचित हुआ और अगले वर्ष १९५३ में राष्ट्रभाषा-परिषद् से मेरा 'विश्वधर्म-दर्शन' प्रकाशित हुआ और राजा साहब इसके अनन्य प्रशंसक हुए। अनेक बार मिलने का अवसर मिलने लगा। उनकी मुख-मुद्रा, उनका रहन-सहन, उनकी भाषा और उनके निश्छल व्यवहार को मैंने संस्कार सादगी से भरा हुआ पाया। कुछ लोगों के परिचय से प्रथम डर पैदा होता है और बाद में आदर। कुछ कुतूहल पैदा करते हैं और बाद में आकर्षण। कुछ लोग अपने बौद्धिक प्रभाव से चकित करते हैं, किन्तु निकट सम्पर्क में आने पर मालूम पड़ता है कि मामूली प्रवृत्ति के आदमी हैं। राजा साहब को प्रथम बार १९२४ में साधारण वेशभूषा में देखकर उन दिनों की परिपाटी के अनुसार कुतूहल हुआ था किन्तु मैं प्रभावित नहीं हुआ, किन्तु, १९५२ के बाद जैसे-जैसे घनिष्ठता बढ़ती गयी राजा साहब निकट आते गए और बाद तो अपने ही हो गए; जिसके परिणाम-स्वरूप विधान-परिषद् के कार्यकाल की समाप्ति १९६२ में होने के बाद जब-जब पटना जाने का अवसर मिलता रहा कदाचित् ही राजा साहब से मिले बिना रहता नई धारा में प्रायः ३५-३६ उपनिषदों पर मेरे लेख छप चुके हैं। इसके अतिरिक्त मेरे 'समन्वयवादी गीताभाष्य' का कुछ अंश भी छप चुका है। मुझे संतोष है। कि यह सब राजा साहब को पसन्द आया और जब-जब भेंट होती अपना उद्गार प्रगट किए बिना नहीं रहते। लेखों को नई धारा में जब भेजने में विलम्ब होता तो उलाहना भी देते। उपनिषद् सम्बन्धी लेखों को पुस्तकाकार अपनी भूमिका के साथ अशोक प्रेस से प्रकाशित देखने के लिए लालायित रहे। इसके अतिरिक्त 'समन्वयवादी गीताभाष्य' को छपे रूप में देखने के लिए भी उत्सुक रहे। किन्तु अदृष्ट को यह स्वीकार नहीं था। और इन ग्रंथों के मुद्रित होने के पूर्व हमें छोड़ कर चल बसे।

राजा साहब एक उच्चकोटि के साहित्यकार थे। आपका साहित्य मानवता की भावनाओं से भरा पड़ा है। भाषा पर आपका अच्छा अधिकार था। सूक्ष्म बातों को

लिखने और कहने का ढंग निराला था। निकट सम्पर्क में आने पर उनसे ज्ञात हुआ कि उनके अधिकांश उपन्यासों और कहानियों के कथानक मतगढ़न्त न होकर वास्तविक घटना पर आधारित होते थे। अनेक घटनाओं की पृष्ठभूमि से मुझे अवगत भी कराया।

राजा साहब ने बहुत लिखा, राष्ट्रभाषा हिन्दी की बहुत सेवा की। उपन्यास के क्षेत्र में तो अपने को प्रेमचन्द और जयशंकर प्रसाद के कक्ष में ला बैठाया। ऐसे सबल साहित्यकार को पाकर हम गौरवान्वित थे। अतः हिन्दी के इस यशस्वी लेखक और बिहार के साहित्यकारों के सिरमौर, सहृदय मित्र को खोकर आज हम दुःखी हैं। भगवान् से प्रार्थना है कि ऐसे लोकप्रिय महान् साहित्य-महारथी की आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

साहित्य की संजीवनी राष्ट्र की रूह में केवल प्रेरणा ही नहीं भरती, उत्तेजना भी भरती है। जिस काव्य की क्यारी में आजतक रिझावन बाजा बजता रहा, वहाँ अब 'बाजन लगे जुझावन बाजा'! आँसुओं के टपटप नीर और उसाँसों के हौले-हौले समीर की जगह अब क्रान्ति का तूफानी आँधी-पानी झमकना चाहता है।

—राधिकारमण

हरिमोहन झा
रानीघाट क्वार्टर, पटना—६

✠

राजा साहब की शैली भी उनकी कथा-नायिकाओं को तरह मोहक और आकर्षक है। उसमें 'बेला' की सुगंध है, 'बिजली' की छटा है, 'गुलाबी' की रंगत है, 'विनोदिनी' का चुलबुलापन है, चूड़ीवालियों की खनक है। उनकी भाषा भी नारी की तरह एक पहेली है, ऐसी-ऐसी अदाएँ दिखलाती है कि एक-एक अदा पर लाखों दिल फिदा हो जायँ।

✠

सूक्ति-सम्राट् राजा साहब

राजा साहब का नाम सबसे पहले मैंने तब जाना, जब १८ वर्ष का छात्र था। किसी भाषण-प्रतियोगिता में पुरस्कार-स्वरूप कुछ पुस्तकें मुझे मिली थीं। उनमें राजा साहब की 'तरंग' भी थी। वह शायद उनकी उमंग-भरी रस-रंग-लहरी की प्रथम तरंग थी, जिसने उस पीढ़ी के नवयुवकों के हृदय को आप्लावित कर दिया। तभी से मैं राजा साहब का भक्त हो गया। उसके बाद तो उनकी ऐसी रसधाराएँ बहीं, जिनमें संस्कृत की गंगा और उर्दू की यमुना मिलकर एकाकार हो गयीं। उस गंगा-जमुनी में

बुलबुल, शेफालिका और नर्गिस, पंचामृत और अंगूरी का सम्मिश्रण हो गया। शृंगार और भक्ति में चोली-दामन का रिश्ता जुड़ गया। राजा साहब के रस-प्रवाह में 'सर्वं रसमयं जगत्' हो गया।

राजा साहब की शैली भी उनकी कथानायिकाओं की तरह मोहक और आकर्षक है। उसमें 'बेला' की सुगंध है, 'बिजली' की छटा है, 'गुलाबी' की रंगत है, 'विनोदिनी' का चुलबुलापन है, चूड़ीवालियों की खनक है। उनकी भाषा भी नारी की तरह एक पहेली है। ऐसी-ऐसी अदाएँ दिखलाती है कि एक-एक अदा पर लाखों दिल फ़िदा हो जायँ।

राजा साहब की रंगीन तूलिका इंद्रधनुषी करामातें दिखलाती है। वह शब्द-शिल्पी हैं। उनकी नक्काशी और मीनाकारी का जवाब नहीं। उनके तर्जे-बयाँ में कुछ ऐसा अंदाज है, जो जादू का असर रखता है।

राजा साहब के इस जादू का कायल तो मैं बहुत दिनों से था। लेकिन उनके दर्शनों का सौभाग्य बहुत दिन बाद हुआ। विश्वविद्यालय में उनकी अध्यक्षता में एक कवि-सम्मेलन आयोजित किया गया था। उसी में मैंने सर्वप्रथम उनकी भव्य मूर्त्ति देखी। सरसता और सहृदयता से ओत-प्रोत। मुस्कराती आँखें। ओठों पर मीठी मुस्कान। वाणी में मधु की मिठास। और, सादगी का यह हाल जैसे वह साकार होकर इनके गले में लिपट गयी हो शुभ्र खादी की चादर बन कर! उनकी आज्ञा पाकर मैं कुछ पंक्तियाँ सुना रहा था—

> जिंदगी है चंद रोज, चाँदनी लुटाये जा,
> जिंदगी है कीमती, इत्र में बसाये जा।

कविता समाप्त होते ही उन्होंने मुझे गले लगा लिया। यह मेरी कीमती 'सर्टिफिकेट' है, जिसे मैं भावना के इत्र में बसाये हुए हूँ। तबसे मैं उनका कृपापात्र बन गया। अनेक समारोहों में उनके आशीर्वाद प्राप्त हुए। वह मुझे देखते ही मंच पर अपने पास बैठा लेते थे और हास्य-व्यंग्यपूर्ण रचनाएँ सुनाने की फरमाइश करते थे। विनोद-गोष्ठियों में वह मेरे 'सिनेमा-स्तोत्र', 'रेलवे-स्तोत्र', 'शेरे-अस्पताल', 'पाँच फिलासफर', और 'गुलाबी छींटे' सुनकर बहुत खुश होते थे।

एक बार उन्होंने अपने बोरिंग रोड स्थित भवन में मुझे आमंत्रित किया। उन दिनों मेरे खट्टर काका की कुछ विनोद वार्त्ताएँ 'कहानी' या 'धर्मयुग' में छपी थीं। वे उन्हें बहुत पसन्द आई थीं। उन्होंने मुझे देखते ही विनोदपूर्वक कहा— 'आइए, आइए, खट्टर काका!" मैं जब तक बैठूँ, बैठूँ तबतक आगे टेबुल पर रसमलाई का ढेर लग गया। फिर तो घंटों उनके सरस साहित्यालाप का वह 'सावनी समाँ' चला कि रसमलाई भी उसके सामने पानी-पानी हो गयी। चलते समय उन्होंने आदेश दिया—"खट्टर काका को जल्द से जल्द पुस्तकाकार रूप में लाइए।" आज जब खट्टर काका का हिंदी संस्करण निकल रहा है, मेरे मन में एक टीस-सी उठती है। काश, मुझे उनके हाथों में समर्पित करने का सौभाग्य प्राप्त होता! राजा साहब सूक्तियों के बादशाह थे। एक बार मैंने उनके मानसरोवर से चुन-चुन कर सूक्तियों के मोती संकलित किये थे। जिस प्रकार गंगा जी की पूजा गंगाजल से ही होती है, उसी प्रकार उन मोतियों की माला भी उन्हीं को समर्पित की थी। वह लेखमाला 'नई धारा' के कई अंकों में पाठकों को 'रस की चाशनी' चखाती रही। और इसी नाम से राजा साहब के 'बिखरे मोती' में समाविष्ट भी की गयी। उस चाशनी की कुछ बूंदें यहाँ दी जा रही हैं।

राजा साहब की कलम वह जादू की छड़ी है, जो हाथ में पड़ते ही रंग-बिरंगे करिश्मे उगलने लग जाती है। उनकी सूक्तियाँ क्या हैं, आतिशबाजी की फुलझड़ियाँ हैं। कभी मोती झर गए, कभी मोतीचूर बरस गया, कभी इन्द्रधनुष चमका, कभी बिजली कौंध उठी।

बकौल राजा साहब के—

"कलम ही तो है। वह तो जिधर मुड़ती है उधर एक समाँ उठाकर छोड़ती है।" ..."जब मन बँधते-बँधते तार बँध गया, फिर तो वह समाँ बँध गया कि बादल से चले आते हैं मजमूँ मेरे आगे।"

राजा साहब की भाषा आधुनिक रमणी की तरह सजी-सँवरी, कभी शोखी से इठलाती हुई, कभी नजाकत से बल खाती हुई, कभी शालीनता से मुस्कराती हुई, कभी अल्हड़ता से अँगड़ाती हुई, एक-एक पोज पर, एक-एक अदा पर, दिलवालों को नचाती चलती है। वह कभी हिन्दी की बिंदी लगाकर आती है, कभी संस्कृत का सिन्दूर लगाकर, कभी उर्दू का काजल लगाकर। कभी तीनों एक साथ। जब जैसी मन की

माज ! मगर चाहे फ्रौक में फुदकती हो या साड़ी में सिमटी हो या सलवार में शोभती हो, उसकी लुनाई में, उसकी लचक में, अंतर नहीं पड़ता।

राजा साहब के शब्दों में ही कुछ हेर-फेर कर कहा जा सकता है कि उनकी "बात-बात में एक ऐसी लोनी लचक है, सितार की मीड़ की तरह मुलायम, जो बात खत्म होने पर भी मिनटों कान में झंकार देती रहती है।" उनकी भाषा में "कुछ ऐसी शोख दिलकश माधुरी है, कुछ ऐसी कमाल की बारीकी है, जो आँखों में रूह फूँक देती है।" ऐसी बारीकी या तो सूर्यपुरा के राजा शिल्पी में है या फिर सूर्यमन्दिर (कोणार्क) के राजशिल्पी में थी। और जगह तो वह मुहैया होने से रही।

'दुनिया में सखुनवर हैं हरचन्द, मगर इनका
कुछ तर्ज निराला है, अंदाजे बयाँ और!'

राजा साहब शब्द-शिल्प के सम्राट् थे। उनका एक-एक वाक्य शिल्पकला का नमूना है। एक-एक शब्द नगीने की तरह अपनी जगह पर फिट किया हुआ। जरा-सी-खराद, तराश या पालिश कर दी, और मुहावरों के मुँह चमक उठे। मुहरों की तरह ! बिना चमत्कार के तो वह बोलना ही नहीं जानते।

उनकी उपमाएँ ऐसी नमकीन होती हैं कि मद्रासी उपमा (मेवाभरा नमकीन हलुआ) उनका पानी भरे। अब उनकी रंगीन तूलिका की कुछ करामातें देखिए—

"नारी में तो मातदिली है नहीं। वह आग है या बर्फ। शोला है या शबनम। पीयूष है या विष। राग है तो फिर जान दे देगी, विराग है तो फिर जान ले लेगी।"

"माँ के दुलार में मधु की मिठास है, बाप के प्यार में कुनैन की कड़आहट। पत्नी के प्रेम में बोतल के नशे का सरूर है, भाई के स्नेह में शासन का गरूर। मगर बहन का स्नेह ? वह तो अमृत का मेह है।"

"आज वही स्त्री जीवन की प्रिय संगिनी है, जो सोसाइटी में हँस-बोल सके, टेनिस में प्रवीणों को 'लव सेट' दे सके, प्यानो पर टप्पा और ख्याल के सुर छेड़ सके, बॉलरूम में वाल्जो और टैंगो के कदमों पर थिरक सके, टेबुल पर कमाल की मीठी अफसरी कर सके और सिंगार-पटार के बाँकपन से—नाजो अंदाज के निरालेपन से पति के प्राणों में स्पंदन, दोस्तों की आँखों में सिहरन और हमजोली महिलाओं के कलेजे में जलन पैदा कर सके।"

"जब इन्द्रियों की सत्ता शिथिल होने लगती है, तभी इन्द्रिय-दमन का प्रश्न उठता है। जब तक हाजमे के दायरे में पिस्ते की बर्फियाँ खपती रहेंगी तबतक सागू और पपीते की उपयोगिता नहीं सूझती।"

"तरुणी के रूप-रंग की बिल्लौरी चिकनाई पर मन का फिसलना एक साधारण बात है। फर्क यही है कि जवान फिसल कर गिरता भी है तो दामन झाड़कर खड़ा हो जाता है और अधेड़ गिरता है तो कमर टूट जाती है।"

"गीता और गायत्री के जप पर भगाया हुआ जवानी का भूत बुढ़ापे में लौटकर गर्दन टीपता है।"

"आज की जैसी निराली रंगीनियाँ तो हमारी सात पीढ़ियों ने भी न देखी होंगी। लद गये वे दिन जब यह नजरबाजी की तीरंदाजी किसी बाजारी मुहल्ले में ही बिकती रही।"

"वह संगीत-नृत्य, वह छमछनन का नाज-अंदाज, जो कलतक मीनाबाजार के दुतल्ले पर ही कुलाँच ले पाता, आज कल्चर और कला की कुलीनता लिए बाजारी तवायफों के कोठे से उतर आया शरीफों की कोठी में।"

"जो हाथ चोलियों का बंद टटोलता रहा, वह तलवार की मूठ पर क्या जौहर दिखलाएगा ?"

"आज नारी मकान के दालान से निकल कर मैदान में आ गई। वह सहधर्मिणी रहे या न रहे, सहकर्मिणी तो हो गई आज।"

"नारी का हृदय जब पिघलता है तब नवनीत को भी नरमी में मात करता है, लेकिन जब ठिठुरता है, तब बर्फ की चट्टानों से भी कहीं कठोर हो जाता है।"

"प्रियतमा के मुख की दिलासाभरी वाणी से बढ़कर पुरुष के जीवन में दूसरी मृतसंजीवनी नहीं।"

"रस का प्यासा भौंरा कुछ तुलसी की डाल की ओर नहीं झुकता।"

"अकर्मण्यता और आध्यात्मिकता की फेंटी हुई फुलौड़ियाँ ग्राम्य-जीवन के कड़ाह में छनती हैं।"

"आँचल के कोर की प्रत्यंचा से छूटा हुआ तीर कलेजे को चलनी कर डालता है।"

"नैराश्य की भित्ति पर ही तो संन्यास की इमारत खड़ी होती है।"

आँख का जादू अगर दिल पर बोलता है, तो गले का जादू दिल और दिमा
दोनों पर।"

"तारीफ तो वह तवायफ है कि बड़े-बड़ों को भी अपने शीशे में उतार ले पल में। कौन है जो उसके नाज-अंदाज पर, उसके सुरीले रस-संचार पर रीझ नहीं पाता ?"

"साकी की सुराही बदलती है, सुराही की अंगूरी बदलती है, अंगूरी की मस्ती नहीं बदलती।"

राजा साहब चले गये, लेकिन उनकी सूक्तियाँ अमर रहेंगी। उनकी कृतियों और स्मृतियों को अगली पीढ़ियाँ श्रद्धापूर्वक सँजो कर रखेंगी।

बड़े गौर से सुन रहा था जमाना,
तुम्हीं सो गये दास्ताँ कहते कहते।

हमें तो भाव का नशा चाहिए—वह देश की सौंफी में मिले, विदेश की ब्रांडी में मिले, ईरान की अंगूरी में मिले या घर की आसमानी में मिले। और, अगर कहीं सौंफी की सुराही में शीराजी की बूँदें मिल गईं, तो फिर यह मेलजोल कॉकटेल का मजा देगा।

—राधिकारमण
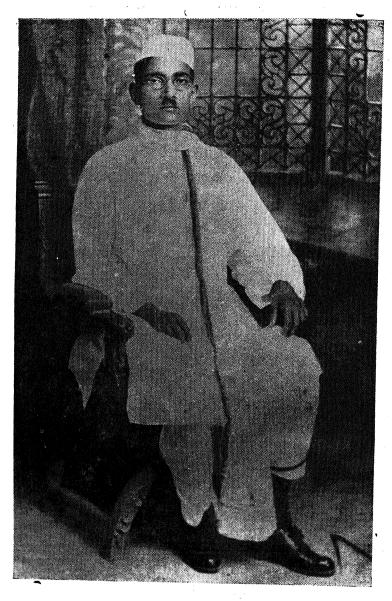
राजा साहब

हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय'
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना

चकाचक जवानी से भीगी दुबली-पतली देह-यष्टि, आग से ढलकर तुरत का निकला छरहरा बदन, धपाधप धोती, अद्धी का सफेद कुरता, गले में लटकती उजली चादर, माथे पर प्रेसर की हुई दुपलिया सफेद टोपी, हाथ में छोटी कमची से लिपटा इत्र का फाहा—सर से पैर तक स्वच्छ-सफेद। राजा साहब का वह छैल-छबीला रूप मेरी आँखों में आजतक बसा हुआ है। उनका यह दृश्य सन् १९२२ ई० का है। उस समय किसी राजा का दर्शन सौभाग्य का सूचक था।

✣

हिन्दी के सुविख्यात उपन्यासकार, कहानी-लेखक तथा नाटककार राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह हिन्दी भाषा के अनोखे शैलीकार भी थे।

संस्कृत, फारसी, उर्दू, बंगला और हिन्दी की पंच प्रकृतियों वाली इनकी भाषा-शैली मन को रसात्मक बनाकर आनन्द-जगत्

एक फकीर राजा और रचनाकार : राजा साहब

में उड़ाये लिये चलती है। लोग उन्हें 'राजा साहब' के नाम से जानते और सम्बोधित करते थे। मेरा जब बचपन था, तब अपने गाँव के पास 'काराकाट' बाजार में सर्वप्रथम उन्हें देखा था। यह बाजार उनकी जमींदारी में था और उसकी व्यवस्था राजा साहब की ओर से होती थी। आज भी यह बाजार राजा साहब के पुत्रों की देख-रेख में लगता है।

काराकाट बाजार मेरे गाँव के पास है और हमारे गाँव के लोग इसी बाजार से अपनी जरूरतों का सौदा करते हैं। उस समय मैं गाँव के लोगों के साथ बाजार घूमने गया था। राजा साहब उस दिन अपनी 'मोटर कार' से काराकाट में आये हुए थे। वे अपनी कार के पास खड़े-खड़े लोगों से बातें कर रहे थे और प्रजाजनों की भीड़ उनके चारों ओर लगी हुई थी। चकाचक जवानी से भीगी दुबली-पतली देहयष्टि, आग से ढलकर तुरत का निकला छरहरा बदन, धपाधप धोती, अद्धी का सफेद कुरता, गले में लटकती उजली चादर, माथे पर प्रेसर की हुई दुपलिया सफेद टोपी, हाथ में छोटी कमची से लिपटा इत्र का फाहा—सर से पैर तक स्वच्छ-सफेद। राजा साहब का वह छैल-छबीला रूप मेरी आँखों में आज तक बसा हुआ है। उनका यह दृश्य सन् १६२२ ई० का है। उस समय किसी राजा का दर्शन सौभाग्य का सूचक था।

दूसरी बार तो राजा साहब के पास में ही बैठने का मुझे मौका मिला, जब उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'राम-रहीम' प्रायः छप गया था। मैं उस उपन्यास की भूमिका लाने 'सूर्यपुरा' गया था। उस समय मैं 'पुस्तक-भण्डार', लहेरियासराय के मासिक पत्र 'बालक' में काम करता था। राजा साहब का 'राम-रहीम' पुस्तक-भण्डार के विद्यापति प्रेस में आचार्य शिवपूजन सहाय जी की देख-रेख में छप रहा था। भूमिका के अभाव में उसका प्रकाशन रुका हुआ था। मैं छुट्टी में अपने घर आ रहा था, तो सहाय जी ने 'सूर्यपुरा' जाकर भूमिका लिखवा लाने के लिए निदेश दिया था।

मैं जब सूर्यपुरा के राज-बँगले में पहुँचा, राजा साहब एक 'बकाइन' के पेड़ के नीचे कुर्सी लगाकर बैठे थे। पेड़ के चारों ओर फूलों और सतह की हुई हरी घास की क्यारियाँ बिछी थीं। जाड़े का का दिन था। धूप खूब मीठी लग रही थी। वे धूप और छाँव—दोनों की गुदगुदी ले रहे थे। सामने की मेज पर कुछ पुस्तकें, कागज के पन्ने, पेंसिल और चाँदी का एक छोटा पनडब्बा रखे हुए थे। बगल में तीन कुर्सियाँ

खाली पड़ी थीं। उनकी बगल में हरी घास की लॉन पर रंग-विरंगे फ्राकों में सजी दो-तीन बच्चियाँ दौड़-धूप का कोई खेल खेल रही थीं।

मैं सूर्यपुरा जाऊँगा, इस सम्बन्ध का एक पत्र शिवपूजन बाबू ने उन्हें पहले ही लिख दिया था। मेरा परिचय जानकर राजा साहब बड़े प्रसन्न हुए। मेरे और सहाय जी के कुशल-मंगल पूछने के बाद यह जानकर बड़े प्रसन्न हुए कि मैं उनके पड़ोस का रहनेवाला हूँ। मैंने अपने आने का उद्देश्य बतलाया, तो वे पहले 'राम-रहीम' कैसे लिखा गया, मन में उपन्यास लिखने की कैसे उमंग जगी, किस प्रकार कठिनाई हुई और फिर प्लाटों के बादल किस प्रकार उमड़-उमड़कर उतरने लगे—सारी बातें बतला गये। मैंने जब भूमिका माँगी, तब हँसने लगे। बोले—यही न भूमिका है! मैं थोड़ा झेंपा। फिर निवेदन किया—यह लिखित चाहिए। कागज-पेंसिल बढ़ाते हुए वे बोलने लगे और मैं लिखने लगा। यह घटना १९३६ ई० की है।

सन् १९४२ ई० की क्रान्ति जब देश में छिड़ी, मैं भी उसकी लपट में आ गया। इसके पहले राजनीति से मुझे घृणा-जैसी थी। पर सन् '४२ ई० की आग से मैं बच नहीं सका। मेरे मन में ऐसी सनक सवार हुई कि "अभी भारत के किसी भी नौजवान को कोई दूसरा काम नहीं करना है। अभी अँगरेजों को देश से निकाल देना ही, एकमात्र काम है। जो ऐसा नहीं सोचता और करता, वह कायर है, देशद्रोही और गद्दार है।"

मेरे सम्बन्ध की यह बात राजा साहब के द्वितीय पुत्र श्री उदयराज सिंह उर्फ शिवाजी को कुछ मालूम हुई। वे इलाहाबाद में पढ़ते थे, अतः क्रान्ति की लपट उन्हें भी छू गई थी। वे पटना आ गये थे। और एक्जीबिसन रोड में अपने एक रिश्तेदार की कोठी में रहने लगे थे। उनके बड़े भाई श्री राजेन्द्र प्रताप सिंह, जो अभी संसद् के सदस्य हैं, अपने व्यापार के सिलसिले में कलकत्ता रहते थे। वे बिहार में क्रांतिकारियों की आर्थिक सहायता कलकत्ता के स्रोत से कर रहे थे, जिसका माध्यम पटना में उनके भाई शिवाजी तथा 'सर्चलाइट' के यशस्वी सम्पादक मुरली मनोहर प्रसाद जी थे। शिवाजी अपने विश्वस्त नवयुवक साथियों के साहाय्य से क्रान्ति की लौ जगाए रखना चाहते थे। उन्होंने जल्दी आकर भेंट करने के लिए मेरे पास लहेरियासराय तार भेजा। मैं तुरत पटना आया और उनसे मिला। पटना में रहकर हमने कुछ

छापामार दस्ता संघटित किया, जिसका सम्बन्ध श्री जयप्रकाश नारायण जी द्वारा संघटित 'आजाद दस्ते' से तुरत ही हो गया।

ये बातें इसलिए लिखी गईं कि इसी माध्यम से मैं प्रसिद्ध उपन्यासकार एवं परम सन्त राजा साहब के अत्यन्त निकट के सम्पर्क में आया; क्योंकि तबतक उनके पुत्र शिवाजी मेरे अत्यन्त विश्वस्त मित्र बन गये थे। ठीक इसी समय राजा साहब को अपने लिए एक 'साहित्यिक सहायक' की आवश्यकता हुई। उन्होंने शिवपूजन बाबू को लिखा कि किसी विश्वस्त सहायक को मेरे साहित्यिक कार्य के लिए दीजिए। इधर शिवपूजन बाबू मेरी बेकारी और छापामार गिरोह में पड़ जाने से बहुत ही चिन्तित थे। वे चाहते थे कि मैं विद्रोही गिरोह से सम्बन्ध विच्छिन्न कर लूँ और कहीं एक जगह रह कर साहित्यिक कार्य करूँ। किन्तु, यह बात उन्हें नहीं मालूम थी कि राजा साहब के पुत्र शिवाजी का भी हमारे गिरोह से सम्बन्ध है। उन्होंने मेरी साहित्यिक गति-विधि की प्रशंसा करते हुए राजा साहब को लिखा और एक पत्र देकर मुझे उनके पास भेज दिया। इस संयोग से मेरी और शिवाजी—दोनों की बाँछें खिल गईं।

मैं लगभग डेढ़ वर्ष राजा साहब के सान्निध्य में रहा। इतने दिनों तक राजा साहब के बाहर और भीतर—दोनों को मैंने अच्छी तरह देखा और समझा। इसी अवधि में बंगाल के दुर्दान्त अकाल पर उनका उपन्यास 'संस्कार' लिखा गया और प्रकाशित भी हुआ। इसी अवधि में कलकत्ता से लखनऊ तक के क्रान्तिकारियों के पास मैं जाता-आता रहा और आजाद दस्ते की बड़ी-से-बड़ी गुप्त बैठकों में भाग लेता रहा। अपने देहात में इन क्रान्तिकारियों का एक गुप्त-सम्मेलन भी कराया, जिसमें निश्चय किया गया कि क्रान्ति की आग पूरी तरह बुझ गई, अतः 'आजाद दस्ता' भंग कर दिया जाय और सारे आर्म्स केन्द्रीय पार्टी के हवाले कर दिये जायँ। इन सारी गतिविधियों में श्री शिवाजी से मुझे आर्थिक सहायता मिलती रही; किन्तु, लौकिक विदेह राजा साहब हमारे इन कारनामों से बिलकुल अनभिज्ञ बने रहे। मेरे सम्बन्ध में तो उन्हें तब मालूम हुआ, जब मैं उनके ही यहाँ २८ दिसम्बर १९४४ ई० को हथियारबन्द पुलिस के द्वारा घेर लिया गया। पर अपने पुत्र शिवाजी के सम्बन्ध में तो कभी कुछ वे जान न पाये।

उस काल से आज तक राजा साहब तथा उनके परिवार का मैं अंग-सा बना रहा। इस अपनत्व के कारण ही उनके 'अशोक प्रेस' को प्रथम-प्रथम मैंने ही बैठाया

और व्यवस्थित किया। कहने के मानी कि तब से उनसे तथा उनके परिवार से बराबर सम्बन्ध जुड़ा रहा और परस्पर सुख-दुःख में सम्मिलित हम होते रहे। इस प्रकार राजा साहब को मैं २७-२८ वर्षों से बहुत निकट से देखता और समझता रहा।

राजा साहब विपुल वैभव के स्वामी थे। वे एक-से-एक विलासी व्यक्तियों के सम्पर्क में भी आये, जिसका निदर्शन हमें 'राम-रहीम' तथा 'चुम्बन और चाँटा' में मिलता है। किन्तु, स्वयं विलास से विरक्त एवं विदेह बने रहे। वैभव, विद्या, विमल वंश, देशव्यापी कीर्त्ति और प्रभुसत्ता—सभी प्राप्त होने पर भी इनमें से किसी का मद या घमण्ड उन्हें छू नहीं सका था। स्वभाव-जनित मत्सरी और ईर्ष्यालु विद्वानों में से वे कभी नहीं रहे। अभिमान को कौन कहे, स्वाभिमान-शून्य वे ऐसे थे, जैसे जान और जीवट से रहित कोई चलता-फिरता और बोलता पुतला हो। उनके सम्पर्क में रहने-वालों को भी उनकी इस निरीहता से गुस्सा आता था। उनके इस व्यवहार से उनके समर्थ परिवार को कभी-कभी दाँत पीस कर खून का घूँट पी लेना पड़ता था। यही कारण था कि हर नादान व्यक्ति—चाहे वह नौकर हो, अमला हो या अफसर हो अथवा गोतिया हो—राजा साहब के आदेश की अवहेलना करता अथवा उनसे गुस्ताखी करता था। बड़े-से-बड़े अपराध पर भी, यहाँ तक कि महल में चोरी करते हुए पकड़े जाने पर भी किसी नौकर को नौकरी से आज तक कभी नहीं निकाला। साहित्य के क्षेत्र में भी जो न तो चार लाइन शुद्ध लिख सकते हैं या न चार वाक्य पंडितों की सभा में बोल सकते हैं, कुछ ऐसे विद्वन्मन्य लोग भी उनकी तौहीनी उनके मुख पर भी कर बैठते थे। राजा साहब उन सारी बातों को देखते-समझते, फिर भी निर्बोध बने रहते थे। ऐसे लोगों के प्रति कभी कोई उनकी शिकायत नहीं; या न कहीं कुछ मन में मैल। बल्कि राजा साहब के मन में ऐसे लोगों की मर्यादा कभी घटने न पाई, कर्म के द्वारा जो सोचना ही फिजूल है। उनके लिए सभी उनसे अधिक वैभवशाली, विद्वान् और प्रभुता-सम्पन्न होते थे। इस युग में इस पृथ्वी पर आज कौन ऐसा राजा और विद्वान् है, मैं तो नहीं जानता।

दूसरी तरफ ठीक इसके विपरीत, उनके छोटे भाई कुमार राजीवरंजन प्रसाद सिंह थे, जो राजा साहब के सामर्थ्य का कुछ पता देते हैं। उनके प्रभुत्व के भय से आदमी को कौन कहे, भूत भी काँपता था। अपने बँगले के आगे जहाँ वे बैठते और उनकी दृष्टि

जहाँ तक जाती, क्या मजाल कि उनकी दूरी में इधर से उधर कोई चहलकदमी कर सके। सभी नौकर और अमले इधर-उधर किनारे में छिप कर रहते और निरन्तर उनके आदेश की पतीक्षा करते रहते। बिना बुलाये, कोई बड़े-से-बड़ा व्यक्ति उनतक पहुँचने की जुर्रत नहीं कर सकता था। सभा-समितियों में कौन ऐसा स्वाभिमानी अफसर या विद्वान् था, जो उनकी बात काटे या उनके विचार के विरोध में कुछ बोले। जीवन पर्यन्त बिहार-कौंसिल ऑफ चेम्बर्स के प्रेसिडेंट रहे और बड़ी शान से रहे। जमींदारी में जिसने सर उठाया, कुमार साहब ने उसका सर कुचलकर रख दिया। इन्हीं के बड़े भाई हमारे राजा साहब थे, जो सूर्यपुराधीश भी थे, जिनके पूर्वकथित निरीह स्वभाव के कारण हमेशा कुमार साहब परेशान रहते थे।

मिथिला के विदेह राजाओं की कहानी पढ़ी और सुनी है; पर साक्षात् विदेह राजा साहब को तो मैंने आँखों से देखा है। उनके कुमारावस्था की बात मैं नहीं जानता; पर चलीसा के बाद वे न तो कभी तोशक पर सोये या न पलंग पर। वे एक पतली कालीन पर हल्की चादर काठ की चौकी पर बिछाते थे। जब प्रेसिडेंट चेम्बर की कोठी में उनके भाई कुमार साहब रहते, तब राजा साहब बाहर मैदान में अपने लिए एक टेंट लगवाते थे। चाहे जेठ की दुपहरी की तेज लू चलती हो या सावन-भादो की काली घटा बरसती हो।

राजा साहब ने कभी किसी नशे का सेवन नहीं किया। यदि पान में जरदा लेना नशा हो, तो यह बात दिगर है। राबड़ी, मलाई, मक्खन, घी या इनसे बनी वस्तुओं पर कभी मन नहीं चलाया। उन्होंने ऊँचे मूल्य वाली विटामिनों को जाना नहीं या न ताकत बढ़ानेवाली कोई इंजक्शन ली। चीनी को वे सफेद जहर कहते थे। हाँ, इसकी जगह देहात से गुड़ की भेली मँगवाते थे। मिठाई के नाम पर पटना के 'देशबन्धु-भंडार' में अपने लिए गुड़ के लड्डू बनवाते थे। विटामिन में वे बारहो मास और तीसो दिन थोड़ी-सी बेल की गुद्दी खाते थे। घर का जमाया गाय का दही उन्हें खूब प्रिय था। बाजार का दही या मिठाई वे छूते नहीं। तली हुई चीजों को वे जली हुई राख कहते। मांस-मछली उनके लिए मनुष्य का भोजन ही नहीं था। आपको ताज्जुब होगा कि उन्होंने इधर चालीस वर्षों से नमक छुआ तक नहीं। ऐसा संयमी 'राजा' खोजने पर भी शायद ही कहीं मिले।

राजा साहब अपने बायें हाथ से लक्ष्मी की और दाहिने हाथ से सरस्वती की

रास थामे रहते थे। दोनों की जोड़ी को सन्तुलित रखने में वे बड़े ही कुशल सारथी थे। फिर भी 'पुरुष पुरातन की बधू' लक्ष्मी का भरोसा उन्हें कभी नहीं रहा। इसीलिए वे बराबर अपनी सन्तानों को भी मितव्ययिता का प्रशिक्षण देते रहे। कौन ऐसा राजा था, जो आज से तीस-चालीस वर्ष पहले अपने पुत्रों को अध्ययन-काल में छात्रावास में रखता हो, चौकी पर सुलाता हो, बिछाने के लिए कम्बल-चादर देता हो और कालेज जाने के लिए साइकिल को पर्याप्त कहता हो। राजा साहब के दोनों पुत्र श्री राजेन्द्र प्रताप सिंह (बालाजी) और उदयराज सिंह (शिवाजी) अपने अध्ययन काल में, इलाहाबाद में, मेस में खाना खाते और पूर्वोक्त रीति से छात्रावास में रहते थे।

राजा साहब और कुमार साहब की जोड़ी राम-लक्ष्मण की जोड़ी थी। राजा साहब अपने छोटे भाई कुमार साहब को 'मुन्ना' कहते थे। बचपन के 'मुन्ना' राजा साहब के बुढ़ापे तक उसी रूप में रहे। राजा साहब की पत्नी मर गईं और उनका शव वहीं पड़ा था। उस दिन राजा साहब ने इतना ही कहा—"दही की बड़ी मेरे लिए अब कोई नहीं बना सकेगा।" फिर भी आँखों से आँसू नहीं टपके। घर में रानी साहिबा के शव को छोड़ कर, प्रतिदिन की तरह, उस दिन भी वे टहलने बाहर गये और टहल कर जब आये, तब शव घर से बाहर निकला। किन्तु, जिस दिन उनके 'मुन्ना' की मृत्यु हो गई थी, उस दिन क्या, सप्ताहों बेजार होकर रोते रहे। उनका स्वास्थ्य ऐसा गिरा, शरीर ऐसा क्षीण हो गया कि लोगों को उनके जीवन पर भी सन्देह हो गया था।

कुमार साहब जब बीमार थे, राजा साहब ने दुनिया के हर कोने से उनके इलाज के लिए दवाएँ मँगवाईं। देखा कि कोई ऐसा प्रसिद्ध डाक्टर नहीं रहा, जिसका परामर्श और इलाज नहीं हुआ। डाक्टरों ने जहाँ कहीं इलाज के लिए भेजने को कहा, सदल-बल राजा साहब ने उन्हें भिजवाया। अर्थात् लाखों रुपयों को पानी बना दिया। इतने पर भी वे अपने 'मुन्ना' को बचा नहीं पाये। मुन्ना की जुदाई का घाव उनके मन में कभी नहीं भरा। कुमार साहब के प्रति उनका प्यार बेमिसाल था। उनकी झिड़की भी सुनते, पर अपने बड़े होने का अधिकार कभी नहीं जताते।

कठोर संयम, नियम-पालन, मितव्यय, सरस्वती का नियमित आराधन, अक्रोध आदि राजा साहब के जीवन जीने की कला थे—उनके जीवन के प्रकृतिगत अंग थे।

उनका दिल अतिशय भावुक, सुकुमार और बच्चे का दिल था। जो उनका अपमान करता, उससे वे तुरत पहले-जैसे ही प्यार से बोलते। वे किसी को नाराज नहीं करते, सबकी सुनते और सबके कल्याण के लिए पैरवी करते थे। फल होता था, कि असफल-मनोरथ कुछ लोग उन्हें मिथ्यावादी कहते थे। अफसोस है कि ये स्वार्थी लोग राजा साहब की सहृदयता, उनकी लाचारी और बेवसी को नहीं समझ सके।

विद्वान् राजा साहब जैसे कलम के धनी थे, वैसे ही वाणी के भी। विद्वानों और विद्यार्थियों की बड़ी-बड़ी सभाओं में जब कभी बोलते, उनकी शेरो-शायरी और मुहावरों की जरी की हुई लहरदार लहँगेवाली वाणी पर लोग झूम उठते, तालियों की गड़गड़ाहट करते और उछलने लगते थे। उनके भाषणों में काव्य की अनोखी घटा घिर आती थी, रस की वर्षा बरसने लगती और रह-रह कर वचोभंगिमा की ऐसी बिजली कौंधती कि मौजों के झकोरों का कभी ताँता टूटता नहीं। आधुनिक सफेद-पोश राजनीतिज्ञों के लिए अपने तरकस से ऐसे-ऐसे व्यंग्य-वाण निकालते कि वे वहीं कट कर रह जाते। उधर श्रोता तालियों पर तालियाँ बजाते। यानी जिस सभा में राजा साहब बोलते, छा जाते; अन्य वक्ता उखड़ जाते थे। नागरी प्रचारिणी सभा, आरा में दिवंगत राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के 'अभिनन्दन-ग्रन्थ-समर्पण-समारोह' में राजा साहब के भाषण से श्रोता ऐसे विमुग्ध हुए और उपस्थित राजनीतिज्ञ ऐसे बिंधे कि बिहार के तत्कालीन मुख्य मंत्री बाबू श्री कृष्णसिंह दिल से उखड़ गये। अन्त में राजेन्द्र बाबू के आग्रह पर बोले भी तो फीके ही रहे, जो अपने भाषण के लिए 'बिहार-केसरी' कहलाते थे।

राजा साहब की स्मरणशक्ति का क्या पूछना था! संस्कृत, बँगला और उर्दू की सैकड़ों पंक्तियाँ उनकी जुबान पर थीं। बात-बात में ऐसे लहजे और शेरो-शायरी की दौर चलाते कि बड़े-बड़े काव्यधुरीण सकते में आ जाते। एक बार हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री जैनेन्द्र जी उनके यहाँ आये। थोड़ी देर बाद साहित्य की चर्चा में बातों की काट भी चली। किन्तु, जब राजा साहब हाजिरजवाबी में तड़ातड़ नहले पर दहला देने लगे और अपनी शेरो-शायरी के धागे पर उनकी उड़ती गुड्डी को पेच खिलाने लगे, तब जैनेन्द्र जी आश्चर्य में पड़ गये। उनकी इस तरह की घटनाएँ अनगिनत हैं, यहाँ कितनी गिनाई जायँ!

राजा साहब की कलम का कमाल देखना हो, समाज का पर्दा उठाना हो, वैभवविलासियों की बेबसी और उनके जीवन की निरीहता देखनी हो, तर्क की तीखी काट सीखनी हो, गरीबों की पीड़ा जाननी हो, गाँधी टोपी और सफेद खादी के कुरते के भीतर के दाग देखने हों ; और इन सब पर भाषा-शैली की बँधती समाँ में सुध-बुध खोनी हो, तो उनके उपन्यासों और नाटकों को पढ़िए। उनके उपन्यासों में न तो समाज के प्रति कोई कटुता है या घृणा और न प्रगतिशीलता के नाम पर बीभत्सता तथा अश्लीलता के बहते नाबदान हैं। पाठकों के मस्तिष्क और हृदय समान रूप से रसग्रहण करते पात्रों के जीवन के साथ द्रवीभूत होकर बढ़ते जाते हैं।

राजा साहब इस युग के वस्तुतः एक राजर्षि रचनाकार थे। उनकी वाणी से अमृत झरता था, जिसमें जीवनी शक्ति होती थी। उनके कर्म-जीवन में संयम-नियम का अनासक्त योग निहित था। उनके हृदय में दया और सहानुभूति का स्रोत भरा हुआ था, जिससे लेखनी के माध्यम से सरस्वती बहती थी। राजा साहब-जैसे युग-पुरुष इस संसार में कभी-कभी आते हैं और कहीं-कहीं मिलते हैं।

हम महज जीने के लिए ही नहीं जीते हैं। जीते तो हैं नाबदान के कीड़े भी। वे भी खाते-पीते हैं—साल में दर्जनों अंडे देते हैं। मगर हम जीते हैं मृत्यु को जीतने के लिए। देह जाती है, हम नहीं जाते। बस, जीवट ही जीवन है।

—राधिकारमण

परिशिष्ट

[विलम्ब से प्राप्त श्रद्धा-सुमन]

अनिल कुमार सिन्हा
अशोक प्रेस, पटना–६

✣

मैं अभागा अंतिम दर्शन भी न कर पाया। …मुझे दादा जी कभी माफ न कर सकेंगे। इस पाप का प्रायश्चित्त तो उसी समय हो सकेगा जब उनकी आत्मा की आवाज को अपनी आवाज बना लूँ, उनके विचारों पर चलूँ। तभी उन्हें शांति मिलेगी और मुझे चैन !

✣

"क्या लिखूँ, कैसे लिखूँ, कुछ तो समझ पाता नहीं।
याद है पल-पल सताती, चैन अब आता नहीं।"

और इस हाल में मैं, उन पर कुछ लिखूँ, जिनका मैं एक छोटा टुकड़ा हूँ ! जिनके इशारे, उम्मीद और पलकों के साये तले मैं पला, बढ़ा, फूला-फला। और, आज महकने-चहकने की चाह में पनप रहा हूँ। इस कोशिश में भी हूँ कि, अपनी इन अधपकी

दादा जी !

पलकों में जहाँ का दुःख-दर्द समेट लूँ। ठीक उसी लकीर पर चलूँ जिस पर मेरे पिता के पिता, दादा राजा साहब चलकर आज आसमाँ में चाँद-सितारों की तरह चमक रहे हैं, चहक रहे हैं और मुस्कुरा कर कह रहे हैं—

"मन्दिर तोड़ो, मस्जिद तोड़ो,
कुछ भी नहीं मुजाका है।
दिल मत तोड़ किसी का पागल,
वह घर खास खुदा का है।"

तभी तो राजा होने के बाद भी सरस्वती का साथ था। उनके दिल में जमाने का दर्द था, जुबाँ पर मिठास थी और आत्मा में..."हवेली और झोपड़ी" थी। जो "पूरब और पच्छिम" एक होने के बाद "सूरदास" को भुला न सकी। अपने "संस्कार" से "धर्म की धुरी" पर अडिग रही, जिसके कारण "देव और दानव" ने "चुम्बन और चाँटा" दिया। "पुरुष और नारी" के बीच "नारी एक पहेली" बनी रही। "अपना-पराया" का ज्ञान न रहा और आसमाँ से उस समय "टूटा तारा" जब मेरे पूज्य दादा जी "राम-रहीम" को प्यारे हो गए।

हमारे परिवार से उनका रिश्ता बहुत पुराना था। मेरे पिता जी (श्री सुरेश कुमार) अपने बचपन ही से उनके साथ थे। या, यों कहिये कि जमाने को प्यार कर सकने के काबिल उन्होंने ही बनाया है। जब भी कुछ लिखने-लिखाने की बात होती तो हर रात पिता जी उनके साथ होते। इन्हें न उनके बगैर चैन था और न ही दादा जी को आराम। दोनों में पिता-पुत्र का सम्बन्ध था, आत्मा से आत्मा का सम्बन्ध था। जब कभी जीवन की नैया दुख-दर्द की भँवर में उलझ जाती, तो वे पतवार बन डूबती नैया को पार लगाते। हर बार पिता जी को समझाते हुए कहते—"सुरेश ! धन-दौलत तो धूप-छाँव है। लेकिन प्यार भगवान की एक नेक देन है। वैसे तो हर इन्सान पागल होता है; कोई धन-दौलत के लिए पागल है तो कोई शोहरत को सीने से लगा लेने के लिए पागल है। कोई कुछ के लिए पागल है तो कोई कुछ के लिए। पर, आसमाँ का एक भी सितारा तो वैसा होना चाहिए जो इन्सानियत के लिए पागल हो। शायद वे लोग नहीं जानते कि—आँख में पानी ही न रहा तो गंगा का पानी क्या तार पायेगा ?"

वे मुझे भी काफी प्यार करते। हर उलझन में शामिल होने की कोशिश करते। मेरे घर वे बराबर आया करते। कभी अपनी पुस्तकों की छपाई के सिलसिले में, और बराबर मेरे पिता जी से मिलने की चाह में। जब पिता जी न मिलते तो मुझे तरह-तरह की बातें समझाते। अपनी लिखी रचनाओं को साफ-साफ लिखने का आदेश देते। वे बोलते रहते, मैं लिखते रहता। जब भी कोई शब्द उन्हें अपने विचारों में अटपट लगता तो झटपट मुझसे और वहाँ उपस्थित किसी भी व्यक्ति से पूछ बैठते। कभी यह नहीं सोचते कि मुझ जैसे विद्वान् को इन लोगों से क्या मदद मिल सकेगी। जब तक वे अपने आप से संतुष्ट नहीं होते, पूछने-पुछाने का काम चलता रहता। मंजिल के आगे ऊँच-नीच का भेद-भाव कभी न रहा।

एक बार की बात है, श्री जयप्रकाश नारायण जी, शाहाबाद जिला के अँधारी गाँव में सर्वोदय सम्मेलन में जानेवाले थे। राजा साहब के सुपुत्र श्री शिवाजी वहाँ के स्वागताध्यक्ष थे। मेरे पिता जी भी जाने के लिए तैयार थे। मैं भी बच्चा था, ललक पड़ा। पटना से सात बजे सुबह ही जाना था। हमलोगों को साढ़े पाँच बजे ही बोरिंग रोड पहुँच जाना था। जब हमलोग वहाँ पहुँचे तो राजा साहब टहलने के लिए तैयार हो रहे थे। उन्हें टहलने व कसरत करने की आदत थी। कोई भी बाधा आ जाने पर भी उस पर कभी आँच नहीं आ सकती। नियम के पक्के थे। बाबू जी तो श्री शिवाजी से बात करने लगे; दादा जी ने मुझे देखा और बोले—

"अनिल! तू भी जात बाड़ का? अभी त जाये में देर बा। चल, टहल आईं जा।"

मैंने एक छोटा-सा "जी" शब्द निकाला और उनके पीछे लग गया। हमलोग बोरिंग रोड ही में टहलने लगे। तरह-तरह की बातें होने लगीं। कभी घर की, कभी बाहर की। वे उन दिनों किसी किताब में उलझे थे। एकाएक बोले—

"हमारा तुम्हारा, तुम्हारा हमारा.
तुम्हारा हमारा, हमारा तुम्हारा?

एकर का मतलब भइल?"

मैं तो भौचक्का रह गया! न कुछ समझ सका, न कुछ सुन सका। दुबारा कहने

पर भी मैं कुछ जवाब न दे सका। इसी बीच आगे का रास्ता खराब था। हमलोग लौटने लगे। तब उन्होंने उसका मतलब बताया—

"जब हमारी चीज तुम्हारी है, तुम्हारी चीज हमारी है, तो फिर यह सवाल क्यों पैदा होता है कि यह चीज तुम्हारी है, यह चीज हमारी है! जब एक ही भगवान के हम सभी संतान हैं तो फिर यह हमारा-तुम्हारा क्या ?"

भला इतना उच्च विचार मेरे तुच्छ दिमाग में कैसे आता!

मैं गोपालगंज (सारण) में था। जब हमारे चाचा श्री 'विकल' जी ने बताया कि राजा जी हमलोगों को अकेले छोड़कर चले गए तो मैं स्तब्ध रह गया। मेरा दिल और दिमाग सुन्न हो गया। उनकी बातों और अपने कानों पर यकीन न हो सका। पर, जब मैंने भी रेडियो पर सुना तो दिल रोने लगा, रो-रो कर कहने लगा—भगवान्! तेरी माया भी अजीब है। तेरा प्यार एक धोखा है। जिसे हम प्यार करते हैं उसे तू क्यों अपने पास बुला लेता है? क्या हमारे प्यार को देख नहीं सकता? जलन होती है? प्यार करना तो तूने ही सिखाया है। हम तेरी बात मानते हैं, फिर तू अपनी मनमानी क्यों करता है? तभी तो मैं अभागा अंतिम दर्शन भी न कर पाया उस पूज्य आत्मा का। हे भगवान्! तू ने मुझे तड़पाया है, तू भी एक दिन मेरी तरह तड़पेगा!

मुझे दादा जी कभी माफ न कर सकेंगे। इस पाप का प्रायश्चित्त तो उसी समय हो सकेगा जब उनकी आत्मा की आवाज को अपनी आवाज बना लूँ; उनके विचारों पर चलूँ। तभी उन्हें शान्ति मिलेगी और मुझे चैन!

शरीर श्रमी हो, मन संयमी और हृदय अनुरागी ; तभी जिंदगी की हर फसल लहलहाती रहेगी निरन्तर।

—राधिकारमण

उपेन्द्र महारथी
गार्डिनर रोड, पटना

राजा साहब इतने संयमी पुरुष थे कि यदि वे दुर्घटनाग्रस्त न होते तो वे और भी दीर्घायु होते। जीवन में कभी भी उन्होंने विदेशी वस्तुओं का व्यवहार नहीं किया। ज्ञात हुआ है कि ४० वर्षों से अधिक काल तक उन्होंने चीनी और नमक का सेवन नहीं किया था। ऐसे ही अद्भुत थे हमारे राजा साहब!

योगिराज राजा साहब

मुझे जहाँ तक स्मरण है १९३७ या ३८ में राजा साहब से पहली बार सूर्यपुरा में मेरी भेंट हुई थी। उनके तथा उनके परिवार की प्रसिद्धि तथा साहित्य प्रेम के विषय में सर्वदा भाई साहब श्री शिवपूजन सहाय तथा हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय' से सुना करता था। राजा साहब से मुलाकात होने के कुछ दिन पूर्व ही सूर्यपुरा हाई स्कूल के प्रधानाध्यपक के द्वारा राजा साहब के पिताजी स्वर्गीय राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह जी की ग्रन्थावली छापने के लिए पाण्डुलिपि पुस्तक भण्डार में भेजी गई थी। उस ग्रन्थ

को सुसज्जित करने का भार मेरे ऊपर दिया गया था। ग्रन्थ के ही विषय में भाई जी (शिवपूजन सहाय जी) से विचार-विमर्श हुआ करता था। उनके परामर्श से ही मैं प्रत्येक दिन अपनी अपरिपक्व बुद्धि से उसे सुन्दर रूप देने का सतत प्रयास किया करता था। सर्वप्रथम पेंसिल से रेखांकित करके मैं भाई जी को दिखला देता था, तत्पश्चात् उसमें रंगों का प्रयोग करता था। इस प्रकार एक-आध मास के पश्चात् पुस्तक कार्य तथा ब्लॉक इत्यादि बनाकर उसे छपाने की व्यवस्था हुई। छप जाने के बाद ग्रन्थ को विशेष वाहक द्वारा राजा साहब के पास भेजा गया। राजा साहब ने उस ग्रन्थ को पसंद कर लिया। फलस्वरूप उनकी 'राम-रहीम' पुस्तक की पाण्डुलिपि भी लहेरियासराय छपने के लिए आई। वह पाण्डुलिपि अत्यन्त विस्तृत थी। छपने के पूर्व भाई जी ने पाण्डुलिपि को देखना प्रारम्भ किया। जिस प्रकार से राजा साहब अपनी धुन में रम जाते थे, उसी प्रकार भाई जी भी रम कर पाण्डुलिपि को पुंखानुपुंख देख जाते थे। तत्पश्चात् उस पुस्तक के छपने का कार्य आरंभ हुआ।

इधर सूर्यपुरा उच्च विद्यालय के लिए राजा साहब के पिता जी के आदमकद तैलचित्र के निर्माण का प्रस्ताव आया। इसी हेतु मुझे सूर्यपुरा जाना पड़ा, मेरे साथ भाई 'सहृदय' जी भी थे। वह वर्षा तथा शरद ऋतु के संगम का काल था। हमलोग हाई स्कूल के एक प्रकोष्ठ में ठहरे। यद्यपि पहले राजमार्ग के समीप की पुष्करिणी के निकट स्थित अतिथिशाला में रहने की बात थी, पर कुछ दूर होने के कारण स्कूल के प्रधानाध्यापक के निकट रहना ही निश्चित हुआ।

दूसरे दिन मुझे राजा साहब के निकट ले जाया गया। मार्ग भर मैं उनकी ही कल्पनाओं में डूबा रहा। मेरे मन में राजा साहब की एक तड़क-भड़क से परिपूर्ण मूर्त्ति की कल्पना थी एवं जिनके समीप मुझे अपनी समस्त तहजीब के साथ पेश होना था। उसके पूर्व मैं दरभंगाधीश से मिल चुका था; अतः उनके अनुरूप ही मैंने राजा साहब की भी कल्पना की थी।

मुझे उनके सिंहद्वार अर्थात् मुख्य प्रवेश द्वार से होते हुए ले जाया गया। दरबार एवं मुख्य भवन से प्राचीनता एवं उनके वैभव की झलक स्पष्ट मिल रही थी। बाद में सुना कि वह भवन राजा साहब के कनिष्ठ भाई के अधिकार में है। एक तरफ बलिष्ठ सुन्दर एवं सुडौल गायें पंक्तिबद्ध होकर चारा खा रही थीं। दूसरी तरफ रमणीक

पुष्पोद्यान था। बायें तरफ एक भवन था, उसी ओर मैं ले जाया गया, मेरे साथ प्रधानाध्यापक एवं सहृदय जी भी थे। दूर से देखा कि सूर्य की प्रखर रोशनी में एक व्यक्ति साधारण-सी चटाई पर लेटे हुए हैं एवं एक बलिष्ठकाय व्यक्ति उनकी देह में तेल मालिश कर रहा है। वहाँ पहुँचते ही मास्टर साहब ने मेरा परिचय उनसे दिया। मैंने भी जान लिया यही राजा साहब हैं; जान लेने के बाद मैंने विनम्रता के साथ उन्हें प्रणाम किया। उस समय मैं एक दुर्बल नवयुवक था, मुझे देखकर कोई भी मेरी योग्यता का विश्वास नहीं कर पाता था।

राजा साहब ने मुझे लक्ष्यकर पूछा—"आप ही महारथी हैं?" तत्पश्चात् उन्होंने मास्टर साहब से मेरे ठहरने के स्थान एवं उचित व्यवस्था के संबंध में प्रश्न पूछे। फिर उन्होंने अपने पिता जी के तैलचित्र के निर्माण के विषय में चर्चा आरंभ की। मैं तो स्वभावतः संकोची था। तैलचित्र की करीबन ८½ फीट ऊँचाई थी। ढाई हजार में बात निश्चित हुई। निर्णय हो जाने के पश्चात् मैंने राजवाटिका का अवलोकन किया। तत्पश्चात् सूर्यपुरा राजा साहब की राजधानी को देखने गया। वहाँ के प्राचीन मंदिरों एवं बड़ी-बड़ी पुष्करिणियों से उस स्थान के अतीत गौरव का भास मिलता था। रजवाड़ा का बाह्य आडम्बर अपनी प्रतिष्ठानुसार ही त्रुटिहीन था। किन्तु, राजा साहब राजा होने पर भी अपने वेश, रहन-सहन एवं आचार-विचार से योगी ही प्रतीत होते थे। उन्होंने राजकार्य का समस्त भार अपने छोटे भाई पर छोड़ रखा था। दरअसल उनके छोटे भाई श्रीराजीवरंजन प्रसाद सिंह जी ही वास्तविक राजा थे। राजाओं की ही भाँति वे राज्य का उपभोग करते थे।

दोनों आदर्श भाई थे। कलियुग में उनके जैसा उदाहरण दुर्लभ है। किन्तु, दोनों भाइयों में आकाश पाताल का अंतर था। राजा साहब ने अग्रज होने पर भी सब कुछ त्याग दिया था। किन्तु, राजा साहब का दरवाजा सबके लिए सदा खुला था। कोई व्यक्ति निस्संकोच भाव से उनसे अपने कष्ट कह सकता था एवं वे अपनी शक्ति के अनुसार सहायता भी करते थे। सबके दुःख को अपना समझकर उसमें दग्ध होना उनकी अपनी विशेषता थी। यदि उनका कोई अपराधी उनके समक्ष जाकर अपना पश्चात्ताप प्रकट करता था तो यह निश्चित था कि वे उसे अभय दान दे देते थे। यदि कभी उन पर क्रोधित होकर कोई नौकर उन्हें अपशब्द भी कह देता था तो वे उस पर कभी

आक्रोश नहीं प्रकट करते थे। बड़ी शांति के साथ निस्तब्ध हो जाते थे। और मौका पड़ने पर उसे समझाते भी थे।

उनकी उदारता की एक घटना मुझे स्मरण आ रही है। उनका एक नौकर अत्यंत उद्दण्ड प्रकृति का था। इस अवगुण के साथ ही उसमें छोटी-मोटी चीजों के अपहरण करने का भी अवगुण था। राजा साहब उसके इस अवगुण को मौन होकर सह जाते थे। एक दिन रानी साहिबा के विवाह के समय की बहुमूल्य एवं सुहाग की अमूल्य निधि स्वरूप साड़ी को उसी नौकर ने अपहृत कर लिया। राजप्रासाद में तहलका मच गया। उस नौकर को पकड़ कर मैनेजर साहब ने पुलिस के हवाले कर दिया। इस संवाद को पाकर उसकी पत्नी ने राजा साहब के समक्ष रोना-पीटना आरम्भ कर दिया। राजा साहब करुणाभिभूत होकर मैनेजर साहब के निकट उसकी पैरवी के लिए गए। "बेचारे के बाल-बच्चे भूखों मर जाएँगे, उसको छोड़ दो।" राजा साहब ने उसे छुड़वा दिया। इस प्रकार का उनका कोमल हृदय था। रुष्ट होना तो जैसे वे जानते ही नहीं थे। इस प्रकार के उदाहरण उनके जीवन में नित्यप्रति घटना के रूप में घटित होते थे।

राजा साहब के छोटे भाई की प्रकृति उनसे सर्वथा विपरीत थी। वास्तव में राज-वैभव का वे ही उपभोग करते थे। छोटे भाई को किसी प्रकार का कष्ट न हो इसके लिए वे उचित-से-उचित प्रबंध करते थे। शासन का भार भी राजा साहब ने छोटे भाई के ऊपर ही दे रखा था

जमींदारी-प्रथा के उन्मूलन के पश्चात् वे पटना के बोरिंग रोड के निवास-स्थान पर अपने कनिष्ठ पुत्र उदयराज सिंह जी (जिनको हमलोग 'शिवाजी' कहते हैं) के साथ रहने लगे।

सौभाग्यवशतः उद्योग विभाग का टैकनिकल विभाग उनके मकान के अत्यंत निकट ही स्थानांतरित कर दिया गया। तब से राजा साहब को नियमित रूप से मैं कभी चटाई पर लिखते-पढ़ते देखा करता था या फिर कुर्सी पर बैठकर अखबार इत्यादि पढ़ते हुए देखा करता था। कभी-कभी जब मैं १० बजे कार्य पर जाता था तब वे मुझसे समय पूछ लिया करते थे। उन दिनों उन्होंने संन्यासी-जैसा रूप धारण कर लिया था। न तो किसी से बात ही करते थे और न किसी वस्तु की इच्छा ही

रखते थे। इतने बड़े रजवाड़े के अधिपति होने पर भी उनके पास अपना कहलाने का कुछ भी नहीं था। न एक घड़ी ही थी; किन्तु, समय की पाबन्दी उनमें परिपूर्ण रूप से थी। समय पर स्नान, समय पर भोजन, समय पर अध्ययन, समय पर भ्रमण, सभी कुछ उनका नियमित था। जब तक वे दुर्घटनाग्रस्त होकर शय्याग्रस्त नहीं हो गए तब तक उनके इस नियमित जीवन में कोई भी व्याघात नहीं पड़ा।

राजा साहब इतने संयमी पुरुष थे कि यदि वे दुर्घटनाग्रस्त न होते तो वे और भी दीर्घायु होते। जीवन में कभी उन्होंने विदेशी वस्तुओं का व्यवहार नहीं किया। ज्ञात हुआ है कि ४० वर्षों से अधिक काल तक उन्होंने चीनी और नमक सेवन नहीं किया था। ऐसे ही अद्भुत थे हमारे राजा साहब !

वे उर्दू, फारसी, हिन्दी के मेधावी विद्वान् तो थे ही, साथ-ही-साथ बंगला भाषा के भी पंडित थे। जब भी उनका व्याख्यान किसी साहित्यिक गोष्ठी में सुना करता था, उनके बोलने के मधुर ढंग से अत्यन्त प्रभावित हो जाता था। तरह-तरह की तुकबन्दियों से वे अपने व्याख्यान में जान डाल देते थे। शायद ही उनके-जैसा शायर कहीं हो। उनकी बातों के बीच-बीच में शायरी की आभा से ऐसा लगता था कि मानो साक्षात् सरस्वती उनकी जिह्वा पर विराजमान हो गई हैं। अब तो ऐसा लगता है कि राजा साहब के बाद साहित्य का एक प्राचीन एवं अत्यंत दृढ़ स्तम्भ टूट गया, जिसकी पूर्त्ति शायद कभी न हो सके।

राजा साहब उन व्यक्तियों में से थे जिन पर लक्ष्मी और सरस्वती दोनों की अनुकम्पा थी। जिसके बल पर ही वे एक अद्वितीय साहित्यिक संस्थान (अशोक प्रेस) की स्थापना करने में सक्षम हुए थे। साथ ही "नई धारा" नामक मासिक पत्रिका को जन्म देकर उन्होंने हिन्दी-जगत् को गौरवान्वित किया है।

राम से नसीब माँगने के पहले अपनी आत्मा से बल माँगो। किसी देवता का आशीर्वाद ढूँढ़ने के पहले अपने दिल में दिमाग ढूँढ़ो। —राधिकारमण

उमानाथ

निदेशक, पर्यटन विभाग, बिहार-सरकार, पटना

✠

राजा साहब का पार्थिव व्यक्तित्व अब हमारे बीच नहीं है। किन्तु, अपने असाधारण त्याग और तपस्यामय जीवन में, उन्होंने जिन उच्च, उत्प्रेरक आदर्शों को व्यावहारिक रूप से प्रतिपादित किया था वे हमारे मार्गदर्शन के लिए नित्यशः सुलभ हैं।

✠

अमिट स्मृतियाँ

जिस व्यक्ति के प्रति हमारा अनुराग बद्धमूल होता है, उसके अभाव में, उसकी स्मृतियाँ स्वभावतः हमारे मन में मूक व्यथा एवं अव्यक्त कातरता उत्पन्न करती हैं। राजा साहब अब हमारे बीच नहीं हैं। वे सदा के लिए हमसे अलग हो गए हैं। अतः उनके महान् एवं मनमोहक व्यक्तित्व तथा सुदीर्घ सेवा और साधनामय जीवन की अनेक अमिट स्मृतियाँ आज हमारे अन्तस्तल को उद्वेलित कर रही हैं!

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जन्म और नाम से 'राजा' भले हों; किन्तु, गुण और कर्म से वे एक सच्चे साधक और मनस्वी थे। निरन्तर साठ वर्षों की अपनी

अप्रतिम साहित्य-साधना एवं अनुपम लोकसेवाव्रत के माध्यम से उन्होंने हमारे साहित्य, समाज और राष्ट्र की जो अमूल्य सेवाएँ की थीं, वे सर्वथा अतुलनीय एवं अनिर्वचनीय हैं !

राजा साहब के प्रथम दर्शन का सौभाग्य मुझे, आज से प्रायः ३४ वर्ष पूर्व, १९३७ ई० में, आरा-नगर में आयोजित बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पन्द्रहवें अधिवेशन के अवसर हुआ था । मैं हिन्दी-साहित्य-परिषद्, छपरा के प्रतिनिधि के रूप में उक्त अधिवेशन में सम्मिलित हुआ था । वहीं, हिन्दीभूषण शिवपूजन सहाय से भी मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ था । सम्मेलन का वह अधिवेशन अनेक दृष्टियों से अभूतपूर्व एवं महत्त्वपूर्ण था ।

राजा साहब ने, उक्त अधिवेशन में दिए गए अपने सुललित स्वागत-भाषण के क्रममें, हिन्दी-उर्दू विवाद की जटिल समस्या के सम्बन्ध में, जो निगूढ़ समीक्षात्मक विवेचन अपनी अनूठी चित्ताकर्षक शैली में किया था, उसकी सुखद छाप आज भी हमारे स्मृतिपट पर अंकित है । हिन्दी और उर्दू के अनेक मान्य कवियों की रचनाओं से बहुसंख्यक उद्धरण देकर, उन्होंने निर्विवाद रूप से यह प्रतिपादित किया था कि, वस्तुतः, हिन्दी और उर्दू, दोनों ही एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं; अतः उनके बीच विषाक्त संघर्ष अथवा प्रतिद्वन्द्विता की कोई संभावना नहीं है ।

१९३८ ई० में, छपरा में राजेन्द्र कॉलेज की स्थापना होने पर, उसकी शासन-समिति के सदस्य के रूप में मुझे, पटना विश्वविद्यालय से उक्त कॉलेज की मान्यता प्राप्त करने के प्रसंग में, राजा साहब से बहुधा मिलने का अवसर प्राप्त हुआ । मुझे यह जानकर साश्चर्य आनन्द का अनुभव हुआ कि राजा साहब न केवल एक महान् साहित्य-स्रष्टा थे, बल्कि एक अनुभवी एवं मर्मज्ञ शिक्षाशास्त्री भी थे । उन्होंने न केवल हमारे पवित्र विद्यामन्दिर की स्थापना में अपने सत्परामर्श एवं सक्रिय समर्थन के द्वारा हमारा उत्साह-वर्द्धन किया ; बल्कि स्वयं निर्धारित शुल्क देकर राजेन्द्र-कॉलेज-परिषद् की आजीवन सदस्यता भी स्वीकार की थी । इससे उनके उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण तथा प्रगाढ़ शिक्षाप्रेम का सहज ही बोध होता है । पटना विश्वविद्यालय की विभिन्न समितियों के प्रमुख सदस्य के रूप में राजा साहब ने वर्षों तक बिहार में उच्चशिक्षा के विकास में सक्रिय योगदान दिया था ।

१९५२ ई० में, स्वर्गीय श्री श्यामनन्दन सहाय की अध्यक्षता में, बिहार विश्व-विद्यालय की स्थापना होने पर, राजा साहब बिहार-हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के प्रति-निधि के रूप में विश्वविद्यालय-अधिषद् (सिनेट) के सदस्य मनोनीत हुए। उस समय, देश के अन्यान्य हिन्दी-भाषी राज्यों के सदृश, बिहार के विश्वविद्यालयों में भी शिक्षा और परीक्षा के माध्यम के रूप में देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी भाषा को मान्यता देने का प्रश्न विचाराधीन था। बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से हमने यह माँग की थी कि हिन्दीभाषी छात्रों के लिए, शिक्षा और परीक्षा के माध्यम के रूप में देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी-भाषा के व्यवहार की सुविधा के अतिरिक्त, स्नातक-स्तर तक की कक्षाओं में अंगरेजी की तरह हिन्दी का अध्ययन भी विश्वविद्यालय के सभी छात्रों के लिए अनिवार्य होना चाहिए। इस प्रश्न पर जो विवाद उत्पन्न हुआ उसके क्रम में बहुत से अंगरेजी-प्रेमी वरीय शिक्षाशास्त्री, उर्दू, बंगला और उड़िया भाषाभाषी छात्रों की कठिनाइयों का बहाना बनाकर, हिन्दी के विरुद्ध हो गए। वर्षों तक विचार-संघर्ष चलता रहा। उक्त अवधि में मुझे भी सम्मेलन की ओर से बिहार विश्वविद्यालय और पटना विश्वविद्यालय में प्रतिनिधित्व करने का अवसर मिला था। इस प्रसंग में हमने जो व्यापक आन्दोलन चलाया था, उसकी सफलता में राजा साहब का योगदान महत्त्वपूर्ण था। फलतः, हमारी विजय हुई। बिहार विश्वविद्यालय में, स्नातकस्तर तक की कक्षाओं के सभी छात्रों के लिए, 'राष्ट्रभाषा' के रूप में देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी भाषा का अध्ययन अनिवार्य हो गया। कुछ काल बाद पटना विश्वविद्यालय ने भी इस नीति का अनुसरण किया!

१९५० ई० में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् की स्थापना होने पर, परिषद् के संचालक-मंडल और सामान्य समिति के सदस्य के रूप में, प्रायः १० वर्ष तक मुझे राजा साहब के निकटस्थ सहयोगी के रूप में कार्य करने का शुभावसर मिला था। उपर्युक्त लम्बी अवधि में, अनेक महत्त्वपूर्ण एवं विवादग्रस्त प्रश्नों पर राजा साहब के साथ विचार-विमर्श करने तथा परिषद् की ओर से सम्मिलित रूप से समुचित निर्णय करने का जो व्यावहारिक अनुभव मुझे हुआ, उसके आधार पर मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि राजा साहब सदैव न्याय और औचित्य का समर्थन सहज भाव से करते

थे। राजकीय उच्चाधिकारी भी उनके निष्पक्ष विचारों का आदर करते थे और उनके व्यक्तिगत प्रभाव के समक्ष सहर्ष झुकते थे।

१९२० ई० में बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के द्वितीय वार्षिक अधिवेशन (बेतिया) का अध्यक्ष निर्वाचित होने के कारण राजा साहब निरन्तर ५० वर्ष तक सम्मेलन की स्थायी समिति के आजीवन सदस्य रहे। लगभग ३३ वर्ष तक मुझे भी उनके साथ सम्मेलन की स्थायी समिति के सदस्य के रूप में और प्रायः १७ वर्ष तक सम्मेलन के पदाधिकारी के रूप में कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। जो लोग सम्मेलन के इतिवृत्त से परिचित हैं, उन्हें यह सुविदित है कि अपने लम्बे जीवन-काल में सम्मेलन को विविध प्रकार के संकटों का सामना करना पड़ा है और, समय-समय पर, उसके सदस्य एवं संचालकगण पारस्परिक मनोमालिन्य एवं दुर्द्धर्ष संघर्ष के शिकार होते रहे हैं। किन्तु, ऐसी विषम परिस्थितियों में भी, राजा साहब अपने उदार एवं निष्पक्ष व्यवहार के फलस्वरूप सदैव उभय पक्ष के विश्वासभाजन बने रहे और अपने स्नेहपूर्ण सद्भाव के बल से सम्मेलन की हितसिद्धि में सतत संलग्न रहे!

राजा साहब का पार्थिव व्यक्तित्व अब हमारे बीच नहीं है। किन्तु, अपने असाधारण त्याग और तपस्यामय जीवन में, उन्होंने जिन उच्च, उत्प्रेरक आदर्शों को व्यावहारिक रूप से प्रतिपादित किया था; वे हमारे मार्गदर्शन के लिए नित्यशः सुलभ हैं। निस्संदेह, हम उन आदर्शों को अपना कर, आत्मविकास के साथ-साथ, लोक-कल्याण का आयोजन सुगमतापूर्वक कर सकते हैं। पूज्य राजा साहब के प्रति हमारी यही सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी!

प्रतिभा की किरण जिन शब्दों के जाल पर पड़ेगी उसी को रौशन कर देगी। लेखक जब दिल के लहू से लिखता है, तो वह कागज का टुकड़ा भी रूह की फूँक पर बोल उठता है।

—राधिकारमण

क्षेमचन्द्र 'सुमन'
अजयनिवास, दिलशाद कॉलोनी, शाहदरा, दिल्ली

"हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पै रोती है,
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदवर पैदा।"

राजा जी ऐसे ही 'दीदवर' थे कि जिनसे हिन्दी का चमन गुलजार और सरसब्ज था। वे अपनी अनूठी शैली के लिए सदा-सर्वदा याद किये जायेंगे।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह हिन्दी में सर्वथा अनूठी शैली के प्रवर्त्तक थे। उनकी भाषा इतनी सरल तथा सहज है कि उससे उनके व्यक्तित्व की सजीवता बरबस हृदय में घर कर जाती है। उन्होंने हिन्दी की विविध विधाओं में इतना लिखा है कि उसे देखकर और सुनकर ही आश्चर्य होता है; पढ़कर तो बरबस उनकी कलम का कायल हो जाना पड़ता है। शब्दों का चुनाव,

अनूठी शैली के प्रवर्त्तक राजा जी

भाषा का गुम्फन और भावों की सहज अभिव्यक्ति उनकी अपनी [illegible]
जो कदाचित् हिन्दी के किसी दूसरे लेखक की कृतियों में कठिनाई से ही मिलेंगी।

एक सम्पन्न परिवार में जन्म लेकर राजा साहब सरस्वती-समाराधन में ऐसे लीन हुए कि उन्होंने अपनी प्रतिभा तथा योग्यता के अनुरूप अनेक ऐसी कृतियाँ साहित्य को समर्पित कीं कि जिनका स्थान भाषा, भाव, शैली, कथानक आदि सभी दृष्टियों से सर्वथा अनुपम और पांक्तेय है। क्या उपन्यास, क्या कहानी, क्या नाटक और क्या संस्मरण—सभी विधाएँ जैसे उनकी पारस लेखनी का पारस पाकर कृतार्थ हो गईं। जीवन की जटिल-से-जटिल समस्याओं का समाधान राजा साहब ने अपनी प्रखर प्रतिभा से इस प्रकार प्रस्तुत किया है, जैसे उन सब कठिनाइयों और समस्याओं में उन्होंने अपने जीवन को ही जिया हो। यही किसी लेखक या कलाकार की कला की चरम सार्थकता है।

इतनी बहुविध अनुभूतियों का चित्रण उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है कि देखकर आश्चर्य होता है। सब प्रकार से सम्पन्न और सुखी जीवन जीने का अभ्यासी राजा साहब का व्यक्तित्व किस प्रकार जन-साधारण के अभावों और कष्टों का अनुभव करता है यह भी उनके व्यक्तित्व का एक ज्वलन्त पक्ष है। सहज फुदकती भाषा, चलचित्र की भाँति आँखों के आगे एक के बाद एक तैरनेवाले स्वाभाविक किन्तु मार्मिक भाव, और सारे अन्तर्मन को झकझोर देनेवाली संवेदनमयी अनुभूति ही उनकी कला के प्राणवंत छोर हैं। यह सब इसलिए हुआ है कि उन्होंने जीवन की अनुभूतियों को ऊपर-ऊपर से नहीं; बल्कि उनमें आकण्ठ डूबकर ही अपने में उतारा है; उनसे आँख-से-आँख मिलाकर बातें करके ही उनका यथातथ्य चित्रण किया है। यदि वे ऐसा न करते तो उनकी रचनाओं में इतनी स्वाभाविकता न आ पाती।

मेरी ऐसी मान्यता है कि यदि कभी हिन्दी साहित्य का शैलीगत और भाषागत इतिहास लिखा गया तो उसमें राजा साहब का स्थान प्रथम श्रेणी के उन लेखकों में होगा, जिनकी रचनाओं के अध्ययन से हिन्दी पाठकों में शैलीगत वैशिष्ट्य और चमत्कार की उद्भावना हुई है। सरल-से-सरल शब्दों में गहन-से-गहन बात को प्रकट कर देने की जो अद्भुत क्षमता राजा साहब की लेखनी में है, वैसी अन्यत्र कठिनाई से ही मिलेगी। अनावश्यक शब्दों का तूमार खड़ा करके प्रतिपाद्य विषय को दुर्बोध

और रहस्यपूर्ण बना देने कीं प्रवृत्ति राजा साहब के कलाकार की नहीं है। चुस्त, दुरुस्त, मुहावरेदार भाषा का प्रयोग उनकी लेखनी की विशेषता है। वे अपने प्रतिपाद्य का ऐसी सरल भाषा और मनमोहक शैली में चित्रण करते हैं कि पाठक ऊबता नहीं, प्रत्युत वह उनके पात्रों की भाषा की सादगी में ही खो जाता है।

मात्र मनोरंजक कथानकों और रहस्यपूर्ण तथा कौतूहलजनक पात्रों की सृष्टि करना ही उनके कलाकार का उद्देश्य नहीं; उन्होंने अपने प्रायः सभी ग्रन्थों में ऐसी बहुविध सूक्तियों का सृजन किया है, जो हमारे साहित्य की शृंगार-निधि कही जा सकती हैं। जीवन की ऐसी कदाचित् कोई ही समस्या हो, जिसका समाधान राजा साहब के ग्रन्थों में यत्र-तत्र फैली हुई सूक्तियों में न मिल सके। यह सब इसलिए हुआ है कि राजा साहब की रचनाएँ कल्पना की कोरी भावुकतापूर्ण उड़ान पर आधारित न होकर यथार्थ और अनुभूति के ठोस धरातल पर टिकी हैं। जीवन की सभी प्रकार की घाटियों से वे गुजरे हैं ; जो कुछ उन्होंने देखा, समझा और परखा है, उसी का चित्रण उन्होंने बिना किसी लाग-लपेट के अपनी रचनाओं में कर दिया है।

उनके व्यक्तित्व की एक उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि उनकी रचनाओं की भाषा के अनुरूप ही उनके भाषण भी होते हैं। जिन लोगों ने उनके भाषणों को सुना है वे उनकी जिन्दादिली, फुदकती भाषा और शेरो-शायरी में लबालब भावों के मद्दाह अवश्य हुए होंगे। हिन्दी में बहुत कम साहित्यकार ही कदाचित् ऐसे हैं, जो जिस सशक्त भाषा में लिखते हैं, उसी शैली और भाव-भंगिमा को अपने भाषणों में भी बनाए रखते हों। तुलना का यह स्थान नहीं है, और न ही हमारी ऐसी मंशा है कि किसी की अवमानना या उपेक्षा करें। स्व० कविवर माखनलाल चतुर्वेदी और स्व० श्री जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' के भाषण जिन लोगों ने सुने हैं, वे हमारे कथन से सर्वथा सहमत होंगे। स्व० गणेश जी में भी ऐसी करामात थी कि वे श्रोताओं को अपनी भाषा में बाँधकर बिठा देते थे। राजा साहब की कृतियों को पढ़ने में जैसा मन रमता है, वैसा ही उनके भाषणों को सुनने में भी। और, बातचीत का तो कहना ही क्या ? जिन्हें उनके साथ बातचीत करने और विचार-विनिमय का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे राजा साहब की जिन्दादिली और सुखनफहमी के अवश्य ही कायल होंगे।

मैं उन सौभाग्यशाली व्यक्तियों में हूँ जिन्हें राजा साहब का स्नेह पाने का पर्याप्त सुअवसर मिला है। यहाँ तक कि दिल्ली में मेरा निवास भी उनके पद-रज से कृतार्थ हो चुका है। मैं जब-जब भी पटना गया तब-तब ही बड़े स्नेह और अनुरोध से उन्होंने अपनी कोठी पर बुलाकर मेरा ऐसा भावभीना आतिथ्य किया कि वह अब मेरे जीवन की अतुल तथा अक्षय निधि ही बन गया है। पहली बार मैंने उनकी सहृदयता का परिचय श्री हिमांशु श्रीवास्तव की उपस्थिति में तब प्राप्त किया था जब मैं अक्तूबर सन् १९५९ में बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए पटना गया था। यह अधिवेशन राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की अध्यक्षता में हुआ था और इसी अधिवेशन में राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद अपनी 'बापू के कदमों में' नामक कृति पर परिषद् द्वारा 'वयोवृद्ध साहित्यक सम्मान पुरस्कार' से पुरस्कृत तथा सम्मानित हुए थे। सबसे अन्तिम बार अप्रेल १९७० में मैंने उनके दर्शन तब किये थे जबकि मैं बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्वर्णजयन्ती के अवसर पर पटना गया था।

निकट परिचय के इन ११ वर्षों में कभी कोई ऐसा प्रसंग नहीं आया जब कि वे उखड़े-उखड़े या दौड़ते-दौड़ते मिले हों। जब भी मिले, बड़ी आत्मीयता से, और जब विदाई दी तब बड़े स्नेह से। उनका यह 'स्नेह' और 'आत्मीयता' ही मुझे उनके अत्यन्त निकट खींच लाई थी। इन ११ वर्षों में उनका और मेरा पत्राचार भी बहुत हुआ। उनके पत्र संक्षिप्त होते हुए भी इतने सजीव और सार्थक होते थे कि वे मेरे मन में अपनी अमिट छाप छोड़ गए हैं। एक बार उन्होंने लिखा था—

बोरिंग रोड, पटना
१-११-५९

प्रियवर,

आशा है, आप मुझे भूले न होंगे। आपकी याद तो मेरे साथ हरी की हरी बनी है। और, जब आप 'कमलेश' जी के ऐसे अपने हैं, तो हमारे भी प्रिय हैं—आपके सुख-दुख में हम शामिल हैं।

कहिये आप पढ़ गए 'वे और हम', 'चुम्बन और चाँटा', 'धर्म और मर्म' भी? अब वे जैसे भी हों जानें आप। हम तो अपनी ओर से कुछ लिखने से रहे। 'धर्म और मर्म' की एक प्रति डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी की सेवा में पहुँच गई या नहीं? नहीं पहुँची हो तो मैं यहाँ से उनके पास भेज दूँ।

आशा है, अगले महीने में दिल्ली में ही आपसे भेंट होगी। आपसे मिलने की बड़ी इच्छा है।

याद है न हमारी वह प्रार्थना—'कमलेश' जी भी तो आपसे कह चुके होंगे। हमसे तो कोई पैरवी होने से रही।

आशा है आप स्वस्थ और प्रसन्न हैं।

सस्नेह,
राधिकारमण प्रसाद सिंह

यह पत्र उन्होंने उन दिनों लिखा था जब कि साहित्य अकादेमी के अनुवाद-कार्यक्रम के अन्तर्गत उनकी किसी कृति को समाविष्ट करने की चर्चा चल रही थी और मैं भी उसके लिए प्रयत्नशील था। खेद है कि मैं इसमें असफल रहा और हिन्दी का यह अनूठा शैलीकार अपने जीवन-काल में अपनी इस साध की सम्पूर्ति होते हुए न देख सका। इसी प्रसंग में उन्होंने २७ नवम्बर १९५९ को जो पत्र लिखा था वह इस प्रकार है—

बोरिंग रोड, पटना

प्रियवर

आपका पत्र मिला। मैं कुछ इस तरह व्यस्त रहा कि उत्तर में देर हो गई। क्षमा करेंगे।

जह जानकर बड़ी चिन्ता हुई कि आप अस्वस्थ हो गए थे। खैर, जब देह है, तो देह से लगी-लिपटी व्याधियाँ भी सदा साथ हैं। हाँ, हम जी न हारें तो हमारा कुछ जाने से रहा। आशा है, अब आप स्वस्थ हैं।

'धर्म और मर्म' आपको पसन्द आया—यह जानकर खुशी हुई। अब तक आप वे और हम' तया 'चुम्बन और चाँटा' भी पढ़ चुके होंगे। आप उनपर कुछ लिख पाएँ तो बड़ी बात हो।

आप अपनी कोशिश करते रहेंगे, मुझे इतमीनान है।

यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि आपको पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है। भगवान उसे सदा सुखी रखे और बड़ा करे—अपनी तो यही तमन्ना है, यही प्रार्थना।

सस्नेह,

राधिकारमण प्रसाद सिंह

ऐसे एक नहीं, उनके अनेक पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं, जिनमें उनकी आत्मीयता शब्दों के माध्यम से पाने का सौभाग्य मुझे मिला है। वास्तव में उन-जैसा सरल और निश्छल व्यक्तित्व अन्यत्र कठिनाई से ही देखने को मिलेगा। कदाचित् ऐसे व्यक्तित्व को दृष्टि में रखकर ही उर्दू के किसी शायर ने यह ठीक लिखा है—

"हजारों साल नरगिस अपनी बेनूरी पे रोती है।
बड़ी मुश्किल से होता है चमन में दीदवर पैदा।।"

राजाजी ऐसे ही 'दीदवर' थे कि जिनसे हिन्दी का चमन गुलजार और सरसब्ज था। वे अपनी अनूठी शैली के लिए सदा-सर्वदा याद किये जाएँगे।

इधर आदमी की तरक्की है, उधर आदमीयत की तबाही। इधर दिमाग का बोलबाला है, उधर दिल का दिवाला है। इधर लिफाफे की रंगीनी बढ़ रही है, उधर खत का मजमून बिगड़ रहा है। राजनीति हँस रही है, नीति रो रही है। बल ताल ठोकता है, शील कपाल ठोंकता है।

—राधिकारमण

किशोर चन्द्र

सिन्हा लाइब्रेरी रोड, पटना

। यादें ! सिर्फ यादें रह गई हैं। इतनी बड़ी दुनिया में अब वह कहीं भी नहीं हैं ! जब भी उनकी याद आयेगी मन पीड़ा से घनीभूत हो जायगा ! लेकिन—

उनको मैं किस बुतपर भुलाऊँ ऐ निजाम,
याद वह किस बात पर नहीं आते !

खुदा मिले तो मिले आशना नहीं मिलता

"पौ फटने के पहले सर ही न फट पड़े।" दरिद्रनारायण की यह पंक्ति जो आज से पचीस साल पहले पढ़ी थी, आज भी नहीं भूल सका और न इन पंक्तियों के लेखक राजा साहब को। साहित्यिक जगत् में लेखकों, पाठकों और हिन्दी-साहित्य के प्रेमियों के बीच 'पद्मश्री' राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह को सब उसी नाम से जानते हैं ! क्या विरोधाभास राजा साहब और उनका विषय 'दरिद्रनारायण' !

फिर इन्टर में पढ़ा था "नवाब और मजदूर"। और वह महान् ग्रन्थ 'राम-रहीम'! सभी द्वन्द्व समास में ! फिर चुम्बन और चाँटा, धर्म और मर्म, अबला क्या

ऐसी सबला ? और न जाने कितने। सभी में एक अन्तर्द्वन्द्व, एक अन्तर्वेदना। सभी में असली सेकुलरिज्म !

दस साल तक उनके उपन्यासों, कहानियों को पढ़ते रहने के बाद सौभाग्यवश पहली-पहली बार सन् ५६ में मिला ! अवसर था हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का शायद पच्चीसवाँ अधिवेशन पटने में ! कॉलेज से निकल कर मैं ताजा-ताजा पटना अपनी कर्मभूमि में आया था ! कुछ पुरानी आदतें तब तक थीं, कुछ तो आज भी हैं ! वह जो खत्म हो चुकी है ऑटोग्राफ इकट्ठा करने की 'हॉबी' थी। अब तो यह बचपना सा लगता है। इसलिये कि बचपना बना दिया गया है, ऑटोग्राफ का मजाक उड़ गया है। ऑटोग्राफ का मतलब न तो देनेवाले जानते हैं और न लेनेवाले। ऑटोग्राफ का मतलब सबों ने हस्ताक्षर इकट्ठा करना समझ लिया है। वैसे यह आशीर्वाद है, महान् व्यक्तियों से उनकी जीवनसूक्ति प्राप्त करने का माध्यम !

मेरे बड़े भाई को पच्चीस-तीस साल पहले बेढबजी ने जो ऑटोग्राफ दिया था आज भी मन को मुग्ध कर देता है ! जो चिरतंन सत्य सा है। "बोलो, जरूर बोलो, प्रेम नहीं, झगड़ा ही सही।" सिर्फ एक पंक्ति और सोचते जाओ, अभिभूत होते जाओ ! फिर झगड़ा रहेगा कहाँ !

हाँ तो राजा साहब की बात कर रहा था हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पच्चीसवें अधिवेशन की ! कार्यक्रम समाप्त होने पर मैं ऑटोग्राफ इकट्ठा करने लगा ! बेनीपुरी जी ने, "लिखा काँटों पर खिलो गुलाब की तरह।" सुहैल अजीमाबादी ने लिखा, 'जीना सीखिये'। सामने ही दिनकर थे; लपक कर गया। बड़े टाल-मटोल के बाद सिर्फ हस्ताक्षर दिया। कुछ और लिख के दें—बार-बार अनुरोध पर लिखा—"ऑटोग्राफ लेना अनुपयोगी कार्य है"। तबीयत झुंझला गई, मन खट्टा हो गया। घूरते ही वहाँ दिनकर का दिवाला पिट गया ! भारी मन लिये ऑटोग्राफ की किताब अपने जेब में डालकर चलने ही वाला ही था कि सामने राजा साहब दीख पड़े ! हाँ-नाँ की स्थिति में उनके सामने किताब बढ़ा दिया। आलोचनापूर्ण बच्चों-जैसी मुस्कराहट के साथ ऑटोग्राफ बुक मेरे हाथ से लेते हुए पूछा—क्या बात है ? क्या कार्य है ? कहाँ रहते हैं ? फिर यत्न से लिख दिया—"खुदा मिले तो मिले आशना नहीं मिलता।" मैं देखता रह गया। मुझे लीन देखकर पूछा—मतलब समझते हैं न ?

जी हाँ, आपको नहीं मिला हो, पर मेरे तो सामने ही खड़े हैं !

राजा साहब की कई कृतियों में एक भूख देखी है। जो आम है, मेरा मतलब जठराग्नि से है। मजदूर को जलेबियों को कचाकच कचड़ते हुए। पूरे का पूरा खोंचा साफ करते हुए। नवाब को उसका खाना देखते हुए। मुझे लगा जैसे राजा साहब को भूख नहीं लगती, वह खाना चाहते हैं पर खा नहीं सकते। आँतें साथ नहीं देती होंगी। मैं उन्हीं से पूछना चाहता था। उस दिन इत्तफाक से सुबह उनके पास पहुँच गया। देखा, जाड़े की धूप खा रहे हैं राजा साहब। मैं यूँ ही चला गया था। राजा साहब के आसपास किताबें बिखरी पड़ी थीं, पास ही हाजमे और त्रिफलाचूर्ण भी था। मुझे लगा मेरा अनुमान सत्य है। इस निस्बत कुछ पूछना बेकार है। मूर्खता होगी। और थोड़ी देर बाद प्रणाम-पाती के बाद उठ कर चला आया। कुछ दिन बाद फिर मौका लगा सुबह-ही-सुबह जाने का। देखा एक प्लेट में लगभग डेढ़ छटाक छेना और उसमें काजू, किसमिस, अखरोट मिला-मिला कर खा रहे हैं। एक तगड़ा नाश्ता ! मैंने मन में ही कहा, बड़ा धोखा हो गया।

पिछली रात 'अबला क्या ऐसी सबला ?' पढ़ा था। हिन्दी-उर्दू की गंगा-जमुना ! भाषा इतनी सरल कि जैसे बोल रहे हैं। उस दिन भी संयोग से सुबह-ही-सुबह बेली रोड पर भेंट हो गई। छाता लगाये रोज की तरह सुबह-ही-सुबह टहलने निकल गये थे। मैं प्रणाम करके भागना चाहता था। कि आइये कहाँ जा रहे हैं, ने मुझे पकड़ लिया; कुछ जरूरी काम था पर साथ हो गया। घंटे भर साथ टहलते रहे। अंत में मैंने घड़ी देखी और एकाएक 'अरे बापरे' आठ बज गये' कहकर उनसे इजाजत ली और साइकिल से उड़ गया। सोचता जा रहा, एक घंटा तो जैसे पाँच मिनट में ही खत्म हो गया !

यादें ! सिर्फ यादें रह गई हैं। इतनी बड़ी दुनिया में अब वह कहीं भी नहीं हैं। जब भी उनकी याद आयेगी मन पीड़ा से घनीभूत हो जायगा। लेकिन—

'उनको किस बुत पर भुलाऊँ ऐ निजाम,
याद वह किस बात पर नहीं आते !

कृष्णमोहन वर्मा
महेन्द्रू, पटना

शायद ही ऐसी कोई सभा हो जहाँ राजा साहब गए हों और लोग तब तक न बैठे रहें जब तक वे बोल न लें। उनकी जुबान से फूल झड़ते थे। शायरी की पुट से भाषा रूमानी बन जाती थी। मुहावरों के तो वे शायद 'एन-साइक्लोपीडिया' ही थे। वे जिस मजलिस में रहते थे वहाँ एक अजीब समाँ बँधा रहता था। जिसकी ओर नजर घुमा देते थे वह कृतकृत्य हो जाता था।

हमारे राजा साहब

अपने युग के सर्वश्रेष्ठ शब्दशिल्पी, हिन्दी गद्यशैली के अद्वितीय स्रष्टा, अद्भुत कहानीकार, उपन्यासकार, निबंधकार और अपने प्रखर व्यक्तित्व से अपने युग पर छाए रहनेवाले, उसे सुशोभित करनेवाले, संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला और फारसी-उर्दू वाङ्मय के भी बहुत बड़े धनी, अपने वाक्माधुर्य से सबको मुग्ध कर देनेवाले हर-दिल-अजीज हमारे राजा साहब हमारे बीच न रहे। काल के क्रूर हाथों ने उन्हें हमसे सदा-सदा के लिए

जुदा कर दिया। वे उस दिव्यलोक को चले गए जहाँ जाकर कोई लौटता नहीं। किन्तु, उनकी याद सदा अमर रहेगी। वह हमारी ऐसी चमकदार धरोहर है, जिसे हम सदा सँजोए रहेंगे और जबतक हिन्दी-साहित्य कायम रहेगा उसका इतिहास उनके नाम से जगमगाता रहेगा।

हिन्दी-साहित्य-जगत् में सिर्फ राजा साहब कह देने से साहित्य-शिरोमणि स्वर्गीय राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का बोध होता रहा है। कितनी मोहकता रही है इन शब्दों में! सच तो यह है कि ये शब्द 'राजा साहब' उनके नाम के पर्याय बन गए थे। कभी किसी को उनका बोध कराने के लिए 'राधिकारमण' कहने की जरूरत ही न पड़ी। वे राजा साहब के नाम से ही प्रख्यात और विख्यात थे।

अपने विद्यार्थी जीवन में ही, जब मैं शायद मैट्रिक या आई० ए० में पढ़ता था लोगों को स्वनामधन्य राजा साहब के गुणों के संबंध में चर्चा करते सुन चुका था। उनका साहित्य-प्रेम, उनका विद्यानुराग, हिन्दी के प्रति उनकी अटूट श्रद्धा, उनकी बेजोड़ गद्य-शैली आदि की लोग बड़ी प्रशंसा करते थे। तबतक मुझे उनकी कोई रचना पढ़ने को न मिल सकी थी और न मैंने उन्हें देखा ही था, मेरे लिए वे पुस्तकों में वर्णित कहानियों के राजा की तरह ही थे। मन में बड़ी इच्छा थी कि राजा साहब को देखूँ, उनकी रचनाओं को पढ़ूँ।

भगवान की दया से सहसा एक सुयोग नसीब हुआ। संभवतः सन् १९२९-३० ई० के बीच की बात है। उन दिनों मैं आरा में ही रहता था। आई० ए० की पढ़ाई खत्म करने के बाद आरा मॉडेल इन्स्टिच्यूट में सहायक शिक्षक हो गया था। पता चला कि आज सायंकाल नागरी प्रचारिणी सभा के अहाते में एक सभा में राजा साहब आनेवाले हैं। मेरी खुशी का ठिकाना न था। स्कूल में दिन भर राजा साहब पर ही ध्यान लगा रहा। साहित्यिकों में राजा साहब के आगमन की सूचना से बड़ी प्रसन्नता थी। लगा कि राजा साहब का आगमन कोई बहुत बड़ी घटना है, जिसका इंतजार लोग बहुत उत्सुकता से कर रहे थे। मैं अपने हिन्दी के गुरुवर स्वर्गीय पण्डित रामप्रीत शर्मा 'राम' से, जो मेरे साथ ही मॉडेल इन्स्टिच्यूट में शिक्षक थे, राजा साहब के बारे में दिन भर बातें करता रहा और उन्हीं के साथ शाम को नागरी प्रचारिणी सभा में जाने की बात पक्की रही।

सात बजे संध्याकाल सभा होने का समय था। उसके बहुत पहले से ही काफी संख्या में लोग एकत्र हो चुके थे। शहर के रईसों, वकीलों, शिक्षकों और विद्यार्थी वृन्द से सभास्थल भरा हुआ था। उस समय आरा के प्रायः सभी प्रसिद्ध व्यक्ति सर्व-श्री साहित्य शिरोमणि वयो-वृद्ध स्व० शिवनन्दन सहाय जी ; स्व० महामहोपाध्याय पण्डित सकलनारायण जी शर्मा ; स्व० ब्रजनन्दन सहाय जी ब्रजबल्लभ ; स्व० अवधबिहारी शरणजी; स्व० शौकीन सिंह जी, प्रसिद्ध कांग्रेसनेता स्वर्गीय रामायण प्रसाद जी, रामप्रीत शर्मा, आदरणीय भाई अखौरी शिवदीप नारायण जी, राधिका प्रसाद जी (तत्कालीन नागरी प्रचारिणी सभा के मंत्री),स्व०सन्त प्रसाद वकील, बनारसी प्रसाद भोजपुरी, स्वर्गीय पारसनाथ त्रिपाठी, स्वर्गीय ठाकुर राजकिशोर सिंह वकील, विंध्याचल प्रसाद, तथा और भी अनेक गण्यमान व्यक्ति उपस्थित थे। लोगों में राजा साहब के आगमन की उत्सुकता थी। सबकी आँखें उसी ओर लगी थीं जिस ओर से राजा साहब आनेवाले थे।

मेरा हाल तो पूछिए मत। मुझे तो पहलेपहल राजा साहब को देखना था, उनकी बातें सुननी थीं। पहले से ही उनके बारे में, जैसा कि बहुत-से लोगों से सुन चुका था मैंने अपने मन में एक धारणा बना ली थी। उनके आने में एक-एक क्षण की देर बेकली पैदा कर रही थी कि तबतक एकाएक प्रवेश-द्वार के निकट एक खलबली मच गई, बहुत से लोग उठ खड़े हुए और उसी ओर दौड़े। मैं भी अगली पंक्ति में ही था। मोटरगाड़ी के रुकने की आवाज हुई; दरवाजा खुला और उसमें से एक औसत लंबा कद का अत्यन्त शीलवान, रूपवान, गले में स्वच्छ किनारीदार चादर लपेटे, रेशमी कुर्त्ता पहने, पैरों में जड़ाऊँ सलीमशाही जूते लगाए बड़े ही आकर्षक व्यक्तित्व का एक चश्माधारी नौजवान मुस्कराता हुआ विनम्र भाव से हाथ जोड़े निकला। लोगों ने कहा—'यही राजा साहब हैं, यही राजा साहब हैं।' उन्हें देखकर मेरे तन-मन-प्राण पुलकित हो उठे। जी चाहता था उन्हें देखता ही रहूँ।

अपने प्रशंसकों और परिचितों से घिरे राजा साहब सभा-भवन में पधारे और दरी, जाजिम, एवं सुन्दर कालीनों से सुसज्जित फर्श पर मसनद के सहारे बैठे। जहाँ तक याद है वह सभा आरा नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से स्वर्गीय कवि-शिरोमणि श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' को 'अभिनन्दन ग्रंथ' समर्पित करने के सिलसिले

में थी। प्रारंभ में दो-तीन व्यक्तियों ने उस संबंध में कुछ प्रकाश डाला, किन्तु बाद में जब राजा साहब बोलने को खड़े हुए और एक शायरी के साथ जब उनकी जबान खुली तो जैसे सब लोग मंत्रमुग्ध हो गए। मैं एकटक उन्हें देख रहा था और उनकी अमृतमयी वाणी का पान कर रहा था। राजा साहब के बारे में दूसरों से जैसा सुन रखा था, मन में उनके बारे में जो धारणा बना रखी थी उससे कहीं अधिक आकर्षक, मोहक और प्रभावशाली उनका प्रत्यक्ष व्यक्तित्व था। उस समय मैं उनके पास तक तो नहीं पहुँच सका किन्तु मन-ही-मन श्रद्धा के साथ उन्हें प्रणाम किया और हृदय में यह लालसा तीव्र हो उठी कि किसी तरह उनके निकट संपर्क में आऊँ।

उसके बाद से मैं ऐसे अवसरों की ताक में रहने लगा कि राजा साहब से मेरा मेल-जोल बढ़े। परमात्मा की कृपा से मेरी मनोकामना पूर्ण होती गई। सन् १९३१ में आरा में बिहार विद्यार्थी-सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन होनेवाला था। इलाहाबाद के प्रसिद्ध वकील मुंशी ईश्वरशरण जी मनोनीत सभापति थे, किन्तु अचानक बीमार हो जाने के कारण वे न आ सके। उनका भाषण भी छप चुका था। इत्तफाक से अधिवेशन के एक दिन पहले कहीं से घूमते-फिरते राजा साहब आरा पहुँच चुके थे। इस बात का पता सम्मेलन के अधिकारियों को चल गया। स्वागत समिति के एक प्रमुख सदस्य होने तथा शाहाबाद छात्रसंघ के एक नेता की हैसियत से मुझे एक प्रतिनिधिमंडल के साथ राजा साहब की सेवा में यह अनुरोध करने के लिए भेजा गया कि वे मुंशी ईश्वरशरण के बदले में बिहार विद्यार्थी सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता करें। उस दिन मुझे राजा साहब के समक्ष जीवन में पहली बार प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित होने और उनसे बातें करने का अवसर मिला। मेरी खुशी का ठिकाना न था। प्रतिनिधिमंडल के प्रमुख होने के नाते मैंने उनसे छात्रसंघ की ओर से अध्यक्षता करने के लिए बहुत कुछ कहा-सुना और सम्मेलन के अधिकारियों की कठिनाइयाँ बतलायीं। राजा साहब मेरी बातों से काफी प्रभावित थे, मेरे प्रति उनकी आँखों में स्नेह था, उनकी बातों में चाशनी घुली थी। बहुत हमदर्दी और आकर्षण भरे हिन्दी-अंग्रेजी-मिश्रित जुमलों में उन्होंने बातें कीं। उन्होंने मुझसे मेरा परिचय पूछा; बड़े प्रसन्न हुए और कहा—'कभी फिर मिलिएगा।' किन्तु जहाँ तक अध्यक्षता करने की स्वीकृति देने का प्रश्न था राजा साहब ने अपनी असमर्थता प्रकट की और अपने

सिद्धान्त पर अटल रहे। अपने जाग्रत स्वाभिमान की नोक पर उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा—"I do not like to be a stop-gap president. I have never done so in my life. You better search out some other person. please excuse me."

राजा साहब के यहाँ से प्रतिनिधि-मंडल तो निराश लौटा, किन्तु व्यक्तिगत रूप से उनसे जो मेरी बातें हुईं और भविष्य में उनसे मेल-जोल बढ़ाने की जो संभावनाएँ नजर आईं उनसे मैं बहुत खुश था। एक और दूसरा मौका मिला तब जबकि आरा में बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सालाना जलसा हुआ और राजा साहब उसके स्वागताध्यक्ष थे। भाई बनारसी प्रसाद जी भोजपुरी और आदरणीय स्वर्गीय रामायण बाबू के सहयोग से हमलोगों ने 'स्वाधीन भारत' नामक एक साप्ताहिक निकाला था। भाई भोजपुरी ने कहा कि राजा साहब का स्वागतभाषण हमलोगों के पत्र में साथ-साथ छापना चाहिए। मैं तुरत राजा साहब के पास दौड़ा गया और उनकी एक फुल-साइज तस्वीर माँग लाया जिसमें वे पगड़ी बाँधे लिबास में थे। उनके भाषण की एक अग्रिम प्रति भी प्राप्त कर ली गई ताकि भाषणोपरान्त उसे हमलोग अपने पत्र के आगामी अंक में प्रकाशित कर सकें। जिस समय मैं राजा साहब के पास उनकी तस्वीर लाने और स्वागतभाषण की अग्रिम प्रति लाने गया मुझे उनके समीप काफी वक्त तक बैठने और उनसे बातचीत करने का अवसर मिला। थोड़ी देर के लिए ही सही, राजा साहब के पास बैठने और उनकी बातें सुनने का मौका मिल जाना किसी भी साहित्यिक या साहित्य से शौक रखनेवाले व्यक्ति के लिए गनीमत की बात थी। वह अपने आप में एक ऐसी चीज थी जो किसी को कुछ ही क्षणों में वर्षों के अध्ययन का फल दे दे, साहित्य और शृंगार का ऐसा मजा चखा दे जिससे उसका जीवन रसमय बन जाय। उस वैयक्तिक बातचीत के सिलसिले में राजा साहब ने मुझे फिर कभी मिलने का आमंत्रण दिया।

इसी बीच मुझे राजा साहब की रचनाओं का रसास्वादन करने के लिए उनकी दो-एक चीजें भी मिल गईं। सबसे पहले मुझे उनकी कहानियों की प्रथम पुस्तक 'गल्प कुसुमावली' में संकलित कहानी 'कानों में कंगना' मिली, जिसे पढ़कर मैं राजा साहब की मुहावरेदार शैली, उनके सामाजिक विचारों और उदार भावनाओं का

दीवाना बन गया। 'कानों में कंगना' समाप्त करते-करते मुझे आरा के प्रसिद्ध वैद्यराज मित्रवर स्वर्गीय श्री बच्चा मिश्र जी के यहाँ वह पुस्तक भी मिल गई जिसमें राजा साहब का बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के बेतिया (चंपारण) वाले अधिवेशन के अध्यक्षपद से दिया गया भाषण छपा था। उस भाषण को मैंने एकबार नहीं अनेक बार पढ़ा और जाने अपने कितने ही मित्रों को पढ़कर सुनाया। आज भी मुझे वह पुस्तक मिल जाय तो उस भाषण को मैं फिर से पढ़ूँ और पढ़कर औरों को सुनाऊँ। उसके पहले मैंने वैसी शैली, वैसा शब्द-शिल्प कहीं पढ़ा-सुना नहीं था। उस बेजोड़ लेखनी के सामने मेरा मस्तक श्रद्धा और सम्मान से झुक गया। मैंने उसी समय मान लिया कि हमारे राजा साहब हिन्दी गद्य के बेजोड़ शैलीकार, अद्वितीय शब्द-शिल्पी हैं।

सन् १९३९ के अन्तिम दिनों में मैं आरा से पटना आकर पत्रकार का जीवन बिताने लगा। अपने अन्तरंग मित्र श्री राजेन्द्र शर्मा और स्वर्गीय भाई ब्रजशंकर जी की कृपा से मुझे साप्ताहिक 'योगी' में सह-संपादक की जगह मिल गई। यों मेरा पत्रकार-जीवन सन् १९३८ में आरा से ही आरम्भ हो चुका था जब कि मैंने अपने पैसों से अपना एक साप्ताहिक 'अग्रदूत' नाम से निकाला, जिसका मैं प्रधान संपादक था और मेरे अतिरिक्त संपादक-मंडल में मित्रवर श्री रामदयाल जी पाण्डेय और शाहाबाद के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री सूरजनाथ जी चौबे थे। कुछ दिनों तक चलकर पैसों के अभाव में वह पत्र बन्द हो गया जिस कारण पत्रकारिता के लिए मुझे पटना आना पड़ा। राजा साहब ने मेरे पत्रकार जीवन को अपना आशीर्वाद दिया था, अपनी शुभकामनाएँ प्रकट की थीं।

पटना आने पर राजा साहब के साथ मेरी आत्मीयता बहुत बढ़ गई। आरा से पटना आने और 'योगी' में काम शुरू करने के पहले उनकी तब तक प्रकाशित सभी रचनाएँ मैं पढ़ चुका था और उनपर 'योगी' के स्तम्भों में समालोचनाएँ भी लिखी थीं। 'योगी' के दो अंकों में मैंने 'पुरुष और नारी' की जो समालोचना की थी उसे राजा साहब ने बहुत पसन्द किया और मेरे घर अपने एक मैनेजर परमेश्वरी बाबू को भेजकर उन अंकों की चार-चार प्रतियाँ मँगवायी थीं। उन्हीं दिनों (१९४०-४१) राजा साहब अपने छोटे भाई बिहार विधान-परिषद् के अध्यक्ष कुँवर साहब के अध्यक्षीय निवास पर कुछ दिनों तक पटने में थे। मैं प्रायः रोज ही भोर में उनके यहाँ जाता और जब

वे व्यायाम कर लेते तो उनके साथ काफी दूर तक तक टहलने जाता था। मुझे याद है 'राम-रहीम' के बारे में अक्सर मुझसे चर्चा करते थे और उसके चरित्रों के संबंध में अपने विचार भी व्यक्त करते थे। उनके साथ टहलने में बहुत मजा आता था। उन चन्द दिनों में जाने कितने ही 'शेर' मुझे याद हो गए थे। उर्दू और बंगला साहित्य तथा कविगुरु रवि बाबू के संबंध में तो राजा साहब की जबान से इतनी बातें सुनने को मिलीं, इतनी नयी-नयी चीजें ज्ञात हुईं जो आज तक कहीं भी पढ़ने को नहीं मिल सकीं। रवि बाबू से राजा साहब का घनिष्ठ वैयक्तिक संबंध था।

राजा साहब की सादगी और उदारता के क्या कहने? मुझ जैसे अदने आदमी को मित्र बना लेने में उन्हें तनिक भी संकोच न हुआ। उनमें अपनी महानता का, अपने राजा होने का, महामानव होने का मान तक नहीं था। धनवान होने, विद्वान् होने अथवा समाज में अपने अत्यन्त उच्च स्थान का दंभ तो उनसे कोसों दूर था। विनम्रता उनकी नस-नस में व्यापती थी। होठों पर मुस्कराहट लिए, हाथ जोड़े, वे अपने मित्रों, सखा-संबंधियों अथवा अपने से मिलनेवाले किसी भी अजनबी का हार्दिक स्वागत करते थे। यहाँ एक दिलचस्प घटना का जिक्र कर देना अप्रासंगिक न होगा। एक बार की बात है कि राजा साहब आरा जा रहे थे। पटना जंकशन स्टेशन के प्लेटफार्म पर एक साधारण व्यक्ति की तरह अपने होल्ड-ऑल पर बैठे चम्मच से एक प्लेट में रखे मक्खन खा रहे थे। गाड़ी कुछ लेट थी। मैं भी अपनी सहधर्मिणी श्रीमती राधिका रानी के साथ उसी गाड़ी से आरा जाने के लिए स्टेशन पहुँचा। मेरा सामान राजा साहब से थोड़ी दूर पर बाईं ओर रखा था जिस पर मेरी पत्नी बैठी थीं। इतने में मैंने अचानक राजा साहब को देख लिया और चट हाथ जोड़े उनके समक्ष उपस्थित हुआ। राजा साहब की खुशी का ठिकाना न था। वे मक्खन खाते हुए ही उठ गये और मुझसे घुलमिल कर बातें करने लगे। मैंने उन्हें बलात् पुनः बैठाया और स्वयं खड़े-खड़े बातें करता रहा। उन्हें जब मालूम हुआ कि मेरी पत्नी भी साथ जा रही हैं और उनसे दो-चार गज के फासले पर ही बैठी हैं तो वे फिर अपने आसन से उठ खड़े हुए और मेरी पत्नी के सामने जाकर हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और विलम्ब से उनके पास पहुँचने के लिए माफी माँगी। मेरी पत्नी तो जैसे कट-सी गईं। वे अवाक् खड़ी होकर मुस्कराती भर रह गईं। राजा साहब से उनका प्रथम साक्षात् था, उनके

प्रथम दर्शन थे जिससे उनके तन-मन-प्राण पुलकित हो उठे। राजा साहब की निरभिमान प्रकृति, उनके बड़प्पन, उनका मोहक व्यक्तित्व, शिष्टाचार और उनकी उदारता का यह एक ऐसा दृष्टान्त है जिसकी मिसाल मिलना दुर्लभ है। वे दिल और दिमाग दोनों के राजा थे। धन के राजत्व की तो वे केवल एक सामाजिक परंपरा निभाते थे जिसके भोग का उन्हें भान तक नहीं था।

मेरे जीवन में राजा साहब के साथ हुए पत्र-व्यबहार का बहुत बड़ा महत्त्व है। सन् १६४०-४१ में हमारे बीच अनेक पत्र-व्यवहार हुए थे जिन्हें बहुत दिनों तक मैंने सँजो कर रखा था। आज भी मेरे पास उनके एक-दो ऐसे पत्र हैं जिनसे मेरे साथ की उनकी आत्मीयता, स्नेह और मित्र-भाव का पता चलता है। कंजूस के धन की तरह मैंने आज तक उन्हें बचाकर सुरक्षित रखा है। उनका एक पत्र इस प्रकार है :

Surajpura
8-1-40

My dear Krishnamohanji,

I am receiving your letter here on my return from Calcutta. I had to go down there on the 26th as my brother got unwell and had to be taken for treatment. He is better now though still weak.

I returned to Surajpura yesterday morning. I have just reed a telegram from Allahabad. I have got to go there tomorrow in connection with my daughter's marriage, I shall return to Arrah straight from Allahabad & would like to meet you there. It is just possible I may be delayed at Allahabad and may not be able to return to Arrah on the 12th as I had orignially intended. I fear I may be delayed by a few days, say 3 or 4 days. So I want you to let me know at 17 Clive Road, Allahabad as to when I

should write to you giving you my exact programme to enable you to meet me at Arrah.

I am really sorry to hear that you have been unwell. I trust the sore is healed up and that you are now fit-enough to move about.

I am sending this letter to you by your Patna address as I don't know your where abouts.

Your's, Sincerely

Radhikaraman Pd. Singh

राजा साहब की रचनाओं को पढ़ने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं है जिसे राजा साहब ने अपनी पैनी दृष्टि से गहराई के साथ देखी न हो और उस पर विचार न किया हो। चाहे वह समाजनीति हो या राजनीति, सेक्स हो या साइकोलॉजी, कोई राष्ट्रीय प्रश्न हो या अन्तर्राष्ट्रीय, दर्शन हो या इतिहास, किसानों की समस्या हो या मजदूरों की, पुरुष और नारी का सवाल हो या घर-गृहस्थी का, सब पर पूर्ण निर्भीकता के साथ अपने विचार व्यक्त किए हैं—उस युग में भी जब कि अंग्रेजों का राज्य था, जब कि लोग दो टूक बातें बोलने-लिखने से डरते थे, राजा साहब की लेखनी बेरोक-टोक चलती थी क्योंकि उनमें निर्भीकता थी, निर्द्वन्द्वता थी। उनका राष्ट्रीय चरित्र सर्वथा निर्मल, निष्कलुष था। और फिर, भाव और भाषा की कोई कमी तो थी नहीं। उनका तो कलाम ही 'था बादल से चले आते हैं मजमूँ मेरे आगे।' भारतीय स्वतंत्रता के आंदोलन को जोरदार बनाने में राष्ट्रीय विचारों का प्रवाह जिस वेग से बहते हुए उनके उपन्यासों या अन्यान्य रचनाओं में देखने में आता है वह उनके ही योग्य है। साथ ही, मनुष्य की मनुष्यता को सर्वोपरि स्थान देकर मानव को मानवीयता की ओर झुकाने में लेखक के रूप में उन्होंने युग-स्रष्टा होने का अपना कर्त्तव्य पूरा किया है। वे गाँधीयुग के गिने-चुने श्रेष्ठ साहित्यकारों की अगली पंक्ति में स्थान पाने के हकदार हैं।

और, अन्त में, मैं उनके मोहक, रंगीन व्यक्तित्व पर कुछ कहे बिना कैसे रह सकता हूँ? शायद ही ऐसी कोई सभा हो जहाँ राजासाहब गए हों और लोग तब तक न बैठे

रहें जब तक वे बोल न लें। उनकी जुबान से फूल झड़ते थे। शायरी की पुट से भाषा रूमानी बन जाती थी। मुहावरों के तो वे शायद 'एनसाइक्लोपीडिया' ही थे। वे जिस मजलिस में रहते थे वहाँ एक अजीब समाँ बँधा रहता था। जिसकी ओर नजर घुमा-देते थे वह कृतकृत्य हो जाता था। पूरब और पश्चिम की सभ्यताओं को नजदीक से देखकर, उनके दौर से गुजर कर उस महामानव ने जो अनुभूतियाँ प्राप्त की थीं उनके निष्कर्ष पर अपने साहित्य में भारतीय संस्कृति के फूल खिलाए थे, संसार को नई चेतना, नया संदेश दिया था। ऐसे थे हमारे राजा साहब, एक ऐसे प्रबुद्ध आत्मा, जिनमें गीता के स्थितप्रज्ञ के सारे लक्षण मौजूद थे। सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का पुजारी ऐसे शीर्षस्थ क्रान्तदर्शी साहित्यकार की पुण्य स्मृति में हमारी यह विनम्र श्रद्धांजलि निवेदित है।

वह साहित्य भी क्या जो दो पल हमारे हृदय की रगों को गुदगुदा कर उड़ गया! उसे तो दिलदार भी होना है और चिरन्तन का आधार भी। उसे केवल हमें रिझाना ही नहीं है—मन की गुत्थियों को सुलझाना भी है। वह उपभोग ही के लिए नहीं—हमारे मनोयोग के लिए भी है। वह रस की चाशनी ही नहीं—चित्त की शान्ति भी है। वह कोरा चरित्र-चित्रण ही नहीं—चरित्र-गठन भी है, आत्म-मंथन भी। और, मनोरंजन के साथ-साथ वह भय-भंजन का भी संकेत है, तो फिर समझ लीजिए कि इस जीवन की बिसात पर कला के मोहरे लाल हो गये।

—राधिकारमण

केसरी कुमार
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पटना कॉलेज

एक संत से सुना है कि माँग आयु भी देती है। तो क्या राजा साहब की लम्बी उम्र का राज संयम और अरमान के अतिरिक्त यह था कि उनका लेखन माँग बन गया था? यह निष्कर्ष हमारी पीढ़ी को कितना बल देता है!

राजा साहब को पहली बार पटना कॉलेज में देखा, हिन्दी साहित्य परिषद् के एक वार्षिकोत्सव के अध्यक्ष के रूप में। तब राजा साहब सुर्खियों में थे, 'कानों में कंगना' और 'राम-रहीम' को लेकर। 'राम-रहीम' पाठ्यपुस्तक थी और पाठ्यपुस्तक के लेखक के बारे में तरुण छात्र की जो भावुक-रूमानी उत्कंठा हो सकती है, हमारी थी। राजा साहब थोड़ी देर से आए, फिटिन

राजा साहब

में, पर वे न तो 'कानों के कंगना' के नरेन्द्र की तरह थे, न 'राम-रहीम' के श्रीधर की तरह। कल्पना को एक झटका लगा—प्रौढ़ राजा साहब···राय साहब···।

१६४२ ई० के दिसम्बर में मैं बिहार नेशनल कॉलेज, पटना का प्राध्यापक बना और १६४३ ई० में कॉलेज की हरिश्चन्द्र सभा के अध्यक्ष के नाते राजा साहब को सभा के वार्षिकोत्सव का सभापतित्व करने का आग्रह किया। वे कृपापूर्वक मान गए। वे आये और साथ में अपने पैसे से, ओरिएण्ट प्रेस, पटना में छपवाकर, अपना वह प्रख्यात ऐतिहासिक भाषण 'जिसकी जवानी उसका जमाना' भी लेते आये; जिसमें उनकी वक्तृता की कला, जिसकी पदचाप १६३७ ई० में, आरा में होनेवाले श्री हरिऔध-अभिनन्दनोत्सव एवं बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष की हैसियत से दिये गये अभिभाषणों में सुनाई पड़ी थी, एक नया मोड़ लेती है और जिसका प्रभाव उनके लगभग सभी परवर्त्ती भाषणों में वर्तमान रहा। इस समारोह की विशेषता यह थी कि राजा साहब से सुनने को हिन्दी और उर्दू दोनों के छात्रों और प्राध्यापकों का हुजूम उमड़ पड़ा था। स्मरणीय है कि तब हिन्दी और उर्दू के बीच एक तनाव उत्पन्न हो गया था। ग्राउज और ग्राहम बेली का षड्यंत्र पूरा हो चुका था। भाषा मजहब के नाम पर बँट चुकी थी और देश के बँटवारे की भूमिका रच रही थी। और, निराशा की बात यह थी कि अंग्रेजी की इस दीर्घकालीन साजिश की ओर ध्यान नहीं जा रहा था। हमारे नेता, बहुत हुआ तो, जुबान की लड़ाई को कठमुल्लों की लीडरी का परिणाम मान लेते थे और दो लिपियोंवाली हिन्दुस्तानी का समाधान पेश करते थे। राजा साहब ने इस समस्या को एक कुलीन अन्दाज से उपस्थित किया था—'हमें तो वह समाँ भी पसन्द है कि कोयल की कूक भी है, बुलबुल की चहक भी; मालती की क्यारी भी है, गुलेलाला की किनारी भी; मलयमर्मर की माधुरी भी है, नसीमेबहार की शोखी भी। आप क्या समझते हैं कि यह मेलजोल घुल नहीं सकता? अरे भाई, यह तो अपनी-अपनी कलम का जादू है। ···हिन्दी और उर्दू दो हैं! अरे भाई, वह तो जो है सो है उसका नाम कोई चाहे जो दे दे, उस पर साज चाहे जो रख दे और यों अपना रंग चढ़ा उस पर अपना दावा पेश करे; मगर यह ख्याल रहे कि कहीं वह साज उतार अपनी सादगी में निखर कर आई तो फिर यह पहचानना आसान न होगा कि वह किसकी है—उनकी या इनकी? किसी एक की या सबकी।'

ग्रौर, उस क्षरण तो ऐसा ही लगा था कि वह सबकी है। वाक्य-वाक्य पर होने-वाली तुमुल करतल-ध्वनि से यही आवाज निकलती थी। सब मस्त थे, सब भूम रहे थे, सब रसविभोर जैसे कह रहे हों कि हिन्दी-उर्दू का सवाल जाहिलों ग्रौर निहित-स्वार्थों का सवाल है—हम मस्त भूमते रहें, तू रसकलश बहाये जा।

भाषरण क्या था, मुहावरों का अलबम था। आरम्भिक शब्द थे—'आज उठती कोंपलों की दुनिया में आकर हमारा दिल भी बेबस उठ बैठता है। हमें याद आते हैं वह दिन, जब उमंगों में भूमते दिन थे, उम्मीदों में बसी रात। अब तो दिन काटे खाते हैं ग्रौर रात काटनी पड़ती है।...क्या बताऊँ, क्या मौज थी! न रोटी की तलाश, न लीडरी की हवस, न मजहब का शिकंजा, न पॉलिटिक्स का चकमा।'

विज्ञान के ज्वलंत प्रश्न ग्रौर राजनीति की गिरावट पर कह गये जुमलों में भी मुहावरों की वही धार ग्रौर काट थी। भाषरण को समेटते हुए उन्होंने जवानी ग्रौर जमाने पर फड़कते हुए वाक्य कहे थे। छपे हुए चालीस पृष्ठों का लम्बा भाषरण वे पढ़ते रहे ग्रौर हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँजता रहा।

कुछ दिनों तक उस भाषरण की खूब चर्चा रही। राजा साहब पर छिटपुट लेख लिखे गये। तब 'सूरदास' उपन्यास निकल चुका था ग्रौर निश्चय ही वह तबतक के प्रकाशित राजा साहब के उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ था। हम ग्रौर प्रो० श्रीकृष्ण प्रसाद (अब डाक्टर श्रीकृष्ण प्रसाद, अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग, मगध विश्वविद्यालय) राजा साहब के कथा-साहित्य पर एक किताब लिखना चाहते थे ग्रौर इस प्रसंग में राजा साहब के साथ अनेक बैठकें भी हुईं; किन्तु कथाओं, खासकर उपन्यासों की तहों से परिचित सम्भ्रांत व्यक्तियों का निजी कुछ इतना निकलने लगा कि उसे वहीं निःशब्द छोड़ देना देना मुनासिब समझा गया।

तब से राजा साहब का सम्पर्क बराबर रहा। जब भी भेंट होती तो जरूर पूछते—हमारी अमुक पुस्तक पहुँच गयी है न?

जब डॉ० सच्चिदानन्द सिन्हा, पटना विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे तब उसकी रजतजयन्ती बड़ी धूमधाम से मनायी गयी थी। सिन्हा साहब हिन्दी के कोई हिमायती नहीं थे, यद्यपि जीवन के शेषकाल में तुलसीकृत रामचरितमानस पढ़ा करते थे ग्रौर हमलोगों से तत्संबंधी प्रश्न भी पूछा करते थे। वे समय-बेसमय हिन्दी पर व्यंग्य किया

करते थे। एक ऐसे ही व्यंग्य के उत्तर में राजा साहब ने 'राम-रहीम' लिखा था। सिन्हा साहब इतने प्रभावित हुए कि राजा साहब को, जो इतिहास में एम० ए० थे, हिन्दी एम० ए० का परीक्षक बना दिया। रजत-जयन्ती समारोह की हिन्दी समिति, जिसके अन्तर्गत अनेक अभूतपूर्व अपुनरावृत एवं अविस्मरणीय अखिल-भारतीय कार्यक्रम हुए, के संयोजकों में एक राजा साहब भी थे और मैं उस समिति के सहायक मंत्री होने के नाते उनका सहयोगी था।

राजा साहब की सेहत तो शायद कभी अच्छी नहीं थी; पर १९४६ से बीमारी की अधिक शिकायत करने लगे थे—कभी अपनी, कभी घरवालों की। उन्हें लगता कि 'जीवन की गोधूलि' आ गयी है, एकान्त में कला की संध्या-वंदना करने की वेला। और सच ही, इस गोधूलि-वेला में ही उन्होंने सरस्वती के मंदिर में सर्वाधिक पृष्ठों की अर्चना की।

स्वतंत्रता के बाद उन्होंने अपने को राजा कहना छोड़ दिया था। अक्सर कहते—राजा राधिकारमण सिंह तो १९४७ में मर गए, राधिकारमण सिंह मौजूद हैं। वैसे जमींदारी-उन्मूलन के साथ स्टेट के हाथ से निकल जाने का भी उन्हें मलाल था। बीमारी, मौत और उन्मूलन ने उन्हें 'दुनिया की महफिलों से' उदास कर दिया था और कुल मिलाकर, जिन्दगी एक फर्ज मात्र रह गयी थी। पर जो क्षति बाहर हुई थी उसकी पूर्त्ति, जैसे एक प्राकृतिक न्याय से, साहित्य में हो रही थी। उधर बीमारियाँ तो इधर दवा बन जानेवाला नित नयी शैलियों में खुल-खेलने का मर्ज, उधर मौत तो इधर मौत के साये में जवाँ होनेवाली जिन्दगी की कहानियाँ, उधर जमींदारी-उन्मूलन तो इधर कृतियों के नये उपनिवेशों का उन्मीलन। यह अटूट कला-साधना उनकी जीवन-शक्ति का प्रबल स्रोत थी और इसीसे मौत पर हँसनेवाला उनका मिजाज बना था। १९५३ के एक पत्र में उन्होंने लिखा है—उस पार की पुकार का इन्तजार है फिर भी 'हैं अभी अरमान बाकी'। ५८ की दुर्घटना के बाद, जिसमें दाहिने पैर की हड्डी अपनी जगह से हिल गयी थी, जमाने का अंधेरा कुछ और गहरा हुआ। जो सन् '४३ में पुराने मुहावरे को बदलकर कहता था—

जो आके न छाये वह बुढ़ापा देखा।
जो आके न जाये वह जवानी देखी।

वही अब यह कहने पर मजबूर था कि—

जमाने के हाथों से चारा नहीं है
जमाना हमारा तुम्हारा नहीं है।

लेकिन जमाने की गर्दिश उनके लेखन की नियति न बन सकी। १९६५ में 'बिखरे मोती' में अपनी बात यों कहते हैं—अब तो सत्तर के उस पार जा चुका—पचहत्तर का सिन है। आँखों में मोतियाबिन्द है—वैसा पढ़-लिख नहीं पाता। फिर भी साहित्य की सेवा ही तो अपनी एक दिशा रह गई—'अपना तो यही काशी अपना तो यही व्रज है।' ८१ साल की उम्र तक लिखते रहना, सो भी मुट्ठी भर हड्डियों और कमजोर सेहत के आदमी का, हिन्दी की एक विरल घटना है। एक संत से सुना है कि माँग आयु भी देती है। तो क्या राजा साहब की लम्बी उम्र का राज संयम और अरमान के अतिरिक्त यह था कि उनका लेखन माँग बन गया था? यह निष्कर्ष हमारी पीढ़ी को कितना बल देता है!

राजा साहब के अभिनन्दन में निराला परिषद्, कविता संगम और बिहार हिन्दी साहित्य-सम्मेलन द्वारा आयोजित समारोहों में सम्मिलित होने का सौभाग्य मुझे मिला है। ३ अगस्त १९६९ ई० को, भारतीय नृत्यकला-मंदिर में कविता संगम, पटना द्वारा आयोजित 'साहित्य को समर्पित एक दिन : राष्ट्रीय एकता को समर्पित एक साँझ' में पद्मभूषण डॉ० राजा राधिकारमण सिंह को उनकी ८० वीं वर्षगाठ के अवसर पर राज्यपाल नित्यानन्द कानूनगो द्वारा एक अभिनन्दन ग्रंथ समर्पित किया गया था। उसमें राजा साहब के व्यक्तित्व के अनुरूप ही हिन्दी और उर्दू के कवि सम्मिलित हुए थे। उस दिन की एक बात मुझे कभी न भूलेगी। नजीर बनारसी बहुत ऊँचे स्वर और नाटकीय ढंग से गंगा पर कविता पढ़ रहे थे और दाद भी पा रहे थे। तब तक मंच पर फिराक साहब आ चुके थे। जब उनकी बारी आयी तो फिराक साहब ने घूरते ही कहा—शायरी और चिल्लाहट में दूर का भी रिश्ता नहीं है। कबीर, तुलसी, मीरा किसी के भी पद शोर करके नहीं पढ़े जा सकते और बड़े अन्दाज से उन्होंने कुछ पंक्तियाँ कहीं जिनमें 'कुछ बात हो गयी है', 'रात हो गयी है', 'मात हो गयी है' आदि मुहावरों का ध्वनित व्यंजक प्रयोग हुआ था। मुझे बराबर लगा कि शोर के उस जमाने में भी कम-से-कम दो फनकार अभिव्यक्ति को दूरगामी लीक

देने के लिए एक सी भूमिका भर रहे हैं, फिराक साहब पद्य में और राजा साहब गद्य में—'जो भी आये, एक ढंग, से एक अंदाज से आये, बहका-बहका नहीं—नपा-तुला।'

बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्वर्णजयन्ती के अवसर पर होनेवाले अभिनन्दन में सम्मेलन के अध्यक्ष पं० रामदयाल पाण्डेय ने रोली लगायी, मैंने प्रधान मंत्री के रूप में गले में उत्तरीय डाला, अर्थमंत्री शंकरदयाल सिंह ने माला पहनायी और राज्यपाल नित्यानन्द कानूनगो ने 'अभिनन्दनपत्र' अर्पित किया। इस समारोह में बिहार और बाहर के साहित्यकारों और नेताओं के अतिरिक्त पुरी के शंकराचार्य भी उपस्थित थे। राजा साहब ने एक संक्षिप्त भाषण दिया था—हम तो आप के हैं बराबर और सम्मेलन—

अपना तो यही काशी, अपना तो यही ब्रज है।
अपना तो यही काबा, अपना तो यही हज है।

बस हमारी तो यही तमन्ना है कि छायी रहे आपके दिलों पर मस्ती और झूमती रहे उँगलियों की पोर पर लेखनी।

पिछले २५ मार्च को सवेरे अचानक मालूम हुआ कि राजा साहब नहीं रहे। पद्मभूषण डॉ० राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, एम० ए०, डी० लिट् का रात देहान्त हो गया। ८१-८२ साल की उम्र में देहावसान चौंकानेवाला नहीं होता, पर यह महज देहावसान न था, हिन्दी की गद्यशैली की एक ईर्ष्येय पीढ़ी का, जिसके बृहत्रयी थे राजा साहब, श्री रामवृक्ष बेनीपुरी और आचार्य शिवपूजन सहाय, दुखद अवसान था। दो तो पहले ही छिन चुके थे और अब अंतिम पाया भी टूट गया। इसलिए काफी अफसोस हुआ और इसलिए भी कि उनकी बीमारी की खबर तक न हुई। कैसे क्या हुआ? उदयराज जी को दूरभाषा करना जाने कैसा लगा। मित्रों से भी तत्काल कुछ मालूम न हो सका। सो गाड़ी निकाली, रास्ते में राजेन्द्र शर्मा जी को लिया और बोरिंग रोड पहुँचे। एक कमरे के फर्श पर पूज्यचरण राजा साहब का शव फूलों से ढँका हुआ बर्फ की पहरेदारी में रखा है। फूल चढ़ाये, प्रणाम किया। नर-कोयल, जो पंचम में गद्य गाता था, निश्शब्द पड़ा है, वह बुलबुल खामोश है जिसकी चहक गुलाब की क्यारी और बबूल की डाल पर एक-सी रहती थी। हवेली और झोपड़ी विभूति

और लाचारी, अभाव और विभव, कंकन की रुनझुन और कंकड़ की खड़खड़ जिसके समग्र संगीत के साज थे, आज चुप था कि कुछ अनकहा न रह जाय।

आने जानेवाले श्रद्धालुओं के लिए जगह छोड़कर बाहर लॉन में आ गया हूँ। अकेले-दुकेले आगंतुकों के बीच कल्पना भी आ गयी है। मैं देख रहा हूँ अनदेखे छात्र राधिकारमण को—ढेर-सी किताबों और संवेदना एवं श्रद्धा के हजारों सफों के बीच और जैसे वह अपने कॉलेजी नारे को दुहरा रहा हो—

मरेंगे हम किताबों पर वरक होंगे कफन अपना।

मैं देख रहा हूँ कि जिसकी भाषा में हिन्दी और उर्दू की शैलियाँ गलबाँही डाले रहती थीं उसके शव के चारों ओर मालती की क्यारी, गुलेलाला की किनारी, मलय-मर्मर की माधुरी, नसीमे बहार की शोखी, केसर की सुगंधि, पैंसी की रंगीनी, गंगा का जल, आबेजमजम के छींटे, संस्कृत के चन्द्रकांत और कौस्तुभ तथा फारस के याकूत और जमुर्रद जुड़ आये हैं।

मैं देख रहा हूँ कि एक सूफी उपन्यासकार वस्ल को जा रहा है और हिन्दू तथा मुसलमान उसके फूलों को बाँटने के लिए आपाधापी कर रहे हैं।

मगर कल्पना भी जैसे कलप रही है। जो मानता था कि साधना किसी वाद या राजनीति के सरोद का तबलची नहीं होती वह अपांक्तेय शैलीकार, सदा की भाँति, आज भी अपने माहौल में अकेला था। एक ऐसे इन्सान का शव जमीन में लेटा था, जिसे गुल तो गुल, खार से भी खार नहीं। बड़े लड़के का इन्तजार था, जब आयें तब अर्थी उठे। वे दिल्ली से आये और अर्थी उठी। बसंत के मौसम में शैली के ऋतुराज की अर्थी उठ रही है। क्या संयोग है! बसंत फिर आयेगा पर हमारा ऋतुराज वापस नहीं होगा। इस अर्थी पर इल्म का खजाना जा रहा है, हिन्दी का वह रहवर जा रहा है जिसने अपनी परंपरागत दार्शनिक गांभीर्य रखकर भी उर्दू का मैदान ले लिया था, जो मुहावरों के तेवर, वाक्यों के लय तथा शब्दों के व्यंजक बाँकपन की खोज करता रहा, जो जाने कहाँ-कहाँ से ईंट लाकर जीवन भर शैली का एक नया काबा बनाता रहा, वह दिलवर जा रहा है जो जरा मुस्कुराता था तो सबके सब मुस्कुरा पड़ते थे।

हमलोगों ने प्रस्ताव किया कि अर्थी सम्मेलन भवन होकर चले, पर देर हो जाने की वजह से ऐसा न हो सका। इच्छा थी कि शव को सम्मेलन-भवन की मौलसिरी के पास पल भर रखते जिसकी छाँव में राजा साहब के अनेक पात्र जीवनके कंटकित क्षण

जीते हैं; दरोदीवार से कहते—देखो, यह कौन जा रहा है, अंतिम सलामी दो; सभा-भवन में टँगी उनकी तसवीर को उनके पैताने रखते कि वह अपने चेहरे को अंतिम बार जीभर देख ले और यह भी देख ले कि बेतिया-अधिवेशन के अध्यक्ष के रूप में जिसका राजसी जुलूस निकला था उसकी यह अंतिम यात्रा कितनी मासूम पर कितनी भावभीनी है।

शवयात्रा सीधे बाँसघाट पहुँची। हमने सम्मेलन की तरफ से फूल और वस्त्र चढ़ाये। राष्ट्रभाषा परिषद् और हिन्दी ग्रंथ अकादमी की ओर से भी पुष्प अर्पित हुए।

दाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। गंगा में कुछ बुलबुले उठे जैसे आबेजमजम के छींटे गंगा के प्रवाह में मिलकर कुछ बोल रहे हों और गला भर आया हो।

घर आया। पलंग के सामने टँगी तसवीर पर नजर गयी। विरल तसवीर है। इतने साहित्यकारों का एक साथ मिलना कम देखा जाता है। कई पीढ़ियाँ हैं इनमें। एक पूरा उद्यान है। ये सब मुझे आशीर्वाद देने को किसी अदृश्य की अनुकम्पा से जैसे कृपापूर्वक आ गये थे। मगर मौत तो पीढ़ियों का ख्याल नहीं करती और कभी-कभी तो लगता है कि कीमती चीजों को ही पहले उठाती है। देखिए न, जो अब नहीं रहे वे हैं इस तसवीर में अभिभावक की तरह मेरे पीछे खड़े श्री कामता सिंह 'काम' और कविवर ब्रजकिशोर नारायण, मेरे दाहिने बैठे आचार्य शिवपूजन सहाय और कविवर गोपाल सिंह नेपाली तथा मेरे बायें बैठे आचार्य नलिन विलोचन शर्मा तथा राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह। सब-के-सब अपने-अपने फन के आचार्य कलाकार।

उदासी छँट नहीं रही है। एक किताब उठा लेता हूँ और राजा साहब के ये शब्द जैसे आश्वस्त करने लगते हैं—

देह जाती है, तुम नहीं जाते। नाम मिटता है, तुम नहीं मिटते। तुम एक होकर भी अनेक हो, अनेक होकर भी एक हो।

कैलाशपति वैरागी
वैरागी लेन, नीमघाट (खाजेकला) पटना-८

✣

आज मैं लेखकों की जिस श्रेणी में हूँ उन्हीं के आशीर्वाद से हूँ। उन्हीं के आशीर्वाद ने मुझमें लिखने को प्रेरणा दी और ऊँचा उठने के लिए साहस करते रहने का जोश भर दिया।

✣

प्यारे राजा साहब

सन् १९४९ की बात है, तब मैं पटना के एक प्रख्यात कॉलेज (बी० एन० कॉलेज) में मैट्रिक की परीक्षा पास कर नाम लिखा चुका था। बचपन से ही मेरे अन्दर कहानियाँ लिखने-पढ़ने का विशेष शौक था। १९४८ में रेडियो स्टेशन यहाँ खुल चुका था। उसके नाटक कार्यक्रमों में भी भाग लेता था।

परमपूजनीय स्वर्गीय राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी की कहानी मैंने अपने मैट्रिक की कोर्स में पढ़ी। उस कहानी के पढ़ने के उपरान्त मेरी आँखें आँसू से छल-छला गई तथा गरीबों के प्रति वास्तविक उदार भावना के होने का बीज पड़ा जो बड़ी तेजी से अँकुरने लगा।

उसी कहानी ने मेरे अन्दर कहानियाँ पढ़ने का विशेष शौक बढ़ा दिया। तब मैं राजा साहब जी की सारी कहानियाँ और उपन्यास ढूँढ़ कर पढ़ने लगा। इसके लिए मेरे पास पैसे तो इतने थे नहीं, क्योंकि मैं बड़ी ही गरीबी के दिनों से गुजर रहा था। अतः लाइब्रेरियों की शरण गया जहाँ मुझे परम पूजनीय राजा साहब जी की करीब-करीब सारी कृतियाँ देखने और पढ़ने का अवसर मिला।

मैंने कई बार चाहा कि अपने इष्ट लेखक, उपन्यासकार एवं कहानीकार परम पूजनीय राजा साहब के दर्शन करूँ पर भेंट करने का साहस मुझमें नहीं होता था। पता नहीं क्यों ? एक तो यह कि लड़कपन की अवस्था थी; बड़े आदमियों से, वह भी खासकर इतने बड़े और प्रतिष्ठित व्यक्ति से मिलने का साहस बटोरना मेरे लिये सम्भव नहीं हो सका। डर लगता था मैं कैसे बोलूँगा, क्या बोलूँगा, मेरी भाषा तथा व्याकरण में शायद यदि कोई अशुद्धि या त्रुटि हो तो वह मेरे प्रति क्या सोचेंगे ? शायद बात करें या यों ही टलावा दे दें।

कुछ दिनों के बाद बी० एन० कॉलेज की हरिश्चन्द्र सभा की ओर से एक नोटिस जारी हुई जिसमें सभी छात्रों से प्रतियोगिता के लिये कहानियाँ माँगी गईं। मैं तो प्रथम वर्ष कला का छात्र था। लिखना चाहता था पर भय लगा। कॉलेज में बी० ए० चतुर्थ वर्ष के मँजे हुए छात्रों के सामने क्या लिख पाऊँगा, कभी टिक नहीं सकता। फिर भी साहस बटोरकर एक कहानी लिख ही दी। जिसका शीर्षक था 'बेगारी'। भाषा भी वैसी ही सहज और मुहाबरेदार मैंने भरी थी, क्योंकि पूजनीय राजा साहब जी की रचनाएँ पढ़ने के बाद मेरी बोल-चाल तथा लिखने की सारी शैली मुहाबरेदार बन चुकी थी।

हरिश्चन्द सभा द्वारा आयोजित पुरस्कार-वितरण-हेतु समारोह का प्रबन्ध हुआ, जिसमें हमारे स्वर्गीय परम पूजनीय श्री राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी ही उसके अध्यक्ष के रूप में वहाँ उपस्थित हुए। उनके साथ डॉ० श्यामसुन्दर दास जी भी आए।

मैं अपने सभी सहपाठी छात्रों के साथ एकदम पीछे की बेंच पर बैठा था; आगे की ओर नगर के बड़े-बड़े प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा मुझसे सीनियर छात्रगण थे।

हरिश्चन्द्र सभा के अध्यक्ष प्रोफेसर श्री रामवुझावन सिंह जी मंच पर खड़े हुए तथा बहुत सारी बातें कहने के उपरान्त कहानी प्रतियोगिता के विषय में कुछ कहने लगे तब हमारे पूजनीय राजा साहब जी का ध्यान एक बार केन्द्रित हो गया।

प्रोफेसर रामबुझावन बाबू ने कहानी का सारांश बताते हुए मेरी कहानी को सर्वोत्तम कहानी घोषित करते हुए मुझे पुरस्कार लेने के लिए पुकारा। मैंने बार-बार इधर-उधर देखा शायद मेरे नाम का कोई दूसरा व्यक्ति हो।

तब राजा साहब ने मुस्कराते हुए मेरी ओर देखा, क्योंकि मैं वहाँ भय से जाने में सकुचा रहा था।

मैंने राजा साहब जी के हाथ से पुरस्कार प्राप्त कर अपने आपको इतना गौरवान्वित समझा जैसे धरती से उठकर स्वर्ग में पहुँच गया हूँ। क्योंकि मैंने जिन महान् पुरुष के दर्शन की अभिलाषा वर्षों से अपने अन्दर छिपा रखी थी, आज उन्हीं के कर-कमलों से पुरस्कार प्राप्त करने का अपना सारा स्वप्न साकार होते देख रहा था। यह मेरे लिए बड़े ही सौभाग्य की बात थी। पूजनीय राजा साहबजी ने प्रोफेसर रामबुझावन सिंह से मेरी कहानी की पाँडुलिपि माँगी और गौर से उसे देखने के बाद मेरी पीठ ठोकी तथा मुझे भविष्य के लिए आशीर्वाद देते हुए कहा—"इसी तरह लिखते जाना, खूब लिखना, लिखने से कभी जी नहीं चुराना, एक दिन तुम जरूर अच्छे और बड़े कहानीकार बन जाओगे।"

यह सुनते ही मेरी आँखों में प्रेमाश्रु छलछला पड़े। मैं एक फतिंगा सा व्यक्ति इतने बड़े महान् व्यक्ति के समीप कैसे पहुँच गया? उन्होंने मेरी पीठ ठोकी, आशीर्वाद दिया। यह सब भगवान की कृपा या मेरे पूर्व जन्म का संस्कार था। चाहे जो भी हो, पर इतना जरूर कहूँगा कि यदि भक्त के हृदय में भगवान के दर्शन की सच्ची भावना हो तो भगवान भक्तों के पास अवश्य चले आते हैं। कुछ ऐसी ही अनुभूति मुझे हुई। आज मैं लेखकों की जिस श्रेणी में हूँ उन्हीं के आशीर्वाद से हूँ, उन्हीं के ~~आशीर्वाद ने~~ मुझमें लिखने की प्रेरणा दी और ऊँचा उठने के लिए साहस करते रहने का जोश भर दिया। भगवान दिवंगत आत्मा को चिर शान्ति प्रदान करें। उनके आशीर्वाद हमें प्राप्त होते रहें। वह किसी न किसी रूप में नर को नारायण समझने की प्रेरणा देते रहें!

जगदीशचंद्र माथुर
४, लिटन लेन, नई दिल्ली

"पर भाई मेरे, अफसान-ए-हस्ती खत्म भले ही हो जाये, तर्जे-ए-अदा की झलकियाँ तो तुम्हारे मन-मुकुर में अब तक उमगेंगी ही। कितना ही भरमते रहो, बीते हुए के बियाबान में बाट तो हाथ लगने से रही। लेकिन याद रखो, हमारे नूपुर भले ही सूने पड़ गये, उनकी झंकार की पगडंडियाँ हम वहीं छोड़ आये हैं।"

जो झंकार की पगडंडियाँ छोड़ गये हैं....

बीसवीं सदी के प्रारंभ में आधुनिक हिंदी कहानी की जब बुनियाद पड़ रही थी तो एक ईंट किन्हीं राजसी हाथों ने भी रखी—'कानों में कंगना' जो प्रेमचंद की प्रथम कहानी 'पंच-परमेश्वर' से शायद तीन बरस पहले (सन् १९१०-११) में लिखी गयी।

तब से लेकर सन् १९६९ तक राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के ११ कहानी-संग्रह, ११ उपन्यास, ४ नाटक तथा अनेक संस्मरण तथा विविध रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं। बुनियाद की ईंटें ही नहीं डालीं उन हाथों ने, भवन में कंगूरों और शिखरों को भी रमणीय बनाया।

और, अनुपम गद्य-शैली का एक विलक्षण सेतु दिया,। सेतु इसलिए कि यह गद्य भारतेन्दु युग के मनोरम पर धुंधले होते हुए प्रासादों और वर्तमान गद्य-साहित्य की चक्करदार अट्टालिकाओं के बीच आवागमन का पथ है। मानो द्विवेदी युग के सीधे सपाट मकानों को नीचे छोड़ते हुए किसी ने ऊपर-ही-ऊपर गगन-वीथी बना दी हो—शोख रंगों में रँगी, फड़कते पदों में पगी।

अब वे हाथ थम गये, हमेशा के लिए।

एक विचित्र विचार मन में आया जब राजा साहब के देहांत की सूचना मिली। वे क्या कहते विदा की वेला के बाद, यदि उस पार से उनकी वाणी हम सुन पाते? शायद कुछ ऐसे—

"अफसोस करते हो?

"हुआ यहाँ तो न कि हमारी अंगुलियों की पोरों में लय, ताल और स्वर का जो तालमेल थिरकता था उसके उठान को संभालनेवाला न ताव रहा न चाव ! असल ख्वाब हो गया और ख्वाब असल। वह जो किसी ने कहा है न—

सुनता हूँ बड़े गौर से अफसान-ए-हस्ती,
कुछ ख्वाब, कुछ असल है, कुछ तर्जे अदा है।

"पर, भाई मेरे, अफसान-ए-हस्ती खत्म भले ही हो जाये, तर्ज-ए-अदा की झलकियाँ तो तुम्हारे मन-मुकुर में अब तक उमगेंगी ही। कितना ही भरमते रहो, बीते हुए के बियाबान में बाट तो हाथ लगने से रही। लेकिन याद रखो, हमारे नूपुर भले ही सूने पड़ गये, उनकी झंकार की पगडंडियाँ हम वहीं छोड़ आये हैं।"

हार मानता हूँ। राजा साहब की पैरोडी करना असंभव है, इसलिए कि उनकी शैली श्रमसाध्य नहीं, निरायास अभिव्यंजना है। मानो भोर की किरण झुरमुट पर पड़ने पर अगणित पंछियों की चहक शुरू होते ही रुकने का नाम ही न ले। एक के बाद एक उपमा, एक के बाद एक मुहावरे, उछलती, किलकती वाग्धारा। एक ही नमूना काफी है :

'बनारस में आकर भी बेला बेला ही बनी रही—बेला-सी कोमल, बेला-सी विमल; शरद के हास-सी मीठी, रसाल की कोपल-सी चिकनी; बालक के हृदय-सी सरल, मल्लिका के मुकुल-सी मंजुल; माता के आँसू-सी निर्मल, आरती की शिखा-सी उज्ज्वल; विधवा की मुस्कान-सी करुण, सती की छाती-सी कठिन; नववधू की लज्जा-सी मधुर, उषा के तुषार-सी सुन्दर। बिजली भी बिजली ही बनी रही—बिजली-सी चपल, बिजली-सी प्रबल; अँगूर की झाक-सी तीखी, नदी की बाढ़-सी भूखी; कामिनी के कटाक्ष-सी चुटीली, नृत्य की छंदलहरी-सी रसीली; पाजेब की झंकार-सी चंचल, कामना की किलोल-सी विकल; सावन के समीर-सी आतुर, मानिनी के सुहाग-सी प्रखर !'

निश्चय ही यह वाणी का विलास है, जिसके चामत्कारिक प्रवाह में घटना, विचार, यहाँ तक भाव भी गौण हो जाते हैं।

मुझे अर्से तक हैरानी रही कि राजा साहब पर यह नशा क्योंकर हावी हुआ ? और क्यों उतरा नहीं ?

पटना से इलाहाबाद तक का साथ : प्रसाद में चबेना और गुड़

एक छोटी-सी घटना से मुझे कुछ सुराग मिला। सन् १९५० के आसपास एक बार मैं पटना से दिल्ली की रेल-यात्रा कर रहा था। डिब्बे में देखा राजा साहब बैठे हैं। सन् १९३५ ही से मेरा उनसे स्नेह-संबंध रहा था। इलाहाबाद में उनके बड़े पुत्र बाला जी के सहपाठी होने के नाते। मुझ पर कृपालु तो थे ही, साहित्यिक समरुचि के कारण मुझे मानते भी बहुत थे। और, मेरे सरकारी अधिकारी होने का लिहाज भी रखते। इसलिए एक ओर मेरा उनसे पारिवारिक संबंध रहा, दूसरी ओर एक तरह की ओट भी रही। (यह फासला शायद बाला जी से भी रहा; उस जमाने में पिता और पुत्र के बीच एक तरह का फासला लाजमी था।) इसलिए घुलमिल कर बातचीत करने की नौबत कम ही आती। उस यात्रा में यह अवसर मिला—इलाहाबाद तक जहाँ राजा साहब को उतरना था। उनसे बातें हुईं खास तौर से बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् के बारे में जिसकी योजना मैं उन दिनों तैयार कर रहा था।

थोड़ी देर में देखा राजा साहब ने डिब्बे की सीटों के बीच नीचे दरी बिछायी। कुर्ता उतारा और आसन शुरू कर दिये। मैं दंग होकर देखता रहा। दिल्ली एक्सप्रेस चली जा रही है और राजा साहब हैं कि नियमित क्रमानुसार आसन किये जा रहे हैं। शवासन में एक-एक करके हरेक अंग को ढीला छोड़ना होता है और कुछ घड़ी के लिए निश्चेष्ट पड़े रहना होता है। रेल की पटरियों पर पहियों की आवाज और डिब्बे की हरकत होती रही पर राजा साहब निश्चेष्ट आँख मूँदे शवासन में लीन रहे।

मैंने बाद में आश्चर्य प्रकट किया। बोले, "मेरा नियम है, पक्का। घूमने भी जाता हूँ रोज बिला नागा!" थोड़ी देर बाद उन्होंने एक बरतन में से नाश्ता निकाला। देखा सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह खा रहे हैं चबेना और गुड़! मुझे भी प्रसाद मिला।

उस यात्रा में दो बातें मालूम हुईं। राजा साहब अपने बाहरी जीवन में समय के बहुत पाबंद थे। साथ ही अपनी निजी आवश्यकताओं—भोजन, कपड़े, रहन-सहन के साधनों को अत्यंत सादा और नियंत्रित रखते। इसी सिलसिले में जमींदारी के कामों में उनकी दत्तचित्तता और व्यावहारिक बुद्धि की अनेक कथाएँ सुनीं। वही नियमितता और मितव्ययिता डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन के नाते उन्होंने निबाही।

एक तरफ यह तस्वीर! और दूसरी ओर साहित्यकार राजा साहब की तस्वीर!

शवासन में निश्चेष्ट पड़े रहनेवाले राजा साहब बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् की मीटिंगों में कुर्सी पर पाँच मिनट भी स्थिर होकर नहीं बैठते थे। कुछ सुना, कुछ बोले और फिर गायब। दस मिनट बाद फिर कहीं से आकर मौजूद! एक चुटकी ली, एक फब्ती कसी और बाहर। जान पड़ती कि साहित्यकारों की लीलाओं की झलकियाँ तो लेना चाहते पर उनकी खातिर किसी प्रतिबंध में पड़ने की कोई इच्छा न थी। व्यावहारिक जीवन में संयमी राजा साहब, कल्पना और भावों के फेर में जब पड़ते तो उनकी बेताबी किसी बच्चे से कम न होती। कागज की छोटी-छोटी चिटों पर जब चाहा, जहाँ हुए, शब्दचित्र उतार कर जेब में रख लेते। यहाँ तक कि अखबारों के खाली मार्जिनों पर भी अनुपम शब्दावलियों के बेलबूटे खिंच जाते। और रात होते ही वे छिटपुट कागज के टुकड़े, जिन्हें चंचल प्रतिभा ने कामकाज के दौरान यों ही बटोर लिया था, उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं के रूप में खिल उठते।

'राम-रहीम' : एक चुनौती का उत्तर

'राम-रहीम' की प्रेस कापी की पृष्ठ संख्या थी १६८०। वे व्यास थे तो उनके पंडित लोग गणेश। बोलना शुरू करते तो ताँता बँध जाता। 'राम-रहीम' एक चुनौती के जवाब में लिखा गया। डॉ० सच्चिदानन्द सिन्हा ने एक बार कहा कि थैकरे के 'वैनिटी फेयर' के मुकाबले की हिंदी में कोई चीज नहीं। बात लग गयी और मन में घुमड़ने लगी। यह सन् १९३५ का जिक्र है। उससे पहले १५ बरस तक राजा साहब एकव्रती होकर अपनी जमींदारी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की चेयरमैनी में लगे रहे। गजब का जब्त, चरम तपश्चर्या। क्या वे पन्द्रह बरस पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति के लिए अर्जुन की समाधि के तुल्य थे?

लगा कि जो तरकश पन्द्रह बरस तक बंद रहा सन् १९३५ में डॉ० सिन्हा की वाणी की चुनौती पाकर ऐसा उन्मुक्त हुआ कि नावक के तीर की भाँति एक ही कशिश में सैकड़ों मर्मस्पर्शी बाण छूटने लगे। सपरिवार नैनीताल गये। साथ में सूरजपुरा स्कूल के पुराने अध्यापक श्री शिवमंगल सिंह को भी ले गये। स्वास्थ्य राजा साहब का बहुत खराब था। छोटे भाई कुमार राजीवरंजन प्रसाद सिंह की भी सख्त मनाही थी लिखने-पढ़ने की। सभी पुस्तकें और लिखने के सामान हटा लिये गये थे। जब कुमार साहब सो जाते तो अंधेरे में कोठी में से निकल कर राजा साहब आउट-हाउस में जाते ११ बजे के करीब। खास कर शिवमंगल सिंह को जगाते, उनकी कोठरी में पर्दे खींच

कर बत्ती जला देते और फिर लिखना शुरू करते और रात-रात भर लिखे जाते। बीच-बीच में औंधते हुए मास्टर साहब से पूछते जाते, "कहिए यह वाक्य ठीक है न ? यह मुहावरा जमेगा ?"

एक तरफ संयम, दूसरी तरफ लुका-छिपी, एक तरफ कड़ी और नियमानुसार दिनचर्या, दूसरी तरफ बेरोक और बेलगाम मन की मौज, और कलम की दौड़। यही रहस्य था राजा साहब के व्यक्तित्व का। काया और दैनिक कर्म, और अंतस् एवं भावुकता—दोनों ने एक दूसरे को पूरक बनाया, नतीजा यह हुआ कि जैसे पुराने बिगड़े रईस एक ओर जमींदारी और शिकार में तत्परता और व्यावहारिकता दिखाते और दूसरी ओर विलास, मदिरा-पान और वारांगना-विनोद में सराबोर होते जाते, वैसे ही हमारे राजा साहब ने सराबोर हो जाने की ठानी शब्द, कल्पना और वाणी के विलास में। ललित शब्दावलियाँ ही उनकी वारागनाएँ थीं, मुहावरों की फुहारें ही कोठे पर के इशारे थे। चंचल पदों के झरने ही मजलिस के बीच झनकते नूपुर, ठनकते मृदंग, भौंहों के अलस खिंचाव, मुस्कानों के अनवरत आमंत्रण थे। थाम ही न पाते थे राजा साहब मानस के टूटते बाँधों से निकलते प्रवाह को—

'बेला, तुमने जीवन में कभी प्रेम नहीं पाया। तुमने आज तक पुरुष का काम देखा, उसका प्रेम नहीं देखा। काम विष है, प्रेम पीयूष। काम तोड़ता है, प्रेम जोड़ता है। काम आग है, प्रेम त्याग। काम शैतान का अट्टहास है, प्रेम देवता का निर्माल्य। काम में अनुकंपा नहीं होती, प्रेम में वासना नहीं होती। काम चंचल है, प्रेम अचल। काम क्रांति है, प्रेम शांति। काम कलुष है, प्रेम निर्मल...प्रेम प्रकृति का अनुपम दान है। मैं इसी मृत्युंजयी प्रेम के सहारे तुम्हारे जीवन में नवीन जीवन, तुम्हारे प्राण में नवीन प्राण, तुम्हारे यौवन में अभिनव यौवन भर दूँगा।'

कौन-सी वह कसौटी थी जिस पर झट-से शब्दों के कांचनखंड राजा साहब कस लेते थे—इतनी तेजी से ? एक बार यह चर्चा मैं कर रहा था राजा साहब के पारिवारिक सुहृद श्री बालेश्वर प्रसाद से। श्री बालेश्वर प्रसाद आजकल (१९७१) बर्मा में भारत के राजदूत हैं। अर्से से मेरे मित्र हैं। राजा साहब और बाला जी के जरिये सन् १९३९-४० में मेरा उनसे पहले परिचय हुआ। बालेश्वर बोले, "तुम नहीं जानते ? राजा साहब तो हारमोनियम पर अपना गद्य गा सकते हैं।" बालेश्वर की बातों में अक्सर

अतिरंजना रहती है। लेकिन कई बरस बाद बिहार के हाजीपुर नगर में विशाल जनसमूह के सम्मुख राजा साहब को भाषण देते सुना। सन् १९४८ की बात है, बिहार का प्रादेशिक पुस्तकालय सम्मेलन था। तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री श्रीकृष्ण सिंह सभापतित्व कर रहे थे। सचमुच लगा मैं गद्य नहीं सुन रहा था। आरोह और अवरोह, ताल और लय, यहाँ तक स्वर-शृंगार यानी तानें और मुरकियाँ तक उस गद्य में ध्वनित हुईं। सारा मजमा मंत्र-मुग्ध था। बिहार की जनता—खास तौर से हाजीपुर की—राजनीतिक भाषणों की आदी है। ऐसी जनता के विशाल समूह को चारों ओर से राजा साहब के साहित्यिक गद्य ने मानो जादू की छड़ी से बाँध लिया।

गद्य-शैली में सन्निहित गीतकारिता

वह भाषण कला नहीं थी ; वह तो गद्य-शैली में ही सन्निहित गीतकारिता थी। लगा कि राजा साहब लिखते समय ही आतंरिक गीतात्मकता से परिचालित होते थे। अनजाने ही मानो गद्य लिखते समय शब्दों और वाक्यों को संगीत-निबद्ध करते जाते थे। इसीलिए पढ़ते समय भी राजा साहब की वाणी संगीतमय जान पड़ती। उस दिन राजा साहब को सुनते-सुनाते सहसा एक और आवाज की याद मन में खनक उठी। बहुत पहले शायद सन् १९३५ में प्रयाग में रवीन्द्रनाथ ठाकुर को भाषण पढ़ते सुना था। अंग्रेजी गद्य भी मानो भारतीय स्वर-लहरियों पर प्रवाहित हो रहा था। उन्हीं रवीन्द्रनाथ की छत्रछाया में राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने बचपन में काव्य और गीत से संपर्क पाया। पिता राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह रवीन्द्रनाथ के मित्र भी थे और कलकत्ता में उनके पड़ोसी भी। 'चित्रागंदा' का ब्रजभाषा पद्य में उन्होंने अनुवाद किया। अक्सर अपने पुत्र राधिकारमण को कलकत्ता में रवीन्द्रनाथ के जिम्मे छोड़ कर गाँव चले जाते। यों रवीन्द्रनाथ की भावावेशमयी शैली का आस्वादन मिला।

शायद उन्हीं दिनों दो शौक उन पर हावी हुए। किसी बुजुर्ग ने उन्हें देखा। इंटरमीडियेट में पढ़ते थे, अवस्था छोटी थी। देखा कि यह युवक रात-रात भर कुछ लिखता है और दूसरे-तीसरे दिन उसे फाड़ देता है। बुजुर्ग ने पूछा, क्या कर रहे हो ? उत्तर मिला अनुवाद। किस चीज का अनुवाद ? बंगला पद्यों का और बंगला ग्रंथों का। लिखते हो फिर फाड़ देते हो क्यों ? जवाब मिला, अभ्यास के लिए। बहुत

दिनों तक यह खब्त सवार रहा कि अभ्यास के लिए बंगला पद्यों का और काव्यात्मक ग्रंथों का अनुवाद करते रहे। इसी खब्त का प्रभाव शायद आगे चल कर उनकी शैली पर पड़ा।

कुछ समय बाद दूसरा शौक चर्राया। सीधे बंगला में कविता लिखना शुरू की। रवीन्द्रनाथ के कृतित्व का प्रभाव तो था ही, कलकत्ता का सजग और सक्रिय साहित्यिक तथा राजनीतिक वातावरण इस भावुक युवक की लेखनी को तत्पर करने के लिए काफी था। यों पहली काव्यात्मक रचनाएँ बंगला पद्य में हुईं और कुछ अर्से ही में खासा हस्तलिखित काव्य-संग्रह तैयार भी हो गया।

तभी एक दुर्घटना घटी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, विपिचन्द्र पाल और अरविंद घोष के भाषण बीडन पार्क में जाकर सुनने लगे। न सिर्फ उन भाषणों में चुनौती थी बल्कि काव्यात्मक तत्त्व भी। अरविंद की पत्रिका 'वंदेमातरम्' के नियमित पाठक भी हो गये। शीघ्र ही आरा के अंग्रेज कलक्टर को खबर हुई। एक दिन युवक राजा साहब डी० एल० राय के शाहजहाँ के रिहर्सल में हिस्सा लेने गये। लौटने पर देखा कि उनके मकान के सामने घोड़ा-गाड़ी पर सब सामान लादे हुए उनके अभिभावक मास्टर साहब इंतजार कर रहे हैं। कलक्टर की तरफ से हुक्म आया और कलकत्ता छोड़ कर आगरा भेज दिये गये।

आगरा आकर जब अपनी पुस्तकों इत्यादि की छानबीन की तो 'वंदेमातरम्' की फाइल तो नदारत मिली ही उसके साथ ही बंगला में लिखी गयी कविताओं का संग्रह भी। वे कापियाँ भी जिनमें उन्होंने न सिर्फ बंगला बल्कि अंग्रेजी, उर्दू और ब्रजभाषा में भी कविताएँ की थीं।

यही दोनों बातें यानी अभ्यास के लिए बंगला काव्य के अनुवाद करना और उनको नष्ट कर देना और नवोदित कवि की प्रिय रचनाओं का जबर्दस्ती अवसान, ये दोनों अनुभव मानो राजा साहब के अर्धचेतन मन में घर कर गये। अर्से तक लेखनी अवरुद्ध रही। लेकिन फिर से सक्रिय हुई तो उनके अर्धचेतन मन ने पद्य की ओर जाने से उन्हें रोका।

परन्तु, साथ ही परिस्थितियों ने उनके कवित्व को जो बरबस दबाया था, वह प्रस्फुटित हुआ उनकी गद्य-शैली में। यही कारण है कि उनकी गद्य-शैली मेरे मित्र

बालेश्वर प्रसाद के शब्दों में हारमोनियम और तबले के अनुकूल ताल और लय से युक्त हो गयी।

कहने का तात्पर्य यह कि जैसा हर असाधारण व्यक्तित्व के साथ होता है मन में भरी हुई अनजानी गाँठें व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति शैली निर्धारित करती है। बाला जी ने बताया कि अंतिम दिनों में एक बार किसी पुराने पंडित जी ने जब राजा साहब की आती जाती दशा देखी तो जोर से कहा कि राजा साहब, राम-नाम लीजिए। कुछ देर चुप रहने के बाद राजा साहब ने बोलना शुरू किया। न जाने किन गहन गुफाओं से आती हुई ध्वनि के समान 'विनय पत्रिका' के पद एक के बाद एक उन्होंने सुनाने शुरू किये। यह बात मृत्यु से कुछ ही दिन पहले की है।

बाला जी से यह वृत्तांत सुन कर मैं सोचने लगा कि शायद राजा साहब का अंतस् भक्ति-भाव से अभिभूत था। निश्चय ही इसके अनेक संकेत उनकी रचनाओं में मिलते हैं। किंतु बात शायद इतनी सहज नहीं। मैंने ऊपर लिखा है कि राधिकारमण प्रसाद सिंह भारतेंदु युग और वर्तमान युग में एक सेतु के तुल्य हैं जो द्वितीय युग के इतिवृत्तात्मक और अतिनैतिक (प्यूरिटैनिकल) वातावरण से परे रहा। भारतेंदु की भांति राजा राधिकारमण प्रसाद की भक्ति-भावना भी सौंदर्य-अनुभूति की उपज थी। राजा साहब की रचनाओं में स्पष्ट है कि उन्होंने इंद्रियजन्य सुख की अवहेलना नहीं की। मैं तो जब उनके संपर्क में आया वे अधेड़ उम्र से अधिक के हो चुके थे। मैंने शायद ही कभी उनके मुख से अध्यात्म की बातें सुनीं। बातें होतीं तो उनमें रसात्मक पुट होता, उनमें मानवीय सुख-दुख, तृप्ति-अतृप्ति और वासना की गंध भी होती। यही उनकी रचनाओं में भी है, यही उनके व्यक्तिगत अनुभवों में भी। सन् १९२७ से उनकी रियासत में काम करनेवाले श्री राधाप्रसाद ने लिखा है कि सन् १९४० में जब राजा साहब के साथ उन्हें कलकत्ता रहना पड़ा तो एक कार्यक्रम हुआ करता था लेक पार्क में जाना। पार्क के बीच में एक रमणीक झील के तट पर रोज संध्या वहाँ के फैशनेबुल नर-नारी सैर करने के लिए निकलते थे। इत्र और सेंट से भीगी साड़ियों से निकलती हुई सुगंध श्री राधा प्रसाद के शब्दों में 'वातावरण को मदमत्त बनाती थी' वे। लिखते हैं, 'ऐसा मालूम पड़ता था मानो मैं किसी देवता की तरह इंद्र के साथ नंदन कानन की सैर कर रहा हूँ। झील में किश्तियों पर युवतियों का धीरे-धीरे खेलना भी एक नजारा था। यह दृश्य राजा साहब को पसंद आया। यह बात मुझे पीछे मालूम हुई।

खोंमचेवालों का चटपटा भाजा चखने के बहाने राजा साहब झील के एक ओर बैठ जाते थे। गाहे-बगाहे किश्तियों की ओर निगाहें डाल कर अकबर, गालिब के मौजूं शेर सुना कर इस नजारे को और दिलचस्प बनाते थे।'

मुमकिन है लोग राजा साहब की इस प्रवृत्ति में उनके सामंती वातावरण का प्रभाव खोजें। बात ऐसी नहीं थी। शायद सही तो यह है कि राजा साहब की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ उतनी ही आधुनिक थीं जितनी आजकल के शरीरोपासक, इंद्रियसुख के उन्नायक लेखकों की।

'साँवनी समाँ' पुस्तक में की उनकी ये पंक्तियाँ इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती हैं : "घर के आँगन में तुलसी के तले दीप जो दिखाएँ, मगर दिलोदिमाग को तरोताजा रखने के लिए हम चमन की कामिनी की सुगंध जरूर ढूँढ़ते हैं। रस का प्यासा भौंरा कभी तुलसी की डाल की ओर नहीं झुकता...जिसे छाती फाड़ कर घर के धंधों में खटना है, उसकी छाती के रोयें मधुमास में सुगंधित नहीं होते...कामना-सी चंचल, वेदना-सी विकल, डर की डोरी से उसके पर तो बँधे थे जरूर, पर मन की उड़ान और लहू का दौरान लिहाज की आड़ में बराबर जारी था।"

इसी तरह उनके उपन्यास 'चुम्बन और चाँटा' में वेश्या गुलाबी के जावन की कहानी है। अक्सर समालोचक गुलाबी की आदर्शोन्मुखता की ओर ध्यान खींचते हैं। पर उस आदर्श के साथ-साथ पाठक के ऊपर जो सबसे अधिक असर पड़ता है वह है रसात्मकता का। 'तुम्हारे सीने में रस का जो कौसर है उसका पता हमें न होता तो कन्हैया तुम्हारा नाम उठाना तो दूर, तुम्हें पास फटकने नहीं देता। तुम्हारी जाति वेश्या है, पेशा तुम्हारी जीविका, उससे क्या? तुम्हारी आँखों में जो हया है, तुम्हारे अंदर जो दर्द का दरिया,—कोई और जाने न जाने, हम तो पल में पा गये पता उस अगाध निधि का। फिर क्या, बिक गये तुम्हारे हाथों हम।' और भी : 'लद गये वे दिन जब सुंदरम् का आधार धन-धाम था, रूप-रंग था, वर्ण था, पद या नाम था; उतर गया वह दृष्टिकोण, उजड़ गया वह सौंदर्य का चमन, आज सुंदरम् का निखार तो त्याग और सेवा का संचार है। यही बात सुंदरम् है, जिसकी एक हथेली पर सत्यं है तो दूसरी पर शिवं भी।'

वंश से सामंती, जीवन से संयमी और दृष्टि से आधुनिक

हिंदी के समालोचकों के लिए चुनौती यही है कि व्यक्तिगत जीवन में पूर्णतया

संयमी, वंश से सामंती, इस लेखक की दृष्टि कुछ मानी में नितांत आधुनिक है। वह शरीर को दुत्कारता नहीं, उसे सौंदर्य की बुनियाद मानता है। इसी 'चुम्बन और चाँटा' में उनके कुछ वाक्य द्रष्टव्य हैं : 'विषयों का सेवन बुरा नहीं, बुरा है उनमें मन का रमण। क्रिया-शुद्धि रही न रही, पर भाव-शुद्धि हो तो जिंदगी की सारी क्षति एक ओर, यह निधि एक ओर'...'तन न भी दे पाओ वैसा, तो कोई बात नहीं—मन दिये रहो, वही मुख्य है। तन से रहे लोक की सेवा, मन में प्रभु की वंदना, मन ही मंत्र है।'

अब तक जिन समालोचकों ने राजा साहब की रचनाओं पर मत प्रकट किया है, वे शायद स्थूल रूप से शैली की विविधता और प्रवाह, तथा तत्कालीन आदर्शोन्मुखता पर जोर देते रहे। शायद भविष्य का समालोचक उनकी रचनाओं में उस अर्धचेतन की अठखेलियों को देख पायेगा जो भारतेंदु तथा प्रारंभिक रवीन्द्रनाथ के युग में उनके मन पर छाप छोड़ गयी थीं।

शायद सन् १९५१ या ५२ की बात है। पटना के असेंबली रेस्ट हाउस में तीन व्यक्तियों को मैंने कुछ पांडुलिपियों पर जुटे हुए देखा। वे थे पंडित सुंदरलाल, स्वर्गीय डॉ० यदुवंशी और राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह। जुटे हुए थे हिंदुस्तानी कोष तैयार करने में। 'हिंदुस्तानी'! आज तो हिंदुस्तानी का जिक्र करना भी मानो किसी बीते युग की प्रतिध्वनियों को दुहराना मात्र होगा। किंतु गाँधी जी के जिन दो आंदोलनों में राजा साहब विशेषतः रमे, वे थे हरिजन आंदोलन तथा हिंदुस्तानी का का विकास। हिंदुस्तानी के प्रति उनकी रुचि अपने पिता के साहित्यिक दरबार के रंग देखने में ही बनी थी। वह समय था, जब बंगाल और बिहार दोनों एक थे। गोष्ठियों में हिंदी, उर्दू, बंगला और अँग्रेजी सब साथ-साथ चलती थीं। राजा साहब ने 'तब और अब' में लिखा है—"लीजिए विषय एक है, हमारे मियाँ साहब फारसी का एक शेर पढ़ते हैं, उसी भाव का संस्कृत का श्लोक हमारे पंडित जी सुना देते हैं, कवि इंदु वही चीज हिंदी में पिरो कर लाते हैं और हमारे पिता के इशारे पर घोष साहब बंगला और अँग्रेजी में उसी जोड़-तोड़ का ढूँढ निकालते हैं।"

संयम, आत्मनियंत्रण और विनोदशीलता के प्रतीक

राजा साहब की विशेषता यही थी कि न तो लिखते समय और न बोलते समय उन्हें किसी प्रकार का आयास करना पड़ता था। उनके बड़े-बड़े सिद्धांत भाषणों तथा

वार्त्तालाप के दौरान उनके मुख से निकले। नागरी प्रचारणी सभा, आरा के उत्सव में भी हिंदुस्तानी के बारे में उन्होंने जो कहा उसका एक वाक्य यह था, "हिंदी हिंदू हिंदुस्तान की तंगनजरी नहीं फबती। वह पा गयी अब राष्ट्रभाषा का पद। और जब पद ऊँचा है तो दिल भी ऊँचा रखना है निरंतर। आखिर पद पाया तो क्या जब उसका प्यार न पाया। और, पद के साथ विनय चाहिए, मिल्लत। शान नहीं, गुमान नहीं। हम तो चाहते हैं कि क्या हिंदू, क्या मुसलमान, क्या ईसाई और फिर क्या पंजाबी, क्या मदरासी और क्या बंगाली सभी की जबान पर हिंदी का गुल खिले।"

यह बहुज्ञता हिंदी में बहुत ही कम लेखकों में है। यों बंगला और उर्दू जानने-वाले अनेक लेखक हैं, लेकिन अपनी रचनाओं में, उर्दू, फारसी, संस्कृत, बंगला सब रंगतें देना, यह केवल राजा साहब ही कर पाये। उन्होंने अकेले ही हिंदी साहित्य के इतिहास को एक अनूठा अध्याय दिया। कौन जाने भविष्य की हिंदी इस मिली-जुली अभिव्यंजना में नये सिरे से देशव्यापी बन सके ?

संयम और आत्मनियंत्रण करनेवाले राजा साहब बात-बात में विनोदशीलता कायम रख सकते थे। यह भी उनके द्विवेदी युग में एक अपवाद होने का सबूत है। बीसवीं सदी के प्रारंभिक हिंदी साहित्य की विशेषता थी निम्न मध्य वर्ग की सृजन-शीलता का बराबर आक्रोशपूर्ण रहना। बंगला में आधुनिकता का उदय हुआ १९ वीं सदी में अभिजात वर्ग के नेतृत्व में। इसलिए उसमें विविधता अधिक है, और विनोद-शीलता भी। उर्दू दरबारी होने के कारण परिहासपूर्ण बराबर ही रही। किंतु, हिंदी के तत्कालीन आधुनिक साहित्य में उर्दू के सामंती वातावरण के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी थी और दयानंद तथा गाँधी के युग में प्राप्त प्योरिटिनिजम तथा शरीर के प्रति विमुखता का उदात्तीकरण भी। इसीलिए तत्कालीन साहित्य में विनोदशीलता अत्यंत न्यून है। किंतु, राजा साहब कभी आक्रोशपूर्ण शैली में लिख ही न पाये। उन्होंने आंदोलन का झंडा उठाया ही नहीं। किसी वाद के प्रचार के लिए उन्होंने अपनी बुनियादी विनोदशीलता को खोया नहीं।

हाजीपुर में, जिस भाषण का जिक्र ऊपर मैंने किया है, उस सभा की अध्यक्षता कर रहे थे तत्कालीन मुख्यमंत्री और कांग्रेस के बड़े भारी नेता स्वर्गीय श्रीकृष्ण सिंह जी, जो राजा साहब के विशेष मित्र थे। उस भाषण के दौरान एक वाक्य जो राजा

साहब ने कहा, क्लासिक हो गया। 'खादी के कुर्ते में भी जेब होती है।' बिहार भर में इस वाक्य की चर्चा रही। लोगों ने यहाँ तक कहा कि कांग्रेस के कुछ मंत्री लोग उनसे नाराज हो गये। राजा साहब ने नर्वस होने का कुछ एक्टिंग भी किया। किंतु, असल में इस तरह की छेड़छाड़ करने में उनको हमेशा लुत्फ आता था। श्री नंदकिशोर तिवारी ने लिखा है कि एक महाविद्यालय के वार्षिकोत्सव में राजा साहब सभापति बन कर आये और तत्कालीन केन्द्रीय उप-अर्थमंत्री श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा प्रधान अतिथि के रूप में। राजा साहब ने श्रीमती सिन्हा के आगमन के लिए बधाई के रूप में अपने प्रारंभिक भाषण के दौरान कुछ चुटकी लेते हुए शेर सुनाए। चूँकि तारकेश्वरी जी को भी शेर सुनाने का शौक है तो उसके जवाब में उन्होंने भी कुछ शेर पेश किये। तब क्या था, दोनों में होड़ लग गयी और सभा का बहुत मनोरंजन हुआ। अन्य प्रोग्राम के बाद यह निश्चित हो चुका था कि अंत में राजा साहब एक और भाषण देंगे, जिसकी विद्यार्थियों को विशेष प्रतीक्षा थी। किंतु, इससे पहले कि राजा साहब बोलें, तारकेश्वरी जी प्रोग्राम के बीच में ही माफी माँग कर चल दीं। उनका चलना था कि राजा साहब ने माइक उठाया और दो-तीन शेर सुनाते हुए अंत में यह भी कहा :

"नजरों से बच कर चले जाइएगा,
पर दिल से निकल कर कहाँ जाइएगा।"

दरवाजे पर से श्रीमती सिन्हा ने यह सुना और सारी सभा अट्टहास से गूँज उठी।

साधारण वार्तालाप में चुटकियाँ लेना जिसे अंग्रेजी में 'लेग पुलिंग' कहते हैं उसमें निश्चय ही राजा साहब सिद्धहस्त थे। स्वर्गीय डॉ० विश्वनाथ प्रसाद के एक छात्र अपना एक नाटक राजा साहब को दिखाने गये और उसे छपाने के लिए आग्रह किया। राजा साहब ने सांकेतिक रूप में बस इतना कहा, 'ये भरने के दिन हैं उभरने के नहीं।' सन् १९३७ में डॉ० महेश नारायण जब छात्र थे तो उनकी ऑटोग्राफ बुक पर जो वाक्य लिखा गया कितना सहज और अत्युक्तिपूर्ण है, 'जो सत्य के लिए सर पर कफन बाँधता है उसी के सर पर सेहरा बँधता है।'

राजा साहब के बारे में कई थ्योरियाँ इस लेख में मैंने झाड़ दी हैं। उनके अलावा एक और सही। राजा साहब को जब पद्य से नाता तोड़ना पड़ा, तब उन्हें नाटक की ओर झुक जाना चाहिए था, क्योंकि राजा साहब की शैली में बहुत कुछ नाटककार

की अप्रत्याशित को हठात् प्रकट करने की अद्भुत व्यंजना है। जब कलकत्ता में इंटरमीडियेट में पढ़ते थे तभी डी० एल० राय के नाटकों में हिस्सा लेने लगे थे। इसके बाद सन् १९१०-११ में जब वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी० ए० के छात्र थे तब डॉ० गंगानाथ झा के प्रेरणास्वरूप उन्होंने सरस्वती पूजा के अवसर पर सन् १९११ में 'नये रिफारमर' नामक एक प्रहसन लिखा। यह प्रहसन उन्होंने चार-पाँच दिनों के अन्दर ही तैयार कर दिया। और आठ-दस दिन में रिहर्सल के बाद वह प्रस्तुत किया गया। उसमें एक अभिनेता श्री महावीर प्रसाद भी थे जो बाद में बिहार के एडवोकेट जनरल हुए। राजा साहब मुझे बताया करते थे कि 'नये रिफारमर' में एक ऐसा प्रसंग था जब श्री महावीर प्रसाद को एक बार तो नकली मूँछें लगानी पड़ीं थीं और दूसरी बार नाटक ही में दर्शकों के सामने उन मूँछों को हटा कर मॉडर्न बनना पड़ता था। यह नाटक बहुत अर्से तक गायब रहा। किन्तु सन् १९६५ में ५४ वर्ष के पश्चात् काशी नागरी-प्रचारणी-सभा में संग्रहीत एक मासिक 'मनोरंजन' की पुरानी फाइल में से प्रो० शत्रुघ्न प्रसाद ने इस नाटक को खोज निकाला और यह 'नई धारा' में बाद में प्रकाशित भी हुआ।

...और नाटककार भी

मैं अक्सर उनसे यह अर्ज करता रहता था कि वे नाटक लिखें। फलस्वरूप उनके तीन नाटकों का नया संग्रह बाद में प्रकाशित हुआ था। उसमें 'नजर बदली, बदल गये नजारे', 'अपना-पराया' और 'धर्म की धुरी' ये तीनों सामाजिक नाटक शामिल थे। इन नाटकों में चाहे अन्य तत्त्व न हों, संवाद की शैली निश्चय ही दर्शकों के लिए प्रभावोत्पादक है। दो उदाहरण काफी होंगे : 'मैं तुमसे सर नहीं माँगता, हृदय माँगता हूँ। वह बेचारी तो मरने आयी, समाज उठा है, उसे जिन्दा दफनाने। अब मरी तब मरी। बस सिर पर सिंदूर रख कर उसमें नयी जान डाल दो।'

'कल तक जमींदार जागीरदार की वर्षगाँठ पर एक-से-एक बनी-सँवरी वारांगनाएँ आती रहीं महफिल में रंग छलकाने, आज मिनिस्टर और लीडर की वर्षगाँठ पर कॉलेज की छात्राएँ आ रही हैं; उनसे बीस ही हैं न? पिला रही हैं वही नशीली अंगूरी। सच है, रस का पीयूष बदलता है, रस की प्यास नहीं बदलती।'

कथोपकथन की नाटकीयता राजा साहब के उपन्यासों, कहानियों और संस्मरणों को भी नाटक-झाँकियों की लड़ी बना देती है, 'पुरुष और नारी' का एक वार्तालाप है—

अजीत ने पूछा, "तेरे पास बीड़ी है ?"

"बीड़ी तो है।"

"हाँ, तेरा नाम तो पूछा नहीं।"

"नाम है बिंदी।"

"माँग भी कभी भरी थी ?"

"उँहूँ, न माँग भरी, न गोद ! आज गोद भरी होती तो इस गली में आती ?"

"सो क्यों ?"

"आँखों में पानी न होता !"

मैंने राजा साहब की रचनाओं को लेकर ही उनके जरिये उनके व्यक्तित्व में झाँकने को कोशिश की है। किंतु इस प्रकार के विश्लेषणात्मक अध्ययन का समय शायद अभी नहीं आया है। कभी-न-कभी मुझे विश्वास है कि इतिहास में यह भी एक निराला अध्याय बनकर रहेगा।

मुझे मलाल केवल यही रहा कि उनके निकट होते हुए भी पिछले तीन-चार वर्षों में मैं उनके दर्शन भी नहीं कर पाया। सन् १९६७-६८ में जब मैं पटना जाया करता था तो अपने जिन मित्र के पास ठहरता था, उनके निकट ही राजा साहब रहते थे। ज्यों ही समाचार मिलता, आते अवश्य। लेकिन मैं सरकारी काम-काज में दफ्तर में इतनी देरी कर देता था कि उनके घूमने के समय उनसे मुलकात नहीं हो पाती। वे केवल इतना ही कह जाते, "कह देना, हाजरी देने आया था।" मैं पानी-पानी हो जाता। मैंने तो उनसे पाया ही, कभी दे नहीं पाया कुछ भी। केवल एक बात याद आती है, एक छोटा-सा रहस्य। जब उनकी पुस्तक 'पूरब और पच्छिम' प्रकाशित होने को थी तो उन्होंने तत्कालीन मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिंह जी से भूमिका के लिए अनुरोध किया। श्री सिंह ने मुझसे कहा, "कुछ पृष्ठ लिख दो, तो मेरा काम बन जाये ! मैं तो

साहित्यकार हूँ नहीं।" मैं कभी भी इससे पहले 'घोस्ट राइटर' यानी दूसरों के लिए लिखनेवाला नहीं बना था। किंतु यहाँ तो परिस्थिति ही इतनी निराली थी। आदेश मिला था अपने मुख्यमंत्री से और पुस्तक थी अपने महत् उपकारक राजा साहब की; झट-से दो-तीन पृष्ठ की भूमिका लिख दी।

उसका एक वाक्य अब भी याद है, 'फलस्वरूप 'पूरब और पच्छिम' हमारे युग का अंतर्मुखी दिग्दर्शन है और 'रंगभूमि' बहिर्मुखी।' पता नहीं, कभी यह फुरसत मिलेगी कि राजा साहब के ऊपर विस्तार से लिख सकूँ। किंतु, कभी-कभी सोचता हूँ कि उनका कृतित्व समालोचना की अपेक्षा नहीं करता। जितने दिन जिये भरपूर होकर; जब गये तो अपने पीछे जो कुछ छोड़ गये वह प्रचुरता और विविधता का एक निराला मानूमेंट है।

['धर्मयुग' से साभार]

बड़ा घर कोई जरूरी नहीं कि सुख का घर भी हो; बड़ा आदमी कोई जरूरी नहीं कि दिल का भी बड़ा हो। अक्सर बड़े घरों के भीतर क्षुद्रता बढ़ी रहती है; अक्सर भरे घरों के भीतर शून्यता भरी रहती है। राजा होने से कहीं ज्यादा जरूरी बन्दा होना है। सर पर ताज की तलाश से कहीं ज्यादा जरूरी आदमी के लिबास की तलाश है।

—राधिकारमण

देवेन्द्रनाथ शर्मा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

व्यवहार में सहृदयता, वाणी में विदग्धता, मुद्रा में सहजता उनके ऐसे गुण थे जो संपर्क में आनेवाले व्यक्ति को अनायास आत्मीय बना देते थे। उस आत्मीयता के सूत्र में मुझे भी बँधते देर नहीं लगी।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी से मेरा परिचय सन् १९३९ में हुआ। उस समय मैं संस्कृत एम० ए० का छात्र था और स्नातकोत्तर छात्रावास, रानीघाट (पटना) में रहता था। मेरे एक मित्र श्री बाँकेबिहारी सिंह हिन्दी एम० ए० के छात्र थे। हम दोनों मोतिहारी जिला स्कूल में आठवें क्लास से सहपाठी रह चुके थे। अतः एम० ए० में भी हम एक दूसरे के बहुत निकट थे। एक दिन बाँके बाबू ने एक पुस्तक मुझे दी और पढ़ने की जोरदार

राजा साहब को स्नेहश्रद्धापूर्ण श्रद्धांजलि

सिफारिश की। सिफारिश की जरूरत उन्होंने शायद इसलिये समझी कि पुस्तक का आकार बड़ा था और बृहदाकार पुस्तक से, जिसके बारे में पहले से कोई जानकारी न हो, पाठक स्वभावतः थोड़ा घबराता है। बाँके बाबू की सिफारिश में प्रशंसा का स्वर काफी प्रखर था। उस सिफारिश की उपेक्षा संभव न थी क्योंकि अपने उद्गार के दौरान बाँके बाबू ने यहाँ तक कहा था कि यह पुस्तक प्रेमचंद के उपन्यासों से अधिक आकर्षक है। यह बात उन्होंने मुझे पुस्तक की ओर उन्मुख करने के लिए ही नहीं कही थी बल्कि यह उनकी वास्तविक राय थी। मैंने पुस्तक का नाम देखा तो कुछ निराशा हुई—'राम-रहीम'! लगा कि लेखक ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को ध्यान में रखकर कोई कहानी गढ़ी है। नाम पर कुछ देर बहस होती रही। अंत में तय हुआ कि पहले मैं पुस्तक पढ़ लूँ, बहस बाद में होगी। बाँके बाबू को विश्वास था कि पुस्तक पढ़ लेने के बाद बहस का मौका आएगा ही नहीं; क्योंकि मेरी रुचि से वे परिचित थे। वस्तुतः हुआ भी यही। मैंने 'राम-रहीम' आरंभ तो किया उनके आग्रह पर लेकिन कुछ ही पन्ने पढ़ने के बाद मैं उसमें ऐसा रमा कि बिना समाप्त किए कोई दूसरा काम नहीं कर सका। मेरे बाद स्नातकोत्तर छात्रावास में 'राम-रहीम' के पाठकों की संख्या बढ़ने लगी और जिसने भी पढ़ा, वह 'राम-रहीम' का अनन्य प्रशंसक बन गया। इस तरह राजा साहब के साथ-साथ प्रथम परिचय का श्रेय 'राम-रहीम' को है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह परिचय शुद्ध लेखकीय पाठकीय स्तर का था। राजा साहब की लेखनी का जादू तो मुझ पर असर कर चुका था किन्तु उनकी वाणी के जादू का मुझे अभी पता नहीं था। प्रायः देखा जाता है कि कलम के धनी वाणी में कमजोर होते हैं। कलम और वाणी दोनों का समन्वय विरल होता है। १९४४ में पटना विश्वविद्यालय की रजत-जयंती मनायी जा रही थी। उपकुलपति थे डॉ० सच्चिदानन्द सिन्हा। उस समय मैं पटना कॉलेज में व्याख्याता पद पर था और संस्कृत तथा हिन्दी दोनों विभागों में काम करता था। रजतजयंती समारोह के कुछ कार्यों का भार मुझे भी सौंपा गया था। इसी प्रसंग में राजा साहब के व्यक्तिगत परिचय का तथा उनके निकट संपर्क में आने का मुझे अवसर मिला। राजा साहब का जो मानस चित्र मैंने बना रखा था उससे पर्याप्त भिन्न उनका वास्तविक रूप देखने को मिला। 'राजा' शब्द के साथ आन-बान, शान-शौकत, रोब-दाब का जो नैसर्गिक साहचर्य जुड़ा रहता है,

उसका राजा साहब में नितांत अभाव था। व्यवहार में सहृदयता, वाणी में विदग्धता, मुद्रा में सहजता उनके ऐसे गुण थे जो संपर्क में आनेवाले व्यक्ति को अनायास आत्मीय बना देते थे। उस आत्मीयता के सूत्र में मुझे भी बँधते देर नहीं लगी। राजा साहब उम्र में मुझसे लगभग दुगुने थे किन्तु उन्होंने कभी इसका भान नहीं होने दिया। अधिक उम्रवालों की यह कमजोरी होती है कि कम उम्रवालों को वे नसीहत देते रहते हैं। राजा साहब नसीहत से परहेज करते थे; वे केवल अपने खट्टे-मीठे अनुभव सुनाते थे और उनके सुनाने का ढंग भी एक ही था।

पहली बार उनका भाषण मैंने कब सुना यह ठीक याद नहीं है, शायद रजतजयंती समारोह में ही किसी अवसर पर। भाषण का ऐसा अनुकूल प्रभाव पड़ा कि मैं मुग्ध हो गया; मैं ही क्या, सभी श्रोता मुग्ध हो गये। राजा साहब जो भाषा लिखते थे, वही बोलते थे। हिन्दी-उर्दू की गंगा-जमुनी की नैसर्गिक छटा जैसी उनकी लेखनी में थी वैसी ही वाणी में भी। और, वह भाषा उनकी बिलकुल अपनी थी और अपनी ही रही; कोई दूसरा उसका अनुकरण नहीं कर सका; क्योंकि संस्कृत और फारसी पर बिना समान अधिकार के वैसी भाषा लिखना असंभव है और संस्कृत-फारसी पर समान अधिकार रखना राजा साहब जैसे व्यक्ति के ही बूते की बात थी। उनकी भाषा उनके मुख से उच्चरित होकर ऐसी अदा से भर जाती थी कि उसकी रमणीयता का अनुभव सुनकर ही किया जा सकता था। राजा साहब अक्सर कहा करते थे कि मेरे गद्य में भी लय है। उनका यह कथन सोलहो आने सही था। उनके गद्य में लय की अनोखी स्थिति थी जो बोलते समय सांगीतिक आरोह-अवरोह के द्वारा श्रोताओं को विभोर कर देती थी। वे बोलते भी थे बड़े आत्म-विश्वास और इतमीनान के साथ। मुख और हाथ की भंगिमाओं से अपने वक्तव्य में स्पष्टता, नाटकीयता तथा प्रभविष्णुता लाते हुए, चारों ओर मुस्कान बिखेरते हुए, वे बड़े अंदाज से बोलते। बीच-बीच में उर्दू के शेर कहते जाते जो उनके भाषण में चार चाँद लगा देते। राजा साहब को बोलते सुनना चिरस्मरणीय अनुभूति में डूब जाना था।

धीरे-धीरे हमारी आत्मीयता गाढ़ी होती गयी और अनेक संस्थाओं में साथ काम करने का मौका मिला, विशेषकर बिहार विश्वविद्यालय के सेनेट और कलासंकाय में तथा बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् में। राजा साहब जहाँ भी मिले, वहाँ अपनी अव्याज-मनोहर सदाशयता और निश्छलता के साथ। बैठकों में राजा साहब मुश्किल से बैठते

थे। घूम-घूम कर लोगों से कुछ-न-कुछ बातें करते रहते; कभी किसी से काम की बात कर ली; कभी किसी से राय ले ली। चाहे कोई भी बैठक हो, उनकी चहल-कदमी चलती रहती थी।

पिछले पच्चीस वर्षों के उनके साहचर्य की न जाने कितनी स्मृतियाँ मानस-पटल पर अंकित हैं, एक-से-एक मोहक, एक-से-एक आवर्जक, एक-से-एक स्नेहिल। आज राजा साहब का भौतिक शरीर नहीं है; किन्तु उत्कृष्टकोटि के साहित्य की अनल्पता और महार्घता के रूप में उनका सद्गुरण-मंडित यशःशरीर अविनश्वर है। राजा साहब के जीवन-काल में उनके साहित्य का विवेचन-विश्लेषरण जितना और जैसा होना चाहिये था, वैसा नहीं हो पाया। वे साहित्य-सर्जन के आग्रही थे, प्रचार के नहीं। साहित्य की आलोचना और मूल्यांकन का उत्तरदायित्व पाठकों तथा आलोचकों का था जिसकी समुचित पूर्त्ति नहीं हो सकी। 'जीवितस्य कवेराशयो न वर्णनीयः' की उक्ति के अनुसार उनके जीवन-काल में इसे क्षम्य मान भी लें तो अब नहीं मान सकते। मेरा यह व्यावहारिक सुझाव है कि राजा साहब के नाम पर एक अध्ययन-गोष्ठी स्थापित की जाए जिसमें मुख्यतः राजा साहब के और सामान्यतः हिन्दी या अन्य भाषाओं के कथा-साहित्य का अनुशीलन-मूल्यांकन हुआ करे। यह राजा साहब की कारयित्री प्रतिभा और देन के अनुरूप स्थायी महत्त्व की श्रद्धांजलि होगी।

जी हारना नहीं, हरा रखना है।

—राधिकारमरण

मुद्रिका प्रसाद

नियोजन सम्पर्क पदाधिकारी, श्रम एवं नियोजन विभाग, बिहार, पटना

आसक्ति के बीच अनासक्ति : उनकी कृतियों में जो वैराग्य की भावना, जो शरीर के मोह को विलीन करनेवाली प्रेरणा मिलती है उसका मूल स्रोत उनके चरित्र के इसी पहलू में है।

विन्दु में सिन्धु समान, को कासों अचरज कहे !

ऐसे थे राजा साहब, जिन्होंने इस आश्चर्य और रहस्य को खोल कर रख दिया, जो विन्दु में सिन्धु थे, गागर में सागर थे, जाह्नवी की तरह अकलुष थे और थे महामानववादी चिन्तक। भारत के आकाश में राजा साहब एक ऐसे नक्षत्र थे जो यत्र-तत्र बिखरे खण्डित ज्योतिकणों को एकत्र ज्योतिपिण्ड बनाकर ऐसा प्रकाश देते रहे कि उसकी लीक भी युग-युगान्तर तक आलोक देती रहेगी।

श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के बाईसवें अध्याय में पैंतीसवाँ श्लोक है, जो मानव-जीवन की चरितार्थता की व्यंजना करता है और वह है—

एतावज्जन्म साफल्यं देहिनामिह देहिषु।
प्राणैरर्थैधियावाचा श्रेय एवाचरेत् सदा॥

अर्थात् देहधारियों के लिए जन्म सफल करने का एकमात्र उपाय यही है कि वह अपने प्राणों से, अर्थ से, बुद्धि-विवेक से और वाणी से श्रेय का ही निरन्तर आचरण करें।

इस श्लोक पर जितनी गम्भीरता के साथ चिन्तन किया जाय, ऐसा प्रतीत होता है कि श्रद्धास्पद, प्रातःस्मरणीय राजा राधिकारमण सिंह का जीवन इसी श्लोक के साँचे में ढला हुआ था और उनका जीवन इस दिव्य श्लोक का भाष्य था। और, इसी कारण आज हम राजा साहब की चर्चा कर रहे हैं तो उनके नाम को "स्वर्गीय" विशेषण के साथ नहीं लिख रहे हैं, क्योंकि "कीर्तिर्यस्य स जीवति"।

अँग्रेजी में एक कहावत है जिसका शब्दार्थ है कि हो सकता है कि सुई के छिद्र से ऊँट निकल जाय, लेकिन धनवान का स्वर्ग में प्रवेश कदापि सम्भव नहीं। लेकिन, लोकोक्तियों का सत्य जनसामान्य पर घटित हो सकता है, विशेष जनों पर नहीं। और, राजा साहब विशेष जन थे। राजा साहब के जीवन की पृष्ठभूमि लक्ष्मी रही है परन्तु फिर भी वे लक्ष्मी के वरदानी पुत्र न होकर सरस्वती के वरदानी पुत्र रहे हैं। पुरुष-पुरातन की चंचला वधू को उन्होंने पांडव की द्रौपदी बना कर रखा। कोई भी हो, जो उनके द्वार पर गया, खाली हाथ नहीं लौटा। आज के कितने जाने-माने नेता और साहित्यकार हैं जिन्हें राजा साहब ने गुप्त रूप से आर्थिक सहायता के सहारे ऊपर उठाया है। और, इस पर भी आश्चर्य यह कि राजा साहब का दायाँ हाथ दान देता था और बायें को पता भी नहीं चलता था। अपने लिए करना मनुष्य की प्रकृति है। दूसरे के लिए करना, दूसरों को ऊपर उठाने की कल्पना, मनुष्य को देव-पंक्ति में बैठाता है।

और, राजा साहब का साहित्य? उनके साहित्य में विचारों का सौंदर्य है, चिन्तन की अखण्ड ज्योति है, कालातीत जागरुकता है, आदर्शोन्मुख यथार्थवाद है। भारतीय संस्कृति की उदात्त लोक-गरिमा है, विमल विभूतियों का अक्षय भंडार है, युग और युगान्तर का पावन समन्वय है और है व्यक्ति का समष्टिमूलक, लोकोन्मुख उदात्तीकरण। राजा साहब के साहित्य में किराये की अनुभूतियाँ नहीं, अनुभूतियों में भींगे हुए क्षणों की विशिष्ट गरिमा है। उन्होंने अनुभूति के निजत्व के खुरदरे पत्थरों को शालिग्राम के रूप में परिवर्तित कर दिया है। मानवता के विराट् उदात्तीकरण से अनुप्राणित राजा साहब की गद्य-कृतियाँ साहित्य की भारतीय परम्परा और विश्व-साहित्य की मानवतावादी परम्परा के प्रकाश-स्तम्भ हैं। राजा साहब का महामानववाद अतिमानववाद के चक्रव्यूह में बन्दी नहीं, वह तो सम्प्रदाय-मुक्त, प्रदेश-मुक्त और दल-मुक्त है, वह तो मानव-गरिमा और सांस्कृतिक निष्ठा का कल्पतरु है। मानवत्व का

सत्य, मानव-प्रेम और मानव-कल्याण की त्रिधारा राजा साहब के साहित्य में सतत् प्रवाहशील और गतिशील है।

ताजमहल की भव्यता केवल दूर से देखने की चीज नहीं, उसके भीतर प्रवेश कीजिए तो पता चलेगा कि कला की कितनी बारीकियाँ उसमें छिपी हैं। राजा साहब की कला भी ताजमहल है। उसमें कितनी कारीगरी है, कितनी बारीकियाँ हैं, कोई भीतर प्रवेश कर देखे। राजा साहब की कलम और कल्पना कुछ ऐसी ही है कि वह कभी थकती नहीं, नित्य नए पात्रों और चरित्रों से मुलाकात करती है, अपनी अन्तरात्मा के प्रकाश से उनकी चेतना को गढ़ती है और उन्हें सहज-सुन्दर भाव से साहित्य में रख देती है।

राजा साहब का 'राम-रहीम' है जिसने हिन्दी के उपन्यासों का इतिहास बनाया है। वह आज भी मील के पत्थर की तरह लोगों को आगे जाने का मार्ग बतला रहा है। वह शब्दों का अजायबघर है, भावों का अलबम है, मुहावरों का कोष है और है मनोविज्ञान की कुंज-वीथी ! और, राजा साहब का विचित्र है 'सूरदास' कि जी चाहता है कि सूरदास के पास बैठे रहें और उससे बातचीत करते रहें। वह सूरदास एक दृष्टिकोण है यद्यपि सूरदास को दृष्टिकोण ही नहीं है। राजा साहब ने अपने उपन्यासों में समय की समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया है। 'राम-रहीम' द्वारा उन्होंने साम्प्रदायिक समन्वय का जो समर्थ संदेश दिया है उसे कभी भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। साम्प्रदायिक सहिष्णुता एवं एकता और समन्वय की दिशा में इस उपन्यास का हिन्दी साहित्य में अद्वितीय स्थान है। राजा साहब ने एक बार कहा था— "आज तो हमें उस शिल्पी की कला की तलाश है, जो पीड़ित की पसली को दधीचि की हड्डी बनाकर धर दे"। और, उनके उपन्यासों, कहानियों, नाटकों एवं लेखों को देखकर, पढ़कर लगता है कि वह शिल्पी और कोई नहीं, हिन्दी के मूर्धन्य कलाकार राजा साहब ही हैं।

और, राजा साहब की शैली ? उनके सम्बन्ध में सम्पूर्ण साहित्य-जगत् का एक मत है कि वे अन्यतम शैलीकार, अद्भुत शब्द-शिल्पी और कलम के जादूगर हैं। मुंशी प्रेमचन्द के बाद भाषा के विकास की कड़ी में राजा जी ही आते हैं। उनकी भाषा की चुस्ती, उसकी रवानी, उसकी सजीवता, उसकी मुहावरेबन्दी, उसकी अलंकारमयता, हिन्दी के किसी अन्य लेखक की भाषा में नहीं। उनकी भाषा में प्रपात का गर्जन-तर्जन नहीं, उसमें सरसराती हुई सरिता की गति है जो कलकल निनाद करती हुई बहती जाती है और पाठक उसी धारा में बहता चला जाता है। उनकी शैली में रंगीनी है, मस्ती है, उनका साहित्य पढ़ते समय लगता है जैसे चैती और पूरबी गायी जा रही हो,

जैसे तीन तोड़ की मिर्जापुरी कजरी उड़ रही हो, जैसे फाल्गुन में गुलाबी रंग उड़ रहा हो और जैसे बरसात में झूले पर षोडषियों की चूड़ियाँ खनक रही हो। समय के साथ साहित्य के युग बदलते हैं, किन्तु रस सभी युगों में स्थायी रहता है। राजा साहब का साहित्य रसात्मक है। वे सभी रसों के रससिद्ध साहित्यकार हैं।

परन्तु, राजा साहब की शैली जैसी रंगीन है, इनका व्यक्तिगत जीवन उतना ही सादा है। एक तरफ ऐसी प्रबल रसात्मक भावना और परिहासप्रियता और दूसरी तरफ विराग का ऐसा स्वरूप उनके व्यक्तित्व का अंग बन गया है जो सर्वथा निराला है। लगता है, जैसे ये सब कुछ से वीतराग हो गए हैं। स्वयं अपनी पत्नी रानी साहिबा की मृत्यु पर भी शोक को एक सिद्ध योगी की तरह, गीता की अनासक्ति के अभ्यासों की तरह रोक कर उन्होंने रखा। पत्नी के निधन पर सारा घर शोक के अगाध सागर में डूबा था। परन्तु उसी करुणा-कोलाहल के बीच अपनी दैनिक क्रिया को समाप्त करके वे नित्य-प्रति की तरह टहलने बाहर निकल गए थे। आश्चर्य की बात है कि पत्नी का शव घर में पड़ा हो और पति अपने नैतिक क्रिया-कलापों में इस प्रकार लगे हुए हों जैसे कुछ हुआ ही न हो। आसक्ति के बीच यह अनासक्ति। उनकी कृतियों में जो वैराग्य की भावना, जो शरीर के मोह को विलीन करनेवाली प्रेरणा मिलती है, उसका मूलस्रोत उनके चरित्र के इसी पहलू में है।

भारतीय चेतना के संवाहक, हिन्दू-विचार-धारा के पोषक, राजा साहब की जो देन साहित्य और समाज को है, उसे भुलाया नहीं जा सकता। उससे भावी पीढ़ियाँ अनुप्रेरित, अनुप्राणित और सदा आत्मगर्वित रहेंगी।

आवरण चाहे कुछ भी हो; आचरण शुद्ध नहीं तो कुछ नहीं।

—राधिकारमण

रघुवंशनारायण सिंह

६८।२।४ छोटागोविन्दपुर, गोबिन्दपुर, जमशेदपुर

✠

हमरा बुझाइल कि संस्कृत के गद्यकार बाणभट्ट त हिन्दी के गद्यकार राजा साहेब। उनका भासन में अतना मिठास कहाँ से आवत रहे ? एक बेरा हम पूछ देलीं कि अपने का लिखल भासन अतना रोचक कइसे बना दिले—लिखल भासन त लोग सुने के ना चाहे। त उहाँ का कहतीं—हम पढ़ीं ना गाईला।

✠

स्वर्गीय राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का इआद में

सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के सूर्यपुरा, हमरा गाँव से ४५ मील दूर बा। उहाँ के मध्य शाहाबाद के उपजाऊँ धरती के लाल रहीं, हम गंगा के कछार के गरीब गाँव के सब से गरीब परिवार में जनमल एगो महमुली किसान हईं। साँच कहीं त हमार गाँव गंगा जी का पेटा में बा, कबहीं एहीजे गंगा जी बहत रही, जब गंगा जी भागड़ छोड़ के चल गइली तब ओही में आके केहू बस गइल; बस, हमार गाँव गंगा जीं के नईहर हो गइल। हर साल बाढ़, हर साल दहार, भदई फसिल जो कबहूँ हो जाय त बड़ा भाग। केहू मानी ना, बाकी बात साँचे ह कि १९६७ का सुखारो में हमारा गाँवें, मरांग ओकुड़िया में ले गंगा जी आ गइल रही। राजा साहेब

शाहाबाद के गिनल-गुथल धनिकन में एगो रहीं। डुमराँव के महाराज के बाद सूर्यपुरे के नमर नु रहे, दोसरा केकरा राजा के पदवी मिलल। राजा साहेब हमरा ले उमिर में दस-बारह बरिस बड़ रहीं। उहाँ का एम० ए० पास रहीं, हम मैट्रिके में पहुँचत-पहुँचत थसक गइलीं।

ई सभ कहला के ई मतलब कि, 'नर बानर संगति कहु कैसे' बाकी ई सभ गान्ही जी के आन्हीं के एकबाल ह। साँचे गावत रहे लोग, "जिसको लगी हवा तेरी इंसान बन गया।" सचहूँ ढेर लोग हैवान से इंसान बनल। हमहीं का होइतीं। पास क जइतीं त नोकरी करतीं, कुछ कमइतीं बाकी अगाड़ी का होइत के जानत रहे। गान्हीं जी का आन्हीं में पढ़ाई छूट गइल बाकी पढ़े-लिखे के रोग ढुक गइल। ओही रोग में पढ़लीं। इआद नइखे 'सुधा' में कि 'माधुरी' में 'कानों में कंगना'। गजब के सिरनामा रहे। नीचे लिखल रहे राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह एम० ए०। बड़ा अचरज भइल, बिसमय में डूब गइलीं—राजा आ एम० ए० पास? रजो लोग पढ़ेला? हम पढ़ले रहीं—

> "शिक्षे तुम्हारा नाश हो तुम नौकरी के हित बनी,
> लो मूर्खता जीती रहो रक्षक तुम्हारे हैं धनी।"

अपनो मन में इहे बिसवास रहे। राजा का पढ़ला के कवन काम बा? राजा का त नोकरी करे के बा ना। ओह दिन से आज ले ऊ बात जइसन के तइसने रह गइल। आजो लोग नोकरिये खातिर पढ़त बा। अब त पढ़लो के काम नइखे, खाली साटिफिकिट आ पैरबी चाहीं, नौकरी मिल जाई। साटिफिकिट बे पढ़लहूँ मिल जाता आ नोकरी खातिर पैरबी के कवनो कमी नइखे। बाकी राजा साहेब नोकरी खातिर ना पढ़ल रहीं। उहाँ का पढ़ के ज्ञान अर्जन कइलीं आ ओकरा से साहित्य के सेवा भइल। साहित्य सेवा ऊहाँ का बिरासत में मिलल रहे। ऊहाँ के पितो जी कवि रहीं। राजा साहेब के कहानी 'कानों में कंगना' हम बड़ा प्रेम से, बड़ा जम के पढ़लीं। ओह उमिर में हमरा ऊ जतना बुझाइल होखे बाकी पढ़े में खूब मन लागल, एह से ई बात तय हो गइल कि कहानी बढ़िया रहे। जहाँ नायक कहता—अरे! कानों में कंगना? त नायिका कहतिया कि 'तो कहाँ पहनूँ'? ई सभ से निमन लागल।

असहयोग का थोरहीं दिन बाद राजा साहेब शाहाबाद जिला बोर्ड के चेयरमैन चुना गइलीं। एने ओह जुग के नवही लोग बाल हिन्दी पुस्तकालय बनावे में जोर लगवले

रहे एह से राजा साहेब का टी० ए० पर ई लोग झपट्टा मार देस आ ओह रोपेआ के पुस्तकालय में लगावस। एह सब के तकाजा में जाये आवे का ओजह से हमरो से देखादेखी हो गइल; बाकी कवनो खास जान-पहचान ना भइल, काहे कि हम सहमले जाईं, सहमले आईं। मुँह खुले ना, मुँहगर रहलो ना रहीं। गँवई गाँव के रहनिहार, साथ संघत ओहि लोग के, बोले चाले के लूर होखो त कहाँ से।

असहयोग के दब गइला पर हमनी एगो चुनाव लड़लीं, ओकरा बादे साइमन कमीशन के रचना भइल, ऊ भारत आइल। हमनी का "साइमन गो बैक" के नारा लगवलीं। फेर निमक सत्याग्रह, जेल, फेर भूकंप। एह सभ में हमार मुँह खुल गइल, हमहूँ मुखर हो गइलीं। पढ़े के रोग लगले रहे, लिखे के बेमारी हो गइल। सभा के नोटिस लिखे से लिखे के रोग ढूकल। ऊहे अखबारन में लिख के नव जवानन के ललकारे उनका से अपील करे के रोग लगा देलस। एकर फल ई भइल कि हमहुँ साहित्यिकन का गोल में आवे जाये लगली आ हमरा परिचय के दायरा बढ़े लागल।

सन १९३६ में देसव्यापी चुनाव भइल, जवना में कांग्रेस पहिला बेर खुल के भाग लेलस, ओह में कांग्रेस के तमाम जीतो भइल। १९३७ का अन्त-अन्त ले कांग्रेस के मंत्रीमंडलो बन गइल। ओहि साल साइत ठाकुर नन्दकिशोर सिंह बिहार प्रांतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन आरे करे के नेवता दे अइले। आरे में एग स्वागत समिति बनावे के सवाल आइल। ओकरा खातिर लोग जूटल। ओह में हमरे एगो मित्र स्वागताध्यक्ष बने के चाहत रहन। राजा साहबो के नाँव आइल बाकी उनका एगो सक हो गइल कि ऊ सम्मेलन के सभापति हो चुकल बाड़े त फेर, स्वागताध्यक्ष का होइहें। तबहूं सवाल आइल कि राजा साहेब से पूछ लेल जाय। जब हमनी पूछे गइलीं त राजा साहेब पुरहर जोर देके कहलीं कि जब तू लोग एह में बाड़ तब हमरा कवन झंझट बा, हम रहबे करब।

ई रहे राजा साहेब के साहित्यप्रेम। हमार साथी लोग गइल रहन खाली मुँह छुए आ उहाँ का साँचो ओकरा के मान लेलीं। राजा साहेब स्वागताध्यक्ष भइलीं त रामायण बाबू स्वागतमंत्री भइलन आ ऊ कई लोग के अपना सहायक में रखलन जवना में हमहूँ एगो रहीं। हमरा मन में आइल कि एह सम्मेलन के ठाट से कइल जाव। एकरा खातिर आपन जीव जान लगा देबे के हम तय कइलीं। सम्मेलन में

असल सवाल होला रोपेश्रा के। श्रोह घरी एगो कहाउति चलत रहे—दरबे से सरं चहबे से करबे। ई बात तबो ठीक रहे श्रबो ठीक बा ; फरक श्रतने परल बा कि तः दरब के काम रहे श्रब कागज के नोट के काम बा। नोट श्रपना पास होखे त जे चाहे श्रादमी से हो जाय। एह से हम शाहाबाद जिला के एक चक्कर लगवलीं। श्रोही मे बाबू श्रनिरुद्ध सिंह से हमरा भेंट भइल।

बाबू श्रनिरुद्ध सिंह के हम मामा कहत रहीं श्रा मामा कहे में हमार जबान श्रइसन मँज गइल रहे कि केहू का कवनो सक सुबहा न होखे। ऊ हमरा के श्रतना मानतो रहन कि लोग के कवन बात बा हमरा श्रपने बुझाय कि हमार श्रापने मामा हवे। हमार श्रापन मामा कब मर गइलन एकर हमरा श्रन्दाजो ना रहे श्रा मामा मामी सब मर गइल त लइकाईं में। कबहूँ ममहर गइबे ना कइलीं ; एह से केहू के मामा कहे के मोके ना लागल। बाबू श्रनिरुद्ध सिंह जमिरा के भाई राधामोहन सिंह के श्रापन खास मामा रहन श्रा चुंके ऊ ढेर दिन से जिला बोर्ड के मेमर होत श्रावत रहन एह से श्रारे बरोबर श्रावस। श्रोही में हमहूँ उनका के मामा कहे लगलीं। ऊ ससराँव लोकल बोर्ड के चेयरमैन रहन ; एही से ससराँव में हमरा ऊ भेंटा गइलन। हम सभ बात कहलीं तः कहलन कि दुनिया भर भीख का माँगत फिरतारस। चल राजा साहेब किहाँ। हम कहलीं राजा साहेब रोपेश्रा ना दीहें ऊ भासन दिहें श्रा जे भासन देला ऊ रोपेश्रा ना दे।

हमनी सूर्यपुरा चल गइलीं जा। राजा साहेब सूर्यपुरे में रहीं। श्रोहिजे भेंट हो गइल। हम जे बेरिबेरि मामा कहीं त राजा साहेब का श्रचरज नियर बुझाइल। श्रचरज एह से कि श्रब राजा साहेब से हमरा खूब जान-पहचान हो गइल रहे। राजा साहेब हमरा के पूरा जान गइल रहीं। श्रनिरुद्ध सिंह के ऊहाँ का जानते रहीं। एह से ऊहाँ का पूछलीं कि ई रउरा के मामा कइसे कहत बाड़े त ऊ कहले कि राधामोहन का नाता से। हमनी का श्रोह दिन सूर्यपुरे रह गइलीं जा। श्रोहिजे राय सलाह भइल कि डालमियानगर चल के श्री रामकृष्ण डालमिया से चन्दा लेल जाय। बिहान भइला हमनी तीनों श्रादमी डालमियानगर गइलीं।

डालमियानगर में डालमिया जी रहन श्रा चुंके हमनी का साथे राजा साहेब रहीं एह से भेंट होखे में देरी ना भइल। डालमिया जी का श्राफिस में हमनी तीनों श्रादमी

आउर डालमिया जी इहे चार आदमी रहे। बाकी हमनी दू आदमी डमी रहीं, बात राजा साहेब आ डालमिया जी का बीच होत रहे; हमनी खाली सुनत रहीं जा। कबहूँ -कबहूँ हँ ना करे के परत रहे। ओही दिन हम राजा साहेब के असली रूप देखलीं। ओह दिन के बतकही सुन के हमार अकिल गुम हो गइल। हमरा बुझइबे ना करे कि एह बतकही में हमनी कहाँ बानीं।

सुरुमे से राजा साहेब डालमिया जी के महामना कहे लगलीं। ई बात हमरा अजबे बुझाय। हम त एगो महामना पंडित मदन मोहन मालवीय के जानत रहीं एह से मन में कहीं कि यह दूजा हरिश्चन्द्र कौन ! महामना डालमिया जी, महामना डालमिया जी के अतना भरमार भइल कि का कहल जाव। राजा साहेब कहीं कि—"हम तो कहने आए थे कि आप हमसे कुछ पढ़िए किंतु आपसे बात करने पर ऐसा लगा कि आपसे मुझे ही बहुत कुछ सीखना है।" एक बेर ऊहाँ का कहलीं कि हम तो आप से कुछ माँगने आए थे मगर अब क्या माँगें, अब तो हम आप से पा गए। डालमिया जी कहस कि नहीं राजा साहब ! कहा जाय त राजा साहेब कहीं–अब क्या माँगें, अब तो सब पा गए। डालमिया जी के आगरह आ राजा साहेब के इन्कार हमरा के भारी फेर में डाल देले रहे बाकी जब राजा साहेब कहलीं कि आरा में हम लोग हिन्दी साहित्य सम्मेलन करने जा रहे हैं उसमें आपका सहयोग चाहते हैं तब जान में जान आइल। डालमियाजी कहलीं—कहिए क्या दे दें। राजा साहेब कहबे ना करीं। अन्त में मसकिल से राजा साहेब कहलीं—हम तो पाँच सौ कहना चाहते थे तब डालमियाँजी कहलीं—हम एक हजार देंगे, आ आ गइल १३ सौ रुपया। बात अइसन भइल कि सर प्रभाशंकर पट्टानी के तेरह सौ भेजात रहे से राजा साहेब वाला लिफाफा में धरा गइल आ राजा साहेब वाला उनका लिफाफा में। राजा साहेब बड़ा बेवहारिक आदमी रहीं। बात बनावे के, बात के काट करे के खूब जानत रहीं। जे राम-रहीम, गाँधी टोपी आउर ढेर किताब लिख देल सेकरा बाते ना बनावे आवत रहे ? जरूरी काम में बाझल बानीं आउर कोई पहुँच गइल त ओकरा के रुखाई से रोकब ना, चतुराई से बझा देब। एह से आपन काम भी हरज ना होई, आदमी के रुखर भी ना लागी और आसपास के लोग के विनोद भी हो जाई।

एक बेरा हम गइलीं। ऊहाँ का कवनो काम में बाझल रहीं। बस हमरा के देखते ऊहाँ का आपना हाथ के लिखल एगो कापी हमरा के धरा के कहलीं कि तनी पढ़ जाईं। हम पढ़े में बझलीं तले उहाँ का आपन काम निबटा लेलीं। पढ़ के हम कहलीं कि बड़ा सुंदर बात ऊहाँ का कहलीं कि एकरा के सुन्दरतर आ सुन्दरतम बनाईं। हम

कहलीं, अपने का लेख पर हम मेख मारीं, हमरा से ना होई। एक बेरा साहित्य के कुछ बात होत रहे। जमात के एक मित्र कुछ बोल देलन। राजा साहेब सुनते कहलीं—आपने भी कभी इस कूचे में कदम रखा, इसका गुमान भी मुझे नहीं था। एक बेरा राजा साहेब एगो छपल किताब हमरा के देके बझवले रहीं तले एक जना दोसर आ गइले। राजा साहेब उनका के खड़ो ना होखे देलीं। देखते बस बोल उठलीं—जाईं, चल जाईं फलना भीरी, राउर काम हो गइल बा।

राम-रहीम पढ़ के कुछ अँगरेजीदाँ लोग कहे के मन कइले कि इ अँगरेजी के 'वेनिटी फेयर' के सामने रख के लिखल ह। हमरा बुझाइल कहे वाला के मुँह के रोको। ऊ अगर पढ़ल रहितन त कहितन कि राम-रहीम लिखे का बेरा महाकवि बाणभट्ट के आतमा राजा साहेब में उतर आइल रहे। हमरा बुझाइल कि संस्कृत के गद्यकार बाणभट्ट त हिन्दी के गद्यकार राजा साहेब। उनका भासन में अतना मिठास कहाँ से आवत रहे? एक बेरा हम पूछ देलीं की अपने का लिखल भासन अतना रोचक कइसे बना दिले। लिखल भासन त लोग सुने के ना चाहे। त ऊहाँ का कहलीं—हम पढ़ीं ना गाइला। आ सचहूँ देह के अंगन के संचालन अइसन होत रहे जइसे ऊहाँ का नाचतो होईं।

बाणभट्ट शाहाबाद के रहन। साहित्य का मैदान में शाहाबाद में बाणभट्ट के बाद राजा साहेब के स्थान बा। बाणभट्ट के छूटल कादम्बरी के उनकर बेटा पूरा कइलन। राजा साहेब के देन साहित्य में शिवाजी बाड़े। पूरा भरोसा बा संस्कृत के बाद हिन्दी के बाद भोजपुरी के डार शिवाजी भरिहें। ई हमार असीसो बा उनकर कर्तव्यो बा।

अच्छाई या बुराई किसी चीज में नहीं; वह अपनी नजरों की तमीज में है।

राधिकारमण

रमण
अंतरा, बोरिंग रोड, पटना—१

फिर तो मैं उनके साहित्य को पढ़ जाने में लगा और ज्यों-ज्यों उनकी पुस्तकें पढ़ता गया, उनका प्रशंसक बनता गया। भाषा तो उनकी अपनी ही थी, बातें भी चुभती हैं। मैं उनकी साफगोई का जो कायल बना सो आज भी हूँ।

पूर्व जन्म की उपलब्धियों को पाकर इस जन्म में राजा हो जाना सहज है; किन्तु, एक राजा को सहस्र साहित्यकारों की श्रद्धा, बुद्धिजीवियों से अभिनन्दन और संवेदनशील पाठकों का स्नेह पाना कई जन्मों के सतत पुण्य-संचय का ही प्रमाण माना जाएगा। सामंतशाही के इस ढहते जमाने में जब मुकुट उछाले जा रहे हैं, कितने राजे इस धरती पर हैं जिन्हें यह आदर प्राप्त है, जो हमारे स्वर्गीय राजा साहब को सदा से प्राप्त होता आया

शब्दों के श्रद्धा-सुमन

है। लक्ष्मी के लाड़लों का आदर करनेवाले चाहे चापलूस होते हैं या घोर अवसरवादी। किन्तु सरस्वती की आराधना में जीवन के अन्तिम क्षण तक को परवान चढ़ा देने वाले राजा साहब जैसे व्यक्ति के लिए—आज कौन दुःखी नहीं है ?

राजा साहब का दर्शन पहले-पहले सूर्यपुरा में तब हुआ था, जब स्वर्गीय श्री हरिनन्दन सहाय की शादी के लिए वहाँ बारात गयी थी। क्या ठाट-बाट, क्या राजसी प्रबन्ध। तब तक राजाओं का दूसरा ही चित्र मेरे मानस में अंकित था। जड़ीदार पोशाक, कलंगीदार मुरेठा, कमर से लटकती तलवार और ऐसे ही और भी बहुत कुछ। किन्तु, जब राजा साहब को सामने पाया तो लगा, देहात का कोई परिष्कृत रुचिवाला किसान खड़ा हो। मन में बड़ा आदर उमड़ा और मैंने नतमस्तक होकर बड़ी श्रद्धा से प्रणाम किया।

फिर तो मैं उनके साहित्य को पढ़ जाने में लगा और ज्यों-ज्यों उनकी पुस्तकें पढ़ता गया, उनका प्रशंसक बनता गया। भाषा तो उनकी अपनी ही थी, बातें भी चुभती हैं। मैं उनकी साफगोई का जो कायल बना सो आज भी हूँ।

सन् बियालिस के आस-पास मेरी कविता-पुस्तक "मास्को" प्रकाशित हुई। उसमें एक कविता "बुर्जुआ" भी थी और यह एलान किया गया था कि जमीन्दारी चली जायगी। उसके बाद ही जब राजा साहब से भेंट हुई तो उन्होंने सीधा प्रश्न किया कि क्या आपके पिता जी नौकरी से अलग कर दिये गये हैं ? मैंने निवेदन किया—नहीं तो, यह आपसे किसने कहा ?

राजा साहब मुस्कुराये और बोले—"मास्को" में व्यक्त हुई प्रतिक्रिया को देखकर मैंने ऐसा समझा था।

इस संबंध में उनकी शायद पद्मभूषण स्वर्गीय श्री श्यामन्दन सहाय जी से बातें हुई थीं—क्योंकि एक रात श्री सहाय जी ने बुला कर मास्को के सम्बन्ध में पूछताछ भी की और मुझे नाराज नहीं तो असंतुष्ट अवश्य दिखाई पड़े थे।

इस घटना के बाद से राजा साहब के लिए मेरे मन में और अधिक श्रद्धा बढ़ी जो आज तक बनी हुई है। भगवान करें—यह सदा बनी रहे।

राजा साहब के साहित्य पर लिखना मेरा काम नहीं। हिन्दी में कोई आलोचक यदि हो, तो इस काम को करे। हाँ, 'राम-रहीम' के प्रकाशन के बाद, एक दिन एक

सामाजिक उत्सव में राजा साहब से मुलाकात हो गयी तो वे एक ओर ले जाकर, मुझसे पूछने लगे—कैसी लगी किताब आपको ?

मैंने कहा—बहुत अच्छी। बिजली और बेला—दो स्वतंत्र उपन्यास भी हो सकते थे।

राजा साहब ने पूछा—और भाषा ?

मैंने उसी लहजे में कहा—कलाई के नाप की चूड़ियाँ बैठेंगी कलाई पर फिट, मगर उनसे खनक नहीं सुनायी पड़ेगी। निस्सन्देह राजा साहब को यह विचार नहीं पसन्द आया किन्तु मेरी अभिव्यक्ति का यह तर्ज उन्हें जरूर बेहद पसंद आया, क्योंकि जब भी भेंट होती, वे मुस्कुरा कर कहते—चूड़ियोंवाली आपकी बात मुझे आज भी याद है।

राजा साहब चले गये, मगर दे गये हिन्दी को एक बृहत् अमृत-भंडार। इतना ही क्यों, इनसे भी बढ़कर कुछ और—यानी साहित्यानुरागी बाबू शिवाजी की तरह एक सपूत—जो खानदान की इस लेखन-परम्परा को बढ़ाते रहे हैं, और बढ़ाते रहेंगे। कई उपन्यासों के लेखक और 'नई धारा' के प्रधान सम्पादक श्री उदयराज सिंह, यानी बाबू शिवाजी की उम्र लम्बी हो ताकि राजा साहब के अधूरे कार्य वे पूरा भर ही न कर सकें—उन्हें वाकई अमर बना सकें।

फूल तो मुस्कुराता नहीं, मुस्कुराता है दिल; चाँदनी तो हँसती नहीं, हँसता है जी। जब यह दिल लहरा है तो विश्व के जर्रे-जर्रे पर यौवन की लहर है।

—राधिकारमण

विन्देश्वर प्रसाद वर्मा
धवलपुरा, पो०—बेगमपुर, पटना

उन्होंने मेरी बातों को सुनकर कहा—"लिख दूँगा।" और उन्होंने प्यारभरी दृष्टि से मेरी ओर देखा। मुझे जीवन में ऐसी प्यारभरी दृष्टि देखने को बहुत कम ही मिली। उनकी उस प्यारभरी दृष्टि में उनके हृदय की विशालता झलक रही थी।

✣

मैं स्वर्गीय श्री राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के महान् साहित्य एवं व्यक्तित्व की प्रशंसा भारत की सुप्रसिद्ध अनेक पत्रिकाओं में पढ़ा करता था, तब ऐसे महान् पुरुष के दर्शन की इच्छा होती थी। उनके दर्शन का अवसर मुझे उस समय प्राप्त हुआ, जब मैं अपनी "प्रियतमा" कहानी-संग्रह के विषय में

राजा साहब : एक हृदय-सम्राट्

दो शब्द, लिखवाने के लिए उनके पास गया। जब मैं उनके निवास-स्थान की ओर जा रहा था, तो मेरे हृदय के प्रांगण में आशा और निराशा दोनों की आँख-मिचौनी की क्रीड़ा चल रही थी। मुझे इस पुस्तक पर उनके विचार लिखवाने की आशा थी। परन्तु मेरे हृदय में निराशा के बादल छा जाते, जब मैं यह सोचता कि राजा साहेब भारत के इने-गिने महान् साहित्यकारों में हैं, उनका एक महान् व्यक्तित्व है, और मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ, क्या मेरी प्रार्थना सुनेंगे ?

शरत्काल का सुहावना प्रातः था। राजा साहेब अपने-निवास स्थान के खुले भाग में सूर्य की किरणों का सेवन कर रहे थे। उनसे मिलने का यह मेरा प्रथम अवसर था। उनके समीप जाकर मैंने प्रणाम किया और अपनी बातें कहीं। उन्होंने मेरी बातों को सुनकर कहा—"लिख दूँगा।" और उन्होंने प्यारभरी दृष्टि से मेरी ओर देखा। मुझे जीवन में ऐसी प्यारभरी दृष्टि देखने को बहुत कम ही मिली। उनकी उस प्यारभरी दृष्टि में उनके हृदय की विशालता झलक रही थी। फिर उन्होंने मुझसे प्रेमभरे शब्दों में कहा—"प्रेस से सुरेश बाबू को बुला लाइये।"

दूसरे दिन मैं अशोक प्रेस, पटना, जाकर सुरेश बाबू से राजा साहेब के पास चलने के लिए निवेदन किया। उन्होंने शीघ्र चलने में सुहृदयता दिखलाई। हमलोग उनके निवास पर पहुँचे। उस समय राजा साहब शरत्काल के प्रातः की धूप में बैठे थे। सुरेश बाबू ने उन्हें लेटर-पैड दिया। राजा साहेब ने उक्त रचना के लिए 'दो-शब्द' लिख दिया और मेरी ओर प्यारभरी दृष्टि से देखा। उस समय उनकी प्यारभरी दृष्टि में साहित्य के प्रति कुछ भावना भी मिश्रित थी। उनकी दृष्टि से यह स्पष्ट अनुभव हो रहा था जैसे वे मुझमें साहित्य की भावना को उसी तरह सीच रहे हैं जैसे सूर्य पौधों को सींच रहा हो।

मैं आज भी उनकी उस प्यारभरी दृष्टि को, उनके हृदय की विशालता देखता हूँ उनके साहित्य में, जो अमर है। वे अमर हैं।

अमरनाथ सिन्हा
हिन्दी-विभाग, बी० एन० कॉलेज, पटना

इन बातों से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, जो व्यक्ति इस रूप में जीया, उसने अपने युग को किस रूप में भोगा तथा अभिव्यक्त किया होगा। राजा साहब की एक विशिष्ट शैली थी, यह सभी जानते हैं। वह विशिष्ट शैली हिन्दी-गद्य शैली की सामंती धारा है, जिसके वे प्रवर्तक थे, जिसका सफल अनुकरण फिर नहीं किया जा सका; ठीक वैसे ही, जैसे तुलसीदास के बाद भी रामकाव्य लिखे गये लेकिन तुलसीदास की ऊँचाई को कोई भी नहीं छू पाया। राजा साहब अपनी शैली के एक अकेले शैलीकार थे। इसका कारण है उनके युग का द्वन्द्व।

राजा साहब : एक युग, एक व्यक्ति

राजा साहब, जिन्हें मैं 'दादा जी' कहा करता था, पुण्य शेष रह गए, सहसा विश्वास नहीं होता; क्योंकि उनका सहज मुस्कान भरा, आस्थावान् व्यक्तित्व और 'जाना-सुना-देखा' और भोगा साहित्य तो हमारे अस्तित्व के ही अंग बन गए हैं। राजा साहब को

देखना-सुनना, उनके सामने झुकना, चरण-स्पर्श करना और साहचर्य अपने-आप में अद्‌भुत अनुभव है। इस दृष्टि से मेरी पीढ़ी अत्यंत सौभाग्यशाली है, जो उनके साहचर्य को अनुभूत करनेवाली पीढ़ियों में अन्तिम है।

दादाजी, इस संबोधन का भी एक इतिहास है, जिसके संदर्भ में मैं राजा साहब के सामान्य पाठक' के दर्जे से उठकर अन्तेवासी बन गया—ऐसा सौभाग्य विरले को प्राप्त होता है और मैं इसके कारण श्रद्धानत हूँ, गौरवान्वित हूँ।

१९५७ में मैंने बी० ए० (ऑनर्स) की परीक्षा पास की। पटना विश्वविद्यालय में एम० ए० पढ़ने की जितनी ही उत्कट इच्छा, उतना ही अर्थाभाव, फलतः एम० ए० कर पाना मेरे लिए आकाशकुसुम हो रहा था। मगध-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के रीडर डॉ० वासुदेवनन्दन प्रसाद, उन दिनों गया कॉलेज के हिन्दी-विभागाध्यक्ष थे, सौभाग्यवश उनका वरदहस्त भी मुझे प्राप्त रहा है। वे मुझे लेकर पटना आए और मुझे राजा साहब का शरणागत बना दिया। जून १९५७, वही राजा साहब का प्रथम दर्शन था। वह 'दर्शन' बहुत प्रभावशाली नहीं था; क्योंकि दादा जी का व्यक्तित्व कुछ इतना सहज रहा कि वह प्रभाव डालता नहीं, अनुभूत कराता था और अनुभूति के लिए वक्त चाहिए। सौभाग्यवश वह भी मुझे मिला, पर वह तो बाद की बात है। पटना-विश्वविद्यालय में नाम लिखा लेने की प्रेरणा दादा जी ने दी और स्नेहसिक्त वाणी में यह भी आश्वासन दिया कि आप चिन्ता न करें, मैं हूँ। और, अशोक प्रेस में 'नई-धारा'-संबंधी कुछ काम कर देने के पारिश्रमिक रूप में पचास रुपये प्रतिमाह मिलने की आशा बँध गई, दादा जी ने ऐसी व्यवस्था कर देने का आश्वासन दिया। अतः पटना-विश्वविद्यालय में मेरा नाम लिख गया और मैं अशोक प्रेस के पास ही एक गली में रहने लगा। पर, कारणवश अशोक प्रेस का काम नहीं बन सका और मैं आर्थिक कठिनाइयों से घिर गया। दादाजी से प्रायः रोज ही मैं मिला करता, कुछ ट्यूशनों की व्यवस्था हो गई और मेरी गाड़ी चल निकली, कुछ रुपये घर से भी आ जाते थे। प्रश्न था विश्वविद्यालय-शुल्क देने का। दादाजी के सामने यह समस्या मैंने रखी। वहीं श्री सुरेश कुमार, अशोक प्रेस के मैनेजर, भी थे। दादाजी ने तत्काल मेरी समस्या का समाधान निकाला और सुरेश जी को आदेश दिया कि मेरा विश्वविद्यालय-शुल्क प्रतिमाह अशोक प्रेस से मिल जाएगा। और दो वर्षों तक दादाजी मेरा विश्वविद्यालय-शुल्क देते रहे।

सप्ताह में चार-पाँच बार महेन्द्रू से बोरिंग रोड मैं जाया करता था। दादा जी बुलाते, बातें होतीं। उनके बंगले के सामने मैदान में कुर्सियाँ लग जातीं, वहीं चर्चाएँ होतीं। वे अपने दरबारी वातावरण के किस्से सुनाते, शेरों का अर्थ पूछते और जब मैं बता देता तो आह्लादित हो उठते। सहज रूप में प्रोत्साहित करते—शाबाशी देते। इसी प्रकार बंगले के सामने अथवा पिछवाड़े के बरामदे अथवा उनके कमरे में बैठकें होतीं और घंटों बातें होती रहतीं। एक विद्यार्थी होने के बावजूद मुझे दादाजी के हाथों चाय-नाश्ता पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। कभी-कभी मैं सोचता था कि विद्यार्थी के नाम से ही जब लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, तब दादाजी इतना स्नेह क्यों देते हैं ? और, मैंने अनुभव किया कि उनके इस स्नेह का कारण और कुछ नहीं, सिर्फ उनका सहज जीवन तथा जीवन-दृष्टि है, जिसने उन्हें निर्विकल्प समाधि—दैनंदिन जीवन में भी—की उपलब्धि करा दी थी।

शाम को प्रायः वे हाईकोर्ट की ओर घूमने निकल जाया करते थे और कई बार मैं भी साथ हुआ करता। उस उम्र में भी तेज गति। आश्चर्य होता। बातें चलती रहतीं, कभी पढ़ाई की, कभी राजनीति और कभी साहित्य की। कभी वे कागज-कलम देकर बैठा लेते, वे बोलते जाते और मैं लिखता जाता। और मुझ अकिंचन को लगता जाने किस दैवी प्रेरणा ने दादाजी की छत्र-छाया में मुझे भेज दिया है, मैंने घर से दूर रहने का अभाव कभी महसूस नहीं किया।

१९५९ में एम० ए० पास करने के बाद मैं गया कॉलेज होते हुए डाल्टनगंज में नियुक्त हुआ। पत्र-व्यवहार चलता रहा और फिर पटना आ गया, बी० एन० कॉलेज में। फिर तो निरन्तर मिलने का क्रम चलता रहा। उन्होंने साहित्य-सम्मेलन की विशिष्ट बैठकों तथा चाय-पान में अपनी ओर से मुझे सम्मिलित किया। परिणामतः मैं कई लोगों के संपर्क में आया, यह दूसरी बात है कि उन संपर्कों से मैं कोई लाभ नहीं उठा पाया। बस मुझे इतना लगता रहा कि मैं दादाजी की छात्र-छाया में हूँ, यही सब कुछ है।

इस प्रकार दादाजी से मिलने-जुलने का अबाध क्रम चलता रहा। मेरे विवाह में भी कुछ ही क्षण के लिए सही, वे बारात में सम्मिलित हुए। जिनकी अगवानी के लिए बड़े-बड़े लोग आँख बिछाए होते, जिनकी कृपा पाने के लिए लोग जाने कितनी

मेहनत करते, वह स्नेह—वह कृपा, आशीर्वाद एवं वरदहस्त मुझे सहज ही प्राप्त रहा।
इधर चार-पाँच वर्षों से मेरा आना-जाना बहुत ही कम हो गया था और जब कभी
किसी समारोह में उनके दर्शन होते, मैं ग्लानि से काँप उठता कि मैं कृतघ्न होता जा
रहा हूँ। पर उन्होंने मुझे कभी कुछ नहीं कहा। इस बार जब वे बीमार पड़े मैं भी
अस्पताल में भरती था और वहाँ से लौटने के बाद मैं सोच ही रहा था कि चलूँ, कि
दादाजी चल बसे। मैं रोया, पर मौन, जैसे हिन्दी-साहित्य के एक युग का पटाक्षेप
हो गया। मेरे जैसे व्यक्ति के जीवन-इतिहास का एक दौर भी समाप्त हो गया। यह जो
कुछ मैं आज हूँ वह दादाजी की प्रेरणा, आशीर्वाद एवं शुभाकांक्षाओं का फल है।
इतना सहज, निर्विकल्प-निर्विकार व्यक्तित्व अबतक मुझे देखने को नहीं मिला, जो स्नेह
की वर्षा करता था—जो भी चाहे आप्यायित हो ले, और मैं उन चुने हुए सौभाग्य-
शालियों में से हूँ जिसे वह स्नेह ममत्व की सीमा तक मिला।

इन बातों से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, जो व्यक्ति इस रूप में
जीया, उसने अपने युग को किस रूप में भोगा तथा अभिव्यक्त किया होगा। राजा
साहब की एक विशिष्ट शैली थी, यह सभी जानते हैं। वह विशिष्ट शैली हिन्दी-गद्य-
शली की सामंती धारा है, जिसके वे प्रवर्तक थे, जिसका सफल अनुकरण फिर नहीं
किया जा सका, ठीक वैसे ही, जैसे तुलसीदास के बाद भी रामकाव्य लिखे गए; लेकिन
तुलसीदास की ऊँचाई को कोई भी नहीं छू पाया। राजा साहब अपनी शैली के एक
अकेले शैलीकार थे। इसका कारण है, उनके युग का द्वन्द्व। वे जिस वातावरण में
पले वह रीति-प्रवृत्ति का वातावरण रहा। राजा साहब के पिता श्री राजा
राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह 'प्यारे' स्वयं एक श्रेष्ठ रीतिसिद्ध कवि और नाटककार थे।
सूर्यपुरा का दरबार, साहित्यिकों का जमघट रहा। फलतः राजा साहब के साहित्यिक
जीवन की शुरुआत ब्रजभाषा में कवित्त-सवैया लिखने से हुई। कभी वे बंगला में
काव्य रचते, कभी उर्दू में गजल और शेर। एक-दो उदाहरण लें। आरा निवासी पं०
ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने एक समस्या दी—

दोनों कर फँस्यौ हैं गागर सर हाथ धर्‌यौ
उर उघरो है नेक आँचर सँवारि दै।[1]

---

१. 'सूर्यपुरा-मंडल की साहित्यिक परंपरा' शीर्षक निबंध, श्री जगदीश शुक्ल, नई धारा, सितम्बर १९६०।

राजा साहब ने समस्यापूर्त्ति की—

आँख के उजारे मो लालन पी प्यारे,
कचकारे घुँघरारे की छाया तन डारि दै।
मुरली धर दीजै हो मुरलीधर देखो टुक,
कुंजन बिहार छाड़ि दुःखिनी निहारि दै!
कानि मो राखो कान्ह सुनिए दे कान विनय,
मारुत झकोरन के दुःख ये निवारि दै।
दोनों कर फँस्यौ हैं गागर सर हाथ धर्‍यौ,
उर उघरो है नेक आँचर सँवारि दै!

रीति-प्रवृत्ति के बावजूद इसमें ताजगी है, वह ताजगी जो आगे चलकर उन्हें नई जीवन-दृष्टि देती है। एक अन्य उदाहरण लें। प्रवासी कृष्ण, कुब्जारब्ध कृष्ण के पास शुक-संदेश भेजती विरहिनी गोपी की प्रीति-आस्था को व्यक्त करती ये पंक्तियाँ—

तोहि पोसि पढ़ाइ सिखाए नितै, सुक मेरे लिए दुख ये सहिहौ॥
उड़ि जाउ जहाँ मथुरा हरि हैं, भरि दूँगी लला मन जो चहिहौ॥
तव बोल से नेह अहै कि नहीं, उनके हिय भाव लखे रहिहौ॥
जहँ कूबरी कृष्ण हों संग रमे, तहँ राधिका-कृष्ण तू जा कहिहौ॥[२]

बरबस घनानंद की प्रसिद्ध पंक्तियाँ—

परकाजहि देह कों धारि फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा के समान करौ सब ही बिधि सज्जनता सरसौ।
घनआनंद जीवन-दायक हौ कछू मेरियौ पीर हियें परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवानि हूँ लै बरसौ।[३]

मानस में कौंध जाती हैं। घनानंद का स्वर अकिंचन का स्वर है, राजा साहब का स्वर प्रेम-आस्था और दृढ़ प्रीति का है। अंतिम पंक्ति में संभावना की अर्थगर्भता दर्शनीय है।

जाहिर है कि राजा साहब का साहित्यिक संस्कार उसी रीति-वातावरण एवं

---

२. वही, पृष्ठ-७५।

३. घनानंद ग्रंथावली, सुजानहित—३३९।

सामंती दरबार में निर्मित हुआ। राजा साहब ने उच्चतम शिक्षा पाई, स्वतंत्रता-संग्राम के जद्दोजहद देखे, गुलामी, गरीबी, शोषण, अत्याचार का नंगा नाच देखा। मानस उद्वेलित हो उठा। उनका बौद्धिक संस्कार राष्ट्रीय संघर्ष एवं लोकजीवन की संकुलता से निर्मित हुआ। परन्तु वह प्रारंभिक आत्मिक संस्कार—रीति-प्रवृत्ति, भी कम शक्तिशाली नहीं था। राजा साहब ने अपनी उत्कट मानसिक शक्ति से उस आत्मिक संस्कार को पराभूत अवश्य किया, वह उनके साहित्य का विषय नहीं बन सका; परन्तु वह संस्कार मरा भी नहीं—अनजाने उनकी शैली में रस-रंग भर गया। परिणामतः राजा साहब के साहित्य का विषय तो नग्नयथार्थ है—सत्य है, पर शैली वैसी ही खुरदुरी या दो टूक नहीं है—वह सहृदय व्यक्ति की यथार्थ अभिव्यक्ति की सरस शैली बन गई। राजा साहब ने अपने युग-यथार्थ की कटुताओं को, असंगतियों को वाणी दी, पर उनकी शैली किसी जर्राह की खुरदुरी छुरी की तरह नहीं है, बल्कि एक अति कुशल सर्जन की सधी उँगलियों में ताजा, साफ-सुथरी छुरी की तरह है—जो नश्तर तो बहुत गहरे देती है, पर रोगी को कष्ट नहीं, चैन मिलता है। उनका यही संस्कार-द्वैत उनके साहित्य में विषय और शैली का द्वैत बन गया। किन्तु उनका राजसी व्यक्तित्व जिस प्रकार जनतांत्रिक मूल्यों तथा लोक-सापेक्ष जीवन-पद्धति को अंगीकार करके सचेतन— जागरूक बन गया था, उसी प्रकार उनका साहित्य भी उनके संस्कार-द्वैत को आत्मसात् कर जीवंत—महनीय बन गया।

राजा साहब ने अपने युग को एक द्रष्टा की भाँति नहीं, बल्कि एक स्रष्टा एवं भोक्ता की तरह जीया। उनके साहित्य की पीड़ा उसी 'स्रष्टा' की पीड़ा है और संवेदना एवं गहराई 'भोक्ता' की अनुभूत सचाई है। चूँकि वे जीवन की 'सिद्धावस्था' से साहित्य की 'साधनावस्था' में आए थे, इसलिए उनके साहित्य में 'सिद्धावस्था तथा साधनावस्था' दोनों का मिला-जुला रूप मिलेगा—सूर और तुलसी तो किसी एक ही अवस्था को वाणी दे सके थे।

उस 'सिद्धपुरुष' साधक को मेरा नमन है।

उमाशंकर निशेष
६२८ सी/डी, दौलतपुर कॉलोनी, जमालपुर (मुंगेर)

✤

राजा साहब हिन्दी की अनूठी शैली के जन्मदाता और भाषा के जादूगर थे। इन्होंने राजनैतिक छल-छद्मों से दूर रहकर हिन्दी-साहित्य की सेवा की। राजा साहब अपने आप में एक संस्था थे, युग थे और हिन्दी साहित्य के एक ऐसे दुर्लभ व्यक्ति थे जो लाखों में अपनी शैली से पहचाने जा सकते हैं। पुरानी पीढ़ी के साहित्यकारों में से इनके निधन के साथ ही हिन्दी साहित्य के एक युग की समाप्ति समझा जा सकता है।

✤

उस दिन मैं कलकत्ता के निकट बण्डेल में था। यहीं पर मेरे एक साथी ने सूचना दी कि राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह अब नहीं रहे। इतना सुनते ही आँखों तले अंधेरा छा गया। काफी देर तक अवाक् होकर शून्य में तैरता रहा—आँखों से आँसू बहते

सबों के मन के राजा

रहे । राजा साहब के साथ बीते क्षणों की यादें एक-एक कर आती रहीं ।

लगभग १७ वर्षों से राजा जी के निकट रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । यही कारण था कि मैं उनके व्यक्तित्व, विचार, साहित्य, विद्वत्ता तथा उज्ज्वल चरित्र से प्रभावित था । मेरे मन में उनके प्रति असीम श्रद्धा रही है । उनके साहित्य और व्यक्तित्व के मूल्यांकन हेतु एक अभिनन्दन-ग्रंथ समर्पित करने की योजना को फलीभूत करने में मुझे लेखकों तथा सम्मानित व्यक्तियों का पूर्ण सहयोग मिला । हिन्दी के गण्यमान्य विद्वानों एवं उनके हितैषियों ने हृदय खोलकर सहयोग दिया । "आरती साहित्य-मंदिर", जमालपुर की ओर से उनकी ८०वीं वर्षगाँठ के अवसर पर एक अभिनन्दन-ग्रंथ ३ अगस्त १९६९ को बिहार के तत्कालीन राज्यपाल श्री नित्यानन्द कानूनगो के कर-कमलों द्वारा भारतीय नृत्य-कला-मंदिर, पटना के हॉल में समर्पित किया गया । उस समारोह में बिहार के मूर्धन्य साहित्यकारों, समाजसेवियों एवं राजनेताओं के अतिरिक्त बाहर के भी प्रमुख जाने-माने शायर और कवि उपस्थित थे । जिनमें सर्वश्री फिराक गोरखपुरी, काका हाथरसी, नजीर बनारसी, नागार्जुन, हंसकुमार तिवारी, केसरी कुमार एवं शंकरदयाल सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । इस ग्रंथ-विमोचन समारोह की अध्यक्षता बिहार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के उपाध्यक्ष श्री शारंगधर सिंह ने की थी । इसके साथ ही राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह अभिनन्दन-ग्रंथ समिति के सदस्य सर्वश्री उदय नारायण सिंह, लोकनाथ, लखन अकेला, विलट विहंगम (विधायक), दुर्गा प्रसाद मुकुर, जयदेव प्रसाद सरस्वती आदि थे । काफी अस्वस्थता के बावजूद भी राजा जी ने अपनी चिर-परिचित विनोदप्रियता की बानगी पेश करते हुए कहा था—

"मोहरों की तिजोरी छूट सकती है, अपनी प्यारी बीवी छूट सकती है, पर तारीफ के तवायफ से छुटकारा नहीं ।"

कुछ दिनों पूर्व राजा जी की अस्वस्थता का समाचार सुनकर उनके बोरिंग रोड स्थित निवासस्थान पर उन्हें देखने गया तो पाया, उनके दाहिने पैर की हड्डी टूट गई है । राजा साहब बहुत कष्ट में थे । उनकी दशा देख मेरी आँखों में अनायास ही आँसू आ गये । सान्त्वना देते हुए उन्होंने कहा कि अब तो काफी बूढ़ा हो गया हूँ—अब जीवन के जो ही दो-चार दिन कट रहे हैं, वही बहुत है । उनकी ऐसी निराशापूर्ण

वाणी सुनकर मुझे आन्तरिक पीड़ा हुई। और कुछ ही दिनों के बाद २४ मार्च १९७१ को दिन में लगभग २ बजे पटना में लगभग ८२ वर्ष की उम्र में उनके देहावसान का समाचार सुनने को मिला।

राजा साहब हिन्दी की अनूठी शैली के जन्मदाता और भाषा के जादूगर थे। इन्होंने राजनैतिक छल-छद्मों से दूर रहकर हिन्दी-साहित्य की सेवा की। राजा साहब अपने आप में एक संस्था थे, युग थे और हिन्दी साहित्य के एक ऐसे दुर्लभ व्यक्ति थे जो लाखों में अपनी शैली से पहचाने जा सकते हैं। पुरानी पीढ़ी के साहित्यकारों में से इनके निधन के साथ ही हिन्दी साहित्य के एक युग की समाप्ति समझा जा सकता है।

राजा साहब जीवन पर्यन्त निर्लिप्त भाव से साहित्य की सेवा करते रहे। साहित्य के माध्यम से अपने देश में राष्ट्रीय जागरण का संदेश दिया। आप बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष, साहित्य अकादमी एवं बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के सदस्य एवं कई अन्य संस्थाओं से संबंधित रहे थे। आपकी असाधारण विद्वत्ता और प्रखर देशभक्ति का मूल्यांकन करते हुए भारत सरकार ने १९६२ में आपको पद्मभूषण की उपाधि से अलंकृत किया और मगध विश्वविद्यालय ने आपकी साहित्यिक सेवाओं पर १९ जनवरी १९६९ को डॉक्टर ऑफ लिटरेचर की उपाधि दी। आपका जीवन सदा से ही त्याग और तपस्या का जीवन रहा है। राजा जी राजा होने के साथ ही सबों के मन के राजा थे। आप हिन्दी के ही नहीं, बल्कि अँग्रेजी, संस्कृत, बंगला, उर्दू तथा फारसी के भी विद्वान थे।

अन्त में श्रद्धा के दो पुष्प उनकी स्मृति में अर्पित करता हूँ।

हसरत तो है कला के उस अभिसार पर जो अतीन्द्रिय आनन्द के पारावार से मुड़कर पेशे के पनाले की धार हो गई—धार!

—राधिकारमण

रामनन्दन प्रसाद सिन्हा
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जीवछ महाविद्यालय, मोतीपुर (मुजफ्फरपुर)

राजा साहब का तीर्थराज प्रयाग तो बह रहा है। यह मेरा अहोभाग्य कि मैंने अपनी आवश्यकतानुसार इस संगम से भर-कमंडल जल ले लिया। "शुभास्ते पन्थानः"

२४ मार्च। दिन बुधवार। ६ बजे संध्या का आलम। चारों तरफ आपाधापी और दौड़धूप। सूर्य अस्ताचल के नीचे विश्राम करने चला: इधर मैं 'राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह: कथा-शिल्प और जीवन-दर्शन' शीर्षक शोध-प्रबंध की पूर्णाहुति कर मोतीपुर से मुजफ्फरपुर झटपट रवाना हुआ। स्टेशन से बस-स्टैण्ड पटना जाने के लिए। मन में अरमान पंख लगाकर पटना पहुँच चुके थे और "मैं पटने में राजा साहब से भर गले मिल रहा

सूर्यपुरा के सूर्य, हिन्दी भारती के राजर्षि जनक

हूँ। खूब उछल-कूदकर उनकी एकांत कोठरी में गप्प-शप कर रहा हूँ। यही नहीं, उन्हें तैयार कराकर किसी फोटोग्राफर से उनके साथ अपना फोटो भी खिचवा लेता हूँ। मैं तो आत्मविभोर हूँ। जैसे कोई समुद्र-लहरी पूर्णचन्द्र के आलोक-विलोक में खो गयी हो। या कोई मृगछौना संगीत के आरोह-अवरोह से गुजरकर मधुर भाव-मूर्च्छना में विराम-चिह्न की तरह स्थितप्रज्ञ हो बैठ गया हो। अथवा ज्योत्स्ना-गंगा में कोई चकोर आलोड़ित-विलोड़ित होकर संज्ञा शून्य हो गया हो"। तभी अनायास किसी दैवी अज्ञात शक्ति ने मुझे एक पान की दूकान पर खड़ा कर दिया। एकाएक हृदय की धौंकनी तेज हो गयी और पैर शिथिल। कि एकाएक आकाशवाणी पटना से सुनता हूँ—"आज दिन के दो बजे, अपने बोरिंग रोड स्थित निवास पर, हिन्दी-संसार के सूर्य, अप्रतिम शैलीकार, पद्मभूषण, विद्या-वाचस्पति डॉ० राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह का निधन हो गया।" मैं ठस्स-सा वहीं बैठ गया—प्रज्ञाशून्य होकर। गति-मति जाती रही। जैसे बिजली कौंध गई हो और गिर पड़ा हो गाज मुझ पर! हाय री नियति और हाय री विधि-विडम्बने! मैं चला था उनसे मिलने, पर वे थे जो परमधाम को चले गए!! राजा साहब का सगुण चोला निर्गुण के रूप में बदल जायगा तथा उनपर मेरे शोध-प्रबंध की अंतिम पंक्तियाँ भी उसी दिन पूरी होंगी—यह मुझे हैरत में डाल देता है। इस दुःखद तुक और क्रम-योजना में विधाता का कौन-सा रहस्यवाद है—यह मुझे समझ में नहीं आ रहा है। लगभग छह महीनों से राजा साहब से मेरे मिलने की योजना बनकर बिगड़ जाती थी। कालचक्र परिस्थितियों का ऐसा व्यूह रच देता कि मैं हरबार गोरखधन्धा का पुतलामात्र बनकर रह जाता। कई बार पटना में राजा साहब से मिला भी तो हरबार यह सोचकर लौट आता कि अगलीबार जब आऊँगा तब जेब भर कर और निश्चय ही उनके साथ फोटो खिचवा लूँगा। पूज्य गुरुवर डॉ० श्यामनंदन किशोर, डी० लिट्० (आचार्य और अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एवं अधिष्ठाता, कला-निकाय, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर) से राजा साहब के नाम से अनुशंसा-पत्र लेकर जब मैं प्रथम बार उनसे मिलने चला तो उन्होंने हिदायत भरे शब्दों में कहा था—"महान् आत्माओं और विभूतियों से जब कभी मिलो तब उनसे कोई-न-कोई स्मृति-चिह्न अवश्य ले लो। जाओ और हिन्दी के राजर्षि जनक के साथ अपना फोटो अवश्य खिचवा लेना।" आज जब लम्बी सुषुप्ति और तन्द्रा के बाद,

जेब में पैसे का प्रबन्ध कर, और राजा साहब पर शोध-प्रबन्ध का अंतिम रूप देकर उनके साथ फोटो खिचवाने के लिए चला तो वह फोटोवाला ही इस धराधाम से कूच कर गया। अपनी दीर्घसूत्रता का मुझे भयावह परिणाम इस कारुणिक रूप में मिलेगा—इसकी कल्पना से ही मैं मर्माहत हो जाता हूँ। अब मैं उनकी सूरत और मूरत पाऊँ कहाँ ?

"तेरी सूरत से नहीं मिलती कोई सूरत,
हम जहाँ में तेरी तस्वीर लिए फिरते हैं।"

राजा साहब से मेरा प्रथम परिचय सन् १९६७ में हुआ। उनके साहित्यकार रूप से, उनकी बाँकी झाँकी और अदा से प्रवेशिका की छात्रावस्था से ही मैं परिचित था। मुजफ्फरपुर के सुहृद-संघ के वार्षिकोत्सव में बिहार के दो महान् विभूति—राजा साहब और बेनीपुरी जी के प्रथम दर्शन का सौभाग्य भी पा चुका था। संभवतः १९४७ में। पर उनसे रूबरू मुलाकात १९६७ में हुई, जब मैं उनसे सम्बद्ध कृतियों और मसाले की प्राप्ति हेतु उनपर शोध-सामग्री इकट्ठा करने लगा। प्रथम दर्शन ने ही मेरी आँखों के कीचड़ को साफ कर दिया। उन्होंने शिवाजी से अपने अशोक प्रेस से अपनी सम्पूर्ण कृतियों का एक सेट दिलवा दिया। पीठ ठोकी। दिलासा दिया। परिवार का इदिया-गुदिया पूछा। और 'चरैवेति', 'चरैवेति' की शिक्षा भी।

उनसे मिलने का क्रम रुका नहीं। आवश्यकतानुरूप उत्सुकतावश, जिज्ञासावश—शोध और गवेषणा के सिलसिले में। उनका कमरा एक छोटा मालगोदाम था—किताबों का ढेर, अखबारों का गट्ठर, पत्र-पत्रिकाओं का हुजूम, दवा आदि की शीशियाँ, सोने के लिए एक छोटी चौकी (पलंग नहीं)—वह भी किताबों से लदी हुई। जो अपने को राजा कहता हो और पुश्त-दर-पुश्त से पाँच लाख के स्टेट का स्वामी हो (आज के रुपये में बीस लाख कहना चहिए), वह भला इस तरह संन्यस्त जीवन क्यों बिता रहा है ? अपने साहित्य में जिस रीतिकालीन साज-सज्जा और अलंकार को उन्होंने अदा के साथ प्रकट किया है—भला उसका यहाँ पार्थक्य और विलगाव क्यों ?

मैंने अपने आसपास 'बड़े मियाँ तो बड़े मियाँ, छोटे मियाँ सुभान अल्ला' जैसे लक्ष्मी के लाड़लों की तड़क-भड़क, ठाट-बाट, हाव-भाव और वैभव-विलास को अपनी आँखों से देखा है। वे कहने के लिए राजा भले ही रहे हों और लिखने के लिए 'राजा' नाम के

पहले अवश्य जोड़ लेते हों, पर राजा शब्द में जो चमत्कार, प्रदर्शनप्रियता, चाकचिक्य, बनावटीपन तथा दुर्लभ दर्शन के अर्थ ध्वनित होते हैं—उनसे राजा साहब सर्वथा परे थे ! जन्मना कवि होने के कारण राजा साहब 'कविर्मनीषी परिभू स्वयंभूः' की विमल विभूति थे ।

राजा साहब सर्वजनसुलभ, समय के पाबंद, शिष्टाचार की खचित प्रतिमा थे और थे प्रतिभा-पुत्र । उनमें औपचारिकता की जगह अपार स्नेह पाया और मिलते वक्त लगता था, जैसे कोई मानव-लहरी किसी महासमुद्र में मिल रही हो । पाया, जैसे उनका साहित्यकार उनके व्यक्तित्वगंगा की एक छोटी तरंग हो । पटना के बोरिंगरोड-स्थित मकान की कभी एक छोटी कोठरी में और कभी उसके सायबान में राजा साहब का योगी बेलौस विचरण करता । एक फकीर की सादगी का प्रभामंडल वहाँ के वायुमण्डल में आप्त-व्याप्त रहता । उस शान्त सौम्य वातावरण में मैं यदा-कदा उनसे पूछ बैठता—"यह जनक का राजयोग क्यों ? यह हर्षवर्द्धन का त्याग क्यों ? यह भर्तृहरि का विराग क्यों ? यह गौतम बुद्ध का मज्झिम निकाय क्यों ?" राजा साहब हँस पड़ते और काले चश्मे के भीतर उनकी पुतलियाँ नाच जातीं । वे कहते—"आप पते की बात कह रहे हैं । मैं जो कुछ हूँ वह रवीन्द्र के चलते ।" "और क्या प्रेमचंद के चलते नहीं ?"—मैं पूछ बैठता । तब राजा साहब एकाएक खामोश हो जाते और शायद स्मृति के वातायन से वे प्रेमचंद की कोई छाप, कोई अनुगमन वे अपने आप में नहीं पाते । घंटों उनकी मुखमुद्रा और चेहरे के उतार-चढ़ाव को देखकर, तथा 'कुसुमांजलि' से लेकर 'चुम्बन और चाँटा' की रील को हृदयंगम कर मैंने यह निष्कर्ष निकाल लिया कि राजा साहब का मूल्यांकन रवीन्द्र की परम्परा में न्यायोचित है; परन्तु, प्रेमचंद की परम्परा में राजा साहब का व्यक्तित्व और कृतित्व का परीक्षण सर्वथा मर्मघातक और पिष्टपेषण है । सचमुच वे हिन्दी के कवीन्द्र रवीन्द्र थे और तभी तो उनका जीवन और साहित्य धर्म, संस्कृति, दर्शन और कला का मणिकांचन संयोग सदृश उदयाचल था । काश ! हिन्दी साहित्य के आलोचकों ने इस सूक्ष्म सत्य को देखा होता । यही कारण है कि मैंने कथाशिल्प की कसौटी पर राजा साहब के साहित्यकार को निरखा-परखा है, पर रवीन्द्र के आलोक-विलोक में ।

बिहार की त्रिवेणी में सर्व श्री शिवपूजन सहाय और रामवृक्ष बेनीपुरी के बाद

राजा साहब का अस्त हो जाना हम हिन्दी-प्रेमियों को और शोकाकुल कर देता है। कल तक जो हमारे बीच सगुण था, वह आज एकाएक निर्गुण के रूप में परिवर्तित हो गया। अब तो उनके साहित्य के अक्षर और शब्द में ही राजा साहब के दर्शन होंगे। निश्चय ही उनकी भाषा, शैली, कथाशिल्प जीवन-दर्शन और नारी-भावना उनके साहित्य के उच्चतम शिखर हैं जो आज भी नीर-क्षीर-विवेकों की दुनिया में ढके हुए हैं। काश, राजा साहब के साहित्यिक धन के उत्तराधिकारी उनके बेटे-भतीजे, सगे-सम्बन्धी, रागी-अनुरागी, कवि-कलाकार, डॉक्टर-निर्देशक सब मिलजुलकर इस महान् यज्ञ का अनुष्ठान कर पाते! काश, कथा-साहित्य की इस विमल विभूति का उद्धार हो पाता!! तभी हम उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित करने के लायक हो सकेंगे।

राजा साहब का तीर्थराज प्रयाग तो बह रहा है। यह मेरा अहोभाग्य कि मैंने अपनी आवश्यकतानुसार इस संगम से भर-कमंडल जल ले लिया। 'शुभास्ते पन्थानः'

पद पाकर भी मद की आमद न हो, ऐसा जल-कमल तो कोई चिराग लेकर भी ढूँढ़े तो मिलने से रहा।

—राधिकारमण

शत्रुघ्न
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, किसान कॉलेज, सोहसराय

मैंने राजा जी को सूचित किया। अपनी खोई हुई सन्तान को पाकर जैसे कोई हर्षोन्मत्त हो उठता है, उसी तरह वे गद्‌गद् हो उठे। अथाह प्रसन्नता के साथ असीम आशीष उन्होंने मुझे दी। और उसकी प्रतिलिपि के लिए वृद्ध पिता के समान विनम्र अनुरोध किया। मैंने आशीषपूर्ण आदेश को शिरोधार्य किया। दूसरी बार मैं काशी गया। सर्वप्रथम 'मनोरंजन' की फाइल से नवीन सुधारक की प्रतिलिपि की। और उसे सहर्ष समर्पित कर दी। मैंने महसूस किया कि मेरा शोध-कार्य सार्थक हुआ।

✣

उस दिन उर्दू के प्राध्यापक हिन्दी-उर्दू के प्रश्न पर बोल उठे—"मैं तो राजा जी का कायल हूँ। उन्होंने कभी उर्दू के खिलाफ एक शब्द भी नहीं कहा। उनकी नजर सही है। अगर सभी उस नजरिये को अपना कर विचार करें सवाल ही पैदा

राजा जी : स्मृति के वृत्त में

नहीं होगा। लेकिन ऐसा हो नहीं पाता। लोग सही ढंग से सोच नहीं सकते। तिल का ताड़ कर देते हैं,...मैं समर्थन में सर हिला रहा था। कभी-कभी मुस्करा भी देता था।...वे बोल रहे थे—राजा जी ने हिन्दी और उर्दू को अलग-अलग भाषा के रूप में देखने की कोशिश नहीं की। दोनों जुबान एक हैं। दोनों के जनम की धरती एक है। बोलनेवाले भी इन्हीं सूबों में रहते हैं।...उनके मुताबिक यह खड़ी बोली जब साड़ी पहन घूँघट डालकर आती है तो हिन्दी कहलाती है और जब सलवार-समीज पहन दुपट्टा ओढ़ कर आती दिखायी पड़ती तो उर्दू कहलाने लगती है।"

मैंने कहा—"दोस्त! राजा जी का समस्त साहित्य इसी नजरिये से लिखा गया है। एकाध पढ़ कर समझ सकते हो।...और उनका यह कथन साफ-साफ बता देता है कि हिन्दी और उर्दू में केवल पहनावे का फर्क है। हिन्दी का पहनावा हिन्दुस्थानी है और उर्दू का ईरानी! क्या हर्ज है कि गैर मुल्की पहनावे को छोड़कर अपने वतन के पहनावे को ही जगह दें। बंगाल और महाराष्ट्र के मुसलमान तो ईरानी पहनावे के लिए परेशान नहीं रहते हैं। और चीन के...।"

यह सुनकर वे बौखलाने की स्थिति में आ गये; पर अपने को सँभाल लिया। अपने कॉलेज जीवन में राजा जी के सुने हुए भाषण के महत्त्वपूर्ण अंश को सुनाने लगे। मैंने भी उन्हें बौखलाने की चेष्टा नहीं की। मैं तो मुग्ध हो रहा था। राजा जी की गंगा-जमुनी शैली के भाषण से अभिभूत अपने दोस्त को देख मैं मुग्ध हो चुका था। मैं खुद उनके एक भाषण की पंक्तियों को याद करने लगा।...और फिर सोचने लगा कि यदि मजहबी राजनीति परेशान न करे तो राजा जी हिन्दी और उर्दू की कड़ी बन बन सकते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि दोनों एक ही भाषा हैं—यह राजा जी का कृतित्व सिद्ध कर सकता है। राजा जी की रचनाओं और व्याख्यानों में वह कल्पना साकार हो गयी है। इस साकार के शुद्ध हृदय से दर्शन की अपेक्षा है।

मैंने 'द्विवेदी युगीन हिन्दी नाटक' पर शोध कार्य करना आरंभ कर दिया। इस क्रम में काशी कई बार गया। नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में अध्ययन करता रहा। पुरानी पत्रिकाओं की फाइल उलटता रहा। सहसा 'नवीन सुधारक' नामक नाटक (प्रहसन) 'मनोरंजन' की फाइल में दिखायी पड़ गया। लेखक का नाम—कुमार राधिकारमण प्रसाद सिंह अंकित था। मैं अपने राजाजी के इस नाम को देख हर्षविभोर

हो उठा। कथाकार के एक नाटक की प्राप्ति से बेसुध हो उठा। एक बार पढ़ा, दो बार पढ़ा और उस दिन कथाकार राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के कुमार रूप के दर्शन कर मगन रहा। मुझे लगा कि मैंने द्विवेदी युग की एक प्रमुख रचना को पा लिया जिसे सभी खो बैठे थे।

मैंने राजा जी को सूचित किया। अपनी खोई हुई सन्तान को पाकर जैसे कोई हर्षोन्मत्त हो उठता है, उसी तरह वे गद्‌गद् हो उठे। अथाह प्रसन्नता के साथ असीम आशीष उन्होंने मुझे दी। और उसकी प्रतिलिपि के लिए वृद्ध पिता के समान विनम्र अनुरोध किया। मैंने आशीषपूर्ण आदेश को शिरोधार्य किया। दूसरी बार मैं काशी गया। सर्वप्रथम 'मनोरंजन' की फाईल से 'नवीन सुधारक' की प्रतिलिपि की और उन्हें सहर्ष समर्पित कर दी। मैंने महसूस किया कि मेरा शोधकार्य सार्थक हुआ।

५४ वर्षों के बाद वह प्रहसन 'नई धारा' के सितम्बर '६५ के अंक में प्रकाशित हुआ। राजा जी ने लिखा—"हम कैसे-क्या एहसान जताएँ उनके इस कमाल का यों तो हमें याद नहीं, यह पूरा है या अधूरा, पर जो है वह भी अपने आप में भरपूर है अपनी जगह पर। और, यों लीजिए, यह छिपा रुस्तम फिर जिन्दा हो गया!"

भाव का पौधा भी अभाव के मरु में नहीं पनपता।

—राधिकारमण

सत्यनारायण लाल
आचार्य, प्राथमिक शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय, विहिया, शाहाबाद

…उनके होंठ हिले और एक मृदु गंभीर स्वर फूटा उनसे—शान्त, देवियो, शान्त ! आप तीनों एक ही बात कह रही हैं विभिन्न शब्दों में। वह किसी एक का नहीं, सबका है, हम सब का।…

✠

आँखें लगी ही थीं कि एक दृश्य सामने उभर आया। नानाभरण अलंकारों से सुसज्जित एक उज्ज्वल धवल कुंजर। सूँड़ में सनाल पद्म-पुष्प। मस्ती में झूमता हुआ। तृप्ति, कुतूहल और जिज्ञासा की त्रिवेणी में मेरे नयन उब-चुब होने लगे। तबतक एक दिव्य नारी-मूर्ति—महालक्ष्मी—वहाँ प्रकट हुईं। हाथी ने सूँड़ से उनका अभिनन्दन किया। पद्म-पुष्प उनके चरणों में

विन्दु सिन्धु में

समर्पित किया। महालक्ष्मी ने उसे दुलारा, पुचकारा और कहा—

"आज मेरा लाड़ला लौट रहा है। जाओ, उसे सस्नेह ले आओ।"

बात पूरी भी न होने पाई कि नीलाभ गगनमंडल में तैरता हुआ-सा एक हंस वहाँ अवतरित हुआ और उससे उतरीं भगवती वीणापाणि। उन्होंने महालक्ष्मी से कहा—"बहन, तुम भ्रम में हो। उसने तुम्हारा लाड़ स्वीकार ही कब किया? तुम्हारे लटकों में भूला ही कब? वह तो मेरा दिव्यांश है। आजीवन मेरी आराधना की। अब इहलीला से तृप्त वापिस आना चाहता है।"

इतना कहकर वह हंस की ओर मुड़ीं। उसके उजले-धुले पंखों को प्यार से थपथपाया और बोलीं—"जाओ राजहंस, लाओ उसे शीघ्र। तबतक मैं अपने उस वरदपुत्र के स्वागत में स्वर साध रही हूँ।" और वीणा के तार झंकृत हो उठे।

...कि नान्दी का गंभीर हुंकार सुनाई पड़ा और आ धमकीं वृषभवाहिनी त्रिनयना शिवा। उन्होंने मुस्कुराते हुए मधुर किन्तु स्पष्ट आवाज में कहा—

"भ्रम में तो तुम दोनों ही हो बहनो! जिसे लक्ष्मी अपना लाड़ला और सरस्वती अपना वरदपुत्र समझ रही हैं, वह तो मेरी विमल विभूति है। वह न तो लक्ष्मी के लाड़ में पड़ा और न सरस्वती के मृदु मंजीर में ही आबद्ध रहा। लक्ष्मी को उसने अपने भौतिक अस्तित्व का मात्र साधन माना और सरस्वती को लोक-कल्याण की साधना का स्वरूप। आप दोनों तो उसकी साधन मात्र रहीं। साध्य तो वह मुझे मानता रहा। उसे तो मैंने भेजा था विश्व में स्थितप्रज्ञता का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए, दुनिया को यह दिखा देने के लिए कि लक्ष्मी का लाड़ला और सरस्वती का वरदपुत्र विख्यात होते हुए भी कोई जीवात्मा शिवा-साधना में सतत संलग्न कैसे रह सकती है? उसने यह आदर्श उपस्थित कर दिया। आज मृत्युलोक चकित-विस्मित है उसकी जीवन-पद्धति और उपलब्धियों को देखकर।" कहते-कहते वह नान्दी की ओर मुड़ीं और बोलीं—"बहुत विलम्ब हो रहा है नान्दी! शीघ्र जाओ और उसे सादर ले आओ।"

शिवानी की बात सुनकर लक्ष्मी और सरस्वती कुछ कहना ही चाहती थीं कि वातावरण गूंज उठा 'हर हर महादेव' की अलौकिक ध्वनि-लहरियों से और सामने प्रकट हो गए भूतभावन भगवान शंकर! उनके अधरों की मुस्कान से एक दिव्य

प्रकाश फैल गया चारो ओर। उनके होंठ हिले और एक मृदु गंभीर स्वर फूट पड़ा उनसे—

"शान्त, देवियो, शान्त ! आप तीनों एक ही बात कह रही हैं विभिन्न शब्दों में। वह किसी एक का नहीं, सबका है, हम सबका।" तीनों दिव्य शक्तियाँ मौन रह गईं, स्तब्ध !

महादेव की दोनों भुजाएँ—डमरू और त्रिशूल के साथ ही—दोनों ओर फैलीं और मुँह से कुछ स्वर्गिक प्यार-दुलार से सनी एक आवाज—"आओ बेटे !"—मानो किसी का आवाहन कर रहे हों आलिंगन के लिए !

किसी को बुला रहे हैं, जिज्ञासा हुई। घूमकर पीछे देखा। देखा, हमारे परमश्रद्धेय राजा साहब। चेहरे पर चिरपरिचित स्वाभाविक मुस्कान, हाथ जुड़े हुए, सिर कुछ झुका हुआ। मैं आश्चर्य-विमुग्ध उनके चरण भी न छू सका। बस, यंत्रवत् खड़ा-खड़ा देखता रहा। वह आगे बढ़े। भगवान शंकर भी आगे बढ़े। कुछ विचित्र नाटकीय समाँ-सा बँध गया। राजा साहब झुके शंकरजी के चरणों में। रोक लिया भगवान ने बीच ही में। लगा लिया छाती से। और यह क्या ! विन्दु सिन्धु में विलीन हो गया !

अकचका कर आँखें खुल पड़ीं। सुख-दुख की एक विचित्र भावना से हृदय अभिभूत हो उठा। फिर नींद नहीं आई।

दूसरे दिन संवाद मिला—राजा साहब नहीं रहे। मुझे लगा, राजा साहब शिव होकर अमर हो गए।

सुन्दरम् का निखार तो त्याग और सेवा का संचार है। यही वह सुन्दरम् है जिसकी एक हथेली पर सत्यम् है तो दूसरी पर शिवम् भी।

—राधिकारमण

हमारे बाबूजी

बता दो मुझे रास्ता मयकदे का

मैं गुजरी हुई ज़िन्दगी ढूँढ़ता हूँ
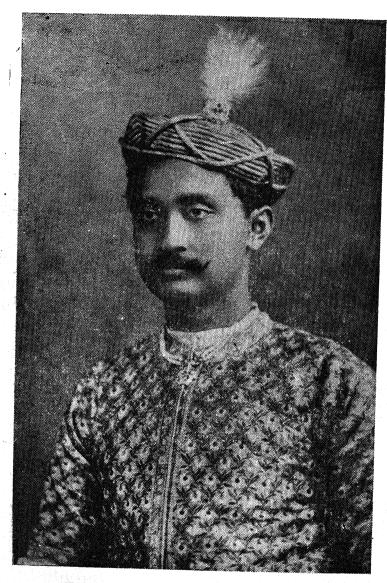
स्वर्गीय राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह 'प्यारे'

कुर्सी पर (बायें से दाहिने)—राजा साहब; अभिभावक नन्दकुमार लालजी तथा कुमार साहब।

राजा साहब के पीछे खड़े—पं० विन्धेश्वरी उपाध्याय पुरोहित।

कुमार साहब के पीछे उनके बाल सखा पं० रामानन्द उपाध्याय।

"का लिखत बाड़ऽ भइया,"

"ना, कुछ ना, अइसहीं कुछ।"

"नाहीं, तनी हमहूँ देखीं।"—इतना कहकर छोटे बाबूजी * मेज पर झुक जाते हैं और मुस्कुराते हुए कुछ कहने लगते हैं—बड़े बाबूजी अपनी लिखी हुई कॉपी उनकी ओर बढ़ा देते हैं। बड़े भाई के हाथ में कलम है, अभी-अभी स्याही में डुबो कर भरी हुई, और छोटे भाई के हाथ में लॉ-करोना सिगार—सारा वातावरण सिगार की गंध से भर जाता है। दोनों भाई मुस्कुरा रहे हैं, एक-एक पंक्ति पर चर्चा छिड़ जाती है, मैं दूर से बरामदे में छिपकर खड़ा हो यह युगलबन्दी देख रहा हूँ।

सन् १९३३ की फरवरी का महीना—मैं अभी १२ वर्ष का भी नहीं हूँ—स्कूल की देहरी पर पैर तक नहीं रखा। मैं बड़े कौतूहल से यह लीला देख रहा हूँ मगर कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ। हम बच्चे दोनों बाबूजी से बहुत डरा करते थे। पुराने नाज-अंदाज, रीति-रिवाज, पिता के पास भी बड़े अदब से जाना—बातें करना, फिर उलटे पाँव लौट आना। सोचा, कल वसन्त पचमी है, स्कूल में पारितोषिक वितरण समारोह है, जिलाधीश श्री श्यामलधारी लाल आइ० सी० एस० पधार रहे हैं, उसी के संबंध में कोई चर्चा है।

दूसरे दिन। स्कूल हॉल खचाखच भरा है—कहीं तिल रखने की जगह नहीं। मंच पर बीच में लाल साहब विराजमान हैं और दोनों बगल में दोनों बाबूजी। सभा की कार्यवाही ग्यारहवें दर्जे के विद्यार्थी उमेशचन्द्र मधुकर के कविता-पाठ से शुरू होती है—

'रिझाऊँ क्या गाकर माँ तुझे
भरा है आहों से जो गान'

'उफ्, कमाल है! बहुत सुन्दर! वाह, मधुकर जी, इस पंक्ति को एक बार फिर से दुहराइए—मेरा इसरार जो है!'—बड़े बाबूजी कहते चले जाते हैं। उनके साथ-

---

* स्वर्गीय कुमार सर राजीवरञ्जन प्रसाद सिंह उर्फ मुनमुन जी या मुन्ना

साथ सारी सभा झूमती जाती है। लाल साहब मंच पर चुप बैठे हैं, मगर उनपर उन पंक्तियों का कोई भी असर नहीं। मैं अवाक् हो यह दृश्य देख रहा हूँ। बिना पंडितजी के समझाए हुए उस कविता को समझने की क्षमता उस समय मुझ में न थी।

दूसरे दिन सुबह पंडित जगदीश शुक्ल (स्थानीय हाई स्कूल के हेडपंडित) मुझे पढ़ाने को मेरे बंगले पर पधारे। साथ में 'विकास' (स्कूल का हस्तलिखित पत्र) का वसंतांक भी लिए हुए। शुक्लजी बड़े खुश दिखे—अपनी आशातीत सफलता पर उन्हें बड़ा गर्व हो रहा है। उन दिनों सूर्यपुरा के साहित्यिक जीवन के वे प्राण थे। नई-नई उमर, उमगती जवानी, और साहित्य की हर विधा पर कुछ कहने की, कुछ बोलने की अतिरिक्त लालसा। विद्यार्थियों के तो वे प्रेरणास्रोत थे जैसे। स्कूल के हस्तलिखित पत्र 'विकास' को प्राणवान् बनाया उन्होंने और उसके विशेषांकों की खूब चर्चा रहती उस मंडल में।

'लीजिए शिवाजी, यह रहा 'विकास' का वसंतांक।'

मैं झट उसे उठाकर पढ़ने लगा। प्रथम पृष्ठ पर ही लिखा है—

कानन मुरली मधुर धुनि, नैनन में ब्रजबाल।
मन मन्दिर में राधिका, रोम रोम गोपाल!

प्रिय बालवृन्द!

इधर मुरली मनोहर की मुरली बज रही है,
उधर सारथि कृष्ण का शंखनिनाद।
यह माधुर्य की लहर है,
वह गांभीर्य का निविड़ निःश्वास।
इधर चन्द्र की शीतल किरणें,
उधर सूर्य का उत्तप्त प्रकाश।

आपके हृदय में प्रेम-मुरली की निरन्तर ध्वनि हो और मानस-पट पर ज्ञान-प्रकाश। दोनों जरूरी है—विश्व का प्रेम और विश्व का ज्ञान।

सस्नेह
राधिकारमण प्रसाद सिंह

वसंत पंचमी, १९३३

मैं आश्चर्यचकित। कुछ समझ में नहीं आ रहा है। पंडित जी ने टोका—"आपको क्या विश्वास नहीं हो रहा है? यह आपके पिताश्री राजा साहब का सन्देश है। परसों रात यहीं बंगले पर ही यह संदेश लिखकर मेरे पास भेज दिया था उन्होंने।"

परसों रात की घटना मुझे अब याद आने लगी। उस रात जरूर यही संदेश बाबूजी लिख रहे थे और छोटे बाबूजी उसे पढ़ते जाते और मुस्कुराते जाते थे। परन्तु, मुझे विश्वास नहीं हो रहा है—मेरे पिताजी लिखते भी हैं। उनकी एक भी पंक्ति लिखी हुई मुझे पढ़ने को नहीं मिली थी। मेरे पिता एक लेखक भी हैं—इस कल्पना से एक अजीब सिहरन, अपूर्व पुलक-प्लावन महसूस कर रहा हूँ मैं!

"वाह, राजा साहब हिन्दी के चोटी के लेखक और कहानीकार हैं—इसकी आपको कोई खबर नहीं? मगर इसकी खबर आपको होती तो कैसे—मैंने इसकी कभी चर्चा ही नहीं की आपसे। एक दिन उनका बेतियावाला भाषण आपको पढ़ाऊँगा और एक दिन गाँधीजी को जो मानपत्र उन्होंने दिया था वह भी पढ़ाऊँगा। 'कानों में कंगना' तो अभी आपको समझ में नहीं आएगी, कुछ बड़े हो जाइए तो 'मधुकरी' की एक प्रति स्कूल की लाइब्रेरी से लाकर आपको दूँगा, उसी में वह कहानी प्रकाशित है।"

मैं परीशान हूँ—बाबूजी भी कहानियाँ लिखते हैं और उनकी तीन-तीन पुस्तकें—'गल्पकुसुमावली', 'नवजीवन-प्रेमलहरी' और 'तरंग' प्रकाशित भी हो चुकी हैं। ये सारी बातें मेरे लिए बड़े आश्चर्य के विषय थीं। मेरे बालसुलभ मस्तिष्क में अँट ही नहीं रहा था कि बड़े बाबूजी लेखक भी हैं।

सचमुच शुक्लजी ने एक दिन बेतियावाला भाषण बड़े चाव से मुझे सुनाया और क्लिष्ट पंक्तियों का अर्थ भी समझाया। दूसरे दिन महात्मा गांधी को दिए गए मानपत्र की एक प्रति भी मुझे भेंट की और खूब झूम-झूम कर उसे मुझे समझाया भी।

जैसे-जैसे मेरी उम्र बढ़ती है, बाबूजी की रचनाओं को जानने-समझने की मेरी जिज्ञासा भी बढ़ती जाती है। सन् '३५ आते-आते बाबूजी की कलम जो सन् '२० से '३५ तक नजरबन्द थी, वह फिर (उन्हीं के शब्दों में) गुल कतरने लगी। और, फिर क्या था—'बादल से चले आते हैं मजमूँ मेरे आगे।'

कभी लटहवा पेड़ के नीचे तो कभी मोरपंखी की झाड़ में बाबूजी दफ्तर जमाए बैठे हैं। किसानों की भीड़ लगी है—रमजान अली, मुंशी रामलगन लाल, नसीर खाँ

इत्यादि फाइलों को लेकर खड़े हैं। तब तक शुक्लजी, शिवमंगल सिंह, राधा बाबू (स्थानीय स्कूल के शिक्षकगण) तथा रसिया श्याम बाबा वहाँ पहुँच जाते हैं और सारी भीड़ को थोड़ी देर विश्राम के लिए बरखास्त कर वे उन्हें रात में लिखे पन्नों को सुनाने लगते हैं। मेरे कानों में उनकी आवाज पहुँचती है। मैं छिपकर इर्द-गिर्द खड़ा हो जाता हूँ। दोनों कान उन्हीं के शब्दों पर टिक गए हैं। बातें कम ही समझ में आती हैं मगर शब्द-ध्वनि का रसास्वादन मन करने लगता है। चर्चा जैसे ही खत्म होती, मैं चम्पत हो जाता। कोई यह न जान जाय कि मैं भी उस मजलिस का आशना ठहरा। पिता-पुत्र की दूरी उन दिनों इतनी रहती थी कि पिता की साहित्यिक गतिविधियों का पता तक पुत्र को न चले। शाम को पढ़ाने जब शुक्लजी आते तो चर्चा छेड़ देते—"बहुत दिनों बाद अब राजा साहब की लेखनी आसमान से सितारे तोड़ने को उड़ चली है—कोई भारी-भरकम उपन्यास लिख रहे हैं। बिलकुल गंगा-जमुनी शैली। अक्सर उसकी चर्चा कारबार की भीड़ में ही छेड़ देते हैं। गजब की शक्ति उनमें है। इस्टेट के कामों की इतनी उलझन, इतनी झंझट और उसी बीच साहित्य-चर्चा भी। मानसिक शक्तियों पर अद्भुत अधिकार है उनका। भोर-तड़के टहलने के समय से ही जो इलाके के लोगों से मिलना शुरू कर देते हैं तो रात खाने के समय तक वही सिलसिला चलता रहता है। मिलने-जुलनेवालों का ताँता, हरेक की फरियाद सुनना और हर दरखास्त पर उचित ऑर्डर देना, इस्टेट के तमाम मुकदमों की पैरवी का प्रबन्ध भी करना और रात में विश्राम के समय 'राम-रहीम' लिखना—उफ् कुछ न पूछिए, गजब की क्षमता है उनमें! और हाँ, दिन में भी जब कभी काम की भीड़ में कोई पंक्ति मस्तिष्क में कौंध गई, उसे झट चिट-पुर्जे पर दर्ज कर लिया। चिट-पुर्जों का तो अम्बार लग गया है जैसे। कभी इस लिफाफे में कुछ पड़े हैं, कभी किताब और पत्रिकाओं के पन्नों में सुरक्षित रख दिए गए हैं।"

सन् '३५ की गर्मी आते-आते बाबूजी का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। दिन में इस्टेट की भीड़ और रात में जग-जग कर 'राम-रहीम' लिखना! बस, उनका शरीर धोखा देने लगा। डॉक्टरों की राय हुई कि उन्हें सूर्यपुरा से जल्द हटा दिया जाय। छोटे बाबूजी ने इस्टेट का भार अपने कंधे पर लिया और सबको लेकर नैनीताल चले गए। नैनीताल में 'राम-रहीम' का लेखन कैसे हुआ, इसकी कहानी तो श्री शिवमंगल सिंह

और भाई जगदीशचन्द्र माथुर के संस्मरणों में मिल जाएगी। हाँ, नैनीताल की यह घटना मुझे आज भी याद है—

बाबूजी को सिनेमा और थियेटर देखना बहुत पसंद था। और वह भी सेकेंड शो में। जवानी में उन्हें नींद की कमी और भूख का अभाव बराबर सताता रहा। इसीलिए शायद वह रात में सिनेमा और थियेटर देखना ज्यादा पसन्द करते। अक्सर वह खाना-खाकर पैदल बाबू शिवमंगल सिंह के साथ सिनेमा चले जाते और उस ठंढक में ही आधी रात के उपरान्त लेक से जखवाल सदन तक की ऊँची चढ़ाई चढ़कर घर पहुँचते। साथ में सिनेमा के गानों का छपा हुआ पर्चा जरूर रहता।

उन दिनों चंडीदास फिल्म का यह गाना—'प्रेमनगर में बसाऊँगी घर मैं तज के सब संसार'—गली-गली में गाया जा रहा था। चाहे जिस कूचे से निकल जाइए, किसी के गले से इस गाने की कड़ी आप अवश्य सुन लेंगे। हमारे 'शाम बाबा' ने तो इस गाने को सदा सुनते रहने के ख्याल से एक ग्रामोफोन ही खरीद लिया था।

जब बाबूजी कभी मूड में आते तो कहते—"चचा साहब, जरा मँगाइए अपना ग्रामोफोन और एकबार फिर हो जाय वही—"प्रेमनगर में बसाऊँगी घर मैं।" बस, शाम बाबा के घर से किसी के सर पर लदाकर ग्रामोफोन मँगाया जाता और उस पर वही तवा चढ़ जाता।

एक दिन मल्लिक जी (पं० सहदेव दूबे, संगीत शिक्षक, स्थानीय हाई स्कूल) को बुलाकर बाबूजी ने कहा—'राम-रहीम' का लेखन समाप्त हो गया। भगवत बाबू और सुरेश प्रेस कॉपी तैयार कर रहे हैं, सिर्फ आपकी सहायता बिना आखिरी अध्याय का काम रुक गया है। मल्लिक जी चकराये। झट पूछा—"सरकार इतने बड़े लेखक, भला मेरे बिना कैसे काम रुक गया है ?"

"तो आइए, इन पंक्तियों को लिख लीजिए—जरा गाकर देखिए तो, यह 'प्रेमनगर में बसाऊँगी घर मैं' की धुन पर गाया जा सकता है या नहीं। यदि बेला इस गीत को उस धुन पर गा देती है तो समझिए मेरी मिहनत सफल हुई।"

मल्लिक जी ने पंक्तियाँ लिख लीं और उसे उस गाने की धुन पर उतारने के लिए दो-चार दिन का समय माँगा। फिर उन्होंने उसे लयबद्ध किया और दो दिनों के बाद

उसी धुन में गाकर बाबूजी को सुना दिया। बाबूजी बागबाग हो गए। ये पंक्तियाँ यों हैं—

राम जानकी रामहि रावण रामहि पवन कुमार—
राम राधिका रामहि मुरली रामहि नन्ददुलार
राम खेवैया रामहि नैया रामहि पारावार
राम बजैया रामहि बाजा रामहि सुरसंचार।

('राम-रहीम' के अंतिम पृष्ठ से उद्धृत)

होली और दशहरा में हमारी ऐसी परम्परा रही कि दोनों बाबूजी और हम तीनों भाई एक साथ मोटर में सवार हो गोधूलि वेला में देवदर्शन को निकलते थे। पहले बाबा बंगालनाथ के मंदिर में जाते, फिर रघुनाथ जी के मंदिर में जाते, वहीं देवी जी की भी प्रतिमा के सामने फूल चढ़ाते और अंत में कुलदेवता श्री लक्ष्मीनारायण के मंदिर में दर्शन कर दशहरे में तौजी के लिए बाबूजी गद्दी पर जाकर बैठते या होली में अबीर और गुलाल की सामूहिक होली में भाग लेते। खानदान की ऐसी परम्परा और उस परम्परा के सच्चे अधिकारी छोटे बाबूजी का रुख देखकर बाबूजी साफा और शेरवानी तथा चूड़ीदार पाजामा पहन देवदर्शन को निकल तो जाते मगर मुझे ऐसा बराबर महसूस होता कि इस सारे पूजा-विधान से वे संतुष्ट नहीं दिखते। एक दशहरे की रात बाबा रघुनाथ जी के मंदिर से निकलकर जब मोटर में बैठे तो उन्होंने बड़ी दबी हुई जबान से छोटे बाबूजी से कहा—"मुन्ना, रूप चाहे अनेक हों मगर स्वरूप तो एक ही है।" छोटे बाबूजी हँस पड़े, "भैया ठीक त कहत बाड़ऽ। मगर आज अंदर चल के लड़आवन बाबा और आँगन में के देवी जी के भी दर्शन करलऽ।" बड़े बाबूजी ने हँसकर इसे भी स्वीकार कर लिया और गाड़ी गढ़ की ओर बढ़ चली।

बाबूजी अक्सर सूक्तियों में बोल जाते थे। वे सर से पैर तक सदा साहित्यकार ही रहे। कर्म के जिस क्षेत्र में हों या गर्दिश की जिस आँच में तप रहे हों, मगर अपने साहित्य-देवता के लिए मुक्ता के दाने चुन ही लेते थे। जब तक मेरी माँ जीवित रहीं, वह उन्हीं के हाथ का बनाया हुआ खाना बराबर खाते रहे। सुबह का नाश्ता वह लोगों से घिरे हुए और उनका काम निबटाते हुए ही कर लेते मगर दुपहर और रात का खाना तो वह अंदर जाकर अम्मा के सामने आसनी पर बैठकर ही खाते। इतने

जबर्दस्त संयमी कि बिना नमक-चीनी का खाना और वह भी एक ही तरह का, आजीवन खाते रहे। मगर उस अल्पाहार में भी वह अपना स्वाद खोज लेते और वह जरा भी गड़बड़ा जाता तो खाना छोड़ देते थे। अपने निज परिचित स्वाद का मजा वह अम्मा द्वारा बनाए हुए खाना में ही पाते थे। उनके जीवन में मैंने कहीं भी कोई नफासत देखी तो अपने खाने के स्वाद के सिलसिले में या अपनी भाषा का ताना-बाना बुनने में। मनचाहा खाना मिल गया तो आसनी पर जमकर बैठ जाते और फिर सूक्तियों, संस्कृत और बंगला की पंक्तियों, उर्दू के शेरों की वह झड़ी लगा देते कि घर के सारे बाल-वृन्द चकित होकर उन्हें देखते रहते और अम्मा मुस्कुराती रहतीं। अम्मा परम्परानिष्ठ हिन्दू परिवार की एक सीधीसादी महिला थीं। रात-दिन सेवा-व्रत-पूजा में तल्लीन रहती थीं। मगर साथ-ही-साथ पहनने-ओढ़ने में बड़ी शौकीन थीं। तीज-त्योहार के दिन नथिया-बननी और अन्य तरह-तरह के गहने तथा बनारसी साड़ी-चादर से अपने को सुसज्जित करतीं और बाबूजी के कटाक्ष का निशाना बन जातीं। अम्मा को इस लिवास में देखकर बाबूजी उनपर व्यंग्य-प्रहार करने लगते और फिर क्या संस्कृत और क्या उर्दू दोनों की समान पंक्तियाँ हम बच्चों को सुनने को मिल जातीं और अम्मा का मनोरंजन भी होता रहता। घर के बच्चों के उन्होंने दो-दो नाम दे रखे थे—जैसे, बालाजी बाजीराव पेशवा, राणाजी मुखधोलकर, शिवाजी जिवाजी भोंसले, माया माया निर्मल काया, सविन्दु सिन्धु सुस्खलत तरंगभंग रंजितम्, नलिनी खोलो दो आँखी, रेवती सेवती—जयंती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी इत्यादि।

अपने छोटे भाई के प्रति उनका प्रेम अगाध था। भ्रातृप्रेम का ऐसा उदाहरण आज के युग में तो विरल ही मिलता है। सन् '४० की छुट्टियों में मैं घर न जाकर कलकत्ता चला गया। उन दिनों बाबूजी अम्मा के इलाज के सिलसिले में कलकत्ता ही रहा करते थे। जिसदिन मैं वहाँ पहुँचा उसी दिन से वह हल्ला करने लगे—"तुम आज ही जाकर बंगला सिनेमा 'प्रतिश्रुति' देख आओ।" मैं बड़े चक्कर में पड़ा। मैंने कहा कि बंगला खेल तो मेरी समझ में आएगा ही नहीं।

"तुमसे मैंने कितना कहा कि बंगला और उर्दू दोनों जान जाओ। मगर तुम बात नहीं मानते। बंगला की कमनीयता और उर्दू की लोच जाने बिना भला कोई कैसे लेखक बन सकता है! खैर, मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें प्लॉट बताता चलूँगा।'

मैंने पूछा—"प्रतिश्रुति माने क्या हुआ?"

"प्रतिश्रुति का अर्थ undertaking होता है।"

पहली बार और शायद आखिरी बार हम दोनों एक साथ सिनेमा देखने गए। समझने में मुझे कोई दिक्कत नहीं हुई। क्लिष्ट पंक्तियों को वह समझाते जाते थे।

मैटिनी शो में हमलोग गए थे। खेल खत्म होने पर जब हम हॉल से बाहर हुए, तो उनके शाम के टहलने का समय हो गया था। कहा—"चलो, पैदल ही टहलते चलें।" रास्ते भर बहुत गंभीर रहे। कहते रहे—"तुम जानते नहीं, 'प्रतिश्रुति' मेरी जीवन-कहानी है। समझो पहाड़ी सान्याल मेरा ही पार्ट अदा कर रहा था। मेरे पिता ने भी मृत्यु के कुछ ही क्षण पहले मुझे अपने पलंग के पास बुलाया और मुन्ना का हाथ पकड़ाते हुए कहा—इसे आजीवन पुत्रवत् समझना। उसका हाथ पकड़ कर तुम मुझे ऐसी undertaking दे दो ताकि शांतिपूर्वक मैं जा सकूँ। मेरी उम्र उस समय १२ वर्ष की थी, मुन्ना की ९ वर्ष की। मैंने undertaking दे दी और उसे आज तक निभाता आ रहा हूँ और आजीवन निभाता रहूँगा। इसीलिए 'प्रतिश्रुति' मुझे बहुत प्रिय है।"

इतना कह कर वह मौन हो गए। मैं भी उनके पीछे-पीछे कलकत्ते की उस विराट् भीड़ में खो गया।

दोनों भाई एक दूसरे के पूरक रहे। हमारे मल्लिक जी बराबर कहते रहे कि स्वर्गीय राजा साहब याने 'प्यारे' कवि का विशाल व्यक्तित्व दो हिस्सों में विभाजित हो सूर्यपुरा अंचल में अवतरित हुआ। उनका शौर्य और स्वाभिमान कुँवर साहब को मिला और उनका शील और कला राजा साहब ने पाई। लोग कहते हैं कि राजा साहब को जब 'राजा' का खिताब मिला तो वे विह्वल हो उठे—भला उन जैसे गरीबदिल व्यक्ति से उन दिनों की वह अंग्रेजी और सामंती ठाट-बाट की आनबान निभ सकेगी? मगर छोटे बाबूजी ने उन्हें सहारा दिया, ढाढ़स दिलाया, लाट साहब के दरबार में जाने तथा अन्य उच्च सामाजिक जीवन में प्रवेश करने के अनुकूल उनका सारा 'वार्ड रोब' ठीक कराया और उनके वहाँ जाने के पहले बराबर उनके सब कपड़ों को अपने सामने मँगवा कर ठीक करवाते और उनके जयपुरी साफे में जो कुछ कमी रहती उसे अपने हाथों ठीक करते। अपने पहनने के कपड़े के विषय में बाबूजी शुरू से ही उदासीन रहते थे और अपने छोटे भाई से अक्सर मीठी झिड़कियाँ सुनते रहते थे। कभी गंजी फटी रहती

हमारे मल्लिकजी बराबर कहते रहे कि स्वर्गीय राजा साहब 'प्यारे'
अवतरित हुआ। उनका शौर्य्य और स्वाभिमान कुँवर साहब को मिला

स्वर्गीय कुमार सर राजीवरंजन प्रसाद सिंह

'कवि' का विशाल व्यक्तित्व दो हिस्सों में विभाजित हो सूर्यपुरा अंचल में और उनका शील और कला राजा साहब ने पाई।
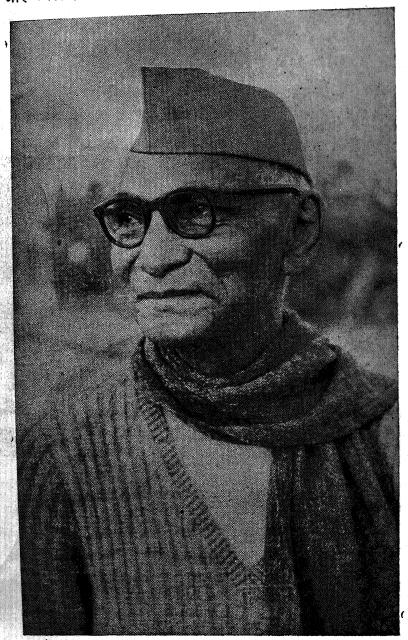
राजा साहब

तो कभी धोती मोटी रहती, कभी जूता घिसा रहता तो कभी कोट मसुराया-सिकुड़ा रहता। इसके चलते छोटे बाबूजी उनके नौकरों पर भी खूब बिगड़ते और उनकी मृत्यु के उपरान्त जब बाबूजी बाईस साल मेरे साथ पटने में रहे तो कम या बेश यह काम मुझे करना पड़ा। १९४८ में छोटे बाबूजी के असामयिक निधन ने उन्हें तोड़ कर रख दिया। ऐसा जान पड़ा कि उनकी सारी दुनिया ही लुट गई। मैंने तो उन्हें जीवन में इतना टूटकर जार-जार रोते हुए कभी नहीं देखा था। उस कारुणिक दृश्य की छाप आज भी मेरे दिल पर गहरी है। उसके बाद उन्होंने जीवन में कितने उतार-चढ़ाव देखे—उनके बुढ़ापे में मेरी माँ की मृत्यु हुई, उनकी जवानी की कमाई जमींदारी गई, अपने मृत्यु के दो महीने पहले पैर टूट जाने के कारण अशक्त हो पलंग पर पड़ गए, मगर कभी भी उतना टूटे हुए न दिखे जितना अपने छोटे भाई के देहांत होने के बाद मैंने उन्हें पाया था। परन्तु, वह सदा कहते रहे—कि साहित्य ऐसा न कोई सुहृद् है न सहचर। घोर कष्ट के समय इसीने उन्हें सांत्वना दी और शांति भी। वह महीनों सूर्यपुरा में अकेले पड़े रहते और इन्हीं दिनों जानी-सुनी-देखी माला की शुरुआत हुई और जब दिसंबर १९४८ में वह पटना आए तो मुझे 'नारी क्या—एक पहेली ?' की पांडुलिपि प्रकाशनार्थ दे दी।

जान पड़ा, साहित्य की सघन छाँह ने उनके सारे कष्ट हर लिए और वह बहुत कुछ स्वस्थ दिखे। बल्कि पास ही खड़े अपने एक पुराने साथी से कहा भी—"सिद्धेश्वरनाथ, हमसे बड़ा भाग्यवान कौन है ? मुन्ना भी चले गए और जमींदारी भी जा रही है। भगवान ने मेरे जीवन के दोनों बंधनों को जरा आते ही काट कर फेंक दिया। अब तो साहित्य ही मेरा एक मात्र साथी है और बन्दानेवाज भी।" और, शायद उनके जीवन के अंतिम दिनों में भी वही बन्दानेवाज उन्हें शांति भी देता रहा क्योंकि मृत्यु के दो-चार दिन पहले उनके 'मेल नर्स' ने मुझसे कहा—"बाबा अक्सर मुझसे राम-रहीम पढ़वाकर सुना करते हैं। मुझे तो पंक्तियाँ समझ में नहीं आतीं, मगर वे आनंदविभोर हो जाते हैं। कुछ क्षणों के लिए अपनी व्यथा भूल जाते हैं। रामायण और गीता का जब कभी भी पाठ बैठाया गया तो उन्होंने मुस्कुरा कर उसे बन्द करा दिया।"

किसी लेखक के लिए उसकी रचना कितनी प्यारी होती है इसका अंदाज मुझे

तब लगा जब सन् ३८ में हमलोग कॉलेज बन्द हो जाने पर इलाहाबाद से लौटकर दिल्ली एक्सप्रेस से डुमराँव स्टेशन पर पहुँचे। बाबूजी उन दिनों 'पुरुष और नारी' लिख रहे थे। नौकर की गलती से 'पुरुष और नारी' की पांडुलिपि गाड़ी में ही रह गई और गाड़ी खुल गई। बाबूजी बच्चों की तरह रो पड़े और चलती गाड़ी की तरफ भागे। पीछे-पीछे छोटे बाबूजी भी दौड़े। जान पड़ा कि घबड़ाहट में दो डब्बों के बीच बड़े बाबूजी गिर पड़ेंगे और कट मरेंगे। खैरियत हुई कि ऐन मौके पर छोटे बाबूजी की बलिष्ठ भुजाओं को उनके कोट का कॉलर पकड़ा गया और उसी पर बड़े बाबूजी टँग गए—हल्के-फुल्के तो थे ही। तबतक किसी ने चेन खींच दी और गाड़ी सिगनल के बाहर रुक गई। हम तमाशबीनों के लिए तो यह एक क्षण जैसे एक युग-सा बीत गया।

दोनों ने आजीवन एक साथ रह कर भी दो जिंदगी बिताई। दो जीवन जिया। उनके जीवन के प्रति दृष्टिकोण अलग-अलग रहे। संसार के राग और वैषम्य को अपनी-अपनी तरह से भोगा मगर एक दूसरे से इतना भिन्न, इतना अलग रहते हुए भी एक दूसरे के इतने समीप रहे, एक दूसरे को इतना जानते रहे, प्यार करते रहे।

घर के बच्चों को वह सदा Plain living and high thinking की सीख देते। और हमलोगों से अक्सर कहते—"अभाव का वायुमण्डल तो विभव के वायुमण्डल से सदा श्रेष्ठतर होता है।"

मेरी रुचि साहित्य की ओर कैसे बढ़ी, इसकी भी एक बड़ी मजेदार कहानी है। बाबूजी कभी भी नहीं चाहते थे कि मैं साहित्य की ओर झुकूँ। छोटे बाबूजी की राय थी कि विज्ञान तरक्की पर है इसलिए बच्चों को वैज्ञानिक या 'टेक्नोलोजिस्ट' बनाना है। बड़े बाबूजी भी इस राय की दाद देते थे। आठवीं कक्षा से ही हमें विज्ञान की शिक्षा दी जाने लगी। मुझे हिन्दी लिखने-पढ़ने कुछ नहीं आता था। स्कूल में भी बराबर विज्ञान की चर्चा रहती। मगर मेरे बालसुलभ मस्तिष्क में बराबर यह खोज की भावना बनी रहती कि बाबूजी बराबर अपने साथ जो पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं का एक मोटा बस्ता लिए चलते हैं और सोते-जागते सफर में चलते या घर में रहते वह बस्ता सदा उनके बगलगीर रहता और जिसे हम बच्चों को कभी छूने नहीं दिया जाता—आखिर वह है क्या? शाम को जब वह टहलने निकल जाते तो मैं उनकी कुर्सी

पर बैठकर उन सब कागजातों का मुआयना करता जो इन पुस्तकों और पत्रिकाओं में छुपाकर रखे रहते और कुछ पंक्तियों को बड़े चाव से पढ़कर फड़क उठता। उनके लौटने के पहले ही उन सब चिट-पुर्जों को उसी तरह सिलसिलेवार रखकर भाग जाता।

सन् '३७ में एक दिन लहेरियासराय से 'राम-रहीम' छप कर आया। उसका बड़ा सुन्दर तिरंगा आवरण था—एक तरफ मंदिर और दूसरी तरफ मस्जिद के चित्र अंकित थे—महारथी की कला अपना कमाल दिखा रही थी। उस पुस्तक को देखने की मेरी उत्कंठा बढ़ी मगर मैं जब भी उस पुस्तक को उठाता, बाबूजी बिगड़ उठते—'यह तुम्हारे पढ़ने की चीज नहीं है, तुम्हें कुछ भी समझ में न आएगा, रख दो इसे।' शायद शृंगार की दुनिया से उन दिनों मुझे दूर रखना चाहते थे। मगर मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बालक से कोई चीज जितनी दूर रखो उतना ही वह ललक कर उसके पास जाता है।

एक रात मैंने 'राम-रहीम' की एक प्रति बाबूजी के कमरे से चुरा ली। दूसरे दिन उस प्रति की बड़ी खोज की गई मगर वह तो मिलने से रही। उस चुराई हुई 'राम-रहीम' की प्रति को मैं बाहर खेमे में जाकर प्रतिदिन बड़े मनोयोग से पढ़ने लगा। नतीजा यह हुआ कि उसकी शैली ने, उसके विचार ने उस छोटी उम्र में भी मुझे ऐसा प्रभावित किया कि मैं overnight विज्ञान की बीहड़ दुनिया से खिंचकर साहित्य की निराली दुनिया में चला आया। और तभी से मैंने कलम पकड़ ली।

उनके जीवन की सबसे बड़ी खसूसियत यह रही कि गुस्सा उन्हें कभी नहीं आया और दूसरे के गुस्से को भी सह लेने की उनमें अदम्य क्षमता थी। इसमें तो उन्हें कमाल हासिल था। कोई कुछ भी बक जाय मगर वह शांत रहते। जरा भी उद्विग्न नहीं होते। हँसकर कहते—"अच्छा जाने दीजिए, आप नाराज हो गए, माफ करें।" फल यह होता कि जो उन पर नाराज होकर आता वह पानी-पानी होकर लौट जाता। दो-चार बार तो ऐसा भी हुआ कि दोस्त-अहबाब गाली बक कर चले गए मगर वह पहले ही जैसा शांत रह गए। सहिष्णुता का ऐसा ज्वलन्त उदाहरण और कहीं देखने को नहीं मिला।

वह बड़े आत्मविश्वासी व्यक्ति थे और इसीलिए उनके मस्तीपन में कभी कमी न

आई। परीशानियों के चक्रोह में घिर जाने पर भी वह हिम्मत नहीं हारते थे। और रोजमर्रे के नियम को घड़ी की सुई की नोक पर पालन करते जाते थे। समय पर खाना, समय पर टहलना, समय पर लिखना, समय पर सो जाना और समय पर भोर में उठ जाना —यह क्रम तो मेरी माँ की मृत्यु के दिन भी बराबर चलता रहा। यही उनकी लम्बी और स्वस्थ जिंदगी का राज भी था।

आजीवन मितव्ययी रहे और कभी कीमती वस्त्र न पहना न ओढ़ा। मगर जरूरतमंद व्यक्तियों को दिल खोलकर देते रहे। अभी पिछली फरवरी में जब आखिरी बार सूर्यपुरा गए थे तो एक नई कीमती रजाई अपने लिए न रखकर उद्यान भवन के एक मजदूरे को दिलवा दी। अपने मैनेजर से हँसकर कहा—"इतनी कीमती चीज मैं नहीं ओढ़ सकता—मेरे लिए सस्ती रजाई बनवाओ। उस मजदूरे का शीत-निवारण अभी इसी रजाई से करा दो। वह मुझसे ज्यादा जरूरतमन्द है।"

हमारी पत्नी हर साल जाड़े में परीशान रहतीं। उन्हें देखतीं कि वह जाड़े में ठिठुर रहे हैं। बक्स खोल कर गत वर्ष उनके लिए बनाये गए स्वेटर की खोज करतीं तो पता चलता कि वह तो गत वर्ष ही बँट गया। एक दिन देखा कि उनका नौकर उनका पशमीने का कुरता पहने ठाट से टहल रहा है। बेटी की शादी तथा गरीब बच्चों की पढ़ाई में काफी रुपये गुप्त रूप से लोगों को देते रहते थे। किसी को कुछ पता भी नहीं चलता। उनकी मृत्यु के बाद उनके चेक की अधकटी देखने से ऐसे कितने उदाहरण देखने को मिल रहे हैं। बच्चों को मिठाई खिलाने का भी उन्हें खास शौक था। गिरने के एक दिन पहले भी पास की झोपड़ियों में जाकर बच्चों को टॉफी और लेमनजूस खिला आए थे। इसीलिए उनकी अर्थी जब उठ रही थी तो उनकी शव-यात्रा में शामिल होने को बड़े-बूढ़ों से बच्चों की तादाद ज्यादा थी।

स्वर्गीय श्री महावीर प्रसाद, ऐडवोकेट जेनेरल, बिहार, से उनकी अटूट मित्रता थी। एक ही साथ दोनों आरा जिला स्कूल में रहे और फिर म्योर सेंट्रल कॉलेज, इलाहाबाद में भी उनका साथ रहा। सन् १६१० में जब उनका 'नये रिफॉर्मर' नाटक सरस्वती-पूजा के दिन इलाहाबाद विश्वविद्यालय के तत्कालीन उपकुलपति डॉ० गंगानाथ झा के घर अभिनीत हुआ तो महावीर बाबू ने एक प्रमुख नायक का पार्ट अदा किया और तभी से वे बाबूजी के साहित्यिक जीवन में बड़ी दिलचस्पी लेते रहे।

'राम-रहीम', 'पुरुष और नारी' और 'चुम्बन और चाँटा' के प्लॉट महावीर बाबू के जीवन में प्रवेश करने पर उन्हें मिल गए थे। 'पुरुष और नारी' तो उन्हीं को समर्पित भी है। बिना महावीर बाबू के वह किसी भी सिनेमा या नाटक या जलसे में नहीं जाते। मगर हाय, १९६५ में जब महावीर बाबू उठ गए तो उसी दिन से इन्होंने भी सिनेमा या नाटक देखने जाना छोड़ दिया। हम लोगों ने बहुत समझाया, मगर उनका दिल न माना। एक बार कुछ रिस्तेदार उन्हें जबर्दस्ती पकड़ कर 'वीणा' सिनेमा ले गए मगर वह कुछ ही मिनटों बाद उठकर चले आए। मुझसे कहा—"जब से मुन्ना उठ गए तब से होली नहीं खेली जाती और जब से महावीर चले गए तब से सिनेमा नाटक में बैठा नहीं जाता। जाने जी कैसे करने लगता है। आज भी भागकर चला आया। अब 'तो जिन्दगी एक फर्ज है जीता चला जाता हूँ मैं'।" यह शेर पढ़ कर चुप रह गए।

उनके उठ जाने से मुझे अब ऐसा महसूस होता है कि पिछले चालीस वर्षों से एक विशाल आर्केस्ट्रा की झंकार से जो सारा वातावरण मुखरित था वह एकाएक बंद हो गया। उस आर्केस्ट्रा में जाने कितने वाद्य यंत्र थे जिनसे अलग-अलग ध्वनि, अलग-अलग सुर फूटे पड़ते रहे, कभी संस्कृत की अलंकृत शैली की लावण्य लीला तो कभी टैगोर की 'आमि तोमाय भालोबाशी' का पीयूषवर्षण और कभी लाल चूड़ीदार और रेशमी कमीज में बलखाती हुई उर्दू शायरी की वह कमसिन अपना हसीन नजारा दिखाकर कहीं छिप जाती। हरेक की अपनी भंगिमा रही, अपने तान-तेवर रहे, परंतु फिर भी उनका समवेत स्वर, अनगूँज गूँज सदा एक ही रहा। आज कहीं भी, किसी भी कोने में, लाख खोजने पर भी, वे स्वर कहीं सुनाई नहीं पड़ रहे हैं। शायद अब कभी भी उनकी झंकार सुनाई न पड़े। आर्केस्ट्रा मंच का वह नायक अपने वाद्ययंत्रों से अपनी उजग उँगलियों को खींच जो चुका है!

काव्यांजलि

अरुण

कवि-निवास, समस्तीपुर (बिहार)

राधिकारमण : एक स्मृति-हिलोर

अपनी कच्ची उम्र में—
सुना था राजा साहब के 'राम-रहीम' का नाम।
सुनी थी उनके काव्यात्मक भाषण की चर्चा।
सुना था, राधिकारमण : एक सिद्ध उपन्यासकार,—
एक प्रसिद्ध कहानी-लेखक,
एक दिलचस्प आदमी
कि उनके ओठों पर उर्दू-हिन्दी कविताओं की लहर,
कि बात-बात में
उनके मुख से वाक्यों के सरस बाण
यानी अनेक प्रकार से वे एक मनुष्य महान्!

१६४१ में
निकली थी मेरी पहली पुस्तक 'अरुणिमा' ।
आया था उनके साहित्यिक पुत्र—
उदयराज जी का सूर्यपुरा से आमंत्रण
और मैं मधुकर जी के साथ गया था वहाँ,—
जहाँ स्थानीय साहित्य-परिषद् का—
वार्षिकोत्सव आयोजित था ।

रास्ते में किसी स्टेशन पर
शिवपूजन सहाय जी मिल गए ।
लगा मैं उनका रेखा-चित्र बनाने ।
गुस्सा आया उन पर
कि कभी उनका मुँह इधर, कभी उधर ।

पर,
जैसे-तैसे पेंसिल स्केच कर ही लिया मैंने ।
ट्रेन में—
शिवपूजन बाबू ने राजा साहब की भरपूर चर्चा की ।
कहते ही चले गए बहुत कुछ वे !
लगा कि वे सब कुछ कह गए !
मेरे मन में उनके प्रति और श्रद्धा उत्पन्न हुई
और मेरे हृदय में उत्सुकता तीव्र से तीव्रतर हुई
कि कब देखूँ उन्हें,—
कब पहुँचूँ सूर्यपुरा,
कब देखूँ उनका महल
कब देखूँ—कब देखूँ—कब देखूँ...

सोचा था, राजा हैं
राजा की तरह होंगे शान-शौकत वाले

होगा उनका रोब से भरा व्यक्तित्व
सिर पर मुकुट, गले में रत्नहार, भड़कीला वेश—
कामदार जूते, हाथ में तलवार······!
पर, हाय राम !
राजा साहब तो एक साधारण आदमी की तरह !
उजली धोती, मलमल का कुर्ता, कुर्ते पर चादर !
दुबला-पतला-लम्बा गेहुआँ रंग का मनुष्य !
मन-ही-मन मैं हँसने लगा
कि कैसा राजा है यह,
किसने राजा बना दिया इसे ?
अपनी अवस्था के अनुसार मैं बहुत कुछ सोच गया !

भीषण गर्मी का दिन था
घर के भीतर हमलोग छिपे रहे
खान-पान में जमींदारी झलक थी
सेवा-सत्कार में लोग तत्पर थे
उदयराज जी बार-बार आते-जाते थे
उनके चेहरे पर राजकुमारत्व था
पर, बोली में नारीत्व की मिठास !
उम्र में मुझसे मिलते-जुलते ही
दो-चार बार बात करने में ही उनसे दोस्ती हो गई !
राजा साहब का मुखड़ा मेरे पिता से मिलता-जुलता था।
(इसी कारण) मेरी आँखें उनकी ओर टिक जाती थीं !

संध्या में सूर्यपुरा हाई स्कूल के मैदान में
प्रारम्भ हुआ वार्षिक-उत्सव
शिवपूजन बाबू ने लिखित भाषण पढ़ा
पर, राजा साहब ने गनगना दिया

यानी अपने संभाषण से ऐसा चमत्कार पैदा किया
कि लोग बाग-बाग हो गए
और मैं ?
ऐसा साहित्यिक भाषण कभी नहीं सुना था पहले !!
सटीक शेरों को सुन कर हृदय उछलने लगा !
शैली सुन कर मन लहराने लगा !
मैंने सोचा आदमी बड़ा काबिल है—
हिन्दी-उर्दू संस्कृत का पंडित है।
सच तो यह है कि बहुत कुछ समझ कर भी
मैं ठीक से उनके भाषण को समझ नहीं सका !
साहित्यिक शैशव का मेरा समय था वह।

कवि-सम्मेलन में
मेरे कंठ की विजय हुई
राजा साहब और शिवपूजन बाबू भी लट्टू हुए !!
उदयराज जी का स्नेह बढ़ा।
लगभग दस मोटी-मोटी पुस्तकें—
राजा साहब ने मुझे दीं,—
कुछ गाँधी जी की थीं !
लौटने की वेला
इतना अटूट स्नेह—इतना
कि कभी टूटा ही नहीं !
राजा साहब जब पटने आए
और जब मैं पटना गया—
भेंट होती रही,
स्नेह ही स्नेह मिलते रहे।
अपनी नवीन पुस्तकें मैं उनके पास भेजता रहा
और वे भी अपनी देते रहे

मेरे प्रत्येक पुरस्कार पर—
वे बधाई देते रहे—बहुत कुछ कहते रहे।
'बाणाम्बरी'-विजय पर वे बाग-बाग हुए!

एक दिन पटने में —
उदयराज जी के पुत्र का जन्मोत्सव था।
मैं आमंत्रित हुआ।
'विहंगम' के साथ गया।
देखते ही राजा साहब उछले,
बोले : "भीतर जाइए लॉन में,—
सब लोग आए हैं।"
खान-पान के समय ही—
आए राजा साहब
और लगभग भाषण ही करने लगे मेरी 'महाभारती' पर!
दूसरे की कृति पर इतनी और ऐसी ईमानदारी
बहुत कम लोगों में पाई जाती है।
महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त जी ने
अभी हाल में मुझे लिखा :
"महाभारती निःसन्देह
इस युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है।
क्या भाव, क्या भाषा, क्या युगबोध,
क्या सनातन सत्य में अन्तर्दृष्टि—
सभी प्रकार से इस सर्वांगीण
विशिष्ट कृति के लिए मेरी हार्दिक बधाई लें।
इसकी उत्कृष्टता ही इसका प्रमाण है।"

राजा साहब ने
वर्षों पहले मुझे कुछ ऐसी बातें कहीं!

वे उपन्यासकार थे, कथाकार थे, संस्मरण-लेखक थे
पर,
काव्य के संबंध में भी निष्पक्ष बात करते थे।
'विहंगम' के सामने
उन्होंने मुझे कहा था :
" 'महाभारती' से असंख्य लोग ईर्ष्या करेंगे,
घबड़ाना नहीं भाई !"
राजा साहब की भविष्यवाणी सच निकली !
अपने आलोचक भी कतरा गए,
अपने शुभचिन्तक भी हृदय नहीं खोल सके !
पन्त जी की ईमानदारी पर
राजा साहब को भी गर्व होता
निष्पक्ष समीक्षक और विद्वानों की प्राप्त सम्मतियों से
राजा साहब अधिक प्रसन्न होते
पर हाय,
राजा साहब चले गए !
अपनी स्मृतियाँ छोड़ गए वे !
उन्हें अपनी सम्पत्ति ने अमर नहीं किया,
अमर किया उनके अपने साहित्य ने !

उनके स्मृति-दर्पण में
मैंने प्रसंगवश अपना भी मुख देखा
क्योंकि
वे मेरे पितृतुल्य थे—
काव्य-जीवन के साक्षी थे वे
स्नेह ही स्नेह मिला था उनसे।
जब-जब उन्हें देखा,
देखता ही रहा उन्हें।

बेनीपुरी जी कहते थे :
राजा साहब कमाल लेखक हैं।
राजेन्द्र बाबू (जब राष्ट्रपति थे) ने भी
मुझसे उनकी प्रशंसा की बातें कही थीं।
उनकी निन्दा नहीं सुनी मैंने।
उन्हें मालूम था
कि खड़ी बोली में मैं एक नूतन रामायण लिख रहा हूँ।
उन्होंने शुभकामना भेजी;
काश !
वे होते तो कितने प्रसन्न होते
—इसी चिन्ता में मेरी आँखें डबडबा रही हैं
उनकी सुधि-छवि मुझे देख रही है
और मैं उनके सामने
हाथ जोड़ कर खड़ा हूँ !

✣

अवधेन्द्रदेव नारायण
लेखापाल, बिहार-राज्य-पथ-परिवहन-निगम, गया

✤

हे सरस्वती-पद-पद्म !

शब्दों से मूर्त्ति सजानेवाले शिल्पकार!
वाणी की साध स्वयं तुममें रिस आई थी;
युग के, युग-युग के भाव बोलते रूप बने,
चितवन की लौ जिनमें सुषमा बन छायी थी।
भाषण करते तो लगता ज्यों कविता झरती,
सामूहिक उत्सुकता श्रद्धा बन जाती थी;
मन की रहस्यमयता, दर्शन-चन्द्रोदय से,
कल्पना-भावना की विभावरी लाती थी।
पाकर पावनतम परस रूप-रस के सपने
मन की घाटी से निकल विचरने लगते थे,
अस्तित्व-बोध की कोजागरा त्रियामा में
उन्मादक क्षण चिन्मय समाधि में जगते थे।
साहित्य-व्रती, गत अर्धशती के कीर्त्तिमान!
हे राजा, आज तुम्हारी गाथा गूँज रही;
'सावनी-समाँ'-प्रेरित, मन का वर पाने को,
अँगनाई की तरुणायी प्रतिमा पूज रही।
जिसने सान्निध्य तुम्हारा पाया, धन्य हुआ,
अन्तर में उतरा, उसको मधु के कोष मिले,
छवियाँ रीझें, मधु-गंध-रसिक गुंजार करें,
हे सरस्वती-पद-पद्म! सर्वदा रहो खिले।

✤

उमाशंकर वर्मा
व्याख्याता, प्रा० शि० शिक्षा महाविद्यालय, महेन्द्रू, पटना-६

✣

श्रद्धाञ्जलि

हे कालजयी आलोक अमल
साहित्य - गगन - नक्षत्र धवल
तुमसे शाश्वत ज्योतित हिन्दी का प्रांगण;
तुम शान्त सौम्य देदीप्यमान
शीतल मलयानिल के समान
तुम रहे सदा करते किरणों में विचरण।

तुम सरल - तरल मानव उदार
छू सका न तुमको अहंकार
तुम रहे बाँटते नित्य प्रीति का आसव;
सन्देश तुम्हारा रहा यही
रोना जीवन का ध्येय नहीं
जीवन तो है बस हँसी-खुशी का उत्सव।

तुमने सबको सम्मान दिया
बदले में कुछ भी नहीं लिया
हे राजमहल के अधिवासी, वैरागी!
कुटियों को कभी न बिसराया
भरमा न सकी तुमको माया
तुम रहे उच्च आदर्शों के अनुरागी

तुम सरस्वती के पुत्र वरद
महिमा - मंडित, उत्तुंग, विशद
तुम थे 'दरिद्रनारायण' के आराधक;
तुम एक शब्द - शिल्पी अनुपम
हरनेवाले सब भ्रम - संभ्रम
तुम रहे सदा शुचिता - समता के साधक।

वैभव ने तुमको किया वरण
ऐश्वर्य चूमता रहा चरण
पर भोग तुम्हें कब कर पाए पथ-विचलित ?
मन रहा सदा स्वारस्य-भरा
तुमसे 'विदेह' की परम्परा
चरितार्थ हुई, साहित्यिकता से पुष्पित।

हे काव्य-विनिन्दक ललित-प्रखर
रससिद्ध गद्य-रचना-तत्पर
लेखनी तुम्हारी बनी रही चिर सक्षम;
यह भूमि न तुम्हें भुलाएगी,
जनता नित शीश नवाएगी,
हे 'राम-रहीम'-समन्वयकर पुरुषोत्तम !

✣

चन्द्रेश्वर नीरव

व्याख्याता, प्राथमिक शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय, चाकुलिया (सिंहभूम)

शैली के शाहजहाँ

[अपनी मृत्यु से कई वर्ष पहले बोरिंग रोड पर शाम को टहलते हुए राजा साहब ने अनायास ही कहा था—"आपने कसीदा तो नहीं लिखा, मेरे मरने पर मर्सिया जरूर लिखियेगा।" और मैं सोचता हूँ—कविता का जन्म करुणा की कोख से हुआ है, शायद इसीलिए मैं कसीदा नहीं लिख सका। लेकिन मर्सिया? यह मर्सिया भी तो नहीं है। मात्र टूटे हृदय के कुछ रूठे उद्गार हैं, जो कलम की नोक से कागज पर उतर बिखर जाने को बेताब हैं। लेकिन विश्वास है, इससे उनकी आत्मा को शान्ति जरूर मिलेगी।]

बागबाँ रुखसत हुआ, रोते रहे गुल के नयन;
यों चमन लाखों हैं लेकिन है कहाँ वैसा चमन!
लेखनी से सींच शब्दों के उगाये थे सुमन,
झूमता उन पर नई शैली का था दिलकश पवन।
आखिरी दम तक अदब से थी लगी जिसकी लगन,
साज पे साँसों के जो गाता रहा शेरोसुखन;
सच, बहुत नायाब थी वह सूर्यपूरा की किरन,
जो नये अन्दाज से चमकी, लिए एक बाँकपन।
पा तुम्हें रोशन हुई हिन्दी की अदबी अंजुमन,
हो गया साहित्य में पैदा नया वातावरन।
अलविदा, जब तक रवाँ है आबे गंगा वो जमन,
शैली के शाहेजहाँ, होता रहेगा संस्मरण।

✤

फजलुर्रहमान हाशमी
ग्राम-पो०—मालीपुर, (दरभंगा)

✠

राजा

एक राजा चला गया—
प्रजा को यतीम बनाकर ;
हमने पूछा—
जाते-जाते वक्त
जाने वाले से,
"क्यों जा रहे हो
बेसहारा करके हमें…?"
जवाब मिला—
"छोड़े जा रहा हूँ
तुमलोगों के लिए
अमृत घट—
नई धारा…"

✠

शशिकर
सीताराम पथ, चक्रधरपुर

✠

मन रे ! मत हो अधीर

कालजयी
छोड़ गया राख,
किन्तु जोड़ गया यहाँ
अमर कीर्ति-कोट,
समय-नदी-तीर।
कलम-व्रती,

× ×

धैर्य धर, सपूत !
तृप्ति उसे देनी है
तो दे मसि-अर्घ्य,
नहीं नयन-नीर।
मन रे ! मत हो अधीर।

पत्राञ्जलि

अनन्त गोपाल शेवड़े (अनन्त पेठ, नागपुर)

स्व० राजा साहब की याद आ गई और आँखों में नमी आ गई। वह इसलिए कि मुझे उनसे दो-एक बार मिलने का अवसर मिला था और उनके स्नेह-सौहार्द्र उदार हृदय, रसिकता और कलात्मकता का साक्षात्कार करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनकी जिन्दादिली गजब की थी। वे खूब जिये और उन्होंने खूब लिखा। जीवन और कला का उन्होंने इतना सुन्दर समन्वय साधा कि उनका जीवन ही एक कला हो गया। उनके लिए क्या रोया जाय ? बस, यही लगता है कि क्या खूब उनकी हस्ती थी—मस्त, शानदार और प्यारभरी ! उनकी यादों में भी कितनी खुशबू है, मिठास है। वाह !

●

इन्द्रनाथ मदान (हिन्दी-विभागाध्यक्ष, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़)

डॉ० राधिकारमण के देहान्त से हिन्दी का साहित्य-जगत् विपन्न हो गया है।

●

उपेन्द्रनाथ झा (एम० एल० सी०, पटना)

आपके पिताजी के साथ मेरा व्यक्तिगत सम्पर्क १९३३ ई० से था जबकि वे बिहार प्रादेशिक हरिजन सेवक-संघ के सभापति थे और मैं जिला का मंत्री था। उनके जैसे साहित्यसेवी, समाजसेवी और देशभक्त व्यक्ति के निधन से एक अभाव महसूस होता है।

●

अंचल (महाकोशल कला विद्यालय, जबलपुर)

उन्होंने हिन्दी की अविस्मरणीय सेवा की है और हिन्दी कथा-साहित्य को सौंदर्य और सौकुमार्य के नए संस्कार प्रदान किए हैं। उनकी 'कानों में कंगना' कहानी पढ़कर अपने यौवन के उषःकाल में हम हफ्तों झूमते रहे हैं और प्रसाद, उग्र, प्रेमचन्द, चतुरसेन शास्त्री आदि की तरह वे भी उन दिनों हमारे एक साहित्य देवता थे। उनके

निधन से हिन्दी का एक युग जैसे समाप्त हो गया और समाप्त हो गई वह पीढ़ी, जो साहित्य-सृजन को साधक की सी तन्मयता से अंगीकार करती थी। आपने कथासाहित्य सृजन की प्रतिभा और शक्ति उनसे विरासत में पाई है। मुझे विश्वास है उनका यश:शरीर आपकी साहित्यनिष्ठा और साधना से विकसित हो होकर श्रीसम्पन्न होता रहेगा।

●

कन्हैया लाल पाण्डेय 'रसेश' (राँची विश्वविद्यालय, राँची)

बिहार के अद्वितीय शैलीकार, लब्धकीर्त्ति उपन्यासकार, प्रवीण कथाशिल्पी, ललित निबन्धकार के महाप्रयाण का दु:खद समाचार जानकर दुखित हूँ। बिहार का हिन्दी-संसार अपने देदीप्यमान नक्षत्र को खोकर हतप्रभ हो गया है। राजाजी के दिवंगत हो जाने से हिन्दी साहित्य-जगत् का तीसरा और अंतिम प्रवीण शैलीकार इस धरा-धाम से चला गया।

●

कृष्णदेवनन्दन प्रसाद (डिप्टी चीफ, एम्प्लायमेंट एक्स्चेंज, मुजफ्फरपुर)

उनसे मुझे सदैव जो वांछित सहायता, मार्गदर्शन एवं स्नेह मिलते रहे उन्हें मैं कभी नहीं भूल सकता। मैं कैसे क्या कहूँ—समझ नहीं पाता। उनके उठ जाने को मैं अपनी व्यक्तिगत क्षति मानता हूँ।

●

कृष्णवल्लभ प्रसाद नारायण सिंह (रानी बीघा कोठी, गया)

राजा साहब बिहार के विभूति थे। उनका स्थान बराबर खाली रहेगा—ऐसा हम सबों का विश्वास है।

●

केसरी (प्र.चार्य, समस्तीपुर कॉलेज, समस्तीपुर)

साहित्याकाश के वे एक ऐसे देदीप्यमान नक्षत्र थे जो कभी धूमिल नहीं हुआ और जिसके अक्षय प्रभापुंज को मर्म की छाया छू न सकी। मुझे उनका स्नेह मिला था और आज उस स्नेह के छिन जाने से मैं अपने को दीन-हीन मानता हूँ।

●

गुलाब खण्डेलवाल (चौक, गया)

पिछली अर्द्ध-शताब्दी में जिन्होंने बिहार के साहित्यिक उपक्रम को अर्थवत्ता दी उनमें श्रद्धेय बाबूजी सबसे आगे थे। उन्होंने साहित्य पर अपनी अमर छाप छोड़ी है शैली के बादशाह के रूप में वे सदा याद किए जाएँगे। पिछले पचीस वर्षों का उनका चित्र मानस-पटल पर उग आता है।

●

गोपीकृष्ण 'गोपेश' (किताबमहल, इलाहाबाद)

मुझे तो केवल एक बार सन् ४४ में मुजफ्फरपुर में सुहृद्संघ के अधिवेशन में आयोजित कवि सम्मेलन में उनके दर्शन हुए थे। वे अध्यक्ष थे और उन्होंने उस पद से एक भाषण पढ़ा था। क्या बात है, कैसा निखार, कैसा रचाव, कैसा सजाव! ऐसी गहराई और भाषा की ऐसी मनोरम गंगाजमनी मैंने पहले न कभी देखी थी न सुनी थी। और शायद उसके बाद भी अब तक न देखी है न सुनी-पढ़ी है। बाद में उनकी अन्य रचनाएँ भी बड़ी ललक से पढ़ीं। तथ्य तो उनका अपना होता ही था, भाषा भी सचमुच ऐसी लिखते थे, जिसे सही मानी में खालिस और टकसाली हिन्दी (किंग्स हिन्दी) कह सकते हैं। काश कि हमने उन्हें अपना आदर्श माना होता!—माना होता तो आज हिन्दी का स्वरूप कुछ और होता—आज उसकी स्थिति कुछ और होती। मैं यह कहने के लिए क्षमा चाहता हूँ कि केवल एक राजा साहब ही ऐसे थे जिनकी हिन्दी में पख निकालना संभव ही न था।

●

गोविंद दास (संसद्-सदस्य, नई दिल्ली)

राजा साहब से मेरा व्यक्तिगत परिचय था। उनका साहित्य सदा अमर रहनेवाला है। मेरे व्यक्तिगत परिचय में उनकी जिस सहृदयता का मैंने अनुभव किया, वह मुझे सदा स्मरण रहेगी।

●

गंगा प्रसाद विमल (नई दिल्ली)

उनसे जितनी दफे मिलना हुआ, उतनी दफे हिन्दी कहानी के अतीत से जीवन्त साक्षात्कार हुआ। अब वह नहीं होगा—इसका विश्वास भी नहीं होगा। उनके न रहने का विश्वास वर्षों तक न होगा। शायद कभी नहीं। इसका कारण उनकी कहानियाँ हैं—उनकी दूसरी कीर्त्तियाँ।

●

गंगाशरण सिंह (संसद्-सदस्य, नई दिल्ली)

उनके स्थान की पूर्त्ति नहीं हो सकती। क्या कहकर सांत्वना दूँ—समझ में नहीं आता। आपको इससे शायद कुछ सांत्वना मिल सके कि यह अभाव सिर्फ आपका और आपके परिवार का ही नहीं है बल्कि उन हजारों का है जो अपने को उनके व्यापक परिवार का अंग समझते हैं।

●

चन्द्रकान्त देवताले (५, शास्त्री नगर, रतलाम, म० प्र०)

साहित्यवाचस्पति राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के स्वर्गवास से हिन्दी-साहित्य की आधुनिक धारा के प्रारम्भिक काल का एकमात्र शेष रहा साहित्य-पुरुष अब हमारे बीच नहीं है।

●

जगजीवन राम (रक्षा मंत्री, भारत, नई दिल्ली)

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की स्मृति में 'नई-धारा' नामक मासिक हिन्दी पत्र एक विशेषांक प्रकाशित कर रहा है, यह ज्ञात हुआ।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह हिन्दी साहित्य गगन के जाज्वल्यमान तारक थे। इनकी चटपटी भाषा से सभी हिन्दी प्रेमी पूर्णतः परिचित थे। इनकी शैली एक विशेष प्रवाह को लिए थी। इनके निधन से साहित्य-जगत् की अपार हानि हुई है, इसमें सन्देह नहीं। इनकी स्मृति में 'नई धारा' एक विशेषांक प्रकाशित करके अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा है। आशा है, विशेषांक में इनकी जीवनी और साहित्यिक तथा सामाजिक एवम् राष्ट्रीय सेवाओं का दिग्दर्शन होगा। विशेषांक उपयोगी सिद्ध हो।

●

जगदीश गुप्त (प्रबंधमंत्री, भारतीय हिन्दी-परिषद्, प्रयाग)

व्यक्तिगत रूप से मुझे पटना में श्री उदयराज सिंह से भेंट के समय उनसे जो सम्पर्क हुआ, वह अविस्मरणीय रहेगा। वे असाधारण प्रतिभा के व्यक्ति थे, इसमें संदेह नहीं।

●

जगदीश चतुर्वेदी (नई दिल्ली-८)

सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में किए गए उनके योगदान को हम कभी नहीं भूल सकते हैं।

●

जे० सी० गोहिल (राज पिपला, गुजरात)

जन्म और मृत्यु हरेक जीव के लिए है ही, इसमें से किसी को भी मुक्ति नहीं मिल सकती, मगर राजा साहब की आत्मा ने तो इससे मुक्ति पा ली है क्योंकि वे अपने साहित्य-प्रदान के लिए सदा के लिए अमर हो गए हैं।

●

टी० सी० बोदरा (अध्यक्ष, विधान परिषद्, बिहार)

उनके निधन से हिन्दी-जगत् का एक जगमगाता सितारा बुझ गया जिसकी पूर्त्ति नहीं हो सकती।

●

तारकेश्वर पांडेय (संसद्-सदस्य, नई दिल्ली)

राजा साहब साहित्यसेवी एवं महान् विद्वान् पुरुष थे। उनकी मौलिक रचनाएँ सर्वदा प्रेरणा देती रहेंगी।

●

दूधनाथ सिंह (३. कैशल्स रोड, इलाहाबाद-१)

एक अजीब सी तकलीफ हुई। पिछले जाड़े में जब हम आपके यहाँ पहुँचे तो उन्होंने अनायास ही मुझसे पूछा—आपने मेरा उपन्यास 'चुम्बन और चाँटा' पढ़ा है? और मेरा जवाब पाने के पहले ही फिर अपने आप में खो गए। मैंने आपसे इसका कोई जिक्र तो नहीं किया लेकिन मैं काफी उदास हो गया। आकाशवाणी के Discussion के वक्त भी मुझे उनकी बातें गूँजती और उदास करती रहीं। बिलकुल अनौपचारिक ढंग से आप मुझे उनकी यादगार में शामिल मानें।

●

देवकान्त बरुवा (बिहार के राज्यपाल, राजभवन पटना)

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि राजा राधिकारमण सिंह की स्मृति में "नई धारा" का विशेषांक निकलने जा रहा है। राजा साहब को मैं बहुत पहले से ही जानता हूँ। बहुत ही कम ऐसे लेखक और कबि हैं जो हिन्दी, उर्दू, फारसी सभी भाषा जानते हों किन्तु राजा साहब में यह विशेष गुण था कि इन सभी भाषाओं में अपनी रचना किया करते थे और साथ-साथ उनमें सृजनशील प्रतिभा भी थी। मैं इस विशेष अंक की सफलता के लिये शुभ कामना करता हूँ।

●

देवराज उपाध्याय (जयपुर)

बहुत-सी स्मृतियाँ हरी हो गईं—पं० पारसनाथ त्रिपाठी, श्री शिवपूजन सहाय, श्री नलिनजी इत्यादि। मैं इस विपत्ति के अवसर पर एक समव्यथी की तरह सांत्वना के के दो शब्द भेजता हूँ।

●

देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' (इलाहाबाद)

उनकी साहित्या सेवा हिन्दी के इतिहास में अविस्मरणीय रहेगी। उनके निधन से हिन्दी-संसार की जो क्षति हुई है उसकी पूर्त्ति नहीं होगी।

●

नर्मदा प्रसाद खरे, (जबलपुर)

वे हिन्दी कथा-साहित्य के सुदृढ़ स्तम्भ थे। उनका लेखन और व्यक्तित्व अपने ढंग का अनूठा था।

●

नवलकिशोर सिंह (संसद्-सदस्य, नई दिल्ली)

वे युग पुरुष थे और साहित्य के क्षेत्र में मेरे नेता और आदर्श। मैं लिखने में उनकी शैली का अनुसरण करता था। वे साहित्य की चलती-फिरती संस्था थे।

नागेन्द्र प्रसाद यादव (संसद्-सदस्य, नई दिल्ली)

वे सबके प्यारे थे। साहित्य और राजनीति के क्षेत्र में उनके स्थान को भरना मुश्किल है।

●

नीतिराज सिंह (विधि मंत्री, भारत सरकार, नई दिल्ली)

उनके जैसे प्रगतिशील भाषाविद् जनसेवी देश में थोड़े हैं। देश का दुर्भाग्य है कि उक्त श्रेणी में दिन-प्रतिदिन कमी होती जा रही है।

●

प्रभुनारायण गौड़ (पुस्तकाध्यक्ष, भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर)

सिन्हा साहब के स्वर्गवास के बाद हम उन्हें ही अपना गुरु मानते थे। वे भी हमें बराबर अपने परिवार के सदस्य की भाँति प्रेम करते थे। यों तो उनके सार्वजनिक और साहित्यिक जीवन का महत्त्व था ही, मगर हमारे लिए यह एक व्यक्तिगत दुखप्रद घटना है।

●

प्रमोद सिन्हा (इलाहाबाद)

राजा साहब न केवल हिन्दी और बिहार के विभूति थे वरन् उन्होंने अपनी रचनात्मकता से कई पीढ़ियों को जो मार्गदर्शन किया, नई पीढ़ी भी उनकी आभारी रहेगी। अपने इन्हीं दायित्वपूर्ण कार्यों की वजह से वे न केवल हिन्दी, वरन् सभी भारतीय भाषाओं के एक पूज्य मार्गदर्शक और अमर मनीषी, स्रष्टा के रूप में वे अमर रहेंगे। यह हम और आप सबका दायित्व है कि उनके कार्यों को सही रूप में प्रोजेक्ट करने के लिए राजा राधिकारमण एकाडमी की स्थापना कर उनकी साधना के प्रति अपना सम्मान व्यक्त करें। क्योंकि मैं यह मानता हूँ कि उनके अमर साहित्य, जो कि एक लम्बी साधना के कारण उन्होंने दिया, उसका उचित मूल्यांकन अभी हुआ नहीं है जिसे करने का दायित्व भी हम सभी पर है।

●

पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' (हिन्दी विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,कुरुक्षेत्र)

मेरे प्रति उनकी आत्मीयता मेरे जीवन की अक्षयनिधि रही—यह आप जानते हैं। कितनी बार सोचा कि उनके दर्शन हो सकें किन्तु अवसर न मिला। विश्वप्रपंच में फँसा रहा। उधर आना होता तो दर्शन-लाभ हुआ होता। मन की मन में रह गई।

●

पंकज सिंह (मुजफ्फरपुर)

राजा साहब हिन्दी गद्य के पितामहों में थे। अदम्य जिजिविषा लेकर निरन्तर कर्मरत उनका व्यक्तित्व हमें प्रेरणा देनेवाला प्रतीक व्यक्तित्व था।

●

फूलदेव सहाय वर्मा (नई दिल्ली)

बिहार के ही नहीं, भारत के हिन्दी साहित्यकारों में आपका स्थान बहुत ऊँचा था। आप अपनी किस्म के एक ही साहित्यकार थे और आपके स्थान की पूर्त्ति नहीं हो सकती।

●

बच्चन (नई दिल्ली)

राजा साहब के वियोग का दुःख आपका ही नहीं, मेरा भी है। उनके प्रति श्रद्धा का सबसे अच्छा रूप यह होगा कि 'राधिकारमण ग्रन्थावली' के नाम से उनकी समस्त रचनाओं का भव्य प्रकाशन किया जाय।

सतही कामों में समय-धन-शक्ति व्यय न करें। ठोस काम उठाएँ। मैं उन्हें श्रद्धांजलि देना चाहता हूँ तो उनकी कोई रचना उठाकर पढ़ता हूँ।

हिन्दी के गद्य शैलीकारों में राजा साहब का अद्वितीय स्थान है। हिन्दी-उर्दू को मिलाकर किसी दिन कोई सशक्त मनोज्ञ गद्यशैली बनी तो उसके पुरोधा राजा राधिकारमण सिंह माने जायँगे।

●

बदरीनाथ वर्मा (भूतपूर्व शिक्षा मंत्री, पटना)

राजा साहब सभी दृष्टियों से मुझसे बड़े—बहुत बड़े थे। इसलिए मैं उनके संबंध में क्या कह सकता हूँ? पर मैं उम्र के ख्याल से उनसे एक साल बड़ा था। यह सोचना ही कि कम उम्र वाला चला जाय और अधिक उम्र वाला बैठा रहे—महा कष्टप्रद है।

●

बनारसी दास चतुर्वेदी (फिरोजाबाद, आगरा)

वे मुझसे सवा दो साल बड़े थे। और वे भी आगरा कॉलेज के पुराने विद्यार्थी थे। दिल्ली में एक बार उनसे वार्तालाप करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था और तब उन्होंने बड़े स्नेह से मुझे चाय पिलाई थी।

स्व० राजा साहब की भाषाशैली का मैं भी प्रशंसक रहा हूँ। हिन्दी-उर्दू के प्रश्न पर उनके विचार सुलझे हुए थे। गुरुदेव कवीन्द्र श्री रवीन्द्रनाथ के संसर्ग में वे आ चुके थे और आगे चलकर सन् १९१९ में मुझे भी शान्ति-निकेतन में उनके दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। फिर वहाँ मैं रहा भी था। अपनी मौलिक रचनाओं के कारण वे बहुत वर्षों तक हिन्दी-संसार में जीवित रहेंगे। आप उनकी यशस्वी परम्परा को कामना रखें—यही मेरी कामना है, प्रार्थना भी।

●

भैरव प्रसाद गुप्त (लूकरगंज, इलाहाबाद)

बड़े बाबूजी के देहावसान से हमलोगों के सिर से एक वरिष्ठ, कोमल, उदार, सशक्त तथा स्नेहपूर्ण हाथ उठ गया। हमलोगों का बिलबिला उठना स्वाभाविक ही है। बड़े बाबूजी में जो सौम्यता, सज्जनता, उदारता तथा आदर्शवादिता थी, अब हमें कहाँ मिलेगी ? उनके जीवन के आदर्श ही उनकी रचनाओं के आदर्श थे। ऐसा समन्वय आज के प्रपंचमय संसार में विरल है। उनका जीवन तथा उनकी रचनाएँ सदा प्रेरणास्रोत बनी रहेंगी। वे हमारे मानस में सदा बसे रहेंगे। वे अमर हैं।

●

मदन वात्स्यायन (सिन्दरी)

एक बार सिन्दरी पधारे थे तो अपने विलक्षण भाषण के बीच उन्होंने अपनी ओर और फिर पास बैठे कवि 'सेवक' जी की ओर इंगित कर कहा था—

'वही रात मेरी, वही रात इनकी,
इधर बढ़ गई है, उधर घट गई है।'

●

मोतीचन्द (प्रिंस ऑफ वेल्स म्युजियम, बम्बई-१)

उनकी मृत्यु से हिन्दी-जगत को अपार क्षति हुई। पर वे अपनी कीर्त्ति से सदा जीवित रहेंगे—'कीर्तिर्यस्य स जीवति।'

●

मोहन सिंह सेंगर (आकाशवाणी, दिल्ली)

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने काफी उम्र पाई थी, पर आज भी वे हम जैसे लोगों के लिए एक जीती-जागती मशाल के समान थे। हमलोगों के सिर पर से उनके वरदहस्त का उठ जाना एक अपौर्णेय क्षति है। मैंने राजा साहब को उनकी रचनाओं से तो जाना ही पर प्रत्यक्ष दर्शन कर मुझे उनका व्यक्तित्व और भी ऊँचा लगा। यदि वे आदर्शवादी पीढ़ी के चोटी के लेखक थे तो निष्ठा और चरित्रवान् मानव की दृष्टि से भी महान् थे। उनका विछोह हम सब लोगों की हानि है।

●

यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र' (बीकानेर)

मैं बचपन से श्रीयुत राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी से परिचित हूँ। उनका 'राम-रहीम' मेरे शैशवकाल का आदर्श था। उनकी मृत्यु हिन्दी के लिए महान् क्षति है। एक अपने ढंग का महान् शैलीकार चला गया।

●

रघुवंशनारायण सिंह (सम्पादक-भोजपुरी, पिपरा जयपाल पो०-पिरौटा, शाहाबाद)

राजा साहब भरलपूरल जिंदगी जिअलीं। जइसन बंस में उहाँ का जनम लेले रहीं ओइसने सान से उहाँ का जिअलीं। आ उहाँ के मौतो ओइसने भइल। उहाँ के जिंदगी में कवनो सोच वाली बात ना भइल। मरे के बेरा उहाँ का दूधे पूते आबाद बा। तब सोच कवना बात के ? एक्कासी बरिस के उमर एह देस में कवनो कम ह ? हँ, मृत्यु के खबर पाके बहुत बीतल बात इयाद आ गइल। कतना बेरा कतना काम उहाँ का जवरे करे के मोका लागल। सब आँख का सोझा आके नाचे लागल। मन में एगो कचोट लागल—फेर गीता के बात इयाद आ गइल—

जातस्यहिं ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

●

रमण शाण्डिल्य (नेफा)

कितना अधिक कल्याण, कल्याण नहीं, सृजन से वंचित रह गई है हिन्दी ? कहाँ मिलेगा अब वह शैली-सम्राट् अब इसे ? 'राम-रहीम' जैसी अनेक कृतियों का सृजन अब कौन करेगा ? जिस विभूति को हमलोगों ने खो दिया है उसकी पूर्त्ति कदापि संभव नहीं। हम सब उनकी देन की रक्षा में तत्पर हों—वही हमारी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

●

रमेश कुन्तल मेघ (जालंधर)

राजा साहब से आरा में कई बार अपनी तकलीफें बयान करने के मौके मिले। तब वे महाराजा कॉलेज की प्रशासिका समिति में थे—और मैं एक प्रोफेसर था। उनका स्नेह और प्रोत्साहन ताजा हो उठा। उनकी अमरता तो उनके ग्रन्थ और उनकी कीर्ति हैं। राजा साहब हमेशा उपस्थित रहेंगे।

●

रवीन्द्र भ्रमर (अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़)

राजा साहब के निधन से हिन्दी-साहित्याकाश का एक उज्ज्वल नक्षत्र अनन्त अन्तरिक्ष में लीन हो गया है। वे हमें छोड़ गए तो लगता है, उनके साथ-साथ हमारे साहित्य के एक युग का अन्त हो गया है। हमारे लिए यह एक अपूरणीय क्षति है किन्तु हमारा विश्वास है कि राजा साहब की अमर कृतियाँ उनके अभाव की थोड़ी-बहुत पूर्त्ति करती रहेंगी। राजा साहब का साहित्य आनेवाली पीढ़ियों का मार्गदर्शन भी करेगा।

●

राजकुमार कपूर (सहकारी सम्पादक, अमिता, गोरखपुर)

लगता है हिन्दी साहित्य का वर्षों का पुराना चला आ रहा दीप एकाएक बुझ गया, हम सबको बेसहारा छोड़।

●

राजेन्द्र यादव (अक्षर प्रकाशन, दिल्ली–६)

राजा साहब आधुनिक हिन्दी के वे प्रारम्भ-सूत्र रहे हैं जिन्होंने उस धारा को आजतक समृद्ध और सुफल होते देखा है, उसमें हिस्सा लिया है और हम सब उनके आशीर्वाद को लेकर चले हैं। उनकी स्मृति और परम्परा आपके हाथों स्थायी और ऐश्वर्यशालिनी बने, यही कामना है।

●

रामचरण महेंद्र (प्रिंसिपल, गवर्नमेंट कॉलेज, सुजानगढ़)

उनके चले जाने से देश से साहित्यिकशैली की एक विशिष्ट परम्परा ही लुप्त हो गई है। छोटे-छोटे वाक्यों में नई जान और स्फूर्ति भरनेवाले इस महान् साहित्यकार का निधन केवल हिन्दी भाषा की ही नहीं प्रत्युत समूचे भारत की कभी न पूर्ण होने वाली क्षति है।

बाबूजी ने अनेक नवोदित साहित्यकारों को साहित्य-सृजन की प्रेरणा दी थी और स्थायी मौलिक साहित्य का निर्माण किया था। वे मानव-मन के सिद्धहस्त चितेरे थे। उनका ज्ञान अगाध था। देश की अनेक समस्याओं का समाधान और चित्रण बड़े मार्मिक ढंग से मिलता है। उनके पात्र अपना विशिष्ट दृष्टिकोण रखते हैं। उनकी नारी पात्र विशेष भाव-भंगिमा लेकर धरा पर अवतरित होती हैं और अनकहे इतना कह जाती हैं जो अन्य कथाकार कहकर भी नहीं कह पाते। उनके साहित्य में हृदय और बुद्धि का सामंजस्य है। आह, उनके चले जाने से ऐसा लगता है जैसे एक संस्था ही जाती रही, क्योंकि बाबूजी स्वयं अपने आप में एक स्वतंत्र संस्था थे। हिन्दी के ऐसे मनीषी का चले जाना हम हिन्दीवालों के अत्यन्त दुखदायक विषय है।

●

रामदरश मिश्र (दिल्ली—६)

उनके साथ एक गौरवमय परम्परा के युग का अन्त हो गया।

●

रामेश्वरनाथ तिवारी (जैन कॉलेज, आरा)

उनके निधन से भारत ने अपना एक महान् साहित्यकार खो दिया है। आपको यह जानकर तनिक आश्चर्य होगा कि राजा साहब के निधन से हमारे कॉलेज के छात्र भी अति आकुल हो उठे थे और उन्होंने उनके बहुमूल्य साहित्यिक अवदान के प्रति विनम्र और सजीव श्रद्धांजलियाँ अर्पित कीं।

●

रामेश्वर सिंह 'नटवर' (खिजरसराय, गया)

वे साहित्यिक ही नहीं, मानवीय गुणों का अवतार भी थे। भगवान ने उन्हें लक्ष्मी और सरस्वती दोनों का समान रूप से सान्निध्य पाने का अवसर प्रदान किया था। वे बड़े ही भाग्यवान थे।

●

लालबहादुर सिंह (मंत्री, बंगीय हिन्दी-परिषद्, कलकत्ता-१२)

जिस निष्ठा एवं प्रेम के साथ उन्होंने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में योगदान दिया उसके लिए वे हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमर रहेंगे।

●

वाराणसी राममूर्ति रेणु (आकाशवाणी, हैदराबाद)

स्वर्गीय राजा साहब कलम के लाजवाब धनी तो थे ही, साथ ही उनकी सादगी, मिलनसारिता, साहित्यिकों के प्रति अपनत्व एवं आत्मीयता आदि सब गुण भूले नहीं जा सकते। उन महान सरस्वती-पुत्र के स्वर्गवास के साथ हिन्दी-साहित्य-गगन का एक समुज्ज्वल ज्योति उठ गया है। यह क्षतिपूर्ति कदापि नही हो सकती है। भव्य भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के सजग प्रहारियों में वे एक थे। स्वर्वीय प्रेमचन्द, शिवपूजन बाबू, जयशंकर प्रसाद जैसे सरस्वती-समाराधकों के खेवे का संभवतः अंतिम अनमोल रतन उठ गया है।

●

विवेकी राय (गाजीपुर)

बचपन में राजा साहब की पुस्तकों को पढ़कर लिखना सीखा, सोचना सीखा और शालीन सृजनात्मकता के परिवेश से परिचित हुआ। राजा साहब को मैंने देखा नहीं, उनकी यशस्वी कृतियों को ही राजा साहब माना और प्रणाम किया। अब आज समझकर भी समझ में नहीं आ रहा है कि राजा साहब नहीं रहे। क्या सचमुच राजा साहब नहीं रहे ? भाई, मेरे लिए, मेरे जैसे-लाखों-करोड़ों के लिए वे नित्य हैं, अमर हैं। वे खो नहीं गए हैं।

●

विश्वम्भर 'मानव' (इलाहाबाद-३)

इसमें कोई संदेह नही कि वे अपने युग की साहित्यिक विभूतियों में थे। ऐसे उदार मानवतावादी अब दिन पर दिन कम होते जा रहे हैं।

विष्णु प्रभाकर (दिल्ली)

उन्होंने अच्छी आयु पाई। बहुत कुछ देखा, सहा और किया। अब वे मुक्त हुए। यह सब स्वाभाविक ही था। लेकिन फिर भी जिस व्यक्ति ने इतिहास के पृष्ठों पर अपने चरण-चिह्न अंकित किये हों, उसके चले जाने से जो स्थान रिक्त हो जाता है वह देर तक नयनों को वाष्पाकुल करते जाता है।

●

वेंकटलाल ओझा (हैदराबाद)

मुझे उनके दर्शनों का सौभाग्य पटना में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् के समारोह में हुआ था। उनकी रचनाएँ तो वर्षों से पढ़ता रहा हूँ। वे लेखनी के धनी थे। उनकी अपनी लेखनशैली थी। पिछले वर्ष ही तो उन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया था। यह किसे आशा थी कि वह इतनी जल्दी हमारे बीच से उठ जाएँगे ? यह सारे हिन्दी जगत् की अपूरणीय क्षति है।

●

वैद्यनाथ शर्मा (ग्राम—पटसारा, मुजफ्फरपुर)

हिन्दी-गगन का एक नक्षत्र ही टूट गया। बिहार तो सूना हो गया राजा साहब के बिना। उनकी मृत्यु से मेरी निजी क्षति तो अपार हुई हैं चूँकि इंटरव्यू देने का वचन उन्होंने दे रखा था। मैं अभागा था जो उनके दर्शन न कर सका।

●

श्यामसुन्दर (हिन्दू इंटर कॉलेज, अमरोहा, मुरादाबाद)

स्मृति-शेष राजा साहब भले ही पार्थिव रूप में हमारे बीच नहीं हैं, परन्तु उनकी रचनाएँ उनको अमर बनाने के लिए पर्याप्त हैं। मैंने न जाने कब 'कानों में कंगना' कहानी पढ़ी थी और अब 'दरिद्रनारायण'। न कुछ कहते ही बनता है न कुछ लिखते ही। गूँगे को गुड़ जैसी स्थिति है।

●

श्रीराम शर्मा 'राम' (नई दिल्ली-३)

राजा साहब अपने देश के भी अभिमान थे। हिन्दी ने अपना एक बुजुर्ग और सच्चा पुजारी खो दिया है। उनका कृतित्व देर तक रहेगा।

●

शांति प्रसाद जैन (नई दिल्ली)

वे सच्चे साहित्यसेवी थे। उनके निधन से समाज और साहित्य की जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति नहीं हो सकती।

●

शिवदान सिंह चौहान (नई दिल्ली--२४)

राजा साहब देश की उन विरल प्रतिभाओं में थे, जिन्होंने अपने सुदीर्घ जीवनकाल का प्रतिक्षण हिन्दी साहित्य को अपनी अनूठी जीवन-प्रवृत्तियों से सम्पन्न और समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने भाषा को सँवारा-निखारा और बिहार के जन-जीवन को उनके सम्पूर्ण वैविध्य में रूपायित किया। उनकी सहानुभूति सदा अपने देश के शोषित और पीड़ित लोगों के साथ रहती थी। उन्हें अपने जीवन में जो सम्मान और प्रतिष्ठा एक उच्च कोटि के रचनाकार की हैसियत से प्राप्त हुई, वह उनके कृतित्व और उनकी देन की तुलना से यद्यपि कम है, फिर भी वे उन महान् आशयवाली आत्माओं में से थे, जो बाहरी सम्मान और प्रतिष्ठा की आकांक्षाओं से पीड़ित नहीं रहते। राजा साहब के निधन से हिन्दी ने और सम्पूर्ण भारतीय साहित्य ने एक महान् और सजग साहित्यकार खो दिया है और उस हद तक हम सबके जीवन में एक अभाव और दारिद्रय पैदा हो गया है। ऐसे अभावों की पूर्ति कई पीढ़ियों की अथक साधना से ही संभव होती है। राजेन्द्र प्रताप सिंह जी इलाहाबाद विश्वविद्यालय में मेरे सहपाठी थे, इसलिए राजा साहब के निधन से मुझे ऐसा लगा है जैसे मेरे अपने बुजुर्ग मुझे छोड़ गए हों।

●

शिवप्रसाद सिंह (वाराणसी)

उनके साथ हिन्दी का एक अद्भुत शैलीकार उठ गया। उनके आकर्षक और समन्वित व्यक्तित्व की छाप उनकी रचनाओं में समग्र व्याप्त है। उन्होंने हिन्दी गद्य को एक सौंदर्यात्मिक चुलबुलेपन से जीवन्त बनाया। फलतः भाषा निस्सन्देह एक नई सांकेतिक अर्थवत्ता लेकर सामने आई। ऐसी संरचना के प्राणवान् व्यक्तित्व के उठ जाने से हिन्दी को अपूरणीय क्षति हुई है। राजा साहब का यशः काय व्यक्तित्व हमेशा ही गद्यकारों के लिए प्रेरणा-स्रोत रहेगा।

●

शिवराज प्रसाद (धनबाद)

साहित्यजगत् उनके बिना अब अधूरा ही रहेगा—वे अपनी ही शैली के निर्माता थे—यह सब भूला नहीं जा सकता।

●

शैलेश मटियानी (सम्पादक, विकल्प, इलाहाबाद)

स्वर्गीय राजा साहब हिन्दी के अतीत के स्मरणीय महत्त्व के स्तम्भ रहे हैं। उनके यशस्वी व्यक्तित्व के आश्रय से वंचित हो जाने का दुःख निश्चय ही कठोर होगा।

●

सकलदीप सिंह (१३८, राजा कटरा, कलकत्ता-७)

उनकी आत्मा संतुष्ट और सुखी रहेगी, क्योंकि उनकी साधना ने उन्हें और उनके यश को अमर बना दिया है। किसी भी साधक पुरुष के उठ जाने पर चेतना खड़ाखड़ा उठती है। उनके यशःशरीर को मेरी हार्दिक श्रद्धा समर्पित।

●

सत्यप्रकाश मिलिन्द (बिड़ला लाइन्स, दिल्ली)

मैं उन्हें पितृतुल्य मानता था और उनसे हर समय मुझे मार्गदर्शन और पथप्रदर्शन तथा सांत्वना मिलती थी।

●

सिद्धेश्वर प्रसाद (उपमंत्री, भारत सरकार, नई दिल्ली)

हम निश्चय ही उनके आदर्शों की प्राप्ति के लिए काम करेंगे। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी।

●

सुमित्रा कुमारी सिन्हा (आकाशवाणी, लखनऊ)

राजा साहब के निधन ने जो एक गहरा आघात दिया है वह सहन करने की शक्ति मैं ही नहीं बटोर पा रही हूँ तो आपसे किस प्रकार कहूँ ? बस, एक काल की धारा ही ऐसी है जिसमें बहते-बहते सारे शोक-संताप धुलते जाते हैं। उस महान् आत्मा के आदर्श-पथ पर चलकर उनके यशगौरव को बढ़ाते रहिए।

○

सुरेशचन्द्र चतुर्वेदी (अवकाशप्राप्त न्यायाधीश, २, हनुमान बाग, ममफोर्डगंज, इलाहाबाद-२)

वह हमारे साथ आगरा कॉलेज में पढ़ते थे। हमारे तो बहुत सहपाठी थे और उनके छोटे भाई राजीवरंजन प्रसाद सिंह हमसे नीची कक्षा में पढ़ते थे। ड्रामन रोड (ठंडी सड़क) पर एक कोठी में अपने एक अभिभावक के साथ रहते थे तथा घोड़ा-गाड़ी में कॉलेज जाते थे। बड़े सरल स्वभाव के सज्जन पुरुष थे। हमारे प्रिंसिपल मि० टी० सी० जोन्स उनसे खुश रहा करते थे। यहाँ एक घटना का उल्लेख करना उचित होगा। हमलोग एक साथ कक्षा में बैठे हुए थे और जोन्स साहब पढ़ा रहे थे। वह पान चबा रहे थे। जोन्स साहब उनके पास गए और उन्होंने उनसे कहा—बाहर जाकर पान थूक आओ। वह तुरत बाहर जाकर पान थूक आए और क्षमा माँगी। हम दोनों कॉलेज के लॉन में भी बैठकर साथ-साथ पढ़ते थे। कभी-कभी कविता भी मौखिक सुनाते थे। सन् १९१२ में हमलोगों ने कॉलेज छोड़ा। फिर उनसे कभी भेंट हुई नहीं। यदि बनारसी दास चतुर्वेदी हमको आपका पता न लिखते तो हम आपको यह पत्र भी नहीं लिख पाते।

●

सूर्यकुमार शास्त्री (सोनपुर, सारण)

उनकी उक्तियाँ, उनकी शैली साहित्य-मर्मज्ञों को सदा नई प्रेरणाएँ देती रहेंगी। उनके साथ कई साहित्यिक मंचों पर रहा और उनके कई संस्मरण सामने स्मृति-पटल पर आए हैं।

●

संतराम (पुरानी बस्ती, पंजाब)

उनके परलोकगमन से हिन्दी साहित्य की तो अपार हानि हुई ही है, परंतु इससे भी बढ़कर भारत एक सच्चे मानवसेवक से वंचित हो गया। उनमें मानवता के बहुमूल्य गुण थे।

●

हर्षनाथ (कलकत्ता)

राजा साहब के साथ हिन्दी की तीन साहित्यिक पीढ़ियाँ जुड़ी हुई हैं। उनके निधन से उस परम्परा की कड़ी टूट गई। शब्दों के तो वे जादूगर थे। मुझे याद है, स्कूल के

दिनों में उनकी रचनाएँ पढ़कर हमलोगों को कितना आश्चर्य होता था कि भाषा पर ऐसा अधिकार और वह भी कथा-साहित्य में अपनी सरसता के साथ ! 'कानों में कंगना' तो अभी भी, तीस साल की अवधि पार कर स्मृति पर छाया है ।

●

ह० अग्रवाल आकंठ (पिपरिया, मध्य प्रदेश)

बाबूजी के निधन पर 'आकंठ'-परिवार दुखी हुआ है । साहित्य-जगत में बाबूजी का योगदान एक ऋण-स्वरूप हमारे ऊपर है जिससे मुक्त होना असंभव है ।

●

क्षेमचन्द्र 'सुमन' (दिल्ली)

मेरे ऊपर तो उनका असीम स्नेह था । उन जैसा ममतामय हाथ अब मेरे सिर पर नहीं रहेगा—इस कल्पना से ही मन सिहर उठा ।

●

N. S. Mathur, (New Delhi)

He was a distinguished Indian and a very good soul.

●

S. Gopal Shastri, (New Delhi)

The late Rajasaheb was an institution in himself and will be ever remembered for his great work & contribution to the cause of Hindi literature. He had been a source of inspiration to many of us. He represented a distinct culture & was a link between the past & everchanging present.

●

S. Nijalingappa, (former Congres President, New Delhi)

It is really a great loss to the Sahitya world and the country.

●

S. Nurul Hassan, (M. P., New Delhi)

In his demise, the country has lost a great & noble soul.

●

A. C. Bhatta, (former General Manager, Behar Bank, Patna)

He was an embodiment of nobitity & geniality personified. It is rare to find dignity & geniality so well combined as it was.

in Raja Sahab. His memory is undeliable—a scholar who has left a lasting impression on Hindi literature which is so indebted to him for his unique contribution.

●

Kewal Krishan (Deputy Secretary, Rajya Sabha, New Delhi)

He was a great scholar and had the respected public image.

●

J. C. Mathur (I. C. S., New Delhi)

He was so affectionate & kind to me and treated me almost as a member of his family since I met him through you back in 1935. He never bothered about difference in age & experience and treated all literary men on footing of euality. I had the double privilege of being almost a member of his family & a fellow literary man.

He was both unique & a symbol of composite culture. He was unique because his style represented his lively personality. He was a symbol in as much as he combined in him the best of the outlook of Tagore & Gandhi and against popular opinion, endevoured to bring together Islam & Hinduism.

●

Pyaremohan (Allahabad)

Rajasaheb has lived a full life of renown & fame and has left a name which will live for ever in the field of learning & literature. It is the fate of very few that their names remain enshrined in the intellectual circle even when they cease to exist.

●

Balkrishna (Allahabad University)

His death means the end of an era particularly in literature. Hindi Jagat has lost one of its greatest supporters & exponents. His style of writing was unique & can hardly be replaced.

●

B. P. Sinha (Former Chief Justice of India (New Delhi)

His death has deprived us of a very near & loving friend, and deprived the country as a whole of a very leading literettuer who has rendered such eminent services to the cause of Hindi literature.

●

Radha Prasad Sinha (Tilothu, Shahabad)

Apart from our close relationship with him, he was a genuine source of inspiration & pride and was easily the greatest man of his coummunity in his time, not only great because he was almost a hereditary Raja but also because of his high academic acquisitions, very humble & unostentatious in nature, despite occupying such unique a position. His loss has been more than personal to me as I have been associated with him from his very early days—when he was a student of Muir Central College, Allahabad.

●

Lalloo (Bettiah)

The literary world is completely orphaned. The void created by his death can never be fulfilled. He was perhaps the most shining star in the Hindi world. He was a great friend of my father Late Murali Manohar Prasad, Ex-editor, . The Searchlight and relationship between the two remained most cordial till the last.

●

Bipin Behari Verma (Ex-M. P., Champaran)

Bihar has lost one of her eminent writers & a great man. He was so good and affectionate. It is a loss to you—all Bihar & Hindi world.

●

Shashikant Verma (Chief Justice, Allahabad High Court)

He was a great institution and made his mark in many walks of life particularly in literature. Because of his books he has become immortal.

वे पत्र : वे दिन
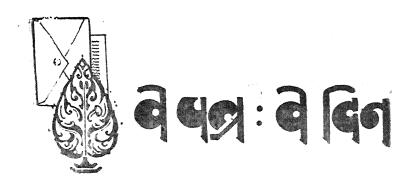
राजा साहब को लिखे गए कुछ पत्र

राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली
१८ सितम्बर १९६१
भाद्र २७, १८८३ शक

प्रिय राजा साहब,

चिकित्सा गृह से मेरे राष्ट्रपति भवन वापस आ जाने पर आपका पत्र आया था। जिसमें आपने मेरे लिये अपनी शुभकामना व्यक्त की थी। उस कृपा के लिये मैं स्वयं पत्र लिखकर आपको धन्यवाद देने में उस समय समर्थ नहीं था। अब मैं भगवान की अनुकम्पा एवं मित्रों और शुभचिन्तकों की मंगलकामना के फलस्वरूप अच्छा हूँ यद्यपि अभी भी कमजोर हूँ। आपको अनेकानेक धन्यवाद।

आपका,
राजेन्द्र प्रसाद

प्रधान मंत्री भवन
नई दिल्ली
१-२-६६

आपकी शुभ कामनाओं के लिये मैं आभारी हूँ। मेरे देशवासियों का [illegible] और विश्वास ही मातृभूमि की सेवा के लिये मुझे बल देगा।

शुभकामनाओं सहित
इन्दिरा गान्धी

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

सम्मेलनभवन, पोस्ट-बक्स नं० ७, पटना—३

दिनांक २५-५-६१

परमादरणीय श्रीमान् राजा साहब,

सादर सविनय प्रणाम।

श्रीमान् का कृपापत्र मिला था; किन्तु कुछ पारिवारिक संकटों के कारण मैं सेवा में उपस्थित न हो सका। क्षमाप्रार्थी हूँ। अब कृपया सूचित करें कि कब किस समय मैं दर्शन करने आऊँ। सुबह तो जल्दी ही घाम तीखा हो जाता है। शाम को पाँच बजे के बाद बाहर निकलने योग्य समय होता है। यदि आज्ञा हो तो शाम को ही आऊँ। किस दिन आऊँ?

कृपाकांक्षी

शिवपूजन

२, साउथ एवेन्यू लेन, नई दिल्ली

दिनांक ६-१-१९६६

मान्यवर राजा साहब,

बिखरे मोती की दो प्रतियाँ आज प्राप्त हुईं। आपने पुस्तक मुझे समर्पित की, इसे मैं आपकी कृपा और आपका आशीर्वाद समझता हूँ। पचहत्तर की आयु में भी आप निरन्तर साहित्य-रचना में लगे हुए हैं; यह देखकर आपसे ईर्ष्या होती है और आपके सान्निध्य पर गर्व होता है। हमलोगों से आपकी जो सेवा हो सकती थी, वह न हुई, इसका दुःख है। किन्तु, समय सारी क्षति की पूर्त्ति कर सकता है।

आपका

दिनकर

१३, विलिंगडन क्रिसेंट, नई दिल्ली–११

२२-२-६३

श्रद्धेय,

आपका पत्र समय से मिला था। आभारी हूँ।

'ओथेलो' के अभिनय पर आपके न आ सकने का बड़ा खेद रहा।

श्री नारायण जी से 'नजर बदली बदल गए नजारे' की प्रति मिली थी। 'दो शब्द' पढ़कर ही फड़क उठा। आज वास्तविकता को कौन आँख फाड़कर देखे, कौन साहस के साथ उसे कहे! आपको सौ-सौ बधाई!!

इधर अस्वस्थ रहा हूँ। एक मास की छुट्टी लेकर आराम-इलाज कर रहा हूँ। लाभ भी है।

समय मिलते ही पूरा नाटक पढ़ूँगा। काश कि इसे खेला भी जा सकता। अभिनय मंडलियों को संगठित करने और नाटक की ओर जनता की रुचि जगाने की बड़ी आवश्यकता है। अच्छे नाटक ही उस ओर लोगों को प्रेरित करेंगे।

प्रणाम स्वीकार हो।

बच्चन

Institute of Hindi Studies
& Linguistics,
Agra University,
Agra.
30-11-1959.

पूज्यवर,

बहुत बहुत आदर के साथ बधाई और चरणस्पर्श!

अपने के खुशखबरी त मिलिए गइल होई। अपने के किताब के अनुवाद सब भारतीय भाषा में होखे के निश्चय हो गइल। हमनी के प्रयास सफल भइल। अपने के प्रतिभा के, अनुभूति के, लेखनी के चमत्कार सिर्फ अब हिन्दी तक सीमित ना रह के देश के कोना-कोना के भावात्मक जीवन में प्रवेश कर सकी। हृदय के श्रद्धा पुलकित भाव से एह अवसर पर अपने के शाश्वत साहित्यकार रूप के और कृतित्व के जयजयकार कर रहल बा।

'कमलेशजी' अपने के पास खत लिख चुकल बाड़न। अपने के किताब के प्रतीक्षा में बाड़न। किताब करीब-करीब पूरा हो चुकल बा। उनका पास अपने के खत आइल रहे, ओह से मालूम भइल कि अपने के आँख में एने कुछ कष्ट हो गइल बा। ई जान के चिन्ता हो रहल बा। लिखल जाई कि अब कइसन बा।

और सब अपने के आशीर्वाद से कुशल बा। उमीद बा प्रिय बाबू शिवाजी और परिवार में सभे सकुशल और प्रसन्न होई।

कृपा करके आपन कुशल-समाचार जल्दी दिहल जाई।

अपने के स्नेहभाजन
विश्वनाथ प्रसाद

आश्रम
पांडीचेरी-२
१५-५-६६

श्रद्धेय भाई,

आशा है सानन्द होंगे। यों तो आपसे कभी साक्षात्कार नहीं हुआ पर आप के साहित्य द्वारा तो आपसे से परिचित ही हूँ।

आपने श्री अरविंद साहित्य अँग्रेजी में देखा होगा। शायद हिन्दी अनुवाद भी देखे हों।

उनका सावित्री महाकाव्य जो दुरूह और दुर्विजेय है पर अमृत ही अमृत से भरा है। उसे मैं हिन्दी में करने की एक अनधिकार चेष्टा कर रही हूँ। यह केवल अपनी अपनी भाषा की प्याली में अपनी तरह से मधुपान के लालचवश कर रही हूँ। आपका भी आशीर्वाद चाहती हूँ। आश्रम इसे प्रकाशित कर रहा है।

मेरे विनम्र प्रणाम लें।

आपकी,
विद्यावती कोकिल

विकास लिमिटेड
सहारनपुर : उत्तरप्रदेश
२-७-५७

मेरे पूज्य, प्यारे राजा साहब,

कार्ड मिला कि रजिष्ट्री से लेख भेज रहे हैं। मंसूरी से चलते समय मैं लिखकर चला था कि लेख सहारनपुर ही भेजें। आशा है आज मिल जायेगा लेख भी।

आपकी जानी देखी सुनी की पुस्तकें आज निकलवाईं तो निकली—चुम्बन-चाँटा, हवेली और झोपड़ी, देव और दानव, वे और हम—कुल चार; पर आपने लिखा है—६ पुस्तकें। तो शेष दो पुस्तकें यहाँ आकर गुम हुई हों या वहीं, पर तुरन्त भिजवा दीजिये उन्हें। शेष बाद में।

विनम्र
क० ला० प्रभाकर

पुनश्च—

शेष दो पुस्तकें मिल गई हैं उन्हें न भेजिये।

लेख भी मिल गया। उसी समय पढ़ गया उसे। आपके पूरे साहित्यिक विकास का इतिहास आ गया है इसमें भावी पीढ़ियों के लिये, पर १९३५ के आसपास जिस एक बात को आन पर लेखनी मुड़ आई अपनी जिन्दगी की मंजिल, वह बात क्या है हुजूर? रहम कीजिये हम पर, हमारे बादवालों पर और लौटती डाक लिख भेजिये वह बात भी। मैं यहीं उसे जगह पर फिट कर दूँगा। मायूस न कीजियेगा।

आपका अपना—
प्रभाकर

☼

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१५ दिसंबर '७०

आदरणीय महानुभाव,

आपको यह सूचित करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम शासी निकाय ने आपको हिन्दी जगत की सर्वोच्च उपाधि 'साहित्य वाचस्पति' से अलंकृत करने का निश्चय किया है। अतः आपसे सादर निवेदन है कि कृपया अपनी स्वीकृति अविलम्ब देने का कष्ट करें।

'साहित्य वाचस्पति' की यह उपाधि सम्मेलन के आगामी दीक्षा समारोह के

अवसर पर आपको अर्पित की जायगी, जिसमें आपको प्रयाग में उपस्थित होने का कष्ट करना पड़ेगा। समारोह की तिथि बाद में आपको सूचित की जायगी।

आशा है, आपका स्वास्थ्य अच्छा रहा है।

सादर, आपका
रामप्रताप त्रिपाठी
कार्य-सचिव

[राजा साहब का उत्तर]

प्रिय महोदय,

आपका कृपापत्र मिला। साहित्य वाचस्पति की उपाधि के लिए धन्यवाद। साहित्य की सेवा न होती तो आज मैं आपके हाथों यह सर्वोच्च उपाधि पाता? अपना तो यह दृढ़ विश्वास है कि साहित्य ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य चाहिए।

भवदीय,
राधिकारमण प्रसाद सिंह

मान्यवर,

'चुम्बन और चाँटा' में गुलाबी का उज्ज्वल चरित्र दीपशिखा की भाँति अंकित हो गया है—कालिदास के 'निवात निष्कम्प इव प्रदीप:' की लौ के समान नहीं बल्कि भयंकर बवंडर के बीच भी निष्कम्प भाव से जलनेवाली बिजली की स्थिर ज्योति के समान। काजल की कोठरी की पृष्ठभूमि में जलती रहने के कारण यह शिखा और भी आकर्षक बन गई है। मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

भवदीय
हजारी प्रसाद द्विवेदी

दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-८
७-१०-१९५९

आदरणीय राजा साहब,

आपका नवीन उपन्यास प्राप्त हुआ। इस स्नेहस्मरण के लिए धन्यवाद। मैं इसका अध्ययन करूँगा।

विनीत,
नगेन्द्र

हीराबाग, बंबई-४
१७-२-६७

तसवीर खिच गई है मेरे दिल में यार की
या जी की दास्तां है तेरे हुस्न ओ प्यार की
क्या गुल हुए निसार तेरे हुस्न ओ जमाल पर
अब तक चमन में बू है उस गुजरी बहार की
कुमरी फुदक रही है तो बुलबुल है नग्मासंज
सय्याद की जबां पै कहानी है खार की।

फलक

दानपुर हाउस
काश्मीरीगेट, दिल्ली
१ अप्रैल, १९५८

आदरणीय,

नमस्कार, ।

"चुम्बन और चाँटा" उपन्यास प्राप्त हुआ। अत्यन्त आभारी हूँ। पुस्तक मैंने आद्योपान्त पढ़ ली है। "नई धारा" में भी आपकी रचनाएँ पढ़ती रहती हूँ। मैं कितने ही दिनों से आपकी कृतियों पर कुछ लिखने की बात सोच रही हूँ, लेकिन लिखने से पूर्व आपकी सभी पुस्तकें पढ़ लेना चाहती हूँ।

मैं आजकल ट्रांसपोर्ट मिनिस्ट्री में हिन्दी आफिसर के पद पर कार्य कर रही हूँ। लिखने का अवकाश बहुत कम मिल पाता है। अबकी दिल्ली पधारें तो अवश्य हम लोगों को सूचना देने का कष्ट करें। हमारे घर का फोन नं० २३९३० है। फोन से अपने आगमन की सूचना दे सकते हैं।

श्री गुर्टू जी आपको नमस्कार कह रहे हैं। "जानी-सुनी-देखी" सीरीज में कितनी पुस्तकें अबतक प्रकाशित हो चुकी हैं ?

विनम्र—
शचीरानी गुर्टू ।

गवर्नमेंट कालेज
न या पु रा
कोटा (राजस्थान)
३-११-६०

पूज्य राजा साहब, वन्दे,

पत्रों के लिए धन्यवाद।

बड़ा लज्जित हूँ कि कार्यभार की वजह से दुबारा उस लेख को न लिख सका। आज सब कुछ छोड़ दुबारा उन दोनों पुस्तकों पर अपने विचार लिखे हैं। इनमें कुछ आपको जोड़ कर लेख को पूर्ण बनाने की सविनय प्रार्थना है। आपने बड़े मार्मिक ढंग से भक्ति, सत्य और वैराग्य के कल्याणकारी रूप को प्रकट किया है। यह पुस्तकें "धर्म और मर्म" तथा "तब और अब" आपके साहित्य में अपना निजी महत्त्व रखती हैं। आशा है इस लेख के प्रकाशन की व्यवस्था आप "नई धारा" में करा देंगे। मेरे प्रति आपका जो वात्सल्य भाव है, उसे पाकर मैं धन्य हूँ। मैं तो अभी बालक हूँ, आप पिता-तुल्य हैं, बुजुर्ग हैं। मैं भला आपको अपनी पुस्तकों के माध्यम से क्या प्रेरणा दे सकता हूँ। आप महान् लेखकों से जो सीखा है उसी को स्पष्ट करता रहता हूँ।

आशा है, इस लेख में निसंकोच सुधार कर छपने देंगे। सुरक्षितता की दृष्टि से इसे कुछ बैरंग कर दिया है।

ईश्वर करे आप नेत्रों के कष्ट से मुक्त हों। लेकिन मेरी प्रार्थना है अब किसी को बोल कर आप पुस्तकें लिखायें। अभी आपको बहुत कहना है। वही अमर चीज है। अतः निरन्तर लिखते रहिए।

आपका,
रामचरण महेन्द्र

※

प्रिंसिपल
गवर्नमेन्ट कालेज
सरदारशहर
राजस्थान
१९-४-६०

आदरणीय,

मैं परीक्षा-सम्बन्धी कार्य में व्यस्त रहा। अतः आपके ४-४-६० के पत्र का उत्तर न दे सका। क्षमा कीजिएगा।

"तब और अब" तथा "धर्म और मर्म" के कुछ अंश पढ़े। पुस्तकें लाजवाब हैं। आपकी कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। कठिन विषयों को भी आपने बड़ी जिन्दादिली और स्फूर्तिवर्द्धक भाषा में अभिव्यक्त किया है। पढ़ते हुए मन पर जोर नहीं पड़ता। शैली की मनोरमता में पाठक बहा जाता है। यह हिन्दी के गौरव का विषय है कि आप इस आयु में भी सतत साहित्य-निर्माण कर रहे हैं। आपकी पुस्तकें अपने ढंग की निराली हैं। शैली की दृष्टि से तो अद्भुत हैं। ऐसी जीवित शैली या तो बेनीपुरी के पास है या आपके पास है।

मैं इन पुस्तकों तथा इसी सीरीज की सब पुस्तकों को एक साथ ले कर एक लम्बा लेख अपनी पुस्तक के लिए तैयार करूँगा। इसे भी हम कथा-साहित्य के अन्तर्गत ही ले सकेंगे और फिर अपनी कहानी वाली पुस्तक में उपयोग कर लेंगे। आपको इतना कष्ट देना है कि जरा देख लें, संशोधन और परिवर्द्धन-कर दें जिससे लेख प्रामाणिक बन जाय और पुस्तक के योग्य हो जाय। क्या समय मिल सकेगा?

मेरी पुस्तकों की संख्या ५० के लगभग है। ये कई प्रकाशकों के पास हैं। अतः मिलते ही एकत्रित कराऊँगा और सेवा में भिजवाऊँगा। आपने जो मेरी रचनाओं के प्रति स्नेहभाव दर्शाया है उसके लिए कृतज्ञ हूँ। प्रेम भाव बनाये रहें।

आपका,
रामचरण महेन्द्र

आरा
१३-६-६१

श्रद्धेय राजा साहब,

सादर प्रणाम। अभी उस दिन स्थानीय रवीन्द्र शताब्दी समारोह में आपके पुनीत दर्शन हुए और एक बार फिर आपका स्नेहिल औचित्यपूर्ण उलाहना सुनने को मिला। मेरे पास आपके उलाहने का जवाब है भी क्या ? झूठ बोलने को तो बहुत कुछ है पर सच यह है कि दुनिया की कँटीली झाड़ियों में मैं उलझ गया हूँ। सारी ख्वाहिशों के बावजूद, जिस अँधेरी गली में आ गया हूँ वहाँ सूरज के दर्शन नहीं होते। भावनाएँ एक-एक कर जनमती हैं, खयाल पैदा होते हैं पर उन्हें मूर्त्त रूप नहीं दे पाता। ऐसा एक नहीं, सैकड़ों बार हुआ है, होता है। सोचता हूँ, दरिद्रों के मनोरथ की नाईं क्या मेरे खयाल भी अकाल-कवलित होकर ही रह जायेंगे ? यही विचार आपको देखकर उस दिन भी हुआ। ऐसा लगा कि मैं चेतनाहीन जड़ शिलाखण्ड हूँ, कोई अभिशप्त शिलाखण्ड जिसे राजा राम के चरणों के स्पर्श की प्रतीक्षा है। हो सकता है उसी स्पर्श के बाद वह शिला प्राणवती हो उठे। आप कलम के जादूगर हैं, आप ही के द्वारा शायद यह संभव हो। आपसे जब-जब भेंट होती है मेरी गई हुई आस्था लौटने लगती है। लगता है मैं शिलाखण्ड ही सही, पर नोकदार कँटीला पत्थर न होकर संगमर्मर का तराशा हुआ टुकड़ा हूँ। आपका स्पर्श इसे निश्चय ही पुनरुज्जीवित करेगा।

अपनी खामियों की माफी आपसे क्या माँगूँ। हम तो खामियों के आदी हो गये हैं, भरोसा है सिर्फ आपकी अशेष उदारता का। हिन्दी साहित्य को जो रत्न आपने दिये हैं, जिन गहराइयों में डूब कर आपने ये रत्न निकाले हैं, उन गहराइयों से लाया हुआ एक छींटा भी अभिशप्त शिला को शापमुक्त कर सकता है। केवल इतना कह सकता हूँ कि आपके स्नेह का मैं कुपात्र नहीं बनना चाहता। आपका विशाल व्यक्तित्व, आपका साहित्यिक चमत्कार तो सारे देश का गौरव है, मैं तो आपके उन उलाहनाओं का ही कायल हूँ जो मेरे जैसे अकिंचन की ओर भी आपकी नजरों का रुख मोड़ती हैं। मैं आपके दर्शनों को स्वयं आऊँगा। आशा है एक छोटा-सा पत्र मेरी तसल्ली के लिए लिखेंगे कि आपने हजारवीं बार भी मुझे माफ कर दिया। अनेकों प्रणाम।

आपका विनीत
दुर्गा प्रसाद

नई दिल्ली

२३।५

आदरणीय राजा साहब, प्रणाम।

आपका पत्र मिला। किताब भी मिली, पढ़ गया। किताब के बारे में फुरसत से लिखूँगा। दरअसल नौकरी के चक्कर में लिखना-पढ़ना खतम-सा ही हो गया है। लाख कोशिश करता हूँ पर सिलसिला जम नहीं पाता।

'सूरदास' के बारे में मैंने काफी सोच-विचार किया है। मेरा अपना विश्वास है कि वह आपकी सबसे अच्छी कृति है। औरों का मैं नहीं जानता। अपनी-अपनी पसन्द। दुर्भाग्यवश उसकी जो प्रति मेरे पास थी और जिसमें मैंने काट-छाँट किया था फिल्म की दृष्टि से, वह प्रति एक मित्र ले गये। कृपा कर उसकी एक प्रति भेज दें।

यदि फिल्म कलकत्ते में बने तो खर्च कम पड़ेगा। मेरा विश्वास है कि कलकत्ते में और तरह की सुविधा भी होगी। इसके विपरीत बम्बई का बाजार है। वहाँ तो एक तरह की लूट ही मची हुई है। पता नहीं बम्बई में क्या खर्च बैठेगा। वहाँ के बाजार का कुछ कहा नहीं जा सकता। यदि कलकत्ते में फिल्म बनाई जाय तो कुल खर्च लगभग तीन लाख पड़ेगा। इतना रुपया अपनी तरफ से एकमुश्त लगाने की जरूरत नहीं। एक कम्पनी बना कर यदि एक लाख रुपया शुरू में लगाया जाय तो बाकी रुपया डिस्ट्रिब्यूटरों से मिल जायगा। लेकिन एक लाख से कम लगाने पर कोई फायदा नहीं क्योंकि काम भी पूरा नहीं हो सकेगा और पैसा भी बर्बाद जायगा। यदि आप इसके लिए राजी हों तो मैं पूरा खर्चा बनाकर भेजूँ।

आशा है परिवार के सभी लोग सानन्द हैं।

आपका

वीरेन्द्र नारायण

कृष्ण-भवन

फ्रेजर रोड, पटना-१

१५-१२-६०

महामान्यवर !

सादर प्रणाम।

आपका कृपा-पत्र पाकर मैं परम कृतार्थ हुआ। मैं एकदम अधीर हो रहा था।

अब आशा बँधी कि सम्मति प्राप्त होगी। सम्मतियाँ प्रकाशित हैं। और उनमें आपकी न रहे तो एकदम फीकी ही जँचेंगी। इसीसे अनुग्रह के लिये यह आग्रह है। आँखों की कमजोरी का हाल जानकर बहुत दुःख हुआ। जगत्चक्षु आपके चक्षुओं की ज्योति पूर्णतया बनाये रखें! आप हिन्दी-साहित्य के चक्षु हैं।

भवदीय
कृपाभिलाषी
महेश चंद्र प्रसाद

✤

३१-१२-७०

श्रीमान्,

सादर प्रणाम!

'दरिद्र नारायण' शीर्षक प्रसिद्ध कहानी पढ़ने के बाद मेरे मन में बरबस यह जिज्ञासा होती है कि निम्नलिखित पंक्तियों का भावार्थ क्या है :

१. "महल के गुम्बदों पर उषा के फव्वारे कुछ और हैं; कुटिया के छज्जे पर किरणों के करिश्मे कुछ और। चमन में फूल खिलते हैं, वन में हँसते हैं।"

२. "फूल और प्रसाद तो खूब पाया; मगर जी का अवसाद न मिटा। मनों सोना गला कर भी मन न गला। इस पुण्य के ठेलम-ठेल पर भी हृदय का कोना सूना ही रह गया। सर का ताज दर्दे-सर बन कर सर पर छाया ही रहा।"

यों तो विद्यालय के सम्बधित विषय के अध्यापक ने उक्त पंक्तियों के पाठ प्रदान किये और उन्होंने अपने अनुसार इसकी संतोषजनक व्याख्या की।

अतः मैं श्रीमान् का कुछ मिनट बहुमूल्य समय लेकर यह जानना चाहता हूँ कि उक्त पंक्तियों का भावार्थ क्या है। इसके लिए मैं श्रीमान् का आभारी रहूँगा। मैं १९७१ में होने वाली माध्यमिक परीक्षा का एक परीक्षार्थी हूँ।

श्रीमान् का स्नेहभाजन—
प्रदीप कुमार लाल
ग्राम—भैयाडीह गिधण्डा
पो०-सारवाँ
भाया—देवघर
जिला—सं० प० (बिहार)

✤

सुरेश कुमार से साभार प्राप्त राजा साहब के पत्र

९-२

प्रिय सुरेश,

हमरा कौनो चिट्ठी के जवाब अभी तक ना देल—न जाने काहे अइसन कठोर हो गइल बाड़। अनिल भी ना अइलन। जौन जवाब लिख के भेजे के हम तोहरा के लिखले रहीं—भेज देल या ना।

मिलिन्दजी और सीताराम झा के 'अपनी अपनी नजर' भेज देल या ना।

श्रेष्ठ कहानियाँ की छपाई कबतक शुरू होई कृपा कर लिख भेज।

अतवार के हमरा से मिल सकेल ? सोमवार के भोर में हम घरे चल जाइब—अगर पहले ना गइलीं।

२४-५

प्रिय सुरेश,

कबीरदास पर हम आपन एक लेख भेज चुकल बानीं ऊ लेख छपे जात बा पूर्वी टाइम्स में। हमरा एक brief life-Sketch भी भेजना बा—हमार एक चित्र भी। शायद तोहरा पास भी लिखले होय। तू एक छोटा सा life-sketch भेज द—जहाँ तक जल्द हो सके काहे कि जून में कबीर अंक छप जाई।

जून के पहला हफ्ता में हम पटना पहुँच जाइब। तोहरा पास दू कार्ड भेज चुकल बानीं—मिलल होई।

मई ६१

प्रिय सुरेश, आशीष।

तू जानत बाड़ हम ७१ बरस के हो गइलीं और हमार स्वास्थ्य अब जवाब दे रहल बा। पाकल आम—आज झरे, काल्ह झरे। हम चाहत बानीं कि साल डेढ़-साल के अंदर आपन चार किताब छपवा दीं—

बिखरे मोती—लिखल तैयार बा, सिर्फ साफ करना बा

आपन १५ अदद भाषण

राजा साहब की श्रेष्ठ कहानियाँ (पाकेट बुक)

सूक्तियाँ—सब सियाराम शरण तैयार कर देले बाड़न

एही वास्ते हम तोहरा के चाहत बानीं। तूं कब से ई काम उठा सकब—अगर तू इनकार करत बाड़ तो हमरा बहुत दुख होई। हमार विश्वास तो तोहरा पर बा। हम उमीद करत बानीं कि तूं हमरा के इनकार ना करब।

हम मंगल तक सूरजपुरा रहब। मंगल के शाम के पटना जाइब। तोहार खत के इंतजार बा।

☼

सूरजपुरा

६-६-६१

प्रिय सुरेश,

हम आजे घरे चल अइलीं। तूं हमरा से पटना में ना मिलल। हम हाथ मल के रह गइलीं। हमरा समझ में नइंखे आवत अब तोहार काहे अइसन भाव हो गइल बा हमरा प्रति। तू हमार अब कुछ ख्याल नइंख करत। अब हमार थोड़े दिन के जिंदगी बा। हम ७१ हो चुकलीं—एकाध साल और चल जाईं तो बहुत बा।

चार किताब हमार छपवाना बा—

१. राजा साहब की श्रेष्ठ कहानियाँ—पाकेट बुक

२. बिखरे मोती—सात आठ कुछ कहानियाँ बा जैसन 'देव या दानव' रहे—७ और बा—जे लिख के तैयार बा—लेकिन तोहरा सुन्दर अक्षर में लिख देना बा—छापे वास्ते।

३. हमार कुल भाषण—सब हम एकट्ठा कइले बानीं।

४. हमार सूक्तियाँ—जे भी लिख के तैयार बा—सियाराम शरण प्रसाद चुन २ के तैयार कइले बाड़न—हम भी देख रहल बानीं–एकाध महीना में ठीक कर देब।

इहे चार किताब छपवाना बा। तोहरे सुन्दर अक्षर में लिख देना बा। फिर प्रूफ देखना बा। हमरा तोहरा सिवा दूसरा से ओइसन इतमिनान ना होई।

हम जाने के चाहत बानीं तूं कबतक हाथ बटा सकब। हमरा के फौरन सूरजपुरा के पता से खत भेज। भूल मत जइह। तोहरे Programme के मोताबिक हम आपन Programme बनाइब।

हमरा के वापसी डाक से खत भेज।

प्रिय सुरेश,

हमरा तीन दिन से बुखार हो गइल बा—९९.६ । एह से पलंग पर पड़ल बानीं । चलना फिरना मना बा ।

तूं अच्छा हो गइल ई सुनके बड़ा खुशी भइल—लेकिन अभी खाये में बहुत परहेज रखिह । दाल कौनो हालत में मत खइह । माड़ ना निकालल मड़गिला भात और आलू के चोखा खा सकत बाड़ । तरकारी डाक्टर बतावस तो शलजम और हरा केरा उबाल कर । चीनी मत खइह । भुंजिया बजका कभी मत खइह ।

३-६

प्रिय सुरेश,

'बिखरे मोती' के तीसरा खंड वास्ते हम आपन लेख "तुम्हीं अपने दोस्त हो, तुम्हीं अपने दुश्मन भी" अनिल के मारफत तोहरा पास भेजलीं । कृपाकर तूं आज ओकरा के देख ल । जहाँ एकाध जगह भूल भइल होय ओकरा के ठीक कर दीह । आँख में मोतियाबिन्द की वजह हम ठीक पढ़ नइंखीं सकत । आज ओकरा के देख के काल्ह सबेरे अनिल के मारफत भेज दीह । "तुम्हीं अपने दोस्त हो, तुम्हीं अपने दुश्मन भी" नाम तोहरा पसन्द बा या ना—ना पसन्द होय तब कौनो दूसर नाम लिख भेज ।

तीसरा खंड के कम्पोजिंग कब शुरू होई ?

प्रिय सुरेश,

तोहरा पास हमार—"जिनकी जवानी उनका जमाना" एक प्रति होय तो भेज द—ई जरूरी बा और 'बिखरे मोती' के तीसरा खंड में जे शेर सब छपल बा—रस की चाशनी के अन्दर—एक प्रति ऊ भी भेज द । ई बहुत जरूरी बा । हमरा ओह में से दू-चार शेर लेना बा —भेंट भइला पर बताइब । अभी भेज द ।

काल्ह अतवार हवे । सबेरे चल अइत तब सुधांशुजी वाला लेख और राष्ट्रभाषा परिषद् वाला लिखवा देतीं ।

काल्ह शाम के साढ़े पाँच बजे हम Patna University में जाइब एक Function में Preside करे । तोहरा के भी मोटर भेज के बुलवा लेब । काल्ह सबेरे आके भेंट करब तो सब बता देब । चीठी के जवाब दीह । भूल मत जइह ।

१. वह प्यार भी क्या जो किसी रूप का आधार···शिकार ही रह गया !

२. दिल की कुंजी तो अपनी अक्ल की जेब में चाहिए ।

प्रिय सुरेश,

अगर तूं अच्छा समझ तब ई दूनों सूक्तियाँ भी रस की चाशनी में दे देत । 'चुम्बन और चाँटा' से हम लेली हाँ । हमरा जाने रस की चाशनी में ई दूनों नइखे । तूं देख के इतमीनान कर लीह । कबतक शिवजी और रस की चाशनी छपी ? लिख भेज ।

प्रिय सुरेश,

रस की चाशनी के कबतक छपाई होई ? सूक्तियाँ में जहाँ दीहल बा—

'लाभ का बाजार बदलता है, लोभ का आजार नहीं बदलता ।'

ओकरे नीचे दे द—

'मसनद की दिशा बदलती है, मसनद का नशा नहीं बदलता ।'

ई जरूर दे द ।

दू ठो और शेर लिखत बानीं । अगर ना दीहल होय तब दे द अगर तोहरा पसन्द होय—

१. 'देखूँ इधर तो देखो कहीं मेरा दिल न हो,
   कुछ है तुम्हारी आँख नजर में लिये हुए ।'

२. 'दिल के आइने में है तस्वीरे यार,
   जब जरा गर्दन झुकाई देख ली ।'

८ बजे रात '१५-७

प्रिय सुरेश,

हम एक चीठी तोहरा पास सुबह भेजले रहीं—मिलल रहे या ना ।

'अपनी अपनी नजर' कहाँ कहाँ भेजल ? गोमो और गया (कामेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव) भेज देल या ना—फौरन भेज द । कमलेश जी और कमलेश्वर जी के पास भेज द । कमलेश्वर जी के पता तोहरा मालूम बा या ना—ना मालूम होय तो हम लिख भेजीं । श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' के पास भी भेज द । नयाजीवन के संपादक

कन्हैयालाल प्रभाकर के पास भी एक प्रति भेज देना बा। श्री विश्वम्भर 'अरुण' आगरा के पास भी एक प्रति 'अपनी अपनी नजर' भेजना बा—तोहरा पता मालूम होई।

'चुम्बन और चाँटा' के आगे के जे फर्मा छपल होय ऊ फर्मा भेज द—हम सब पढ़ के लौटा देब।

वैशाली प्रेस में हम फोन करेके चाहती बानीं। उहाँ के फोन नम्बर तोहरा मालूम बा या ना—उहाँ फोन बा या ना—लिख भेज।

कई एक जरूरी खत आइल बा—हमरा जवाब देना बा। तूं सनीचर या अतवार के जब फुरसत होय आध घंटा वास्ते चल अइत—ई बहुत जरूरी बा।

खत के जवाब दे दीह—भूल मत जइह।

※

प्रिय सुरेश,

हम तोहरा के तीन खत भेज चुकलीं—दू लाइन भी कौनो के जवाब ना देल। हम रोज तोहार उत्तर के इंतजार करत बानीं।

श्री शिवपूजन जी के निधन से हम बहुत चिंतित बानीं। का कहीं—कुछ लिख नइखीं सकत। 'नई धारा' के एक विशेषांक उनका पर भी निकले के चाहीं—जैसे नलिन जी पर निकलल रहे—शिवाजी से कह दीह। 'अबला क्या ऐसी सबला' के एक प्रति, 'भागते किनारे' के एक प्रति श्री जगदीशचन्द्र माथुर के पास जरूर भेज द।

※

प्रिय सुरेश, १७-१०

आशीष।

हम उमीद करत बानीं तूं अब अच्छा बाड़। हाँ, छुट्टी में घरे मत जइह—ई जरूरी बा। उहाँ न डाक्टर बा—न कौनो इंतजाम बा।

हरिमोहन झा प्रेस के नजदीक ही रहेलन। काल्ह हमरा पता चलल। ऊ घरे गइलन या बाड़न ? कालिज बंद हो गइल। हम चाहत बानीं कि आ के तोहरा से भेंट करीं और उनका से भी भेंट करीं। काल्ह शाम के आवे के चाहत बानीं। हमरा के फौरन पता ले के खबर कर तब हम काल्ह आइब।

All India Radio से श्रेष्ठ कहानियाँ छपल बा—एक प्रति डाक से हमरा मिलल। ओह में तमाम क्षेत्रीय भाषाओं के सुन्दर कहानियाँ चुनल गइल बा—जे रेडियो पर पढ़ल गइल रहे। ओह में एक ठो हमार कहानी भी बा—'अमीरी और गरीबी' जे पाँच बरस पहले हम Radio पर बोलले रहीं। अभी तक कौनो किताब में नइखे। हम चाहत बानीं 'नारी की लाचारी' वाली पुस्तक में लगा दीं—तीन ठो कहानी हो जाई। ओकरा बाद 'नये रिफार्मर' लागी। तोहार का राय बा—लिख। 'वे और हम' के तीसरा फर्मा भेज द।

प्रिय सुरेश, १४-४

आशीष।

हम फोन पर बात करेके कोशिश कइलीं—पता चलल कि तूं अस्पताल गइल बाड़।

'क्षमा की क्षमता' तो हम देख गइलीं लेकिन हम टेकनीक (Correct करेके) ओइसन जानीं ना—एह से तूं देख लीह। देख के ठीक कर दीह। 'नाम-रूप की मोह-माया' के Original तो तूं भेजले ना रह—एह से हम देख ना सकलीं—तूं देख लीह। देख के Correct कर दीह। हम तोहरे ऊपर छोड़ देत बानीं। जी लगा के देखिह—कहीं कोई छूट ना जाय।

एह महीना में दूनों किताब छप जाना जरूरी बा। तूं हमारा के पूरा यकीन देले बाड़—एह से तोहरा पूरा कोशिश करे के चाहीं।

'कहानी की मोहिनी' नई धारा में छप गइल या ना। जब छप जाय तब जे हम देले बानीं—समूचा ठीक तरह से बांध के हमरा पास भेज दीह या हम प्रेस आइब तो ले लेब।

तोहरा मालूम बा—हमरा मामा वरेरकर पर लिखे के बा। हम जाने के चाहत बानीं उनकर कब निधन भइल रहे। 'नई धारा' में शोक-संवाद छपल रहे—देख के लिख भेज।

५-१२

प्रिय सुरेश,

हम नेहरूजी के संस्मरण लिखले रहीं—चार पाँच महीना भइल—धर्मयुग में भेजे वास्ते । ऊ कहाँ दो रखा गईल रहे—मिलत ना रहे । काल्ह मिल गइल । दिसम्बर के 'नई धारा' में छाप दीह । काल्ह साफ उतरवा के तोहरा पास भेज देब । फिर 'बिखरे मोती' के संस्मरण में एकरा के भी रख दीह । राजेन्द्र बाबू के बाद नेहरूजी वाला—ई जरूरी बा ।

तोहार दिसम्बर अंक नई धारा में काम लाग गइल या ना ?

२-३

प्रिय सुरेश,

काल्ह तो हम आ ना सकलीं । श्री राजेन्द्र बाबू उठ गइलन—हमार जी बैठ गइल । अइसन चोट कभी ना लागल रहे दिल पर । दू घंटा सदाकत आश्रम में रहीं—माला फूल चढ़वलीं, फिर लौट के दिन भर पड़ल रहीं—का करीं ?

आज हम आवे के चाहत रहीं मगर महावीर बाबू बुला लेलन । राजेन्द्र बाबू के संस्मरण जे हम भेजले रहीं दिल्ली—उनका अभिनन्दन ग्रन्थ वास्ते—अब तो छपी ना । ऊ संस्मरण लिख के वापस कराव । अगला अंक 'नई धारा' में देब । तू जानत बाड़ कहाँ भेजल गइल बा । तोहरे पास ऊ खत बा ।

अभी शिवाजी से बात भइल । ऊ कहलन कि काल्ह अतवार के सुरेश इहाँ तीन बजे अइहन—हमरा काम वास्ते । एह से काल्ह तू तीन बजे इहाँ पहुँच जइह । ई बहुत जरूरी बा । कई बात बा जे हम लिख ना सकीं ।

१०-६६

प्रिय सुरेश,

'बिखरे मोती' हम श्री दिनकर जी के समर्पण कर रहल बानीं । उनकर चित्र देना बा । फोन पर काल्ह बात भइल । ऊ दिल्ली चल गइलन । कहलन कि हम एक आपन फोटो अपना लड़िका के दे देत बानीं । कोई के भेज दीं—आके ले जाय । हम तोहार इंतजार करत रहीं—तूं ना अइल । अब तूं आज जाके उनका लड़िका से माँग ल । अगर खुद ना जा सक तब कोई इतमिनानी आदमी के खत देके भेज द । आर्यकुमार रोड पर उनकर मकान बा—तू जानत बाड़ ।

विश्वनाथ बाबू के पास दिल्ली में १० प्रति 'मॉडर्न कौन, सुन्दर कौन' भेजना बा । हम उनका के कह देली हं कि भेजवा देब । ऊ आज दिल्ली चल गइलन ।

श्री सुमनजी के पता एह कार्ड पर लिख दीह और लिख के डाक में छोड़वा दीह । उनका पास भी एक प्रति 'मॉडर्न कौन, सुन्दर कौन' भेज दीह ।

२४-३

प्रिय सुरेश,

हम इहाँ शुक्र के रात में अइलीं । हम जब सूरजपुरा से चलत रहीं तब तोहार चीठी डाक से मिलल । इहाँ अइला पर पता चलल शिवाजी से कि तूं घरे जात बाड़—एक हफ्ता में लौटब । अनिल भी नइंखन । अब कैसे का करीं । भरसक जल्दी लौट आव । हम अनिल वास्ते कुछ उठा ना रखब –जहाँ तक हमरा से संभव हो सकी । आवे लगिह तब हमरा वास्ते पाँच ठो ऊख लेत अइह । एक-एक ऊख के तीन टुकड़ा कर दीह । फिर रसरी में बाँध दीह—ले आवे में आसानी होई । इहाँ ऊख मिलत नइंखे ।

श्रेष्ठ कहानियाँ की छपाई के काम शुरू कर देवे के चाहीं । घर से आके हमरा से मिलिह । कब आवत बाड़—वापसी डाक से खबर द ।

२४-६

प्रिय सुरेश, आशीष ।

आज फिर धर्मयुग से चीठी आइल हा । हम लिख देली हाँ कि पहले सप्ताह जुलाई में दोनों संस्मरण मिल जायेंगे । एह से तोहरा के याद दिलावत बानीं कि दूनों लिख के तैयार कर द । हम तोहरा के सब नोट करा देले बानीं—तोहरा याद होई । 'कुत्ते की वफादारी' और 'क्या से क्या हो गई, कहाँ से कहाँ उठ गई !' ई जरूरी बा । भूल मत जइह ।

शिवाजी राँची गइलन । ३० के लौट अइहें । तोहरा भी ३० के पहले ही लौट आवे के चाहीं ।

सूरजपुरा

१६-५

प्रिय सुरेश, आशीष ।

हम तोहरा के दू कार्ड भेज चुकलीं—अभी तक जवाब ना मिलल । बिखरे मोती' के द्वितीय खंड के छपाई कतना भइल—कृपा कर लिख भेज । ई जरूरी बा । 'अपनी-अपनी नजर, अपनी-अपनी डगर' के जिल्दबंदी कवर के साथ हो गइल होई—एक प्रति भेज देत । देर ना होखे के चाहीं ।

आज हमरा बंगला के 'मानिक वन्दोपाध्याय के श्रेष्ठ गल्प' एक पुस्तक मिलल । ओह में उनकर २४ गल्प (कहानी) बा—२७५ पेज के किताब बा । एह से हम चाहत बानीं कि हमार श्रेष्ठ कहानियाँ (गल्प) भी पाकेट बुक ना होके अइसने किताब हो जाइत । तब खर्चा भी कम पड़ी और बिक्री भी अच्छा होई । हम आइब तो तोहरा के सब जताइब । शिवाजी से भी कह दीह । पोस्टकार्ड के जवाब वापसी डाक से भेजिह ।

सस्नेह

राधिकारमण

गोपाल प्रसाद 'वंशी' से साभार प्राप्त राजा साहब के पत्र

पटना,
१८-६-५६

प्रियवर,

अभी आपका कार्ड मिला। अपनी तन्दुरुस्ती भी गिरती जा रही है, जी में जी नहीं—बस जिए जा रहे हैं जैसे तैसे।

'अब तमन्ना बेसदा है और निगाहें बेपयाम,
जिन्दगी एक फर्ज है जीता चला जाता हूँ मैं।'

आपकी सेवा में एक प्रति 'वे और हम'—नई पुस्तक जा चुकी है।

कहिए, आपको पसन्द आई?

☼

सूरजपुरा,
३०-५-६५

प्रियवर,

इधर आपका कोई समाचार नहीं मिला। आप कहीं भी रहें, आपकी याद हरी की हरी रहती है। वैसे तो—

भुलाने की कोशिश बहुत हो रही है,
मगर याद करने को जी चाहता है।

मैं आजकल अधिकतर घर पर ही रहता हूँ—अस्वस्थ हूँ। दो महीने तक Hernia का दौरा रहा—परीशान रहा। वैसा पढ़-लिख भी नहीं पाता हूँ—cataract की बीमारी है। जाड़े में आपरेशन की संभावना है।

चार-पाँच दिन में दिल्ली जाने का प्रोग्राम है—वहाँ अपने एक grand son का विवाह है। जुलाई के प्रथम सप्ताह में लौट आने की उम्मीद है।

मेरी नई रचनाएँ आपको मिलीं या नहीं? न मिली हों तो आप अशोक प्रेस, सुरेश कुमार को लिख दें—आपको मिलकर रहेंगी।

अब उम्र का पैमाना लबरेज है—कब छलक जाये कौन कहे। आप शाम के चिराग हैं—मैं सुबह का चिराग हूँ।

जल्दी के लिए क्षमा करेंगे।

सस्नेह,
राधिकारमण प्रसाद सिंह

☼

बोरिंग रोड, पटना

१९-५-५९

प्रियवर,

आप शायद जानते नहीं—मैं चलती ट्रेन से प्लैटफार्म पर गिर गया—गाड़ी में बड़ी भीड़ थी—फुट बोर्ड पर कितने खड़े थे—1st class के फुटबोर्ड पर भी। दौड़कर चढ़ना चाहा—धक्का खाकर गिर गया—बड़ी सख्त चोट आई—महीनों खाट सेना पड़ा। जान बच गई—यही गनीमत है।

यही वजह है कि मैं पहले कुछ लिख न सका—महीनों तिलौथू, सासाराम और डालमियानगर रहा—तिलौथू जाते यह दुर्घटना हुई—गया से चार स्टेशन इधर।

अब तो स्वस्थ हूँ—हाँ, कमजोर हूँ—आशा है, एकाध माह में फिर अपनी जगह पर लौट पाऊँगा।

बहुत जल्दी में लिख रहा हूँ—क्षमा करेंगे।

सस्नेह,

राधिकारमण प्रसाद सिंह

बोरिंग रोड, पटना

२०-११-६५

प्रियवर,

अभी अभी आपका कार्ड मिला। 'नई धारा' का नवम्बर अंक आपकी सेवा में जा रहा है। सितम्बर का आपको मिला है या नहीं ? जहाँ तक मुझे याद है वह आपके पास जा चुका है।

आप 'नई धारा' के लिए अपनी रचना अवश्य भेजें। हाँ, जैसी रचना होगी, वैसी कीमत होगी। अगर कोई रचना नापसन्द और अस्वीकृत हुई तो उसे वापस भेज दी जायगी। मैं सुरेश को समझा देता हूँ।

हाँ, मैं कुछ छात्रों को पढ़ाई में मदद करता हूँ। एक बँधी हुई रकम में। अभी कोई स्थान रिक्त नहीं है। रिक्त होने पर मैं आपको सूचना दूँगा। हाँ, उसी विद्यार्थी

की मदद की जाती है जो पढ़ने-लिखने में मेधावी होते हैं और गरीब, और कोई दूसरा जरिया न हो।

अपनी आँख में मोतियाबिन्द की वजह से वैसा पढ़-लिख नहीं सकता हूँ फिर भी अपनी दो नई रचनाएँ एकाध महीने में आपकी सेवा में जाकर रहेंगी। अभी दोनों प्रेस में हैं।

सस्नेह,

राधिकारमण प्रसाद सिंह

The President chamber,

Patna,

2-3-48

प्रियवर,

आपको शायद पता नहीं मैं मोटर दुर्घटना में बुरी तरह घायल हुआ। मोटर तो चूर-चूर हो गई। सर में सख्त चोट थी। दो दिन तक बेहोश था। यह शुरू जनवरी की बात है। अखबारों में भी (Indian Nation & Search Light) सूचना थी। अभी पढ़ना लिखना सब बन्द है। हाँ, पहले से अब बहुत फर्क है।

आपका कार्ड मिला। प्रूफ किसी ने देखा नहीं। भाषण में कितनी गलतियाँ आ गईं। कितनी सुन्दर पंक्तियाँ छूट भी गई हैं। अब हाथ मलकर क्या होगा। एक नया संस्करण निकालना जरूरी है।

'अधूरी नारी' की एक प्रति आपकी सेवा में भेज रहा हूँ।

सस्नेह,

राधिकारमण प्रसाद सिंह

सूर्यपुरा
१५।६।४८

प्रिय 'वंशी' जी,

प्रणाम ।

क्या बताऊँ, हमारे सर पर जो बादल छाए हैं वे अभी ज्यों-के-त्यों हैं । हमारी स्त्री को फालिज मार दिया है । उनका एक अंग सूना हो गया है । पटने से डाक्टर शरण इलाज करने आए थे । हम भी एक हफ्ते से इन्फ्लुएंजा के बुरी तरह शिकार रहे हैं । ज्वर का प्रकोप तो अब न रहा पर कमजोरी अभी हद दरजे की है । इधर शाहाबाद में ऐसी बाढ़ आई है कि सैकड़ो गाँव दह गए । हजारों आदमी तबाह हो चुके ।

हमारा सोचा और चाहा दिल के अन्दर ही सिमट कर रह जाता है । पुस्तक लिखकर तैयार है मगर कबतक प्रेस के जंजाल से निकल कर प्रकाश में आएगी—कुछ ठिकाना नहीं । हम इस कदर कमजोर हो गए हैं कि हमसे इस वक्त कुछ बन नहीं पाता ।

सस्नेह,
राधिकारमण प्रसाद सिंह

Row land Road,
Calcutta—20
18-2-49

प्रियवर,

आपके दोनों कार्ड चक्कर काटते हुए मुझे यहाँ मिले । २६ जनवरी को मैं यहाँ पहुँचा और तबसे यहीं पर रुका पड़ा हूँ । परसों लौटने का प्रोग्राम है । भगवान न करे कोई डाक्टरी एलाज के फेर में पड़े । 'हमीं जानते हैं जो हम जानते हैं ।'

अभी उनसे भेंट न हो पाई हैं । भेंट होने की संभावना मार्च के पहले हफ्ते में है ।

'रोहिणी' कब छपी है—कहाँ पर—मुझे पता तक नहीं । घर लौटने पर आप मुझे याद दिला दें ।

सस्नेह,
राधिकारमण प्रसाद सिंह

President chamber,

Patna,

7-12-50

प्रियवर 'वंशी' जी,

आपकी सेवा में 'नारी क्या एक पहेली' की प्रति भेज दी गई। आशा है, आप उसे पढ़ चुके होंगे।

यह पुस्तक सच्ची घटनाओं के आधार पर लिखी हुई है। हाँ, हमारी लेखनी की रंगसाजी जो हो। 'हवेली और झोपड़ी' और 'देव और दानव' भी प्रेस में जा चुके।

वापसी डाक से अपनी सम्मति तो लिख भेजिये। 'नई धारा' की बाकी प्रतियाँ मिल गईं या नहीं ?

सस्नेह,

राधिकारमण प्रसाद सिंह

SurajPura,

29-2-51

प्रियवर, प्रणाम।

धन्य हैं आप, हमसे मिले नहीं। यह हम पर सितम ठहरा या करम। आप वहाँ मौजूद थे बराबर फिर भी मिले नहीं। यह जानकर हमारा दिल गिर गया। हम तो परीशान थे—चारों ओर से घिरे थे—आपको देखा भी होगा तो पहिचाना नहीं, ऐसे व्यस्त थे। मगर आप ?

हम आपको एक सुझाव देते जो आपकी आर्थिक कठिनाइयों में हाथ बँटता—एक रास्ता दिखाता, आपका बेड़ा पार हो जाता। आज हाथ मलकर रह जाते हैं हम।

'नई धारा' मिल रही है या नहीं ? कृपा कर लिखिये। ४ तारीख तक हम पटने पहुँच जायँगे।

सस्नेह,

राधिकारमण प्रसाद सिंह

Surajpura

19-6-60

प्रियवर,

आपका कार्ड मिला। पहले कोई पत्र नहीं मिला। कैसे क्या हुआ पता नहीं। आप कहीं भी रहें आपकी याद हरी की हरी रहती है। हाँ, अब आँखें जवाब दे रही हैं। पढ़ लिख नहीं पाता हूँ—

"जो जिन्दगी थी जिन्दादिली की गुजर गई,
जीने की शर्म रखने को अब जी रहा हूँ मैं।"

हाँ, नई धारा की वह प्रतियाँ आपके यहाँ भेज दी जायेंगी। मैं अभी सुरेश कुमार को लिख रहा हूँ कि भेज दें। बहुत जल्दी में लिख रहा हूँ क्षमा करेंगे।

सस्नेह,

राधिकारमण प्रसाद सिंह

Surajpura

14-1-63

9. P.M.

प्रियवर,

अपने के कार्ड मिलल। अभी तक हम अस्वस्थ बानी—कमजोर बानी—और अइसन सर्दी पड़त बा कि हड्डी तक काँप उठत बा—कल्ह से पानी भी बरस रहल बा—हम फरवरी के पहला हफ्ता में पटना जाइब तब अपने का हमरा पास कार्ड लिख के याद दिला देब, तभी हम कुछ कर सकीला—इहाँ से कुछ ना हो सके। बहुत जल्दी में लिखत बानी। आँख से ठीक देख भी नइखीं सकत।

सस्नेह,

राधिकारमण प्रसाद सिंह

Surajpura
14-10-67

प्रियवर,

आपका कार्ड चक्कर काटता हुआ मुझे यहाँ मिला। मैं घर पर हूँ—फ्लू से बीमार था। अब ज्वर नहीं है—फिर भी कमजोरी बनी है। आँखों की लाचारी बनी है। पढ़ना-लिखना दूभर हो रहा है।

आजकल बगैर आफिस को मिलाये कोई काम नहीं हो पाता। मिनिस्टर साहब ने तो उसी पर लिखकर अपने Secretary को दे दिया था। आफिस में पैरवी-कोशिश के लिये तो कोई चाहिये।

अब तो महीने के अंत तक जब मैं पटने लौट पाऊँगा तभी कुछ कर पाऊँगा। मैं दिल से नहीं चाहता रहा—ऐसा ? नहीं चाहता रहा तो उनके दर पर जाकर माथा टेकता ? हाँ, आफिस तक मेरी पैठ न रही।

आजकल आँखों की बीमारी से बेहद परीशान रहता हूँ।

सस्नेह,

राधिकारमण प्रसाद सिंह

☼

Garden House, Surajpura
11-11-53

प्रियवर,

आप कहाँ हैं—कैसे हैं—आपकी याद बनी है। हम तो हफ्तों पर घर लौटे हैं—जी बहलाने के ख्याल से कई जगह भटकते रहे मगर······जाने दीजिए—वह बात आई गई हो गई। आप अपना समाचार लिखें—आजकल 'नई धारा' में हम बराबर लिख रहे हैं—'वे और हम' और कोई पढ़े या न पढ़े आप तो जरूर पढ़ते होंगे। दोनों नाटक भी छप चुके—'अपना पराया' और 'धर्म की धुरी'। पता नहीं आपको मिले या नहीं। कृपाकर वापसी डाक से खबर देंगे।

सस्नेह

राधिकारमण प्रसाद सिंह

रामनिरंजन परिमलेन्दु से साभार प्राप्त राजा साहब के पत्र

महान् साहित्यकार राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह जी से वर्षों का मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा—उनके परम पवित्र स्नेह और आशीर्वाद की किरणों में आलोकित रहा मैं निरन्तर ! राजा साहब मुझे सदा लिखते—'आप कहीं भी रहें, आपकी याद हरी की हरी रहती है निरन्तर !'

वे जो लिखते, वही कहते। जीवन और लेखन के साथ उनका अटूट सम्बन्ध था—लेखन धर्म था उनके लिए, पेशा नहीं। जब भी उनसे मेरी भेंट होती, वे खिल उठते। अब ऐसा पवित्र स्नेह कहाँ पाऊँगा ? मैं अब रिक्त हो गया।

अपने उपन्यास 'अपनी अपनी नजर अपनी अपनी डगर' की भूमिका में उन्होंने मेरा कृपापूर्वक स्मरण कर मुझसे अपने घनिष्ठ सम्बन्धों का उल्लेख किया। किन मार्मिक क्षणों में उन्होंने मुझे अपना उपन्यास 'अपनी अपनी नजर अपनी अपनी डगर' समर्पित किया, समर्पण में मेरे प्रति भावभीने शब्द लिखे, उक्त उपन्यास में मेरा चित्र प्रकाशित कर उन्होंने आनन्दातिरेक का अनुभव किया—क्या कहूँ ? कैसे कहूँ ? कितना कहूँ ?

हर टुकड़ा हर से नहीं कहा जाता। जो जितने के लायक है, उससे उन्होंने उतना ही कहा, उसको उतना ही दिया, उसके साथ उन्होंने उतना ही जिया। किन्तु मैं शायद अपवाद था। अपनी कोई बात उन्होंने मुझसे छिपाई नहीं। राजा साहब स्नेह-समुद्र थे। दुराव-छिपाव या अलगाव की स्थिति उन्होंने मुझे कभी नहीं दी।

राजा साहब ने मुझे सैकड़ों पत्र लिखे। मैं जवाब दूँ या नहीं—इसकी प्रतीक्षा उन्होंने नहीं की।

पत्रोत्तर देने में राजा साहब बड़े तत्पर थे—यथासाध्य शीघ्र ही पत्रोत्तर देते।

प्रतिकूल परिस्थितियों के चक्रव्यूह में मैं अभिमन्यु की स्थिति में रहा हूँ। सच है, दर्द का गौरव दर्द पी जाने में है—दर्द उगलने से दर्द का अपमान होता है। अतः अपने दर्द की नुमाइश क्यों लगाऊँ ? वह मेरी अपनी सीमा है। किन्तु दर्द के अनेक टुकड़ों में से एक टुकड़ा आपको भी मयस्सर है कि कलम का देवता धरती के सारे बन्धनों को तोड़ अब उस पार का वासी हो गया !

मेरे नाम लिखित राजा साहब के सैकड़ों व्यक्तिगत पत्रों में से कुछ यहाँ दे रहा हूँ—मेरी अस्त-व्यस्त जिन्दगी की मेज पर जो सहज ही प्राप्त हो गए। उनके सभी

पत्रों को यहाँ देना स्थानाभाव के कारण सम्भव न होगा। सच तो यह है कि किसी भी साहित्यकार को समझने में उसके व्यक्तिगत, निजी पत्र जितने सहायक होते हैं, उतनी सहायता उस साहित्यकार पर लिखित समीक्षा-ग्रन्थों से नहीं मिल पाती।

राजा साहब की स्मृति-रक्षा और शोध-दृष्टि से यह आवश्यक है कि उनके सभी पत्रों का संग्रह-प्रकाश हो।

राजा साहब के पत्रों की सत्य प्रतिलिपि यहाँ दी गई है।

(१)

Boring Road, patna

29-6

प्रियवर,

कार्ड मिला। वह पहला पत्र जाने कैसे कहाँ गुम हो गया—पता भूल गया। यह उठती हुई कोपलें अपने रंग और बू से कला की क्यारी में अपनी एक जगह लेकर रहेंगी—हमारी तो यही धारणा है—यही तमन्ना भी।

यहाँ आकर मिलते रहना—तुम्हारी याद बनी है—

सस्नेह

राधिकारमण

Boring Road, Patna

5-11 55

प्रियवर

कार्ड मिला—(आपकी) कविताएँ अपने ढंग की अनूठी हैं। भगवान की देन आपमें प्रतिभा भी है, कला भी—बस, आपकी साधना बनी रहे तो यह खिलती-खुलती पंखुड़ियाँ काव्य की क्यारी में अपना एक रंग लाकर रहेंगी, देर नहीं। "नई धारा' में आने दीजिए, चीज ही है ऐसी।

आप पटने कब तक वापस आते हैं? क्या प्रोग्राम है, लिखिये। शिवमंगल सिंह और सहदेव मल्लिक से यहाँ भी भेंट हो सकती है। जल्दी में लिख रहा हूँ।

सस्नेह

राधिकारमण

Boring Road, Patna
11-12-55

Excuse haste

प्रियवर,

अभी आरा से लौट आया। आपका कार्ड मिला। कोई गलतफहमी नहीं—हमारी नजर तो तब थी, वही अब भी है। कहाँ की नाराजी और कहाँ की बदगुमानी? अपने प्रति न्याय करो, दूसरों के प्रति क्षमा—यही मनुष्य की पहिचान है—जान रखिये।

भेंट होने पर और बातें होंगी। जल्दी में लिख रहा हूँ।

सस्नेह
राधिकारमण प्रसाद सिंह

(पुनश्च) उस गरीब का काम हो गया—यही बड़ी चीज है।

Boring Road, Patna
17-7

प्रियवर,

तो क्या सच? ऐसी अनहोनी!

तो यह दिन भी देखना था, देखना ही पड़ा, आखिर। तो यह दिन भी आना था—आकर ही रहा, आखिर। आदमी चाहता है कुछ और होकर रहता है कुछ—ऐसा? बस, होनी ही हावी हो जाती है हमारी जिन्दगी के सारे ताने-बाने पर। नहीं-नहीं, दिल न हारिये, कोई ऐसी मुश्किल नहीं जो हल न हो, बस हिम्मत और हुनर भरपूर रहे।

(राधिकारमण प्रसाद सिंह)

टिप्पणी: यह कार्ड राजा साहब की लिखावट में ही है। किन्तु उस पर उनका हस्ताक्षर नहीं है क्योंकि कार्ड में समुचित स्थान पर हस्ताक्षर करने का स्थानाभाव हो गया था।

Boring Road

21-1

प्रियवर,

कल दिन भर डाक्टरों के घेरे में पड़े रहे—पेशाब, खून जाने क्या-क्या जाँच हुए—वे लोग कह रहे हैं फौरन Cottage Hospital में भरती होने के लिए—वहीं operation होगा—दो सप्ताह अस्पताल में ही रहना होगा।

Cottage Hospital में कोई अच्छी जगह खाली है या नहीं— आज पता लेना है— आज हम जा रहे हैं Homeopathic डाक्टरों के पास—उनसे भी पूछ कर जी भर लें— क्या operation अनिवार्य है ?

Allopathic Doctor तो कह रहे हैं कि operation के सिवा कोई और रास्ता नहीं—और गर्दन का आपरेशन कोई ऐसा-वैसा आपरेशन नहीं—यही परीशानी बनी है।

आजकल हम इसी उलझन में गिरफ्त हैं—किसी करवट कल नहीं—२५ तक अस्पताल में भरती हो जाना है—चारा नहीं।

अब तो आपरेशन के बाद ही साहित्य का अनुशीलन हो पायेगा—जब जी में जी नही तब इस घड़ी तो कोई काम होने से रहा।

आप वहीं अस्पताल में मिलेंगे-—२५ तक।

भरती हो जाने का प्रोग्राम है—प्रेस से पता पा लेंगे—अंतिम निर्णय कल तक होकर रहेगा।

जल्दी में लिख रहे हैं—क्षमा करेंगे। आखिर जहाँ मन है वहीं कलम है—जिन्दगी का एक-एक कदम भी। बस, आपके स्नेह का साया रहे—

राधिकारमण प्रसाद सिंह

Boring Road
Patna

प्रियवर,

मैं गया से लौटकर आ गया—जहाँ पर आपकी तलाश भी रही—दो छात्रों को भी ढूँढ़ने को भेजा—मगर होनी होकर रही, आप न मिले। आप क्यों नहीं आये—समझ नहीं पाता हूँ। हजारों हजार की भीड़ रही मगर आप नदारद।

यहाँ लौटकर आकर बीमार पड़ गया—flu का दौरा है—ज्वर और जोकाम। बड़ी तकलीफ में हूँ—दिल्ली से बुलावा आया है—मगर शरीर जवाब दे रहा है—जी में जी नहीं—कैसे जाऊँ। कमरे में बन्द हूँ—देखिये, कब तक जान में जान आ पाती है।

आपको वह पुस्तक The wonder that was India मिल गई या नहीं? न मिली हो तो Sinha Library से आसानी से मिल जायगी।

'धर्म और मर्म' और 'तब और अब' दोनों रचनायें अधूरी पड़ी हैं—हर प्रेस में आजकल बस कोर्स की किताबें छप रही हैं।

सस्नेह
राधिकारमण

※

Boring Road
Patna
26-10

प्रियवर,

मैं दिल्ली से लौट आया—यहाँ आकर बीमार पड़ गया—आँव की सिद्दत है—पेट में मरोड़। दिल्ली में उनसे भेंट न हो पाई—वह बराबर दिल्ली से बाहर ही रहे—अगले महीने में पटने आने का प्रोग्राम है। तभी मैं उनसे मिलकर बातें कर पाऊँगा।

आपको एक अच्छी-सी जगह मिल गई—मुझे बड़ी प्रसन्नता है।

दो-चार दिन में घर जाने का प्रोग्राम है अगर स्वस्थ हो गया।

जल्दी में लिख रहा हूँ। क्षमा करेंगे।

सस्नेह
राधिकारमण प्रसाद

Patna
16th Feb. 1916

My dear Kumar Saheb,

The board has sanctioned the proposal to appoint you manager under the court. I heartily congratulate you and I trust—and as to this I have no doubt—that you will justify my recommendation.

With all good wishes for your state.

I am

Yours Sincerely—
C. A. Oldham

Bankipore
May 29th 1916

My dear Kumar Saheb,

I have been most pleased to see in this evening's "Express" the announcement of your brother's splendid performance in topping the list of M. A.'S. You must be proud of him, as I am as an old Collector of Shahabad and Commissioner of the division.

How are you getting on and how is the state work progressing. I trust all was well with you.

Yours sincerely—
C. A. Oldham

Bihar & Orissa
Lieutenant Governor

Government House
Patna
The 7th Feb. 1920

Raja Radhika Raman Prashad Sinha

It gives me very great pleasure to invest you with the title of Raja which His Excellency the Viceroy and Governor-General of India has been pleased to bestow on you in recognition of the high position of your family and of your own services during the Bakr-Id disturbances of 1917, when you stood forth openly on the side of law and order and did every thing in your power to assist the officers of the Government in suppressing the outbreak.

I congratulate you most heartily on the honour which has been conferred on you and I hope you will live long to enjoy it.

E. G. Gait
Lieutenant Governor of Bihar & Orissa.

Board of Revenue, Behar and Orissa
No. 20-366/2

From,

J. A. Sweeny, Esquire, I. C. S.
Offg. Secretary to the Board of Revenue,
Behar and Orissa

To,

The Commissioner of the Patna Division
Dated Bankipur, the 8th October, 1918.

Sir,

With reference to your letter no. W 551 /XIX-3-7 dated the 16th September 1918, forwarding the completion report and return of the Surajpura Wards State No. 1 in the district of Shahabad, I am directed to say that the Board endorses your comments about Kumar Radhika Raman Prasad Singh in connection with the management of his property under the Court of

Wards and since its release, I am to request you to be so good as to communicate the commendatory remarks to the Kumar Saheb through the Collector of Sahabad.

I have Etc,

sd. J. A Sweeny

Offg. Secretary

Copy of letter, No. W551/XIX-3-7, dated the 16th September 1918, from the Hon'ble Mr. C. E. A. W. Oldham, C.S.I., I.C.S., Commissioner of the Patna Division to the Secretary to the Board of Revenue, Bihar and Orissa.

9. A sum of Rs 16,616/1/9 was spent during the Court's management for the education of the wards, both of whom obtained the degree of M. A. after distinguished careers at school and college, the younger ward standing first in the whole university at the M. A. After the completion of his university career the elder ward, Kumar Radhika Raman Prasad Sinha, was trained under the Manager's supervision in the system of management; and he showed such aptitude and ability that about a year later I resolved to recommend that he be appointed Manager of the estate under the Court of Wards. The confidence placed in him was more than justified. The Kumar Sahib managed the property during the remaining 1¼ years of the Court's tenure with great ability and marked success; and since the release of the estate, he has continued to show the same qualities. The Kumar Sahib and his younger brother have proved a credit to the Court of Wards; and I confidently look forward to a time when they will distinguish themselves in the service of their country.

I have etc.,

Sd/- C. A. Oldham,

Commissioner of Patna.

Maharaja Bahadur of Dumraon Dumraon

The 17th June 1925

My dear Raja Saheb,

By the grace of Shri Biharijee the marriage of my first son Chirungeavi Maharaja Kumar Shri Ram Ran Bijoy Prasad Singhji has been arranged with the niece of His Highness the Maharaval Sir Shri Ranjit Singhji Mansinghjee K. C. S. I. of Baria State (Guzrat) and the wedding takes place on the 1st July 1925. The special train conveying the Barat Party leaves Dumraon on the 29th June 1925 at 8 A. M. I shall be highly obliged if you very kindly come over here a day earlier and accompany the Barat Party to Baria In consideration of the friendship subsisting between us, I hope you will not mind the trouble and inconvenience in such cases and grace me with your presence on this festive occasion and attend the wedding ceremony. I shall feel grateful if you will kindly favour me with a reply at your earliest convenience so that necessary arrangement may be made for you in the special train.

Formal invitation follows.

Yours sincerely,
Keshava Prasad Singh

Czechoslovakia.
Ist February, 1954.

Dear Sir,

Allow me to send kind regards and best wishes for you and your country. Being the teacher of Hindi bhasha and modern Hindi literature I do translations from Hindi to Czech for our m agazeen "New Orient".

Now I prepare the selection of modern and contemporous Hindi kahani, upanyas, natak and kavita, in order to present to our students the History of modern Hindi sahitya.

I know only by names your outstanding works, but I have no possibility to read and translate it to Czech, as in my country we have no your works. I should be very glad you to send me some of them on the address below written.

I hope, you will kindly help me in my endavour to make to our people acquaintance with Bharatia sahiyta and kala.

With warm regards,

Yours sincerely,

Prof. Odolen Smekal

My adddress :

Prof. Odolen Smekal,
Nova Dedina
P. Kvasice,
Czechoslovakia.

Sahitya Akademy

New Delhi
Feb. 2, 1962

Dear Sri Radhikaraman Prasad Sinha,

I and my colleagues in the Sahitya Akademy were very happy to read your name in the Republic Day Hououors list and to know that your distinguished services to the nation and your talents have been recognised and appreciated by the state.

May we wish you many more years of a still more distinguished career !

With kind regards,

Yours sincerly,
K. R. Kriplani
Secretary

Sahitya Akademy
National Academy of letters
President : Jawaharlal Nehru

New Delhi
May 22, 1962

Dear Sri Radhikaraman Sinha,

Thank you very much for your kind letter of 12th May 1962. I also thank you for a copy of the work Raj Rajeswari Granthwali containing the poetical writings of your late illustrious father including his translation of Chitrangada. It will be a very valuable addition to our library. With kind regards,

Yours sincerely,
Krishna Kriplani
Secretary

मगध विश्वविद्यालय
B. M. K. Sinha

Magadh University
Bodh Gaya
8th Jan. 1969

Dear Raja Saheb,

I hope you have recieved my previous letter inviting you to attend the convocation to receive your degree. The covocation will be held at 1 P. M. on the 19th inst. at Bodh Gaya. On arrival, you are requested kindly to contact the registrar for your card and hood and gown. Kindly inform me if you need any other conveniences.

Yours sincerely,
B. M. K. Sinha

C. P. N. Singh
(Former Governor of Punjab)

2, Hailey Road,
New Delhi-1
3rd February '71

My dear Raja Sahib,

I have received your invitation on the occasion of the marriage of your grand daughter on the 4th of Feb. 1971. Please accept my thanks for the same. I wish to convey warmest felicitations and good wishes for the happiness and prosperity of the marrying couple.

2. I am so happy to get this invitation and through this the feeling of remembrance from you. It is ages that we have met. Next time when I go to Patna I will make it a point to go and see you and have the pleasure of talking to one of my oldest and respected friends.

Kindest regards.

Yours affectionately
C. P. N. Singh

राजा साहब के पूर्वज श्री सन्तोष राय को लिखे गए दो पत्र

Document No. 1

Shah Alum Badsha
Gazi Madarul Moham
Sepahsalar Company Angraji
Dewan Suba Bangala
Seal of Company
District Azimabad

Sd. The 3rd October 1781
J. A. S. Ross
Offg Chief of the Province.

Know ye all Zamindars Kanongoes, Mutsadians, Ryots and Cultivators of Parghanas Arrah, Bhozpur Etc. in Sahabad lying within Suba Behar that since Santokh Roy, the personation of honesty has been appointed to perform the duties of making arrear collection for the year 1188 F. S. and also bringing under cultivation (the lands) and making collections for the year 1189 F. S. in the aforesaid Parganas in accordance with the order of the Hazoor. It is required that he should perform his duties with honesty and propriety and should endevour to pull well with the ryots and keep them in peace and that he should diligently collect the arrears and remit them with promptitude into the (Treasury) and should also take proper steps, to bring the land under cultivation in 1189 F. S. and collect rent for that year and remit the same without delay. He should not spend

any thing unless authorized by the Hazoor. He should keep accounts and papers presented by rules and submit them into the record room (Dufter) of the Hazoor. It is also required that those persons (the Zamindars, Kanongoes Mutsuddis, Ryots, and cultivators) should recognize him the said Santokh Roy, as the permanent tehsildar of the aforesaid Purghanas and should remain present in the collection past and current rents and in the cultivation of lands (i. e. afford every facility for those works) and give correct and necessary informations to him and that he (the said Santokh Roy) should look to the interest of the Government and should consider himself responsible for any hardship or oppression on the Ryots and for their well being. He should consider this to be very important.

The six pergannas of which Santokh Roy got charge were :

1. Pergunnah Arrah.
2. ,, Bhojpur.
3. ,, Behia
4. ,, Danwar.
5. ,, Bargawan.
6. ,, Denara.

3rd october 1781

Corresponding to 1st. Kartik.

Document No. 2.

Shah Alum Badsha
Gazi Madarul Moham
Sepahsalar Company Angraji
Dewan Suba Bangala
Seal of Company
District Azimabad

Sd. Arrah 8th July 1782.
W. A. Brooke

TO THE BRAVE AND HONEST SANTOKH RAI

May you live in peace.

Since Zamindars, chowdhuries, kanangoes, Malguzars, Ryots, cultivators of Parghanas Danwer and Dinarah appertaining to the Estate of Raja Bikramajit Singh contractor with Government (Motaahid) and of Parghana Bihia the entire territory of Babu Bhoopnarain Singh in Shahabad have been much oppresed in their cultivation businees for the year 1189 F. S. by the high handed proceedings of the servants of the said contractors with Covernment therefore you, the brave and honest, are hereby appointed by Government and it is desired that you should pursonally go to the said Parghana and encourage the aforesaid Zamindars and

Malguzars and give them hopes that they may carry on their cultivation business in peace of mind and (you should also) give pattas to such of them as may agree to execute kabuliats and to attach and keep in khas possession of Government the holdings of such persons who would not agree to execute kabuliats. The patta to nagdi-holders should be given in the ordinary form; the Bhawli holders should have pattas (given to them reciting) that 22½ seers as the share of the Government and 17½ seers as the share of the ryots in every maund, you also keep yourself engaged in protecting their interests in such a manner that the servants of the aforesaid Zamindars may no longer oppress them. Here in fail not.

8th July 1782
Corresponding to Asar 9 (1189)

राजा साहब के एक और पूर्वज
श्री रामप्रताप सिंह को लिखे गए पत्र

Document No. 11

Shah Alum Badsha
Gazi Madarul Moham
Sepahsalar Company Angraji
Seal of Company
District Azimabad

Sd. Arrah 9th January 1786
W. A. Brooke

This is a purwana addressed to Zamindars, Kanoongoes, Talukdars, Ryots, cultivators and to the public at large of Perghanas Denwar and Denara with Ram Pratap Singh as per document No. 10 for the year 1193 and 1194 requiring them to recognise the aforesaid settelment holder who is described in it and also in document No. 10 by the word mutaahid which means cantractor with Government and which word was formerly applied to Raja Bikramajit Sing and Bhup Narain Sing.

This document is similar to Document No. 5 in its terms. Thefore the full translation is not given.

राजा साहब के पूज्य पितामह तथा पिता
दीवान रामकुमार सिंह तथा श्री राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह को भेजे गए पत्र

Document No. 14

In command of his excellency the viceroy and Governor General this certificate is presented in the name of Her Most Gracious Majesty Victoria Empress of India, to Babu Ram Kumar Singh son of Ram Dhean singh of Surajpura perghana Dunwar Zillah Shahabad, late Dewan of the Maharaja of Dumraon in recognition of his services at the time ot the Famine of 1873-74.

Richard Temple

Ist January 1877

Document no. 16

No. 100 T

From

A. Mackenzie, Esquire,

Secretary to the Govt. of Bengal, General and Revenue Department

To The Commissioner of Patna,

Dated Darjeeling, the 25th June 1880.

Sir,

With reference to your letter No. 317 R dated the 14th ultimo to the address of the Board of Revenue L. P I am directed to say that the lieutenant Governor accepts the offer made by Dewan Ram Koomar Singha, a Zemindar of Shahabad, to withdraw all claim to compensation for damage done to his property by the proceedings of the Irrigation Dept in connection with the construction of the Sone Canals and their distributeries. You are requested to be good enough to convey to Dewan Ram Koomar Singh an expression of Sir Ashley Eden's appreciation of the public spirit and liberality which have actuated him in the matter

The original enclosures of your letter are herewith returned.

I have etc.

(Sd) A. Mackenzie.

Secretary to the Govt. of Bengal.

Memo No. 774 G.

Shahabad Collectroate

the 13th July 1880

Copy forwarded to Dewan Ram Coomar Singh of Sooroj poora for information with reference to his petition dated 3rd May last.

Govind Mohan Ghose

Deputy Collector for Collector.

Extract from General administration report of Sasaram Subdivision for the year 1886-87.

The principal resident Zemindar Babu Raj Rajeshwery Prashad Singh of Soorajpoora who maintains an English School at Sooraj-poora is about to endow a dispensary at the same place. This gentleman is even ready to come forward with material support towards any Scheme that has for its object the public good, but I am sory that there is no other Zamindar in the subdivisin of whose liberality or zeal of the Public welfere there is any thing special to record.

Sd. D. Comarus

Subd. officer, Sasaram.

जीवन-वृत्त

स्वर्गीय राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह

जन्म : १० सितंबर १८९० ई०
मृत्यु : २४ मार्च १९७१ ई०

जन्म-स्थान : ग्राम-सूर्यपुरा, थाना-दावथ, जिला-शाहाबाद (बिहार)

पिता : राजा राजराजेश्वरी प्रसाद सिंह 'प्यारे' कवि

माता : रानी शकुन्तला देवी

परिवार : शाहाबाद (बिहार) के अति प्राचीन कायस्थ-कुल में उत्पन्न। केवल दो भाई। छोटे भाई कुमार सर राजीवरंजन प्रसाद सिंह का १९४८ में देहान्त। १९११ में चाँदी (आरा) निवासी श्री जगतानन्दन सहाय की पुत्री श्रीमती ललिता देवी के साथ विवाह सम्पन्न। १९५३ में रानी साहिबा का स्वर्गवास। चार पुत्र, दो पुत्रियाँ। प्रथम पुत्र सौर-गृह में ही काल-कवलित। द्वितीय पुत्र श्री राजेन्द्र प्रताप सिंह (बालाजी) तथा तृतीय पुत्र श्री उदयराज सिंह (शिवाजी) वर्तमान। चतुर्थ पुत्र शम्भुजी चार वर्ष की अवस्था में ही काल-कवलित। दो पुत्रियाँ—श्रीमती नलिनी श्रीवास्तव तथा श्रीमती निर्मला वर्मा वर्तमान। पौत्र—श्री अभयराज सिन्हा, कमलराज सिन्हा (बालाजी के पुत्र) और प्रमथराज सिन्हा (शिवाजी के पुत्र) वर्तमान। पौत्रियाँ—कंचन रायजादा तथा चांदनी (बालाजी की पुत्रियाँ), मंजरी सेन, रेश्मा, मीनी (श्री शिवाजी की पुत्रियाँ), अनुज-पुत्र—श्री कृष्णराज सिंह (राणाजी) तथा नन्दनी (राणाजी की पुत्री) वर्तमान। अनुज-पुत्रियाँ—लीली सहाय, इन्दिरा प्रसाद, विन्दु वर्मा, जयंती सिन्हा, रेवती श्रीवास्तव वर्तमान। मायादत्त राम का हाल ही में स्वर्गवास। अनुज-पत्नी—श्रीमती केशवनन्दिनी सिन्हा वर्तमान।

शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा घर में पंडित जी और मौलवी साहब की देख-रेख में। फिर १६०३ में आरा जिला स्कूल में प्रवेश। इंट्रेंस परीक्षा कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण। कुछ दिन वहीं १६०७ में सेंटजेवियर्स कॉलेज में। फिर बंगभंग आंदोलन में कार्य करने तथा श्री अरविन्द से प्रभावित होने के कारण। जिलाधीश द्वारा आगरा कॉलेज, आगरा में एफ० ए० के दूसरे साल में प्रवेश वहीं से एफ० ए० पास। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के म्योर सेंट्रल कॉलेज से १६१२ में बी० ए० पास और संस्कृत में स्वर्णपदक प्राप्त। फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय से पटना कॉलेज, पटना के छात्र बन कर १६१४ में इतिहास से एम०ए० पास।

राजकाज : पिता की मृत्यु ६ अप्रैल १६०३ से लेकर १६१८ तक राज कोर्ट ऑफ वार्ड्स के अधीन। १६१६ में कोर्ट ऑफ वार्ड्स के मैनेजर नियुक्त। १६१८ में राज कोर्ट ऑफ वार्ड्स से मुक्त और सम्पूर्ण राज्य-भार का संचालन आपके हाथ में।

सार्वजनिक जीवन : १६२० की पहली जनवरी को 'राजा' की उपाधि से विभूषित। १६२२ से १६२८ तक शाहाबाद (आरा) डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के प्रथम भारतीय चेयरमैन। १६३३ से १६४० तक बिहार हरिजन-सेवक-संघ के अध्यक्ष।

पटना युनिवर्सिटी सिनेट के सदस्य १६४२ से १६५२ तक। बिहार युनिवर्सिटी के सिनेट के सदस्य १६५२ से १६६२ तक।

साहित्यिक जीवन : १६२० में बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन (बेतिया) के अध्यक्ष। आरा नागरी प्रचारिणी सभा के आजीवन सभापति। १६३७ में बिहार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष। बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् की सामान्य समिति के १६५० से १६७० तक सदस्य। साहित्य एकादमी, दिल्ली के सदस्य १६५६ से १६६४ तक। १६३७ में देशरत्न राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में गठित मौलाना अबुल कलाम आजाद के साथ हिन्दुस्तानी कमिटी के सदस्य। नाट्य संगीत एकादमी (बिहार सरकार) के सदस्य। काशीनागरी प्रचारिणी

सभा के सदस्य। इसके अतिरिक्त बिहार के तथा देश के अनेक कॉलेजों तथा अन्य साहित्यिक संस्थाओं के साहित्यिक समारोहों के अध्यक्ष और उद्घाटनकर्त्ता। महाराजा कॉलेज, आरा की प्रशासन समिति के सदस्य तथा सूर्यपुरा राजराजेश्वरी हाई स्कूल के संस्थापक और आजीवन अध्यक्ष। 'नई धारा' के संस्थापक तथा संचालक।

१९६२ में राष्ट्रपति द्वारा अपनी हिन्दी सेवाओं के लिए 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित। राजेन्द्र अभिनन्दन-ग्रन्थ के सम्पादक। १९६५ में बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् द्वारा वयोवृद्ध साहित्यिक पुरस्कार और सम्मान। १९६९ में मगध विश्वविद्यालय से डॉक्टर ऑफ लिटरेचर की डिग्री से विभूषित। प्रयाग हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से १९७० में 'साहित्यवाचस्पति' की उपाधि से विभूषित।

अंत : २२ जनवरी १९७१ को मकान के पास ही अचानक गिर जाने से दाहिनी जाँघ की हड्डी भंग। २४ मार्च १९७१ को दिन में १½ बजे देहान्त।

स्तुति और फबती, प्रशंसा और निंदा तो एक ही जंजीर की दो कड़ियाँ हैं, एक ही वृत्ति के दो पहलू—वह गले में हार दे तो, गले में हाथ दे तो!

—राधिकारमण

कृतित्व

राजा साहब के

प्रकाशित साहित्य

१. नये रिफॉर्मर —१९११—नाटक
२. कुसुमांजलि —१९१२—कहानी-संग्रह
३. नवजीवन —१९१२—लघु उपन्यास
४. तरंग —१९२०—लघु उपन्यास
५. राम-रहीम —१९३६—वृहद् उपन्यास
६. गाँधीटोपी —१९३८—कहानी-संग्रह
७. सावनी समाँ —१९३८—कहानी-संग्रह
८. पुरुष और नारी —१९३९—उपन्यास
९. टूटा तारा —१९४१—संस्मरण
१०. सूरदास —१९४२—उपन्यास
११. संस्कार —१९४४—उपन्यास
१२. नारी—क्या एक पहेली ? —१९५१—कहानियाँ
१३. पूरब और पच्छिम —१९५१—उपन्यास
१४. हवेली और झोपड़ी —१९५१—कहानियाँ
१५. देव और दानव —१९५१—कहानियाँ
१६. धर्म की धुरी —१९५३—नाटक
१७. अपना-पराया —१९५३—नाटक

१८.	वे और हम	—१९५६—कहानियाँ
१९.	चुम्बन और चाँटा	—१९५७—उपन्यास
२०.	धर्म और मर्म	—१९५९—धर्मचर्चा
२१.	तब और अब	—१९५९—संस्मरण
२२.	नजर बदली, बदल गए नजारे	—१९६१—नाटक
२३.	अबला क्या ऐसी सबला ?	—१९६२—कहानियाँ
२४.	बिखरे मोती, खंड १	—१९६५—कहानियाँ
२५.	माया मिली न राम	—१९६३—लघु उपन्यास
२६.	मॉडर्न कौन, सुन्दर कौन ?	—१९६४—लघु उपन्यास
२७.	अपनी-अपनी नजर, अपनी-अपनी डगर	—१९६६—लघु उपन्यास
२८.	बिखरे मोती, खंड २	—१९६६—संस्मरण
२९.	बिखरे मोती, खंड ३	—१९६९—स्फुट रचनाएँ
३०.	बिखरे मोती, खंड ४	—१९७०—भाषण-संकलन

राजा साहब संबंधी कुछ प्रमुख प्रकाशन

१.	आधुनिक बिहार के गद्यनिर्माता	—प्रो० मुरलीधर श्रीवास्तव
२.	राधिकारमण सिंह : व्यक्तित्व और कला	—ओंकारशरद्
३.	रा० रा० प्र० सिंह : व्यक्तित्व और कृतित्व	—डॉ० पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश'
४.	रा० रा० : कृतित्व और व्यक्तित्व	—डॉ० सियाराम शरण प्रसाद
५.	राजा साहब के विचार और उद्गार	— ,, ,,
६.	,, भावों के मोती : विचारों के सागर	— ,, ,,
७.	राजा राधिकारमण अभिनन्दन-ग्रन्थ	—भारती साहित्य-मंदिर, जमालपुर

एक दिन उसने अपने अन्तरतम की समग्र श्रद्धा को समेट कर लेखनी की नोक से उतार दिया—

"जिस जमीन की सतह पर, धरती के वासियों की फुलवारी में समता के गुल हैं, सहृदयता के परिमल; प्रगति की रीति है, परिणति की नीति; कठोर कर्मण्यता का भान है, अहिंसा का मान; आनन्द की खोज के मूल में सेवा है, कला के कौशल की तह में साधना—बस, अपना तो वही काशी, अपना तो वही व्रज है!"

और, सचाई की सारी शालीनता के साथ उसने इस भावना की साधना को सिद्धि के सौध की ऊँचाई तक पहुँचाया। राम और रहीम, पुरुष और नारी, पूरब और पच्छिम, हवेली और झोपड़ी, देव और दानव, वे और हम, चुम्बन और चाँटा, धर्म और मर्म, तब और अब, अपना और पराया, अबला और सबला, माया और राम, मॉडर्न और सुन्दर, नजर और नजारे—इन सभी द्वन्दों के बीच के विवेक की डोर पकड़ उसने सार्वभौम समन्वय की जो सत्ता खड़ी की वह संसार के साहित्य में एकान्त और अद्वितीय है। दर्प का दोष लगने की आशंका को उठाकर भी वाणी यह कहने से रुकना नहीं चाहती कि समन्वय का इतना बड़ा साधक साहित्य के संसार में आज तक दूसरा न हुआ।

× × ×

सभी धर्मों ने एक स्वर से सकारा है कि क्रोध पाप का मूल है। संसार के सभी मनीषियों ने क्रोध-जय की साधना की शिक्षा दी और ऋषियों ने इसकी सिद्धि के लिए जाने कितना शम-दम किया। बिश्वामित्र और दुर्बासा की त्याग-तपस्या के आगे दुनिया दाँतों उँगली काटे—ऐसी कठोर-साधना उन्होंने की; फिर भी, किसी ने उठकर प्रणाम न किया तो वह ऋषि के शाप से काग हो गया, कोई चमगादड़ भी हो गया! जप-तप की, भक्ति-ज्ञान की सारी साधना आकाश की ऊँचाई तक उठ गई, पर क्रोध-जय का जौहर अजेय ही रह गया। और, तब हम पाते हैं कि राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह की संज्ञा से अभिहित यह विराट् व्यक्तित्व ऋषियों द्वारा

अलभ्य-अप्राप्य अक्रोध को भी आत्मसात् कर ऋषियों का राजा होने की भी अर्हता पा चुका था।

'पद पाकर भी मद की आमद न हो, ऐसा जल-कमल तो कोई चिराग लेकर भी ढूँढ़े तो मिलने से रहा'—अपनी ही इस वाणी के अनुरूप उसका अपना आचरण अखंड रहा। भरपूर धन-जन-विद्या-बुद्धि-यश-मान और निरापद पद पाकर भी स्वल्प मद की मात्रा भी उसके मस्तिष्क और मस्तक पर कभी न आ पाई, न छा पाई। यह नायाब नेमत तो शायद ही किसी को नसीब हो। समता के गुल और सहृदयता के परिमल को जन-जीवन की पगडंडियों पर बिखेरनेवाला साहित्य-चमन का यह मनोहर माली हमें छोड़ नन्दन-चमन को चला गया और लगता है, हम किसी वीरान सुनसान में आ पड़े हैं। अब तो उसकी सारी स्मृतियों को सँजो कर अपनी सारी श्रद्धा से सनी श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पित कर ही हम अपनी इस बिछोह-व्यथा के दंशन के बीच उसकी आत्मा के दर्शन पा सकेंगे। इस स्मृति-अंक का यही प्रयोजन-प्रयास है।

× × ×

राजा साहब के आरंभिक जीवन के युग के कुछ ऐतिहासिक महत्त्व के पत्राचार एवं कागजात तथा राजा साहब की कृतियों एवं उनके संबंध में प्रकाशित कुछ प्रमुख प्रकाशनों के परिचय भावी शोधकर्त्ताओं के उपयोग की दृष्टि से दे दिए गए हैं।

× × ×

इस श्रद्धा-समर्पण-यज्ञ के लिए हमारे सभी अपनों ने जो श्रद्धा-सुमन जुटाये हैं, वे तो सभी प्रकार अपने ही हैं, उन्हे धन्यवाद की औपचारिकता हम क्या दें? फिर भी, कृतज्ञता के आँसू के अर्घ्य उन्हें भी अर्पित हैं। चित्र-कला के अनूठे कुशल कलाकार श्री उपेन्द्र महारथी जी ने आवरण, अन्तर्मुख पृष्ठ एवं स्तम्भों के शीर्षकों को जिस मनोयोग से सजाया-सँवारा है, उसके लिए हम उन्हें साधुवाद दिये बिना कैसे रह सकते [illegible]? राजा साहब के कुछ आत्मीय स्वजन बन्धुओं ने उनके कुछ आत्मिक पत्रों को [illegible]काशनार्थ देने की जो कृपा की है उसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं। जाने-अनजाने [illegible]जन-किन लोगों से जो-कुछ भी सहयोग हमें इस आयोजन में मिला है, उन सबके प्रति [illegible]म अपना आभार प्रकट करते हैं।

× × ×

अन्त में अपनी ओर से, आपकी ओर से और सबकी ओर से साहित्य, कला और [illegible]य के धनी अपने रहनुमा राजा के स्वर्ग-राज्य में प्रविष्ट आत्मा को अन्तरिक आस्था, [illegible] और श्रद्धा का अर्घ्य अर्पित कर उसकी शाश्वत शान्ति एवं अपने लिए उसके [illegible]क आशीर्वाद की याचना करते हैं।

आपके बच्चे दीर्घायु हों

परिवार नियोजन द्वारा बच्चों की संख्या कम रखने में अब खतरा नहीं है, क्योंकि दिन-दिन बढ़ती हुई स्वास्थ्य सेवाओं से पहले जो देश में मृत्यु दर २७ प्रति हजार थी वह अब घट कर १३ प्रति हजार हो गई है। पहले भारत में औसत आयु ३२ वर्ष थी जो अब बढ़ कर ५० वर्ष हो गई है। इस प्रकार बच्चे हों अथवा सयाने अकाल मृत्यु का भय अब बहुत कम हो गया है।

बच्चों के स्वास्थ्य के लिए तो खास इन्तजाम किये गये हैं। सभी मातृ-शिशु कल्याण अस्पतालों में छोटे बच्चों को ट्रिप्ल एन्टिजेन की सुई तथा विटामिन 'ए' की गोली दी जाती है, जिसमें वे स्वस्थ रहें और दीर्घायु हों।

अतः बच्चों की संख्या बढ़ा कर आप स्वयं उनके लिए अस्वस्थता, बेकारी, अशिक्षा तथा विविध कष्टों को आमंत्रित करते हैं।

राज्य परिवार नियोजन ब्यूरो, बिहार द्वारा प्रसारित

बिहार की जनसंख्या में २० लाख की कमी

१९७१ की जनगणना के अनुसार बिहार की आबादी में लगभग १ करोड़ की वृद्धि हुई है जो जनसंख्या वृद्धि की दर के आधार पर किये गये पूर्व अनुमान से लगभग २० लाख कम है।

बिहार में जनसंख्या वृद्धि २१.३ प्रतिशत हुई है जबकि राष्ट्रीय दर २४.५ है।

१९६६-६७ से १९७०-७१ तक बिहार में ४६७४८५ नस-बंदी आपरेशन तथा १९१३७३ लूप प्रविष्टि हुई है। १९७०-७१ में लगभग ५० लाख निरोध का वितरण हुआ है।

कल्याण योजना

मातृ-शिशु कल्याण केन्द्रों तथा प्रसूति-अस्पतालों में गर्भवती महिलाओं को टेटनस निरोधक सूई तथा खून की कमी रोकने के लिए फौलिक एसिड की गोलियाँ दी जाती हैं। छोटे बच्चों को घातक रोगों से बचाव के लिए मातृ-शिशु अस्पताल में ट्रिपल एंटिजन की सूई तथा विटामिन 'ए' दिये जाते हैं।

परिवार नियोजन वास्तव में परिवार-कल्याण योजना है।

— राज्य परिवार नियोजन ब्यूरो द्वारा प्रसारित
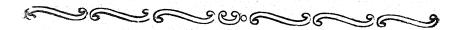
पर्यटकों का आकर्षण केन्द्र : बिहार

पाटलिपुत्र के प्राचीन राजनगर, नालन्दा के विश्वविख्यात विद्यालय तथा राजगृह की भव्य दीवारों के भग्नावशेष, सासाराम स्थित शेरशाह का मकबरा, वैशाली, अरेराज और लौरियानन्दनगढ़ के अशोक स्तम्भ, बोधगया, देवघर, पारसनाथ और पावापुरी के प्राचीन मन्दिर और पटना सिटी के सिख गुरुद्वारा को अवश्य देखें।

राजगृह के गर्मजल झरनों में स्नान करना तथा छोटानागपुर के जल-प्रपात, मनोरम पहाड़ियों, झीलों और जंगलों के प्राकृतिक सौन्दय का अवलोकन करना न भूलें।

जमशेदपुर, हटिया (राँची), सिन्दरी, धनबाद, पंचेत, मैथन, तिलैया तथा बरौनी के सुविख्यात औद्योगिक केन्द्रों का परिदर्शन करें।

पटना, राजगृह, गया, राँची और मुजफ्फरपुर में टुरिस्ट बस, टुरिस्ट यान तथा उत्तम कोटि की आरामदेह मोटरगाड़ियाँ भी सुलभ हैं।

राजगृह, वैशाली, नेतरहाट (पलामू) और हजारीबाग में पर्यटकों के आवास की सुविधा के लिये उत्तमकोटि के आरामदेह टुरिस्ट बंगलों की स्थापना पर्यटन विभाग द्वारा की गयी है। राजगृह में, जापान-भारत-सर्वोदय मित्रतासंघ, जापान के सहयोग से रत्नगिरि के शिखर पर निर्मित विश्व शान्ति स्तूप के परिदर्शन के लिये पर्यटन विभाग द्वारा आकाशीय रज्जुपथ का संचालन किया गया है। मात्र एक रुपया प्रति व्यक्ति की दर से शुल्क देकर रज्जुमार्ग की यात्रा की जा सकती है। विशेष जानकारी के लिए पर्यटक सूचना केन्द्र, मजहरुलहक पथ, पटना-१ (दूरभाष यंत्र संख्या-२५२६५) से सम्पर्क स्थापित करें।

—पर्यटन विभाग, बिहार

बिहार राज्य कृषि उद्योग विकास निगम लिमिटेड

बोरिंग रोड, पटना--१

आवश्यक सूचना

बिहार राज्य कृषि उद्योग विकास निगम लिमिटेड, पटना ने किसानों के फायदे के लिए आरा, कोइलवर, ब्रह्मपुर, बक्सर, बिहटा, मनेर, मोकामा, बख्तियारपुर, बड़हिया, सूर्यगढ़ा, पीरपैंती, बाँका, नवगछिया, बेगूसराय, खगड़िया, कटिहार, छपरा, दिघवारा, मुजफ्फरपुर, वैशाली, विक्रमगंज, गया और दलसिंगसराय में खेती के लिए भाड़े पर ट्रैक्टर देने का निर्णय लिया है।

निगम के केन्द्र निम्नलिखित स्थानों पर हैं—

(१) निगम कार्यालय — बोरिंग रोड, पटना—१।

(२) क्षेत्रीय कार्यालय — भौवा कुटीर, खंजरपुर, भागलपुर।

(३) क्षेत्रीय कार्यालय — नेशनल हाई वे—३१, पैंड्स इंजीनियरिंग कम्पनी के सामने, पूर्णियाँ।

(४) क्षेत्रीय कार्यालय — सहाय भवन, नयाटोला, मुजफ्फरपुर।

(५) क्षेत्रीय सेवा केन्द्र — नेशनल हाईवे पर, अलका सिनेमा के समीप, बेगूसराय।

(६) क्षेत्रीय सेवा केन्द्र — इन्डस्ट्रीयल इस्टेट, रामनगर, चम्पारण।

(७) क्षेत्रीय सेवा केन्द्र — जी० टी० रोड, प्रकाश पेट्रोल पम्प के सामने, सासाराम।

(८) क्षेत्रीय सेवा केन्द्र — विक्रमगंज (सासाराम मुख्य मार्ग पर) शाहाबाद।

(९) क्षेत्रीय सेवा केन्द्र — वेस्ट चर्च रोड, गया।

जो किसान ट्रैक्टर भाड़े पर लेना चाहते हैं वे शीघ्र आवेदन पत्र निगम के कार्यालय, बोरिंग रोड, पटना, अथवा उपरोक्त क्षेत्रीय कार्यालय में भेजें। आवेदन पत्र में किसान का नाम व पता, गाँव का नाम, निगम के केन्द्र से गाँव की दूरी, कितना खेत ट्रैक्टर से भाड़े पर जोतवाना है तथा कब जोतवाना है उसका पूर्ण विवरण भेजें।

ट्रैक्टर द्वारा कल्टीभेटर या डीस्क हैरो से दो बार खेत जोतवाने का दर *२४/-* रुपया प्रति एकड़ है। अनुमानित भाड़ा निगम में जमा करने के बाद ही ट्रैक्टर प्राप्त हो सकते हैं।

Cement is forever

And so is a house, built with ACC Cement. To last for generations. A concrete inheritence for your children's children's children. ACC Cement is security, durability and permanence.

For your cement requirements, contact your nearest ACC stockist or The Cement Marketing Company of India Ltd., Mrs. Indubala Sen Trust Building, Exhibition Road, Patna.

FREE TECHNICAL HELP from
The Concrete Association of India,
Bombay Mutual Building,
9 Brabourne Road, Calcutta.

ACC
the farmers' friend

THE ASSOCIATED CEMENT COMPANIES LIMITED
The Cement Marketing Company of India Limited